भूमिका

वर्तमान युग अर्थ-प्रधान है। जहाँ देखिये वहाँ धन का ही खेल ाई पड़ता है। अतः, यह स्वाभाविक ही है कि सभी लोग धन कमाने में लगे हुये हैं। कुछ लोग तो दूसरों की सेवा करके धन कमाते हैं, तो कुछ लोग खेती करते हैं अथवा कोई सामान बनाते हैं अथवा ोई अन्य काम करते हैं, जैसे उनको एक स्थान से दूसरे स्थान को ुंचाना अथवा उनको ख़रीदना और बेचना, इत्यादि। वास्तव में सब व्यापार ही है। आधुनिक काल के व्यापार की विशेषता यह के वह प्रायः बड़े पैमाने पर ही किया जाता है। अतः, उसके एक बड़ी पूँजी की आवश्यकता है जो कम्पनियों के रूप में ही ाती है।

ातवर्ष एक ग़रीब देश है। हमारे यहाँ का व्यापार पिछड़ा ुआ है। देशवासियों की ग़रीबी दूर करने के लिये यह आवश्यक कि उसका व्यापार ख़ूब बढ़ाया जाय। इसका एक साधन देश के ोगों में और विशेषतः विद्यार्थियों में व्यापार-सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार ना है। अँग्रेज़ी में इस विषय पर सैंकड़ों पुस्तकें हैं, किन्तु हिन्दी उनका अभाव है। अतः, इसी अभाव को कुछ अंश में दूर करने उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें व्यापार-सम्बन्धी सभी ें और विशेष करके सम्मिलित पूँजी की कम्पनियों के सम्बन्ध में वश्यक बातें बतलाने का प्रयत्न किया गया है।

व्यापार में स्वार्थ की भावना होना स्वाभाविक ही है। किन्तु ुनिक काल में स्वार्थ की यह सीमा इतनी बढ़ गई है कि अनेक ारी अपनी धन कमाने की धुन में प्रायः ऐसे काम करते रहते हैं

जिससे दूसरों की हानि होती है और देश तथा समाज अपने आदर्श से गिरता जाता है। वास्तव में ऐसे मनुष्यों को धनवान होने पर भी कभी सुख और शान्ति नहीं मिल पाती है। जब एक व्यापारी वस्तुओं में मिलावट करके बेचता है, जब वह माल के तौलने में बेईमानी करता है और अपने ग्राहकों को ठगने का प्रयत्न करता है तब उसका ध्यान धन कमाने की ओर ही रहता है। वह इस बात का विचार नहीं करता कि उसके इन प्रयत्नों से दूसरों की क्या हानि होती है अथवा उनको कितना दुःख उठाना पड़ता है। अपने अत्यधिक स्वार्थ की प्रेरणा से ही एक पूँजीपति अपने मज़दूरों का शोषण करता है, एक जमींदार अपने किसानों से अत्यधिक लगान वसूल करता है और एक महाजन अपने क़र्ज़दारों से अत्यधिक सूद लेता है। इस प्रकार के प्रयत्नों से धन तो अवश्य मिलता है परन्तु उसके द्वारा सुख और शान्ति नहीं प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि जो धन दूसरों को दुःख पहुँचाकर अधर्म द्वारा प्राप्त किया जाता है उससे सुख और शान्ति नहीं मिलती। यह साधारण बात तो सब ही जानते हैं कि जो जैसा बोता है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है परन्तु हमारे व्यापारी अपने व्यवहार में इस बात को भूल जाते हैं। वे दिन-रात ऐसे कार्य करते रहते हैं जिनसे दूसरों का अहित होता है और उसके बदले में आशा करते हैं कि उनको सुख मिले। किन्तु वे लोग जब दूसरों के लिये दुःख बोते रहते हैं तब उनको उसका फल दुःख ही भोगना पड़ता है। दूसरों को दुःख पहुँचाकर सुख कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। हाँ! धन अवश्य मिल सकता है। परन्तु वह धन इस प्रकार दुर्व्यसनों में ख़र्च हो जाता है कि उससे उन्हें दुःख ही प्राप्त होता है और धन की हाय-हाय में शान्ति का तो अभाव ही रहता है। अधर्म से प्राप्त किया धन बहुत दिनों नहीं टिकता और अन्त मे समूल नष्ट हो जाता है। स्थायी सुख और शान्ति दूसरों को सुखी करके ही प्राप्त हो सकती है और यह तभी हो सकता है जब प्रत्येक व्यापारी अपने कार्यों में

दूसरो के हितो का उतना ही ध्यान रखे जितना वह अपने हितों का रखता है। दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य का अर्थात् अपने धर्म का ध्यान अपने व्यापार के प्रत्येक कार्य में रखने से उसे जो धन प्राप्त होगा उससे दूसरो का भी हित होगा, देश और समाज के सुख की वृद्धि होगी और उसे भी सुख और शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

भारतीय आदर्श प्रत्येक कार्य में धर्म को प्रधानता देता है। परन्तु हमारे व्यापारी तो यह समझने लगे हैं कि व्यापार में धर्म का कोई स्थान नहीं है और वे भारतीय आदर्श से दूर होते जा रहे हैं। इससे उनके धन की वृद्धि होने पर भी पारस्परिक संघर्ष की वृद्धि होती है, अशान्ति बढ़ती है और देशवासी सुखी नही हो पाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी धनवान और सुखी हों तो हमको अपने व्यापार की वृद्धि भारतीय आदर्श द्वारा धर्म को उचित स्थान देकर करनी चाहिये। इस पुस्तक में भारतीय आदर्श का ध्यान रक्खा गया है।

आधुनिक व्यापार पर हिन्दी मे पुस्तक लिखने का विचार तो लेखक के हृदय में बहुत दिनो से उठ रहा था, किन्तु वह कार्यरूप मे इसी वर्ष परिणत हो सका है। वास्तव में इसका सारा श्रेय प्रयाग विश्व विद्यालय के अर्थ-शास्त्र के अध्यापक श्री दयाशंकर जी दुबे को है जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि की तैयारी में बराबर परामर्श देकर और अन्त में उसका सम्पादन करके लेखक को बडी सहायता पहुँचाई है। अतः, वह इसके लिये उनका बहुत ही आभारी है। लेखक की सदा से यही इच्छा रही है कि वह जैसे भी हो सके अपनी मातृ-भाषा हिन्दी को पूर्णतया उन्नत बनावे। अतः, उसने इसी ध्येय से हिन्दी में अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं। यह भी उसका एक ऐसा ही प्रयास है। उसका आर्थिक तथा व्यापारिक शिक्षा से बहुत दिनो का सम्बन्ध है। अतः, यह आशा की जाती है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों और जनता को बहुत ही पसन्द आवेगी और हिन्दी जगत इसको

अपना कर हिन्दी के लेखकों के उत्साह को और भी बढ़ावेगा। इस पुस्तक के लिखने में ठा० राजबहादुर सिंह से और टाइप करने में बा० गयाप्रसाद तथा सूर्य नारायण से बड़ी सहायता मिली है। अतः, लेखक इसके लिये उन सब का भी बहुत ही आभारी है।

विनीत

प्रयाग
नवम्बर ८, १९४७

कन्तानाथ गर्ग

विषय-सूची

अध्याय १

प्रारम्भिक

अध्याय २

साझा

अध्याय ३

कम्पनियाँ

अध्याय ४

कम्पनियों का कार्य-संचालन

अध्याय ५

कम्पनी की इतिक्रिया

अध्याय ६

आफिस का संगठन

अध्याय ७

हिसाब-किताब की भिन्न-भिन्न रीतियाँ

अध्याय १२

आयात

अध्याय १३

विनिमय की दर

अध्याय १४

चालान और बीमा

अध्याय १५

कस्टम्स

अध्याय १६

भुगतान के तरीके

अध्याय १७

हुण्डी पुर्जे

अध्याय १८

स्टाक एक्सचेञ्ज

अध्याय १६

करन्सी और सर्राफ़ा

अध्याय २०

हमारी कुछ वर्तमान समस्याएं

१. प्रारम्भिक

(१) व्यापार किसे कहते हैं (२) धन की परिभाषा (३) धन की उत्पत्ति का रूप (४) धन की उत्पत्ति के साधन (५) व्यापार के लिये पूँजी की आवश्यकता (६) आधुनिक व्यापार में सम्मिलित पूँजी का स्थान (७) सम्मिलित पूँजी का महत्व।

(१) व्यापार किसे कहते हैं

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिये वस्तुएँ प्राप्त करने का दिन-रात प्रयत्न करता रहता है। भोजन के लिये वह खाद्य सामग्री एकत्रित करता है, गर्मी और शीत से बचने के लिये वह आवश्यक कपड़ों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अपने कुटुम्ब के साथ आनंदपूर्वक रहने के लिये वह मकान की तलाश करता है और मनोरंजन के लिये भी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इनमें से कुछ वस्तुएँ तो वह स्वयं बना लेता है, परंतु अधिकांश वस्तुएँ उसे मोल लेकर बाजार से खरीदनी पड़ती हैं। वस्तुएँ खरीदने के लिये उसे धन की आवश्यकता पड़ती है इसलिये धन को प्राप्त करने का प्रत्येक मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। धन या तो दूसरों का सेवाएँ करके प्राप्त होता है या ऐसी वस्तुएँ तैयार करके या उपभोक्ताओं के पास पहुँचा कर के मिलता है जो दूसरों के लिये उपयोगी हों। बस, धन प्राप्ति के उद्देश्य से दूसरों के लिये उपयोगी वस्तुएँ बनाना या उपभोक्ता के पास पहुँचाना ही व्यापार है। जब हम दूसरों के लिये सेवाएँ करते हैं तब हमको वेतन या मजदूरी मिलती है। जब हम ऐसी वस्तुएँ तैयार करते हैं जो दूसरों के लिये उपयोगी हो तो बाजार में बेंचने पर

उसके बदले में हमको धन प्राप्त होता है और फिर इस धन से हम ऐसी वस्तुएँ खरीदते हैं जो हमारे लिये आवश्यक होतीं हैं।

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि दूसरों के लिये उपयोगी वस्तु धन प्राप्त करने के उद्देश्य से तैयार करना या उनको उपभोक्ताओ के पास पहुँचाना ही व्यापार है। अपने या अपने कुटुम्ब के लिये उपयोगी वस्तुएँ तैयार करना व्यापार नहीं माना जाता और न दूसरो को मुफ़्त में बाँटने के लिये वस्तुएँ तैयार करना ही व्यापार माना जाता है। व्यापार में धन-प्राप्ति की भावना अर्थात् स्वार्थ और दूसरों के लिये उपयोगी वस्तुएँ तैयार करने की भावना अर्थात् परार्थ दोनो का मिश्रण है। स्वार्थ और परार्थ दोनों भावनाओं का व्यापार के लिये होना आवश्यक है। परतु कभी-कभी स्वार्थ की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि कुछ व्यक्ति ऐसी वस्तुएँ तैयार करते हैं जो सचमुच तो दूसरों के लिये अधिक उपयोगी नहीं होती परंतु देखने में बहुत उपयोगी मालूम होती हैं। वे अच्छी वस्तुओं में मिलावट करके अपना स्वार्थ साधन करते हैं। इस प्रकार परार्थ की भावना की बहुत कमी हो जाती है, व्यापार में बेईमानी और धोकेबाजी होने लगती है और वह बहुत गंदा हो जाता है। इससे देश और समाज को बड़ी हानि होती है। व्यापार के अच्छे होने के लिये यह आवश्यक है कि परार्थ भावना की हमेशा प्रधानता रहे और प्रत्येक व्यक्ति अपने धन-प्राप्ति के लिये ऐसी ही वस्तुएँ तैयार करे जो सचमुच में दूसरो के लिये उपयोगी हो।

जब कोई मनुष्य स्वयं या अपने कुटुम्ब की सहायता से दूसरो के लिये उपयोगी वस्तुएँ तैयार करता है तो यह कार्य छोटे पैमाने पर होता है और वस्तुओ का परिमाण भी थोड़ा ही बन पाता है। परतु जब वह अन्य व्यक्तियों की भी सहायता इस कार्य में लेता है तो वस्तुओं की उत्पत्ति बड़े पैमाने पर होने लगती है, उनका परिमाण भी बहुत अधिक होता है और इससे लाभ भी खूब होता है। बड़े पैमाने पर

दूसरों के लिये वस्तुओं की उत्पत्ति करना या उनको उपभोक्ताओं तक पहुँचाना ही आधुनिक व्यापार की विशेषता है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि छोटे पैमाने के व्यापार अब होते ही नहीं। आज-कल छोटे पैमाने के व्यापार बड़े पैमाने के व्यापार के साथ ही साथ किये जाते हैं, परंतु अधिकता बड़े पैमाने के व्यापार की ही रहती है।

(२) धन की परिभाषा

धन प्राप्ति के उद्देश्य से ही उपयोगी वस्तुएँ तैयार करना व्यापार माना जाता है इसलिये हमको अब धन की परिभाषा जान लेना आवश्यक है। प्रकृति ने हमको बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ प्रदान की हैं, किन्तु वे सब धन नहीं हैं। गङ्गा, यमुना में पानी भरा हुआ है। यह उपयोगी भी है, किन्तु इसको कोई भी धन नहीं कहता। हाँ, जब उसको भर कर हम कहीं ऐसी जगह ले आते हैं जहाँ वह बिक सकता है तो वह धन हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक उपयोगी वस्तु बिक्री के योग्य अर्थात् विनियम साध्य हो जाने पर ही धन बनती है। गङ्गा, यमुना का पानी गङ्गा, यमुना के किनारे इसलिये नहीं बिकता है कि वहाँ पर वह एक बहुत बड़ी मात्रा में है। किनारों से दूर वह इसलिये बिकता है कि वहाँ पर उसकी कमी है। अतः, विनियम साध्य बनने के अतिरिक्त कमी का भी गुण आवश्यक है। अब, यह कमी श्रम से पूरी की जाती है। जिस वस्तु की कमी है उसी के लिये श्रम करना पड़ता है। अतः, श्रम द्वारा उपार्जन होने का गुण भी विनियम साध्य होने के लिये आवश्यक है। फिर हम उसी वस्तु को बेच सकते हैं जिस पर हमारा आधिपत्य है और जिसका आधिपत्य हम दूसरों को दे सकते हैं। गङ्गा, यमुना के किनारे उसके पानी पर हमारा निजी आधिपत्य नहीं है। वहाँ से कहीं दूर पर ले जाने से उस पर हमारा निजी आधिपत्य हो जाता है, और जब हम उसको बेच देते हैं तो उसका आधिपत्य भी बदल जाता है और वह विनियम साध्य हो जाती

है। सब उपयोगी और विनियम साध्य वस्तुएँ ही धन मानी जाती हैं। इसमें सोना, चाँदी, रुपया पैसा, और प्रतिदिन काम में आने वाली वे सब वस्तुएँ सम्मिलित हैं जिनके बदले में दूसरी उपयोगी वस्तुएँ आसानी से मिल सकती हैं। कुछ अभौतिक वस्तुएँ जैसे यजमानी या दूकान की प्रसिद्धि भी विनियम साध्य हैं। इसलिये वे भी धन मानी जाती हैं!

(३) धन की उत्पत्ति का रूप

यदि हम ध्यान से विचार करें तो मालूम होगा कि धन की उत्पत्ति का अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता वृद्धि करना। अब, यह उपयोगिता वृद्धि कई प्रकार से हो सकती है, (१) रूप बदल करके, (२) स्थान बदल करके, (३) सचय करके, (४) विज्ञापन करके, (५) आधिपत्य बदल करके, (६) सेवा करके।

(१) रूप बदल करके उपयोगिता वृद्धि करना—जङ्गल में लकड़ी काटना पेड़ का रूप बदलना ही है; खेत से अन्न प्राप्त करना, बीज, पानी, हवा, गर्मी और खाद का रूप बदलना ही है; खनिज पदार्थ निकालना खदान के अन्दर जो वस्तु है उसका रूप बदलना ही है। एक शिल्पकार क्या करता है? वह किसी चीज़ का रूप ही बदलता है। बढ़ई लकड़ी का रूप बदल कर मेज़, कुर्सी बनाता है। लोहार लोहे का रूप बदल कर औज़ार इत्यादि बनाता है। कारखानों में भी यही काम होता है। रुई का बदला हुआ रूप सूत है और सूत का बदला हुआ रूप कपड़ा है। अब, इस रूप बदल जाने से वस्तुओं की उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। पेड़ की लकड़ी की उपयोगिता उसके कटने पर; बीज, पानी, हवा, गर्मी और खाद की उपयोगिता अन्न बन जाने पर; खदान के अन्दर की वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु के बाहर निकल आने पर, बढ़ जाती है। जैसे-जैसे प्रकृति की दी हुई चीज़ का रूप बदलता है वैसे-वैसे ही वह अधिक उपयोगी हो जाती है। लकड़ी से अधिक उपयोगी वस्तु उसी से बनी हुई कुर्सी अथवा

मेज़ है; अन्न से अधिक उपयोगी वस्तु उसी से बनी हुई रोटी है; लोहे से अधिक उपयोगी वस्तु उसी से बने हुए औज़ार हैं; रुई से अधिक उपयोगी वस्तु सूत है और सूत से अधिक उपयोगी वस्तु कपड़ा है।

जब किसी वस्तु का उपयोग किया जाता है तब उसका रूप बदलने से उपयोगिता की कमी भी हो जाती है। अतः, वे कार्य धन की उत्पत्ति के नहीं माने जाते। धन की उत्पत्ति में तो वे ही कार्य सम्मिलित किये जाते हैं जिनके द्वारा किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि होती है।

(२) स्थान बदल करके उपयोगिता वृद्धि करना—जङ्गल में कटी हुई लकडी उपयोगी है, खेत में पैदा हुआ अन्न उपयोगी है, खदान से निकला हुआ खनिज पदार्थ उपयोगी है, नदी और समुद्र से पकडी हुई मछलियाँ उपयोगी हैं, बढ़ई की बनाई हुई कुर्सियाँ और मेज़ उपयोगी हैं और कारख़ानों में बना हुआ कपड़ा उपयोगी है, किन्तु इन सबको और अधिक उपयोगी बनाने के लिये इनका स्थान परिवर्तन आवश्यक है। जङ्गल में लकड़ी उतनी उपयोगी नहीं है जितनी बस्ती में; खेत में अनाज उतना उपयोगी नहीं है जितना व्यापारी की दूकान पर; खदान के पास खनिज पदार्थ उतना उपयोगी नहीं है जितना कारख़ानो में; नदी और समुद्र के पास उनसे पकड़ी हुई मछलियाँ उतनी उपयोगी नहीं हैं जितनी मछली बाज़ार में; बढ़ई के यहाँ कुर्सियाँ और मेज़ उतनी उपयोगी नहीं हैं जितनी एक सामान बेचने वाले की दूकान पर; कारख़ानों के अन्दर कपड़ा उतना उपयोगी नहीं है जितना अढ़तियों के यहाँ। अतः, हम देखते हैं कि स्थान परिवर्तन से चीज़ों की उपयोगिता की वृद्धि होती है।

(३) संचय करके उपयोगिता वृद्धि करना—जब फ़सल तैयार होती है, अन्न की अधिकता होती है। उसमें से एक बहुत बड़े भाग का उस समय कोई उपयोग नहीं हो सकता। यही बात सभी उत्पादित वस्तुओं पर लागू है। अतः, व्यापारी लोग इन सब को संचय करके

रख लेते हैं और उस समय निकालते हैं जब यह अधिक उपयोगी हो जाती है। अतः, संचय करके भी उपयोगिता की वृद्धि होती है।

(४) विज्ञापन करके उपयोगिता वृद्धि करना—हम देखते हैं कि समाचार-पत्रों में अनेकों चीज़ों के विज्ञापन छपे रहते हैं। वे सब उन चीज़ों के गुणों के विस्तृत वर्णन हैं। ऐसा क्यों किया जाता है? एक व्यापारी ने 'दन्त सुधा मंजन' बनाया। अब जब तक लोगों को यह न विदित हो कि यह मञ्जन अमुक व्यापारी ने बनाया है, इसके यह गुण हैं, इसको कौन ख़रीदेगा? किन्तु जैसे ही समाचार-पत्रों के पढ़ने वालों को यह ज्ञात हो जाता है कि इस मञ्जन के यह गुण हैं और यह अमुक स्थान पर मिलेगा, उनमें से बहुत से लोग इसको ख़रीद लेते हैं। विज्ञापन के बहुत से तरीके हैं। वे सब, चीज़ों के गुणों को ही बताते हैं जिससे कि वे बेकार न पड़ी रहकर काम में आती हैं। इस प्रकार विज्ञापन भी उपयोगिता वृद्धि का एक रूप है।

(५) आधिपत्य बदल करके उपयोगिता वृद्धि करना—एक थोक व्यापारी के पास रक्खा हुआ माल उपभोक्ता के लिये उपयोगी नहीं है। उसने उस माल को संचय करके अवश्य अधिक उपयोगी बना दिया है। इसी तरह से जिस व्यापारी ने उस माल को उसके बनाने वाले के यहाँ से लाकर इस थोक व्यापारी को दिया था उसने भी उसको पहिले से अधिक उपयोगी बनाया था। किन्तु अब वह और अधिक उपयोगी तभी बन सकता है जब वह खुदरा बेचने वाले व्यापारी के यहाँ आ जाय। उपभोक्ता तो उसको वहीं से ख़रीदता है। यह है आधिपत्य बदल करके उपयोगिता वृद्धि करना। व्यापार का यह एक प्रधान रूप है। इसकी बहुत ही आवश्यकता है। जैसे-जैसे माल का आधिपत्य बदलता है वह अधिकाधिक उपयोगी बनता जाता है।

(६) सेवा करना—उपयोगिता वृद्धि के जिन रूपों का ऊपर विचार किया गया है उनमें श्रम की आवश्यकता पड़ती है और भौतिक

पदार्थ की उत्पत्ति होती है। परंतु कुछ श्रम ऐसे हैं जो स्वय ही उत्पत्ति के रूप हैं, उनके द्वारा कोई भौतिक पदार्थ की उपयोगिता में वृद्धि नहीं होती। जब एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों को पढ़ाता है तो उसके श्रम से विद्यार्थियों को लाभ होता है परन्तु उसके द्वारा कोई भौतिक पदार्थ की उपयोगिता में वृद्धि नही होती। जब एक गायक गाना गाता है, जब एक न्यायाधीश अपने न्याय का कार्य करता है और सरकारी कर्मचारी अपना-अपना कार्य करते हैं तो उनके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किसी भौतिक पदार्थ की उपयोगिता में वृद्धि नहीं होती। परन्तु उनकी सेवाएँ स्वयं ही बहुत उपयोगी होती हैं, उनके बदले में सेवकों को धन वेतन के रूप में मिलता है और इस प्रकार की सब सेवाएँ स्वयं उत्पत्ति का रूप मानी जाती हैं।

(४) धन की उत्पत्ति के साधन

उत्पत्ति के रूप समझ लेने पर अब हमको यह विचार करना चाहिये कि धन की उत्पत्ति में किन-किन साधनों की आवश्यकता पड़ती है। लकड़ी काटने में जङ्गल की, श्रम की और कुल्हाड़ी की आवश्यकता पड़ती है। खेती करने में खेत की (इसमें उसके ऊपर की हवा और गर्मी तथा पानी भी सम्मिलित हैं), श्रम की, और बीज, खाद, हल, बैल, इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। खदान से खनिज पदार्थ उत्पन्न करने में खदान की, श्रम की और अनेकों औज़ारों की आवश्यकता पड़ती है। नदी और समुद्र से मछलियाँ पकड़ने में, नदी और समुद्र की, श्रम की और जाल की आवश्यकता पड़ती है। एक शिल्पकार को कच्चे माल की, श्रम की और औज़ारों इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। यही बात कारखानो के विषय में भी लागू है। एक व्यापारी को जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाता है माल की, श्रम की और गाड़ी इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। माल का संचय करने वालों को, उसका विज्ञापन करने वालों को और उसका

आधिपत्य बदलने वालो को भी इसी प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। अब, यदि ध्यान से देखा जाय तो उपरोक्त सभी साधन भूमि, श्रम और पूँजी इन तीन वर्गों में से किसी न किसी वर्ग के अन्तर्गत अवश्य आ जाते हैं। अर्थ-शास्त्र में 'भूमि' शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। इसको दूसरे शब्दों में 'प्रकृति की देन' भी कह सकते हैं। इसमें भूमि, भूमि पर की, उसके नीचे और ऊपर की वे सभी वस्तुएँ आ जाती हैं जो प्रकृति ने अपने आप दी हैं और जिनका उपयोग अधिक धन प्राप्त करने के लिये किया जा रहा है।

अतः, जङ्गल, खेत, खदान, नदी, समुद्र प्रभृत्ति साधन 'भूमि' में सम्मिलित हैं। श्रम, मनुष्य का श्रम है ही (जानवरो का श्रम इसमें सम्मिलित नहीं है) और पूँजी का अर्थ है वह धन जो अधिक धन की प्राप्ति में लगाया जाय। कुल्हाड़ी, बीज, खाद, हल, बैल, औजार इत्यादि धन ही तो हैं जो अधिक धन की प्राप्ति में लगाये जाते हैं इसलिये वे पूँजी कहलाते हैं। वास्तव में धन की उत्पत्ति के लिये ये तीन साधन बहुत ही आवश्यक हैं। पुरातन काल के अर्थशास्त्री भी इन तीन साधनों को आवश्यक मानते थे। किन्तु आजकल दो साधनों की और आवश्यकता पड़ती है और वे हैं प्रबन्ध और साहस। औद्योगिक क्रान्ति ने हमारे सभी कामों के पैमाने को बढ़ा दिया है। एक कारखाने में अनेकों मनुष्य काम करते हैं। इन सबसे निश्चित समय तक तथा निश्चित परिमाण में काम लेना, कारखानों में बड़ी-बड़ी मशीनों के लगाने के लिये, मज़दूरों, इत्यादि को मज़दूरी इत्यादि देने के लिये, कच्चे माल को एक बहुत बड़े परिमाण में खरीद कर रखने के लिये, पूँजी एकत्रित करना, माल की बिक्री के लिये विज्ञापन, इत्यादि करना तथा अन्य बहुत से ऐसे काम करना जिनका सम्बन्ध श्रम से तो है ही किन्तु उससे भी अधिक प्रबन्धकारिणी योग्यता से है आधुनिक काल में बहुत ही आवश्यक हो गया है। इसके अतिरिक्त आजकल उत्पादन का कार्य आरम्भ करने और

उसके समाप्त होने के बीच में भी इतने अधिक समय का अन्तर रहता है कि उस बीच में वस्तुओं का मूल्य बदलने से एक बहुत बड़ा घाटा मुनाफ़ा हो सकता है, अतः उसकी जिम्मेदारी लेना भी आवश्यक हो गया है। कार्य आरंभ में अनुभव की कमी, और चालू कारखानों के प्रतियोगिता के कारण भी घाटा होने की संभावना रहती है। अतः, इस घाटे की जोखिम उठाने के लिये साहस उत्पत्ति का अलग साधन मान लिया गया है। इस प्रकार धन की उत्पत्ति के अब पाँच साधन माने जाते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। प्रबन्ध एक प्रकार का श्रम होने पर भी वह श्रम से पृथक मान लिया गया है। श्रम का अधिक सम्बन्ध शरीर से है और प्रबन्ध का अधिक सम्बध दिमाग़ से है। प्रबन्धकर्ता भूमि, श्रम और पूँजी को उचित मात्रा में एकत्रित करता है, उनको नियन्त्रण में रखता है, उनका प्रबन्ध करता है। रह गया साहस सच पूछा जाय तो साहस के बिना कोई काम हो ही नहीं सकता। किन्तु यहाँ पर साहस घाटा और मुनाफ़ा बर्दाश्त करने का है। आजकल इसकी बड़ी आवश्यकता है। जितने बड़े पैमाने पर काम किया जाता है उतनी ही जोखिम होती है। बस, इसी जोखिम उठाने को साहस कहते हैं। कुछ लोग प्रबन्ध और साहस को मिलाकर व्यवस्था कहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि धन की उत्पत्ति के उपरोक्त साधनों में से किसका सबसे अधिक महत्व है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो श्रम, प्रबन्ध और साहस एक ही हैं। पूँजी भी श्रम से प्राप्त होती है और धन का ही एक रूप है। वह जड़ पदार्थ है इसलिये वह भूमि के समान है जिसका अवश्य ही पृथक रूप है। अतः, श्रम और भूमि यही दो साधन धन की उत्पत्ति के लिये अधिक महत्वशाली हैं। भारतीय तत्वदर्शियों ने सृष्टि के मूल में पुरुष और प्रकृति का निरूपण किया था। आज हमारे अर्थशास्त्री धन की उत्पत्ति के साधनों में भी इन्हीं का निरूपण करते हैं, श्रम पुरुष है और भूमि प्रकृति है। वास्तव

में इन दोनों का ही गठबंधन है। ये ही सब जगह विद्यमान हैं। इन्हीं की माया है। जहाँ देखिये सर्वत्र इन्हीं का खेल है। ये दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

(५) व्यापार के लिये पूँजी की आवश्यकता

श्रम और भूमि के महत्वपूर्ण साधन होते हुए भी व्यापार में तो पूँजी का ही विशेष स्थान है। व्यापार चाहे जैसा हो छोटा हो अथवा बड़ा हो—खेती का, जङ्गल का, खदान का, मछली पकड़ने का हो अथवा शिल्पकारी का, कारखानों का हो, माल ले जाने का, उसको रखने का, उसका विज्ञापन करने का, खरीदने बेचने का हो सभी में पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में पूँजी के द्वारा सभी साधन एकत्रित किये जा सकते हैं। पूँजीवाद के इस युग में प्रकृति की देन पर भी पूँजीपतियो का ही आधिपत्य हो गया है। जिस चीज पर जिसका अधिकार है उसको वह या तो स्वय उपयोग करता है या वह किराये पर उठाता है या सदा के लिये बेच देता है जिससे कि उस पर का अधिकार बदल जाता है। मनुष्य स्वयं तो श्रम करता है किन्तु अन्य लोग उसके लिये तभी श्रम करते हैं जब वह उनको मज़दूरी देता है। बड़ी-बड़ी मशीनें और सभी प्रकार के औज़ार भी रुपया लगाने पर ही प्राप्त होते हैं। अतः, पूँजी के बिना व्यापार हो ही नहीं सकता है। बड़े-बड़े दिमाग़ वाले पूँजी के बिना अपनी योजनाओं को लिये बैठे ही रह जाते हैं। मज़दूर को पैसे के बिना न कच्चा माल और न औज़ार ही प्राप्त होते हैं। पूँजी-पति के सहारे के बिना इनको काम ही नहीं मिलता है।

यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग पूँजीवाद की समाप्ति पर लगे हुए हैं। सोवियट रूस इसका एक नमूना है। किन्तु वहाँ पर पूँजीपतियों की समाप्ति तो हो गई है, लेकिन पूँजी का महत्व नहीं घटा है। प्रकृति की देन पर राष्ट्र का अधिकार है। वह उसको प्रत्येक मनुष्य के लिये उतनी मात्रा में दे देता है जितनी की उसको

आवश्यकता है अथवा जितने को वह विना दूसरों की सहायता के स्वयं उपयोग मे ला सकता है। हाँ, यदि उसके परिवार के लोग उसकी सहायता करते हैं तो ठीक है; इसमें कोई रुकावट नहीं है। लेकिन ऐसे स्वतत्र काम करने वाले वहुत कम हैं। अधिकतर लोग राष्ट्र के वताये हुये धन्धे करते हैं। भूमि राष्ट्र की हैं और बड़ी-बड़ी मशीनें भी वहाँ पर राष्ट्र की हैं। राष्ट्र की इच्छा के अनुसार ही सव काम करते हैं। अतः, ऐसी अवस्था में पूँजीपतियो का स्थान स्वय वहाँ की सरकार ले लेती है। इसमे सदेह नहीं कि सरकार में मजदूरो का अथवा यों कहिये साधारण जनता का पूरा हाथ रहता है; किन्तु इससे मनुष्य की अपनी स्वतन्त्रता तो प्रायः लुप्त सी ही हो जाती है। यह वात दूसरी है कि यहाँ पर सत्ता किसी एक वर्ग के हाथ मे न रह कर राष्ट्र के हाथ मे रहती है।

हमारे भारतवर्ष में अँग्रेज़ो के आने क पहिले पूँजी का इतना महत्व नहीं था। यह कहा जा सकता है कि उस समय भारतवर्ष में क्या कहीं भी पूँजी का इतना महत्व नहीं था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है औद्योगिक क्रांति ने सभी जगह व्यापार का ढंग बदल दिया है और उत्पत्ति अधिक मात्रा में बड़े पैमाने पर होने लगी है। अब प्रश्न यह है कि नया ढंग पुराने ढंग से अच्छा है अथवा नहीं? एक वर्ग का यह विचार है कि पुराना ढंग आजकल के ढग से कहीं अच्छा था। महात्मा गांधी के विचार इस संबंध में विशेष रूप से विचार करने योग्य हैं। किन्तु इस विषय मे वे प्रत्येक ग्राम को अब भी स्वावलम्वी रखना चाहते हैं। उनके विचार से प्रत्येक परिवार का अपना खेत होना चाहिये, उसको स्वय ही अपने कपड़े के लिये सूत कात लेना चाहिये। हाँ, वह सूत गाँव के जुलाहों से बिनवाया जा सकता है। उनकी योजना के अनुसार प्रत्येक गाँव में उसकी आवश्यकताओ को पूरा करने वाले सभी पेशे के लोगों का होना आवश्यक है। परंतु उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा है कि देश में बड़े-

बड़े कारखाने नहीं होंगे। उनकी संख्या अवश्य ही बहुत कम होगी। साधारण जनता का उनसे कोई सबन्ध नहीं होगा। वह अपने कार-बार में स्वतन्त्र होगी। ऐसी योजना में पूँजी का महत्व बहुत घट जायेगा यह एक आदर्श योजना है और भारतवर्ष के लिये उचित भी है परन्तु उसके अनुसार कार्य होने में अभी बहुत वर्ष लग जावेंगे। आजकल तो व्यापार में सर्वत्र ही पूँजी का विशेष महत्व है।

(६) आधुनिक व्यापार में सम्मिलित पूँजी का स्थान

अब व्यापार के लिये जिस पूँजी की आवश्यकता पड़ती है वह या तो किसी एक व्यक्ति की स्वयम् की अथवा बहुत से व्यक्तियों की मिला कर होती है। जब एक व्यक्ति की स्वयम् की पूँजी होती है, वह व्यापार एक मालिक का व्यापार कहा जाता है और जब वह दो या दो से अधिक व्यक्तियों को मिलाकर होती है उसे साझे का व्यापार अथवा कम्पनी का व्यापार कहते हैं। सम्मिलित पूँजी का एक और रूप है और वह सहकारी समिति है। सहकारी समिति काम करने वालों की एक संस्था होती है। भारतवर्ष में कोई दस व्यक्ति मिल कर एक सहकारी समिति की स्थापना कर सकते हैं, और अपने प्रान्त के सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के यहाँ उसकी बिना कोई शुल्क दिये रजिस्ट्री करा सकते हैं। किसी सहकारी समिति की पूँजी उसके सदस्य स्वयम् उसके हिस्से लेकर एकत्रित कर सकते हैं। किन्तु यह संस्था अधिकतर ग़रीबों की होती है। अतः, इसकी सम्मिलित पूँजी साधारणतः बहुत अधिक नहीं होती ; सदस्य अपनी बचत का रुपया भी इसमें जमा कर सकते हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनको सबकी ज़िम्मेदारी पर पूँजी उधार भी मिल सकती है।

एक मालिक के व्यापार में पूँजी की मात्रा प्रायः बहुत कम रहती है। हमारे देश में कृषि अधिकांश में बहुत छोटे पैमाने पर होती है। यहाँ के खेतों का क्षेत्रफल अन्य देशों के खेतों के क्षेत्रफल से बहुत छोटा होता है। एक हल से जिसको दो बैल चलाते हैं कम से कम

दस एकड़ भूमि जोती जा सकती है। किन्तु यहाँ के खेतों के क्षेत्रफल साधारणतः दस एकड़ से बहुत छोटे होने के कारण एक हल से भी पूरा काम नहीं लिया जाता है। अब, खर्च तो पूरा पड़ता है किन्तु काम थोड़ा लिया जाता है। यही बात औज़ारों के साथ भी है। अतः, भारतवर्ष में कृषि का उद्यम प्रायः लाभदायक नहीं है। किसान अपना पेट भी नहीं भर सकता है। वह ऋणग्रस्त रहता है। एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है कि वह ऋण मे पैदा होता है, ऋण मे रहता है और ऋण ही में मर जाता है। उसका ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है और कभी चुकता ही नहीं। उसको अपने खेतों का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिये पूँजी की आवश्यकता है जिससे वह अपने आस-पास के खेतो को ख़रीद कर अपने खेतों मे मिला ले। इसके अतिरिक्त पूँजी के न होने के कारण ही वह वैज्ञानिक खाद नही मँगा सकता, उसके हल पुराने समय के हैं, उसके बैल कमज़ोर रहते हैं, वह अच्छे बीज नहीं ख़रीद सकता है, वह सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध नहीं कर सकता है, उसके पास आधुनिक मशीनें नहीं हैं। यही सब कारण हैं कि हमारे यहाँ की प्रति एकड़ उपज अन्य देशों की प्रति एकड़ उपज की अपेक्षा बहुत ही कम है। इससे हमारा किसान दरिद्र बना हुआ है और किसानों की दरिद्रता के कारण सारा देश दरिद्र बना हुआ है। हमारी अधिकांश जनता तो किसान ही है। यदि किसान की दशा सुधर जाये तो भारतवर्ष की दशा सुधर जाये। यहाँ के खाद्य पदार्थों की कमी की तरफ़ हमारा ध्यान अभी इसी लड़ाई के ज़माने मे गया है। सन् १९४२ मे बङ्गाल, उड़ीसा, मद्रास और ट्रावन्कोर इत्यादि स्थानो पर जो लाखों नर-नारी भोजन न मिलने के कारण तड़प-तड़प कर मर गये हैं उसको कोई भी देशवासी नहीं भूल सकता है। अतः, हमारे यहाँ की खाद्य पदार्थ की कमी तो पूरी होनी ही चाहिये और वह हो सकती है केवल हमारे खेतों की उपज बढ़ा कर। इसके लिये जिन-जिन साधनो की आवश्यकता है

वह पूँजी के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकते। अतः, पूँजी की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। अब किसान पूँजी पाये तो कहाँ से पाये? इसके लिये सहकारी समितियों की आवश्यकता है। एक सहकारी समिति के सभी सदस्यों के पृथक-पृथक खेत मिलाये जा सकते हैं। उनकी पूँजी से खेती के लिये जो आवश्यक साधन हैं उनको जुटाया जा सकता है। इस प्रकार खेती करने से बहुत से किसानों का श्रम भी बच जायेगा। ये सब अन्य कामों में लग सकते हैं। अतः, एक तरफ़ तो खेती से अधिक उपज होगी, और दूसरी तरफ़ उपज के अन्य कार्य भी होंगे। फल यह होगा कि किसानों की आय बढ़ जायगी और वे अच्छी दशा को प्राप्त हो सकेंगे। उनकी दशा के सुधरने का अर्थ है देश की दशा का सुधरना। सहकारी समितियाँ माल की बिक्री में भी सहायता पहुँचा सकती हैं। उनके होने से आजकल के व्यापार में जो अनेकों मध्यस्थ हैं उनकी कमी हो जायगी। अतः, इससे जो लाभ होगा वह किसानों और उपभोक्ताओं दोनो को होगा। साथ ही जो मध्यस्थ बच जायेंगे वे धन के नये-नये उत्पादनों में लग जायेंगे। इससे भी देश की दशा सुधरेगी।

भारतवर्ष के शिल्पकारों की दशा भी बहुत शोचनीय है। उनके पास भी इतनी पूँजी नहीं है कि वह कच्चा माल स्वयम् तैयार कर सकें अथवा जो माल तैयार हो जाय उसको ऐसे समय तक बेचने के लिये रख सकें जब उसका यथेष्ट मूल्य मिल सकने की सम्भावना हो। उनको इसके लिये महाजन दूकानदारों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। वही इन लोगों को कच्चा माल मँगा कर देते हैं और वही इनसे मनमाने मूल्य पर तैयार माल ख़रीद लेते हैं। इनके लिये सहकारी समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। वे इनके लिये कच्चा माल मँगायेंगी, और वे ही इनके माल को उचित समय तक रोक कर उचित मूल्य पर बेचेंगी। ऐसी कुछ समितियाँ इस देश में काम कर भी रही हैं और उनसे उनके सदस्यों का लाभ भी हो रहा है।

देश की आर्थिक उन्नति के अनेक कार्य करने के लिये सहयोग समितियों के अतिरिक्त साझे अथवा कम्पनियों की सम्मिलित पूँजी की भी बहुत आवश्यकता है। थोड़ी पूँजी का काम चलना आजकल बड़ा कठिन-सा हो जाता है। सच पूछिये तो व्यापारिक स्पर्धा इतनी बढ़ गई है कि थोड़ी पूँजी का व्यापारी तो बड़ी पूँजी के व्यापारी के आगे ठहर ही नहीं सकता है। अन्य व्यापारों में तो जो कुछ पूँजी की आवश्यकता है वह है ही किन्तु बड़े-बड़े कारखानों के व्यापार में तो उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। एक-एक मिल को लाखों की पूँजी चाहिये। रेल का काम तो करोड़ो के बिना नहीं चल सकता। भारतवर्ष की रेलों के लिये इतनी पूँजी की आवश्यकता थी कि उसको भारतवर्ष दे ही नहीं सकता था। वह पूँजी इङ्गलैण्ड में एकत्रित की गई थी। हाँ, अब अवश्य हमारी सरकार ने वह सब पूँजी वहाँ के पूँजीपतियों को वापस कर दी है। इस समय यहाँ की क़रीब-क़रीब सभी रेलें सरकार की हैं।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है महात्मा गांधी की योजना में भी ऐसा नहीं है कि यहाँ पर बड़े-बड़े कारख़ाने हों ही नहीं। अतः, उनके लिये सम्मिलित पूँजी की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। एक बात तो यह है कि देश में ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो कि लाखो रुपया लगा कर स्वयम् कोई काम खोल सकते हो। दूसरे यदि वे हैं भी तो ऐसा करने के लिये तैयार भी नहीं हो सकते। एक व्यक्ति यदि अपनी सारी पूँजी एक व्यापार मे लगा देता है तो यदि घाटा होता है तो उसकी सारी पूँजी चली जाती है। एक मालिक के व्यापार के और सम्मिलित पूँजी के व्यापार के अपने-अपने हानि लाभ हैं। किन्तु उनको समझने के पहिले यहाँ पर यह कह देना आवश्यक होगा कि न तो सब व्यापार एक मालिक की पूँजी पर और न सब व्यापार सम्मिलित पूँजी पर चल सकते हैं। कुछ के लिये एक मालिक की पूँजी आवश्यक है और कुछ के लिये

सम्मिलित पूँजी आवश्यक है। हाँ, कुछ दोनों तरीकों पर चल सकते हैं।

एक मालिक की पूंजी के व्यापार के हानि लाभ—एक मालिक की पूँजी के व्यापार के निम्न हानि और लाभ हैं :—

हानियाँ (१) एक मालिक की पूँजी चाहे वह मालिक कितना ही बड़ा धनी क्यों न हो सीमित ही रहेगी। अतः, काम को जितना बढ़ाना आवश्यक है वह नहीं बढ़ा सकता। कभी-कभी तो एक काम बिना बढ़ाये सँभल ही नहीं पाता है। अतः, उसमें हानि हो जाती है।

(२) एक मालिक की पूँजी के व्यापार में उस मालिक की जोखिम असीमित रहती है। अतः, यदि उसमें हानि होती है तो उसको न केवल अपने व्यापार ही में लगी हुई पूँजी से हाथ धोना पड़ता है बल्कि घर की पूँजी भी गँवानी पड़ती है। उसका पूरा धन चला जाता है।

(३) एक मालिक की सभी प्रकार की व्यापारिक शक्तियाँ सीमित रहती हैं। उसके श्रम करने की एक सीमा होती है, उसके प्रबन्ध की योग्यता की भी एक सीमा होती है, और उसके साहस की भी एक सीमा होती है। यह कहा जा सकता है कि यदि वह स्वयम् पूरा श्रम नहीं कर सकता तो कुछ अन्य व्यक्ति वेतन पर रख सकता है किन्तु वेतन पर रक्खे हुए व्यक्ति काम में उतनी दिलचस्पी प्रायः नहीं लेते हैं जितनी आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त वे कभी भी काम छोड़ कर बैठ सकते हैं। एक अनुभवी व्यक्ति के बैठ जाने पर दूसरा अनुभवी व्यक्ति प्रायः नहीं मिलता है। फिर एक आदमी सारा प्रबन्ध भी नहीं कर सकता है। उसको कभी कभी सलाह-मशविरे की भी आवश्यकता पड़ती ही रहती है। अनेकों ऐसे मसले आते रहते हैं जिनको वह स्वयम् नहीं तय कर पाता है। कभी-कभी वह अपने में साहस की भी कमी पाता है, अतः, आगे नहीं बढ़ता है। अधिक जोखिम का काम करना तो उसके लिये बहुत ही कठिन हो जाता है।

लाभ (१) यदि किसी व्यापार में कोई बात छिपाव की है तो वह केवल एक मालिक की पूँजी के व्यापार में ही छिपी रह सकती है। सम्मिलित पूँजी के व्यापार मे तो यह बात उन सभी को मालूम हो जाती है जिनकी सम्मिलित पूँजी उस व्यापार में लगी रहती है; और हम जानते हैं कि जब कोई बात एक कान से दूसरे कान में पड़ती है तो वह संसार भर को मालूम हो जाती है। फिर सम्मिलित पूँजी के व्यापार में सम्मिलित होने वाला कोई भी व्यक्ति जब चाहे उस व्यापार से अलग हो सकता है। ऐसे अवसर पर वह छिपी हुई बात से लाभ उठा सकता है।

(२) जहाँ पर किसी एक मालिक की ही पूँजी लगी रहती है वहाँ पर वह स्वतन्त्रतापूर्वक काम करता है। उसको कोई राय-मशविरा नहीं लेना रहता है। अतः, उसका निर्णय बहुत ही शीघ्र होता है। इससे कभी-कभी व्यापार को बड़ा लाभ होता है।

(३) जब एक मालिक की स्वयम् की पूँजी लगी हुई है, तब वह अपने व्यापार के पूरे हानि-लाभ का ज़िम्मेदार होता है। अतः, वह काम को बहुत दिल लगा कर और सोच-समझ कर करता है।

(४) एक मालिक की पूँजी के न तो आरम्भ करने में कोई क़ानूनी कठिनाई पड़ती है और न उसमे बाद मे किसी प्रकार के झंझट उठने की सम्भावना रहती है।

सम्मिलित पूँजी के व्यापार के हानि-लाभ—सम्मिलित पूँजी के व्यापार के निम्न हानि-लाभ है :—

हानि (१) जैसा कि अगले अध्यायों के अध्ययन से विदित होगा साझे के आरम्भ करने में तो कोई विशेष कठिनाई नहीं है, किन्तु किसी कम्पनी के आरम्भ करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। हाँ, निजी कम्पनी के बनाने में सार्वजनिक कम्पनी के बनाने की अपेक्षा कम कठिनाई पड़ती है। इसीके साथ-साथ यह भी बात है कि जब

साझे के आरम्भ करने में तो कोई कठिनाई नहीं पड़ती है उसका अधिक समय तक चलना कठिन हो जाता है।

(२) सम्मिलित पूँजी के व्यापार में छिपाव की कोई बात छिपी नहीं रह सकती है।

(३) सम्मिलित पूँजी के व्यापार में कई व्यक्तियों की सम्मति से काम करना पड़ता है। अतः, उसमें सम्मिलित होने वाले किसी भी व्यक्ति को कोई स्वतन्त्रता नहीं रहती। इसीलिये उसमें किसी आवश्यक बात को शीघ्र ही निबटाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है।

(४) क्योंकि सम्मिलित पूँजी के व्यापार के हानि, लाभ का उन सभी व्यक्तियों पर असर पड़ता है जिनकी सम्मिलित पूँजी उसमें लगी रहती है ; अतः, प्रायः उसमें कोई भी मालिक ऐसा नहीं होता जो पूरी दिलचस्पी लेता हो। कभी-कभी तो आपस में वयमनस्य पैदा हो जाने के कारण कुछ लोग व्यापार को हानि पहुँचाने में लगे रहते हैं।

लाभ (१) सम्मिलित पूँजी एक मालिक की पूँजी से बहुत अधिक होती है। साधारण व्यापार के साझे में अधिक से अधिक बीस साझी और बैङ्को के साझे में अधिक से अधिक दस साझी हो सकते हैं। इसके विपरीत निजी कम्पनी में अधिक से अधिक पचास सदस्य और सार्वजनिक कम्पनी में असंख्य सदस्य हो सकते हैं। अतः, इसीके अनुसार इनकी पूँजी भी होती है।

(२) सम्मिलित पूँजी के व्यापार में सदस्यों की ज़िम्मेदारी प्रायः सीमित होती है। हाँ, साझे में कम से कम एक सदस्य अवश्य ऐसा होना चाहिये जिसकी ज़िम्मेदारी सीमित न हो। किन्तु कम्पनियों में ऐसा होना आवश्यक नहीं है। उनके सब सदस्यों की ज़िम्मेदारी सीमित होती है।

(३) सम्मिलित पूँजी के व्यापार की सभी शक्तियाँ अपरिमित होती हैं। एक व्यक्ति के स्थान पर कई व्यक्तियों के होने से प्रत्येक काम में सुविधा पड़ती है।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है आधुनिक काल के कुछ व्यापार तो ऐसे हैं जो सम्मिलित पूँजी के बिना हो ही नहीं सकते। साझा तो हमारे यहाँ बहुत समय से चला आता है, किन्तु सम्मिलित पूँजी के अन्य संगठन तो अंग्रेज़ों के आने के बाद ही आरम्भ हुए हैं। इसका श्रेय अंग्रेज़ों को ही नहीं है। यह तो समय की खूबी है। सम्मिलित पूँजी के बड़े-बड़े सगठन सभी जगहों पर आधुनिक काल में अधिकाधिक संख्या में खुल रहे हैं। अतः, वे तो भारतवर्ष में इस समय खुलते ही चाहे अंग्रेज़ आते अथवा न आते।

(७) सम्मिलित पूँजी का महत्व

देश की सामाजिक, राष्ट्रीय तथा आर्थिक दृष्टि से इस सम्मिलित पूँजी का एक बहुत बड़ा महत्व है। इस समय भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ की आर्थिक स्थिति अन्य देशों की व्यापारिक विशालता के कारण शोषित होने से बहुत गिरी दशा में है। और आर्थिक दशा ख़राब होने से सामाजिक दशा, विज्ञान, शिक्षा सदाचार, साक्षरता, कारीगरी आदि सभी गिरी दशा मे हैं। यह मानी हुई बात है कि बिना आर्थिक दशा ठीक हुये, सामाजिक दशा, शिक्षा आदि में भी उन्नति नहीं हो सकती है। भला जिस देश के एक साधारण निवासी को आधा पेट भोजन तथा तन ढाँकने के लिये मामूली वस्त्र भी नहीं मिलता वह शिक्षा आदि लाभ करके सामाजिक उन्नति कैसे कर सकता है ? अतः, यह स्पष्ट है कि हमारे देश की जब तक आर्थिक उन्नति न होगी तब तक उसकी सामाजिक उन्नति होना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

अस्तु, देश की उत्पत्ति बढ़ाने से ही आर्थिक अवस्था सँभल सकती है। आधुनिक समय में उत्पत्ति के सभी क्षेत्रों पर विज्ञान, बिजली, मशीन, इंजन आदि तरह-तरह के यंत्रों का राज्य है। विदेशों में आधुनिक कृषि की जोताई-बोआई ट्रैक्टरों द्वारा हो रही है, खानों की खोदाई मशीनों से हो रही है तथा खोद कर निकाली हुई उत्पत्ति को

ढोने के लिये खान के अन्दर तक रेलवे निकाली गई हैं। पहाड़ों के खंड डिनामाइट से तोड़े जा रहे हैं। करोड़ों के श्रम से बनने वाली उत्पत्ति कपड़ा आदि कारखानों में कुछ यंत्रों की सहायता से कम से कम समय में तैयार की जा रही है। तथा उस विशाल उत्पत्ति को खपत के क्षेत्रों में वितरण करने के लिये, और कच्चे माल के क्षेत्रों से पुनः कारखानों में कच्चा माल एकत्रित करने के लिये रेलवे का जाल बिछा हुआ है और साथ ही समुद्र की छाती पर विशाल-काय जहाज़ दौड़ रहे हैं जिससे दुनिया के सभी बिखरे देश एक में मिल से गये हैं।

दुनिया में और देशों से बढ़ कर न सही तो समानता ही की टक्कर लेने के लिये भारत जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुये देश की आर्थिक दशा सुधारने अर्थात् उत्पत्ति को बढ़ाने के लिये अब पुरानी लकीर के फ़कीर बनने से काम चलता नहीं दिखाई पड़ता है। अतः, अब इस बात की बड़ी आवश्यकता दिखाई पड़ रही है कि उत्पत्ति के विशाल वैज्ञानिक साधन अमेरिका, रूस, इंगलैंड आदि देशों से प्राप्त किये जायँ; तथा अपने देश में भी ऐसे कारखाने खोले जायँ जिनमें आवश्यक वैज्ञानिक यंत्र तैयार किये जा सकें, तथा यंत्र आदि बनाने के लिये कच्चा लोहा, भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुयें, रबर, पिटरौल, आदि वस्तुयें निर्दिष्ट कारखानों में एकत्रित की जायँ और छोटे-बड़े कारख़ानों के लिये पर्याप्त कच्चा माल दिया जाय। साथ ही नये कारखानों के लिये उपयुक्त मशीनरी आदि भी पहुँचाई जानी चाहिये और खेती की उत्पत्ति बढ़ाने के लिये उत्तम नये वैज्ञानिक खेती के यंत्र भी वितरण किये जाने चाहियें। पहाड़ों, नहरों, खानों आदि की खुदाई के लिये, इंजन द्वारा चलने वाले खुदाई के यंत्र पहुँचाये जाने चाहियें, जिससे उत्पत्ति अधिक से अधिक और कम समय में हो सके।

उत्पत्ति का विस्तार तथा परिमाण बढ़ जाने से, उसे दुनिया भर

में खपत के क्षेत्रो मे यातायात के नवीन साधनो द्वारा पहुँचाया जा सकता है। इसके लिये वहुत से वडे-बडे व्यापारिक संगठनो की आवश्यकता पडती है।

भारत जैसे पिछड़े हुये तथा शोषित देश में बड़े पूँजीपतियो की संख्या उँगली पर गिनने लायक है। जनसमुदाय का तीन चौथाई भाग दरिद्र तथा ऋण-ग्रस्त है। एक चौथाई भाग ही ऐसा है, जो इच्छा करने पर छोटे-मोटे व्यापार मे लगाने के लिये कुछ पूँजी निकाल सकता है। किन्तु छोटी-मोटी पूँजी द्वारा चालू व्यापार या तो अन्य विदेशियों के विशाल व्यापारिक संगठनो की प्रतियोगिता में गिर जाता है, या उन्हीं से सम्बन्धित होकर, मुनाफे का अधिक भाग उन्हीं को देकर अपने देश की आर्थिक दशा और अधिक शोषण करने में सहायक होता है। इसलिये अपने देश के व्यापार को किसी विदेशी व्यापारिक संगठन या पूँजी का सहारा लिये बिना अपने पैर पर खड़े होने देने के लिये सम्मिलित पूँजी के कारबारों की बहुत बड़ी आवश्यकता है। विशाल व्यापारिक संगठनों की स्थापना तथा स्थापितों के उद्धार का केवल एक रास्ता यही है कि यह सम्मिलित पूँजी के बल पर किया जाय। सम्मिलित पूँजी की योजना वह अमोघ अस्त्र है, जिसकी चोट से दरिद्रता रूपी राक्षस मार भगाया जा सकता है। इससे बेकारों को काम और भूखों को रोटी मिल सकती है। अतः, देश की आर्थिक दशा से सहानुभूति रखने वाले विचारवान व्यापारियो को चाहिये कि वे सब मिल-जुल कर इसके लिये देश भर मे, एक व्यापक सम्मिलित पूँजी का प्रबल आन्दोलन चलावें।

देश का ही धन व्यापार द्वारा सिमिट-सिमिट कर पूँजीपतियों के कोषों में आता है। अतः, जब विदेशी व्यापारियों द्वारा इसका यान्त्रिक शोषण होता है तो यह भी देशवासियों के कोषों में नहीं जाता। कहना न होगा कि भारतवर्ष की यही अवस्था है।

यदि भारत की आर्थिक दशा सुधारना है, तो इसके लिये देश-

वासियों को अपनी पूँजियों को सम्मिलित करना पड़ेगा। जो पूँजीपति जनता के विश्वासपात्र हो जाते हैं उनके द्वारा स्थापित की हुई कम्पनी में पूँजी की कमी कभी नहीं रहती। इस समय भारत में बड़े-बड़े कारखानों को चलाने के लिये तथा व्यापार की वृद्धि करने के लिये बड़ी-बडी कम्पनियो की आवश्यकता है। देशवासियों को इस तरफ विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये और ऐसे-ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार के संगठनों तथा कम्पनियों की स्थापना करनी चाहिये जिनमें अलग-अलग एक-एक रुपये से लेकर हज़ार-हज़ार तक के हिस्से हों।

परतु साथ ही विदेशियो के खतरे से बचना भी आवश्यक है। यदि देश की राजनीति में, विदेशी साम्राज्यवादी पूँजीपतियों की शोषण-नीति का प्रभाव है, तो देशवासियों के ऐसे विशाल संगठन का आभास पाते ही उनके कान खड़े हो जायेंगे, और वे लोग हर तरह के छल-बल, दमन, कानूनी बहाना, कूटनीति आदि विविध उपायों द्वारा संगठन को आघात पहुँचायेंगे। परन्तु यदि देशवासी दृढ़तापूर्वक सम्मिलित पूँजी का संगठन करेंगे, तथा अपने विचारों पर दृढ़ रहेंगे, तो यह विदेशी नीति जनित विघ्नबाधायें भी दूर हो जायेंगी, और अन्ततः सफलता प्राप्त होगी।

---

२. साझा

(१) साझा क्या है (२) साझे की वैधानिक स्थिति (३) साझियों के चुनाव में किन बातों का ध्यान रखना चाहिये (४) साझे का साझा पत्र और उसकी व्यवस्था (५) साझे और साझियों के भेद (६) साझियों का पारस्परिक सम्बन्ध (७) साझे का भङ्ग होना (८) साझे के गुण और दोष (९) साझे और सम्मिलित परिवार के संगठन में अन्तर (१०) साझियों के संबंध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें।

पहिले अध्याय में हम आधुनिक व्यापार में सम्मिलित पूँजी के स्थान का महत्व बतला चुके हैं। सम्मिलित पूँजी के कारबार साझा, कंपनियों और सहयोग समितियों द्वारा होते हैं। इस अध्याय में हम साझा के संबंध में विशेष रूप से विचार करेंगे। अब, सबसे पहिला प्रश्न जो हम लोगों के सामने आता है वह यह है कि साझा क्या है।

(१) साझा क्या है

साझा सम्मिलित पूँजी तथा उसके कारबार का वह रूप है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति पारस्परिक समझौते के अनुसार एक ऐसे व्यापार के घाटे और मुनाफ़े को बाँट लेना स्वीकार करते हैं जिसका प्रबन्ध या तो वे सब मिल कर करते हैं अथवा अपने में से एक अथवा कुछ व्यक्तियों के हाथ में सौंप देते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि (१) साझा पारस्परिक समझौते का फल होता है, (२) यह घाटे और मुनाफ़े को बाँटने के लिये होता है, और (३) इसका प्रबन्ध या तो सब या उनमें से एक अथवा कुछ व्यक्ति करते हैं।

यदि किसी एक सम्मिलित परिवार के कुछ व्यक्ति अपने बाप दादों द्वारा चलाए हुए किसी व्यापार को चलाते हैं तो उनमें साझे का सम्बन्ध नहीं होता है। उनका सम्बन्ध तो पारिवारिक सम्बन्ध है। हाँ, यदि वे इस सम्बन्ध को तोड़ कर कोई नया समझौता करते हैं तो वह अवश्य साझे का सम्बन्ध हो जाता है। इसी तरह से यदि दो व्यक्ति संयोगवश किसी एक सम्पत्ति के मालिक बन जाते हैं तो भी उनमें साझे का सम्बन्ध नहीं स्थापित होता है। यह सम्बन्ध तो पारस्परिक समझौते से ही स्थापित हो सकता है।

यदि कोई दो व्यक्ति एक धर्मशाला अथवा कोई अन्य पुण्य की चीज़ बनवाते हैं और उसका प्रबन्ध करते हैं तो भी वह साझा नहीं है क्योंकि उनमें घाटा और मुनाफ़ा बाँटने की नीयत नहीं है। ऐसे कामों में घाटे और मुनाफ़े का प्रश्न ही नहीं उठता है।

साझे के विपरीत पारिवारिक सम्बन्ध में केवल घर का बड़ा ही सारा प्रबन्ध करता है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि साधारणतया तो यह देखा जाता है कि परिवार के सभी लोग परिवार के काम को देखते हैं। वास्तव में यह सत्य है किन्तु वैधानिक रूप से वे सब काम देखने वाले घर के सबसे बड़े व्यक्ति के प्रतिनिधि ही समझे जाते हैं। सम्मिलित परिवार की यही विशेषता है। हाँ, यदि वह टूट जाय तो कोई भी समझौता हो सकता है।

(२) साझे की वैधानिक स्थिति

वैसे तो प्रत्येक साझे का कुछ न कुछ नाम होता है और जनसाधारण में वह उसी नाम से जाना जाता है। किन्तु वैधानिक कार्यवाहियों में साझियों ही का नाम चलता है। हाँ, उनके नाम के साथ-साथ यह भी दिया जा सकता है कि जो अमुक नाम से काम करते हैं। भारतवर्ष में साझे का नियन्त्रण सन् १६३२ के भारतीय साझा विधान के अनुसार होता है। जहाँ तक साझियों की संख्या का प्रश्न है वह साधारण साझों मे अधिक से

अधिक बीस और बैंक संबंधी साझों में अधिक से अधिक दस हो सकती है। सन् १६३२ के भारतीय साझा विधान में इन साझों के रजिस्ट्री कराने का प्रबन्ध भी कर दिया गया है। वैसे तो विधान यह नहीं कहता कि प्रत्येक साझे की अवश्य ही रजिस्ट्री होनी चाहिये। किन्तु रजिस्ट्री न कराने से साझे के एक विपत्ति में फँस जाने का डर रहता है। बात यह है कि विधान के अनुसार केवल रजिस्टर्ड साझों को ही पारस्परिक झगड़ों में अदालत की शरण मिल सकती है। अतः, यदि साझे को अदालत की शरण लेनी है तो यह आवश्यक है कि उसकी रजिस्ट्री करवा ही ली जाय और यह असम्भव है कि एक साझे को कभी भी अदालत की शरण नहीं लेनी पड़ेगी। व्यापार में तो जैसा कि हम भली भाँति जानते हैं पग-पग पर नालिश फ़रियाद करनी ही पड़ती है। फिर यदि साझियों में आपस में झगड़ा हो जाय और ऐसा प्रायः होता ही रहता है तो भी अदालत की शरण लेनी ही पड़ती है। इसके लिये वह किसी प्रकार बाध्य भी नहीं है। उत्तम साझे के तथा सच्चे व्यवहार करने वाले साझी अपने पारस्परिक झगड़ों का निपटारा स्वयं कर लेते हैं। अतः, उनको अदालत की शरण नहीं लेनी पड़ती और इसलिये वे प्रायः अपना साझा रजिस्ट्री नहीं कराते। किन्तु रजिस्ट्री कराने का तरीक़ा बहुत ही सरल है और उससे लाभ बहुत बड़ा है। अतः, लोगों को साझों की रजिस्ट्री करा ही लेनी चाहिये। साझे की रजिस्ट्री कराने के लिये एक लिखित सूचना देनी पड़ती है। उसमें निम्न बातें लिखी जाती हैं :—

(१) साझे का क्या नाम रक्खा गया है; (२) उसका मुख्य दफ़्तर कहाँ है और वह और कहाँ-कहाँ अपनी शाखायें खोले हुए है; (३) प्रत्येक साझी ने किस तारीख़ को साझे में प्रवेश किया है; (४) साझियों के पूरे नाम और स्थाई पते क्या हैं; (५) साझा किस अवधि के लिये संस्थापित हुआ है। कहना न होगा कि इस सूचना-पत्र पर सब साझियों के हस्ताक्षर होते हैं। हाँ, तो यह

सूचना-पत्र एक निश्चित शुल्क के साथ जिस प्रान्त में यह साझा संस्थापित होता है उस प्रान्त के साझे के संगठन के रजिस्ट्रार के पास उपस्थित किया जाता है। भारतीय साझा विधान की एक धारा के अनुसार किसी साझे के नाम के साथ ताज (Crown), महाराजाधिराज (Emperor), महारानी (Empress), साम्राज्य (Empire), बादशाही (Imperial), राजा (King), रानी (Queen) प्रभृत्ति-शब्द सरकार की आज्ञा के बिना नहीं सम्मिलित किये जा सकते हैं। साझे का रजिस्ट्रार उपरोक्त सूचना पत्र और शुल्क पाते ही इस बात को देख लेता है कि ऐसे साझे में साझा विधान के आवश्यक नियमों का पालन हो गया है और फिर साझे के रजिस्टर में उस साझे का नाम लिख लेता है और साझे को इसकी सूचना भेज देता है। इस साझे के रजिस्टर को कोई भी व्यक्ति एक निश्चित शुल्क देकर देख सकता है और यदि वह चाहे तो उसके अन्दर के लेखो के किसी भाग की प्रतिलिपि भी एक निश्चित शुल्क देकर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर सहित प्राप्त कर सकता है। एक रजिस्टर्ड साझे के लिये यह आवश्यक है कि यदि उसके नाम में, अथवा प्रधान कार्यालय के या किसी अन्य कार्यालय के स्थान में, अथवा संगठन, इत्यादि में कोई परिवर्तन होता है तो वह उसकी सूचना रजिस्ट्रार के पास जल्दी से जल्दी भेज दे।

(३) साझियों के चुनाव में किन बातों का ध्यान रखना चाहिये

साझा इसीलिये किया जाता है कि जिससे धन की उत्पत्ति के वे सभी साधन एकत्रित हो जायँ जिनकी किसी व्यक्ति विशेष के पास कमी है। अतः, साझियों को चुनने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनके पास पूँजी, भूमि, श्रम, प्रबन्ध और साहस में से वह साधन मौजूद हैं जो कि साझा आरम्भ करने वाले के पास

नहीं है। मान लीजिये कि एक व्यक्ति के पास पूँजी की कमी है तो उसको ऐसे साझी ढूँढ़ने चाहियें कि जिनके पास पूँजी हो। इसी तरह से यदि किसी के पास भूमि नहीं है तो उसको ऐसे साझी ढूँढ़ने चाहियें कि जिनके पास भूमि हो। कभी-कभी भूमि पूँजी से भी ख़रीदी जा सकती है। ऐसी दशा में एक पूँजीपति साझी की ही आवश्यकता पड़ेगी। प्रायः यह देखा गया है कि पूँजीपति श्रम नहीं कर सकते, अथवा अकेले एक के श्रम से काम नहीं चल पाता है, तब ऐसे साझी को ढूँढ़ना चाहिये जो कि श्रम कर सकता है। प्रबन्ध करने की योग्यता भी सब में नहीं होती है। अतः, यदि इसकी कमी हो तो ऐसा साझी ढूँढ़ना चाहिये जो इसको पूरा कर सकता है। साहस भी प्रत्येक व्यक्ति में नहीं होता है। अतः, ऐसे लोग देखे गये हैं कि जिनके पास धन की उत्पत्ति के अन्य साधन तो मौजूद हैं, किन्तु साहस के न होने के कारण वे काम नहीं कर पाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को साहसी साझियों की आवश्यकता पड़ती है।

प्रायः देखा गया है कि साझा प्रारंभ तो हो जाता है किन्तु बाद में आपस में न पट सकने के कारण वह साझा शीघ्र ही टूट जाता है। अतः, साझा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस व्यक्ति से साझा किया जा रहा है वह कैसा व्यक्ति है। सबसे आवश्यक बात तो यह है कि ऐसा व्यक्ति ईमानदार होना चाहिये। दूसरे उसको लालची भी नहीं होना चाहिये। ये दोनों गुण प्रायः ऐसे व्यक्तियों में पाये जाते हैं जिनको उचित अनुचित का ज्ञान होता है और जो यह चाहते हैं कि वे अनुचित लाभ न उठावें। प्रत्येक साझी को बहुत सौम्य और उदारचित्त होना चाहिये। वास्तव में ऐसे ही व्यक्तियों का साझा निभ सकता है। भारतवर्ष में रिश्तेदारी का साझा प्रायः सफल होते नहीं देखा गया है। वैसे तो उनको एक दूसरे के प्रति अधिक उदारचित्त होना चाहिये किन्तु क्रियात्मक रूप में यह बात नहीं पाई जाती है।

(४) साझे का साझा-पत्र और उसकी व्यवस्था

पारस्परिक झगड़ों को रोकने के लिये साझे के पत्र का होना आवश्यक है। इसमें प्रायः उन सभी बातो की व्यवस्था दी रहती है जिनके कारण साझे में बहुधा झगड़े हुआ करते हैं। वैसे तो साझा विधान यह कहीं भी नहीं कहता है कि साझे के इस प्रतिज्ञा-पत्र का लिखित होना आवश्यक है। परस्पर जो समझौता हो जाता है वह जबानी भी रह सकता है। यदि साझा कुछ दिन तक चल गया है तो बहुत सी बातें रोज़मर्रा के व्यवहार से भी जानी जा सकती हैं। किन्तु इनमें सबमें झगड़ा पड़ सकता है। साझे का साझा-पत्र लिखित हो तो बहुत ही अच्छा है। इसमें अन्य व्यवस्थाओं के साथ-साथ निम्न व्यवस्थायें अवश्य रहनी चाहिये :—

(१) साझे का वह नाम जिससे वह सर्वसाधारण में जाना जायेगा।

(२) व्यापार किस प्रकार का होगा।

(३) साझा अनिश्चित समय के लिये अथवा एक निश्चित अवधि के लिये अथवा केवल एक काम करने के लिये किया गया है।

(४) प्रत्येक साझी साझे मे कितनी पूँजी लगायेगा और उसमे उसका क्या भाग रहेगा।

(५) प्रत्येक साझी कितना रुपया हर साल अपने निजी व्यय के लिये निकाल सकेगा।

(६) पूँजी पर कोई ब्याज दिया जायगा अथवा नहीं और साथ ही साझी जो रुपया अपने व्यय के लिये निकालेंगे उस पर कोई ब्याज लिया जायगा अथवा नहीं।

(७) यदि साझी वैतनिक काम करना ही स्वीकार करें तो किन-किन साझियों को कितना-कितना वेतन दिया जायगा।

(८) साझी घाटे-मुनाफे के ज़िम्मेदार किस हिसाब से होंगे।

(९) साझा भङ्ग होने पर अथवा किसी के मरने पर साझे की सम्पत्ति किस प्रकार बाँटी जायगी।

(१०) किसी साझी के साझे से अलग होने अथवा मर जाने पर साझे की पगड़ी (Goodwill) का किस प्रकार निश्चय किया जायगा।

(११) हिसाब किताब किस प्रकार रक्खा जायगा।

(१२) साझियों में साझे का काम किस प्रकार बँटेगा।

(१३) पारस्परिक झगड़ों का निपटारा कैसे किया जायगा।

(५) साझे और साझियों के भेद

साझे दो प्रकार के होते हैं—(१) साधारण, और (२) ऐसे जिनमें कुछ सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। साधारण साझे में प्रत्येक साझी का दायित्व असीमित रहता है, अर्थात् साझे का ऋण चुकाने के लिये यदि साझे की पूँजी यथेष्ट नहीं पड़ती तो किसी साझी की निजू सम्पत्ति पर भी ऋण के शेष अंश को चुकाने का दायित्व पड़ सकता है। हाँ, यदि साझी की निजू सम्पत्ति से साझे के ऋण का शेष अंश चुकाया गया है तो उसका यह अधिकार अवश्य है कि उसके हिस्से में जो घाटा आना चाहिये था उससे अधिक जितना उसके ऊपर पड़ा है उतना वह अन्य साझियों की निजी सम्पत्ति से प्राप्त कर ले। ऐसे साझे में भी जिसमें कुछ सदस्यों का दायित्व सीमित रहता है कम से कम एक साझी का दायित्व असीमित रहना ही चाहिये। अतः, ऐसी दशा में यदि साझे के ऋण का कुछ अंश साझे की सम्पत्ति से नहीं चुकाया जा सकता है तो वह केवल ऐसे ही साझी अथवा साझियों के ऊपर पड़ता है जिनका दायित्व सीमित नहीं है। जिन साझियों का दायित्व सीमित रहता है उनकी निजू सम्पत्ति पर साझे के ऋण के किसी भाग को भी चुकाने का दायित्व नहीं रहता है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि कुछ सदस्यों के सीमित दायित्व का साझा इधर कुछ ही

दिनों से प्रचलित हुआ है। वास्तव में इसका एकमात्र ध्येय उन साझियों ही की निजू सम्पत्ति की रक्षा करना है जो साझे के काम में साधारणतया क्रियात्मक रूप से भाग नहीं लेते हैं। यदि कोई साझी साझे के काम में बराबर भाग लेता है तो उसका दायित्व सीमित नहीं माना जा सकता है चाहे आपस में ऐसा तै ही क्यों न हुआ हो।

साझियों के भेद—साझी कई प्रकार के हो सकते हैं। इनमें से दो के विषय में तो हम ऊपर विचार भी कर चुके हैं (१) जो साझी साझे के काम में बराबर का हिस्सा लेता है और उसमें अपनी देख-रेख रखता है अथवा जिसका दायित्व पारस्परिक समझौते के अनुसार सीमित नहीं होता है उस साझी को कारोबारी साझी कहते हैं, और (२) जिस साझी का दायित्व पारस्परिक समझौते के अनुसार सीमित होता है तथा वह साझे के काम में भाग भी नहीं लेता है उस साझी को सुप्त साझी कहते हैं। किन्तु दो अन्य प्रकार के भी साझी होते हैं, (१) नाम मात्र के और (२) नाबालिग साझी।

नाम मात्र के साझी—वे साझी होते हैं जिनकी साझे में न तो पूँजी लगी रहती है और न वे उसमें कोई भाग लेते हैं। ऐसे साझी साझे की साख बढ़ाने के लिये केवल अपना नाम दिये रहते हैं किन्तु इनका दायित्व असीमित रहता है।

नाबालिग साझी—जो साझी २१ वर्ष से कम की आयु के होते हैं वे नाबालिग साझी समझे जाते हैं। ऐसे साझियों का दायित्व उनकी जो पूँजी लगी रहती है उसी तक सीमित रहता है। ये साझी बालिग होने के छः महीनों के अन्दर साधारण जनता को इस बात की सूचना दे सकते हैं कि वे भविष्य में साझे में सम्मिलित नहीं रहेंगे। ऐसी दशा में उपरोक्त सूचना देने की तारीख तक तो उनका दायित्व उनकी जो पूँजी साझे में लगी हुई है उसी तक सीमित रहता

है और भविष्य के लिये वह बिल्कुल भी नहीं रहता है। हाँ, यदि वे उपरोक्त सूचना नहीं देते हैं तो केवल भविष्य के लिये ही नहीं वरन् अपनी नाबालगी के लिये भी पूर्णरूप से उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं।

कहना न होगा कि एक नाबालिग साझी के नाबालगी के समय में भी साझे के ऊपर वे सभी अधिकार होते हैं जो किसी अन्य साझी के होते हैं। वह हिसाब-किताब की भी देख-रेख कर सकता है और अपनी राय भी दे सकता है। हाँ, यदि अन्य साझी चाहें तो उसको साझे से अलग कर सकते हैं।

(६) साझियों का पारस्परिक सम्बन्ध

साझियों में यदि कोई पारस्परिक समझौता नहीं हुआ है तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध सन् १६३२ के भारतीय साझा विधान की १२ से १६ और ३१ वीं धाराओं के अनुसार निम्न प्रकार का होता है: —

(१) प्रत्येक साझी को साझे के काम में भाग लेना चाहिये और जहाँ तक हो सके उसको बड़े परिश्रम और बड़ी योग्यता के साथ निभाना चाहिये।

(२) साझियों में यदि किसी साधारण बात के लिये मतभेद हो जाय तो उसका निपटारा उनको बहुमत के अनुसार कर लेना चाहिये। प्रत्येक साझी का चाहे उसकी कितनी ही पूँजी लगी हो एक ही मत समझा जाता है। हाँ, यदि कोई विशेष बात करनी है तो वह अवश्य ही सब साझियो के निर्विरोध मत से होनी चाहिये।

(३) प्रत्येक साझी साझे के किसी भी रजिस्टर, इत्यादि को देख सकता है और उसकी प्रतिलिपि ले सकता है।

(४) बिना सभी साझियों की सम्मिलित रज़ामदी के किसी साझी को साझे में काम करने के लिये वेतन इत्यादि लेने का अधिकार नही है।

(५) साझियों में लाभ का बँटवारा सम रूप से होना चाहिये और यदि उसमें हानि हो तो भी वह सम रूप से ही पड़नी चाहिये।

(६) यदि किसी साझी को उसकी पूँजी पर ब्याज मिलता है तो वह केवल लाभ होने पर ही मिल सकता है।

(७) यदि कोई साझी साझे को कोई ऋण देता है तो वह उससे ६ प्रति सैकड़ा वार्षिक ब्याज प्राप्त कर सकता है।

(८) साझे के किसी काम को करने में यदि किसी साझी का कोई व्यय हुआ है अथवा उसने उसके सम्बन्ध का कोई भुगतान अपने निजू धन से किया है तो वह उसको साझे की रक़म से प्राप्त कर सकता है।

(९) यदि कोई साझी जान बूझ कर कोई ऐसा काम करता है जिससे साझे की कोई हानि होती है तो वह हानि उसी साझी के ऊपर पड़ती है।

(१०) साझे की सम्पत्ति मे वह सारी सम्पत्ति सम्मिलित समझी जाती है जिसको साझे के लिये या तो उसके प्रारम्भ में लाया गया है अथवा जो बाद में उसके काम के दौरान मे उसके पास आ गई है। साझे की पूँजी से जो सम्पत्ति ख़रीदी जाती है वह साझे की ही समझी जाती है और वह उसीके काम में आ सकती है।

(११) यदि कोई साझी साझे के काम से अथवा उसके नाम से कोई लाभ उठाता है तो उसको वह लाभ साझे को ही दे देना पड़ता है।

(१२) किसी साझी के साझे से स्पर्धा करके अथवा उसीकी तरह का कोई काम करके लाभ उठाने पर वह लाभ साझे का ही लाभ समझा जाता है।

(१३) साझे के संगठन में कोई परिवर्तन होने पर भी साझियों के वही अधिकार, इत्यादि रहते हैं जो ऐसे परिवर्तन के पहले थे।

(१४) जो साझे किसी अवधि के लिये अथवा एक काम के करने के लिये संगठित होते हैं वह यदि उस अवधि के बीत जाने पर भी अथवा काम के हो जाने पर भी चालू रहते हैं तो उसमें के साझियों के वही अधिकार क़ायम रहते हैं जो पहिले से थे।

(१५) जब तक सब साझियों की पूर्ण अनुमति न हो कोई नया साझी उस साझे में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। किसी नये साझी के आने पर उससे भी सब बातें बहुत साफ़-साफ़ कर लेनी चाहिये जिससे भविष्य में आपस में कोई झगड़ा न पड़े।

(७) साझे का भङ्ग होना

साझियों की इच्छा से अथवा साझा विधान में दिये हुए कारणों के उपस्थित हो जाने से साझा भङ्ग हो जाता है।

साझियों की इच्छा से साझे का भङ्ग होना—

(१) मान लीजिये कि साझियों ने एक निश्चित अवधि के लिये अथवा एक निश्चित काम के लिये साझा किया था तो उस निश्चित अवधि के बीत जाने पर अथवा उस निश्चित काम के हो जाने पर वह साझा साझियों की इच्छा से भङ्ग हो जायगा।

(२) मान लीजिये कि किसी साझी की मृत्यु हो जाती है अथवा कोई साझी दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, तब भी वह साझा सब साझियों की इच्छा से भङ्ग किया जा सकता है।

(३) यदि कोई साझा अनिश्चित समय तक के लिये किया गया है तो कोई साझी जब चाहे तब दूसरे साझियों को सूचना देकर उस साझे को भङ्ग कर सकता है।

साझा विधान में दिये हुये कारणों के उपस्थित हो जाने से साझे का भङ्ग होना—

(१) यदि किसी साझे के सब साझी अथवा एक को छोड़ कर सब साझी दिवालिया घोषित कर दिये गये हैं तो साझा अनिवार्य रूप से भङ्ग हो जाता है।

(२) यदि साझे का काम अवैधानिक घोषित कर दिया गया है तब भी साझा अनिवार्य रूप से भङ्ग हो जाता है।

(३) यदि अदालत ने किसी साझे को भङ्ग करने का आदेश दे दिया है तो वह साझा अनिवार्य रूप से भङ्ग हो जायगा।

वास्तव मे अदालत किसी साझे को भङ्ग करने का आदेश तभी देती है जब उस साझे का कोई साझी निम्न कारणों में से किसी कारण से भी उससे ऐसा करने लिये प्रार्थना करता है :--

(अ) किसी साझी का दिमाग़ खराब हो गया है; (ब) कोई साझी किसी कारण वश भी ऐसी परिस्थिति में पड गया है कि वह भविष्य में साझियों के कर्तव्य न पालन कर सकेगा ; (स) किसी साझी ने जान-बूझ कर साझे के काम में नुकसान पहुँचाया है; (द) किसी साझी ने साझे की शर्तों का जान-बूझ कर उल्लघन किया है और करता आ रहा है , (घ) किसी साझी ने साझे का अपना पूरा हिस्सा किसी दूसरे व्यक्ति के नाम किसी प्रकार भी हस्तान्तरित कर दिया है ; (न) साझे का काम बिना हानि के किसी प्रकार चल ही नहीं सकता है ; और (प) कोई ऐसा कारण है कि जिससे साझा भङ्ग हो ही जाना चाहिये।

साझा भङ्ग हो जाने के बाद फ़ौरन ही जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी आम जनता को साझे के भङ्ग हो जाने की सूचना दे देनी चाहिये, अन्यथा यदि कोई साझी कोई ऐसा काम करता है जो साझे के चालू रहने पर किया जा सकता है तो सभी साझी उस काम के लिये उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं।

साझा भङ्ग हो जाने पर हिसाब-किताब चुकता करने में निम्न ढग बरता जाता है। हाँ, यदि आपस में कोई समझौता हो गया है तो उसी समझौते के अनुसार सारा काम चलेगा।

(१) सब तरह की हानियों को पहिले, पुराने एकत्रित किये हुये लाभ से, फिर पूँजी से और अन्त में सब साझियों से उस अनुपात

में रुपया वसूल करके पूरा करना चाहिये जिस अनुपात में वह लाभ बाँटते आ रहे हैं।

(२) साझे की सम्पत्ति और साझियो के द्वारा दी हुई सारी रकम नीचे दिये हुये क्रम से काम मे लाई जाती है।

(अ) पहिले तो दूसरो का जो ऋण साझे के ऊपर चाहिये उसका भुगतान होता है, (ब) फिर प्रत्येक साझी को वह रकम दी जाती है जो उसने साझे को ऋण के रूप में दिया था; (स) फिर प्रत्येक साझी को उसकी पूँजी वापस की जाती है; और अन्त में (द) शेष रकम प्रत्येक साझी को उस अनुपात में दी जाती है जिसमें वह लाभ पाता आ रहा था। यदि अ, ब, स में से किसी के लिये भी पूर्ण रकम नहीं होती है तो उसका देना उसी अनुपात से चुकाया जाता है जो शेष रकम का और उस मद के देने का है; मान लीजिये बाहरी लोगों का कुल मिला कर १०,०००) साझे के ऊपर चाहिये; और साझे की सम्मिलित पूँजी और वह रकम जो कुल साझियो की निजी सम्पत्ति से प्राप्त हो सकी है मिलाकर केवल ५,०००) है तो १) के पीछे ॥) दिया जाता है अर्थात् जिसका १००) है उसे ५०) मिलता है इत्यादि, इत्यादि। इस सम्बन्ध मे यह याद रखना चाहिये कि साझे का ऋण चुकाने के लिये साझे की सम्पत्ति के यथेष्ट न होने पर सब साझियो की निजी सम्पत्ति भी ली जा सकती है। अतः अनुपात से ऋण चुकाने के यह अर्थ हैं कि साझे की सम्पत्ति और साझियों की वह निजी सम्पत्ति जो ऋण चुकाने के लिये प्राप्त हो सकी है मिला कर भी ऋण चुका सकने के लिये पर्याप्त नही है। ऐसा तभी होता है जब सब साझी दिवालिया घोषित कर दिये जाते हैं।

(८) साझे के गुण और दोष

पिछले अध्याय मे हम लोग एक मालिक की पूँजी और सम्मिलित पूँजी के संगठनो के गुण और दोषों पर विचार कर आये हैं। वास्तव में साझे के संगठन के वही सब गुण और दोष हैं जो सम्मि-

लित पूँजी के संगठन के गुण और दोष हैं। किन्तु सम्मिलित पूँजी में भी साझे और कम्पनियाँ हैं। अतः, इन दोनों के मिलान में भी साझे के कुछ गुण और दोष हैं।

गुण—(१) साझा कम्पनी की अपेक्षा आसानी से बन सकता है। जैसा कि हम पीछे देख आये हैं इसकी रजिस्ट्री कराने में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ती।

(२) साझे के संगठन में प्रत्येक साझी का पूरा-पूरा अधिकार रहता है। हर काम में उसकी राय ली जाती है। कम्पनी में ऐसा नहीं होता। उसके हिस्सेदारों को तो वर्ष में केवल एक बार मिलने का अवसर प्राप्त होता है। वह भी सबों को नहीं होता। बात यह है कि अधिकतर तो हिस्से बहुत ही छोटी रकम के होते हैं। अतः, कम हिस्सो के हिस्सेदारों को न तो ऐसी कोई विशेष दिलचस्पी ही रहती है कि वह वार्षिक बैठक में जायँ ही और न वे उस बैठक में जाने का व्यय, इत्यादि ही सहन कर सकते हैं। अतः, कम्पनी के संचालक मनमानी करते हैं, और उससे हिस्सेदारों की हानि हो जाने की सम्भावना रहती है। इनको अपनी कम्पनी का आर्थिक दशा का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहता है, और सचालक इनकी इस अज्ञानता से लाभ उठाया करते हैं। ऐसा प्रायः देखा गया है कि वह बहुत से हिस्सेदारों के हिस्से स्वयम् कम मूल्य पर खरीद लेते हैं, और फिर ऊँचे मूल्य पर बेंच देते हैं। यह केवल इसीलिये हो पाता है कि जब कि सञ्चालकों को कम्पनी की आर्थिक स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान रहता है हिस्सेदारों को धोखा हो जाता है। प्रायः ऐसा भी देखा गया है कि सञ्चालक लोग पहिले कुछ वर्षों में लाभ नहीं बाँटते हैं और ऐसा उचित भी है क्योंकि इससे कम्पनी की स्थिति मज़बूत हो जाती है। किन्तु इससे हिस्सों के मूल्य नहीं बढ़ते और हिस्सेदार उनको बेंच देते हैं तथा सञ्चालक लोग स्वयम् उनको ख़रीद लेते हैं। वस्तुतः इसके लिये कुछ किया भी नहीं जा सकता है। केवल हिस्सेदारों को धैर्य्य रखना चाहिये और

हिस्सों को शीघ्र ही बेंचना नहीं चाहिये। इसके लिये उनको कम्पनी की बैलन्स शीट इत्यादि भी समझ सकने की बुद्धि होनी चाहिये। तभी वे लोग उपरोक्त धोखे से बच सकते हैं।

(३) साझे का काम कम्पनी के काम की अपेक्षा गोपनीय रह सकता है। साझे की बैलन्स शीट सर्वसाधारण में आने की आवश्यकता नहीं है किन्तु कम्पनी की बैलन्स शीट को तो सब के सामने लाना ही पड़ता है। अत, साझे में कम्पनी की अपेक्षा स्पर्धा आदि से यथेष्ट बचत हो सकती है।

(४) साझे के लाभ पर आय कर (Income Tax) नहीं लगता। वह साझियों के बीच में पहिले बँट जाता है, और फिर हर साझी की आय पर २५००) वार्षिक आय छोड़ कर आय-कर लगता है। कम्पनी में पूरी आय पर आय कर लग जाता है। उसमें कोई छूट नहीं मिलती और आय कर भी अधिक लगता है।

दोष—(१) साझे का निभना बहुत कठिन हो जाता है। इसके लिये यह तो हम पहिले ही देख चुके हैं कि साझियों के चुनाव में बड़ी होशियारी से काम करना चाहिये। साथ ही यदि साझा बनाते समय एक साझा-पत्र तैयार कर लिया जाता है तो भी सब बातों के स्पष्ट हो जाने के कारण झगड़े का कुछ कम अन्देशा रहता है। वास्तव में साझे को निभाने के लिये बहुत सँभल कर चलना चाहिये। जहाँ तक हो सके बहुत सँभल कर साझा करना चाहिये और फिर बहुत सँभल कर ही उसको निभाना चाहिये।

(२) साझे की पूँजी कम्पनी की पूँजी की अपेक्षा साधारणतः कम रहती है।

(३) साझियों की जोखिम असीमित रहती है किन्तु हिस्सेदारों की जोखिम प्रायः सीमित रहती है।

(४) साझे में लगी हुई पूँजी केवल साझे को तोड़ कर ही प्राप्त

की जा सकती है। इसके विपरीत कम्पनी में लगी हुई पूँजी किसी समय भी हिस्सों को बेंच कर वापस ली जा सकती है।

(५) साझे को ऋण थोड़ा ही मिल सकता है। इसके विपरीत कम्पनी को बहुत-सा ऋण मिल सकता है। बात यह है कि जब कि कम्पनी ऋण-पत्र बेंच सकती है साझा ऐसा नहीं कर सकता है। ऋण-पत्रों के द्वारा अगणित व्यक्तियों से थोड़ा-थोड़ा करके बहुत-सा ऋण प्राप्त हो जाता है। यह बात बिना ऋण-पत्रों के नहीं हो सकती।

(९) साझे और सम्मिलित परिवार के संगठन में अन्तर

जैसा कि पहिले मालूम हो चुका है सम्मिलित परिवार का संगठन साझे का संगठन नहीं है। दोनो में बड़ा अन्तर है।

(१) सम्मिलित परिवार के संगठन का आधार पारस्परिक समझौता नहीं वरन् रक्त सम्बन्ध है। इसके विपरीत साझे का आधार तो समझौता ही है। बहुत-सी दूकानें सम्मिलित परिवार के रूप में चलती हैं। ये साझे नहीं हैं। ये साझे तभी हो सकते हैं जब इनमें के भाई-भाई कोई समझौता करके अपना काम प्रारम्भ करें।

(२) सम्मिलित परिवार के संगठन मे उसका सबसे बड़ा पुरुष सदस्य मालिक माना जाता है। विधान के अनुसार वह कर्ता कहलाता है और उसको सम्मिलित परिवार के सगठन को जिस प्रकार वह चाहे सम्मिलित परिवार के लाभ के लिये चलाने का अधिकार है। वह चाहे तो परिवार के अन्य सदस्यो का मत ले अथवा न ले, उनके मत को माने अथवा न माने। वे लोग यदि असन्तुष्ट हैं तो सम्मिलित परिवार को भङ्ग कर सकते हैं; कर्ता को किसी काम के करने अथवा न करने को विवश नही कर सकते। इसके विपरीत साझे में सब साझियो का समान अधिकार रहता है।

(३) सम्मिलित परिवार की पूँजी में स्त्री का कोई अधिकार नहीं है। हाँ, उसके स्वयम् के ज़ेवरो पर जिन्हें स्त्री धन माना जाता है उसका अधिकार है। वह केवल अपना खर्च पाने की अधिकारिणी है। उसके मत, इत्यादि का कोई वैधानिक मूल्य नहीं है। साझे में स्त्री का भी साझा हो सकता है। ऐसी अवस्था में उसके पूर्ण अधिकार होते हैं।

(४) सम्मिलित परिवार की आय पर २५००) वार्षिक छोड़कर शेष पर आय-कर लगता है। इसके विपरीत साझे के लाभ पर आय-कर नहीं लगता। वह पहिले साझियो के बीच में बँट जाता है और फिर हर साझी की आय में से २५००) वार्षिक छोड कर शेष पर आय-कर लगता है। इसके यह अर्थ हैं कि यदि सम्मिलित परिवार में चार भाई है तो भी केवल २५००) छोड़ कर शेष आय पर आय-कर लगता है। किन्तु यदि साझे में चार साझी हैं तो प्रत्येक साझी के लिये २५००) छोड कर अर्थात् कुल १००००) छोड कर शेष आय पर आय-कर लगता है। यही कारण है कि इधर लोगो ने सम्मिलित परिवार को तोड़ कर साझे स्थापित करने आरम्भ कर दिये हैं। यदि भाई-भाई में कोई वैमनस्य नहीं है तो भी केवल आय-कर को बचाने के विचार से ही वे लोग सम्मिलित परिवार के संगठन को तोड़ कर साझा स्थापित कर लेते हैं।

(५) यदि सम्मिलित परिवार का कोई सदस्य मर जाता है तो भी वह संगठन चलता रहता है। किन्तु साझे के संगठन में ऐसा नहीं है। वह तो किसी भी साझी के मरने पर भङ्ग हो जाता है।

(६) यदि सम्मिलित परिवार के किसी सदस्य की अपनी अलग की कोई पूँजी है जो उसने सम्मिलित परिवार से नहीं प्राप्त की है तो सम्मिलित परिवार के घाटा लगने पर उस सदस्य की वह अलग की पूँजी उस घाटे के लिये उत्तरदायी नहीं समझी जाती है। इसके विपरीत साझे के सम्बन्ध के घाटे को पूरा करने के लिये जैसा कि हम

पहिले ही देख चुके हैं प्रत्येक साझी की अपनी पूँजी भी उत्तर-दायी है।

(१०) साझियों के सम्बन्ध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें

प्रायः एक क्रियाशील तथा व्यवसाय चतुर साझी जब एक लापरवाह साझी के साथ पड जाता है तो उसे बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। वह लापरवाह साझी यह समझ कर कि फर्म का काम तो ठीक-ठीक चल ही रहा है, बहुधा अपने फर्म के कर्तव्य से च्युत रहा करता है, और बाजार में घूमता है, सैर सपाटे के लिये दूर-दूर के शहरों में चला जाता है तथा बाहर जिम्मेदारी से खाली रहने के कारण तथा मन की चचलता के कारण, मन को फुसलाने के लिये नाच-रग, सिनेमा आदि व्यसनो में फँस जाता है। ऐसे लापरवाह साझी को खर्चे की सदा आवश्यकता बनी रहती है। अतः, वह मौका पाने पर फर्म में चोरी तथा गबन भी करता है जिसके कारण गड़बड़ी होने से उस क्रियाशील साझी की मर्यादा में भी बट्टा लगता है। एक क्रियाशील साझी को ऐसे लापरवाह साझी से सतर्क रहना चाहिये तथा उसके आचरण आदि पर सन्देह होते ही अन्य साझियों की सम्मति से उसको अदालत द्वारा अवैधानिक घोषित करके फौरन साझे से बाहर निकाल देना चाहिये।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब कई साझी लापरवाह हो जाते हैं तथा जो विशेष क्रियाशील साझी होते हैं वे भी उनके ऊपर नियंत्रण नहीं रख सकते तब अधिक काम तथा जिम्मेदारी को न सँभाल सकने के कारण वे भी फर्म के काम में ढील-ढाल कर देते हैं जिससे अन्त में या साझा तोड़ना ही पड़ता है अथवा पूँजी डूबने तथा घाटा होने से स्वय ही टूट जाता है।

कोई साझी बड़ा क्रियाशील तथा व्यवसाय-चतुर होने के कारण

फर्म के प्रत्येक विभाग में एक प्रकार से व्यापक-सा अपना विशेष अधिकार रखता है तथा साथ ही यह इच्छा रखता है कि दूसरे साझी उसके दबाव में रहें और साझे के काम से अनभिज्ञ से रहें। वह जैसा हिसाब-किताब औरों को सूचित करता है वह माना जाता है। ऐसा साझी बेईमानी में बड़ा कुशल होता है और वह धीरे-धीरे फर्म के सारे मुनाफे के अधिकांश को शोषण कर लिया करता है तथा अन्त में अपने व्यवहार से अपने को ईमानदार भी सिद्ध कर देता है। ऐसा साझी समाज में बदनामी के डर से एकबारगी गबन नहीं करता परन्तु वह गबन करने वाले साझी से भी अधिक घातक होता है, क्योंकि दूसरे साझियों को उसकी चालों का आभास बहुत दिन में तथा कठिनता से होता है और वे प्रत्यक्ष रूप से सप्रमाण उसे बेईमान भी नहीं सिद्ध कर सकते हैं। हाँ, वह स्वयं अपनी निजू सम्पत्ति तथा कारबार में पर्याप्त उन्नति कर लेता है और फर्म की सम्मिलित उन्नति तथा अन्य साझियो की निजू उन्नति में बड़ा बाधक होता है। फर्म की आर्थिक उन्नति तथा प्रत्यक्षतः अधिक मुनाफा न होने से जोखम के समय फर्म का कारबार अधिक बिगड़ जाता है तथा जोखम का बहाना मिल जाने पर वह गबन भी कर लेता है और उसे गबन साबित न होने देकर उसके बदले आकस्मिक जोखम के कारण होने वाली क्षति साबित करता है। ऐसा साझी बड़ा गुप्त बेईमान होता है। इससे बचना बड़ा मुश्किल होता है। ऐसे गुप्त बेईमान साझी से अन्य साझियों को बहुत बचना चाहिये।

कोई-कोई साझी क्रियाशील तथा व्यवसाय चतुर होता है अतः फर्म के सँभालने में उसे श्रम तथा व्यवस्था में अधिक योग देना पड़ता है। ऐसी दशा में अन्य साझी बहुत कुछ उसीके भरोसे रहते हैं—'अपने निजू लाभ क्षति के कार्य में मनुष्य स्वतन्त्र रहता है और उसे कोई कलंक नहीं लगा सकता परन्तु जहाँ पर दूसरों के लाभ क्षति का अपने ऊपर दायित्व रहता है वहाँ एक मर्यादा वाले सम्भावित व्यक्ति को

अपने निजू कारबार से भी अधिक फर्म के कारबार में विशेष सतर्क रहना पड़ता है जिससे अपने ऊपर विश्वास रखने वाले अनभिज्ञ व कम अनुभव वाले साझियों का नुकसान न हो। यदि उसकी जिम्मेदारी में और साझियों के हित का नुकसान होता है तो सम्भव है कि वह कलंकित होकर अपयश का भागी हो तथा उसकी पहिले की विश्वास-पात्रता तथा निष्कपट व्यवहार की सुन्दर कीर्ति में भी बट्टा लगे जो एक बार कलंकित होकर जिन्दगी भर नहीं मिल सकती है

सच्ची बात तो यह है कि यदि कोई साझी क्रियाशील तथा व्यवसाय चतुर है तो सबकी रजामन्दी से उसे मुनाफे में से योग्यता-नुसार पर्याप्त वेतन फर्म की ओर से दिया जाना चाहिये ताकि वह ईमानदारी के साथ निष्कपट भाव से फर्म का कारबार सँभाल सके।

क्रियाशील तथा व्यवसाय चतुर साझी का यह भी धर्म है कि वह अन्य साझियों को भी शिक्षा देकर क्रियाशील तथा व्यवहार कुशल बना ले जिससे अन्त में वे भी अधिक उत्तमता के साथ फर्म के कारबार में सहयोग दे सकें।

साझा पहिले ही से बहुत छान-बीन कर उपयुक्त, ईमानदार तथा क्रियाशील साझियो के साथ किया जाना चाहिये। इस कार्य में सबसे बड़ी आवश्यकता उत्तम साझियों के एकत्रित करने की ही है। इसी पर साझे की सफलता निर्भर रहती है।

३. कम्पनियाँ

(१) कम्पनियों का विकास (२) कम्पनी की परिभाषा और उसके भेद (३) कम्पनियों की संस्थापना (४) कम्पनियों की पूँजी (५) हिस्से और ऋण-पत्र (६) कम्पनी और साझे में अन्तर (७) कम्पनी के हिस्से खरीदने में सावधानी की आवश्यकता।

सम्मिलित पूँजी द्वारा व्यापार की एक प्रणाली अर्थात् साझे का विस्तृत अध्ययन तो हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। इस अध्याय में अब हम इसकी दूसरी प्रणाली अर्थात् कम्पनियो के विषय में विचार करते हैं।

(१) कम्पनियों का विकास

सच पूछा जाय तो कम्पनियों का विकास पश्चिम में ही हुआ है। बात यह थी कि बहुत-सा रुपया लगा कर काम करने का रिवाज सब से पहले वहीं आरम्भ हुआ था। सन् ११७७ मे वेनिस के स्टेट को धन की आवश्यकता पड़ी। अतः, उसने उस वर्ष बैंक आफ वेनिस की नीव डाली। इंगलैंड मे सन् १३६० में सर्व-प्रथम मर्चेंट आफ़ ऐडवेंचर्स नाम की कम्पनी खोली गई। कुछ समय तक इन कम्पनियों का खुलना बहुत कठिन था जब कोई कम्पनी खुलती थी उसका अधिकार-पत्र बादशाह के द्वारा अथवा पार्लियामेंट के द्वारा मिलता था। उपरोक्त मरचेन्ट आफ ऐडवेन्चर्स कम्पनी का अधिकार पत्र रिचर्ड द्वितीय ने दिया था। फिर सन् १६०० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी का अधिकार-पत्र रानी एलिज़ाबेथ ने दिया था। सन् १६६४ मे बैंक आफ़ इंगलैंड का अधिकार-पत्र पार्लियामेंट में पास हुआ था। किन्तु धीरे-धीरे इन कम्पनियों के प्रबन्ध में बड़ी गड़बड़ियाँ मचने लगी। अतः, सन् १८२५ मे कम्पनियों के प्रबन्ध के विषय में कुछ धारायें

पास की गई। सन् १८४४ में बैंक आफ़ इंगलैंड के हिस्सेदारों को सर्वप्रथम सीमित जोखिम की सुविधा दी गई। सन् १८५५ में यह सुविधा अन्य व्यापारिक संस्थाओं के हिस्सेदारों को भी प्रदान की गई, किन्तु उस समय यह उचित नहीं समझा गया कि इसको बैंकों के हिस्सेदारों के लिये भी आम तौर पर खोल दिया जाय। जो हो सन् १८५७ में जब बहुत से बैंक फेल हुए और उनके साथ उनके धनी-मानी हिस्सेदारों को भी उनकी जोखिम सीमित न होने के कारण नुकसान उठाना पडा तब सन् १८५८ में यह सुविधा उन बैंकों के हिस्सेदारों को भी दी गई जिनके नोट नहीं चलते थे। जिनके नोट चलते थे उनके लिये यह सुविधा नोटों की जोखिम के कारण नहीं दी गई। किन्तु बहुत दिनों तक अधिकतर बैंकों ने इसका लाभ नहीं उठाया। उनमें ऐसी धारणा हो गई थी और वास्तव में यह ठीक भी थी कि उन के हिस्सेदारों की जोखिम सीमित कर देने पर जनता का उन पर से विश्वास उठ जायगा, और जैसा कि हम समझ सकते हैं बैंकों के लिये विश्वास ही सबसे बडी चीज़ है। किन्तु धीरे-धीरे धनी-मानी लोगो की रुचि बैंकों के हिस्से लेने से हटकर अन्य व्यापारों के हिस्से लेने की तरफ़ झुकने लगी। अतः, बैंकों को भी अपने हिस्से दारों की जोखिम को सीमित करना पडा। इसके बाद इंगलैण्ड में कम्पनियों के सम्बन्ध में बराबर विधान बनते गये। अन्त में सन् १६०० में इन सबको मिला कर वहाँ पर एक कम्पनी विधान कम्पनीज़ कन्सालिडेशन एक्ट पास किया गया। फिर १६२६ में एक दूसरा नया अंग्रेज़ी कम्पनियों का विधान स्वीकृत हुआ। आज-कल इंगलैंड में कम्पनियों का संगठन और संचालन इसी विधान के द्वारा होता है।

भारतवर्ष में भी अंग्रेज़ों के प्रयास से बहुत-सी कम्पनियाँ खुलती रहीं और अनेकों विधान पास होते रहे। किन्तु अन्त में सन् १६१३ का भारतीय कम्पनी विधान बना जो अब तक लागू है। यह विधान

इङ्गलैंड के १९०७ के विधान से बहुत आगे था। इधर सन् १९३६ मे और उसके बाद भी भारतीय कम्पनी विधान में बहुत से संशोधन हुए हैं। इन सब संशोधनो के सहित मारा कम्पनी विधान पूर्ण रूप से समय के अनुकूल कहा जा सकता है अब, बैंको की कम्पनियों के लिये एक पृथक विधान बन रहा है जिसके बन जाने से एक तो व्यापारी कम्पनियो का और दूसरा बैंकिङ्ग कम्पनियो का विधान हो जायगा।

(२) कम्पनी की परिभाषा और उसके भेद

कम्पनी विधान में कम्पनी की कोई परिभाषा नहीं दी गई है, किन्तु समय-समय पर विद्वान न्यायाधीशों ने इसकी व्याख्या की है। अतः, उन्हीं के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि कम्पनी एक चिर-स्थाई उत्तराधिकार (Perpetual Succession) वाली ऐसी संस्था है जिसका संगठन (Incorporation) विधान के अनुसार होता है और जिसकी स्वयम् की एक (Common Seal) मोहर रहती है।"

वास्तव में कम्पनी के संगठित (Incorporation) हो जाने पर उसका स्वयम् का व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है। अतः, वह व्यक्तित्व उसके सदस्यो के व्यक्तित्व से पृथक होने के कारण चिरस्थाई रहता है। साझे के अध्ययन में हम यह देख चुके हैं कि उनका स्वयम् का व्यक्तित्व नहीं होता है। अतः, वैधानिक कामो मे उनके सदस्यों का ही नाम चलता है। साथ ही उनकी मृत्यु इत्यादि हो जाने पर वह भङ्ग हो जाते हैं। कम्पनियों मे यह बात नहीं है। उनका स्वयम् का व्यक्तित्व होता है। उन्हीं के नाम से सब काम होते हैं, और वह सदस्यों की मृत्यु, इत्यादि से भङ्ग नहीं होती हैं। उनका उत्तराधिकार बदलता रहता है। अतः वह चिरस्थाई होती हैं। कम्पनियो की दूसरी विशेषता यह है कि उनका संगठन कम्पनी विधान के नियमो के अनुसार होता है जिनके विषय में हम आगे चलकर देखेंगे।

उनकी तीसरी और अन्तिम विशेषता यह है उनकी एक मोहर होती है जो उनके द्वारा किये गये कामों के सम्बन्ध में प्रयोग में आती है।

कम्पनियों के भेद उनके सदस्यों की संख्या और उनकी जोखिम के अनुसार होते हैं।

सदस्यों की संख्या के अनुसार कम्पनियाँ निजू (Private) और सार्वजनिक (Public) होती हैं। निजू कम्पनी वह है जो अपने हिस्सों (Shares) और ऋण-पत्रों (Debentures) को लेने के लिये सर्वसाधारण को आमन्त्रित न करके हिस्सो के हस्तान्तरित (Transfer) करने में कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाती हैं कि उसके सदस्यो की सख्या पचास से अधिक नहीं हो पाती है। यह याद रखना चाहिये कि इस संख्या में उसके वेतनभोक्ता कर्मचारियों आदि की संख्या सम्मिलित नहीं है।

इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनी वह है जो अपने हिस्सो और ऋण-पत्रों को लेने के लिये सर्वसाधारण को आमन्त्रित करती है और अपने हिस्सेदारों की सख्या में और उनके हिस्सों के हस्तान्तरित करने मे कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती है।

निजू कम्पनी और सार्वजनिक कम्पनी मे अन्तर—यहाँ पर हमको निजू कम्पनी और सार्वजनिक कम्पनी के अंतरों को विशेष रूप से समझ लेना चाहिये। ये निम्नाङ्कित हैं :—

(१) निजू कम्पनी अपने हिस्सों और ऋण-पत्रों को लेने के लिये सर्वसाधारण को आमन्त्रित नहीं करती है। अतः, वह विवरण-पत्र (प्रासपेक्टस), इत्यादि नहीं निकालती है। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनी तो अपने हिस्सो और ऋण-पत्रों को लेने के लिये सर्वसाधारण को आमन्त्रित करती है। अतः, उसको विवरण-पत्र, इत्यादि निकालना पडता है।

(२) निजू कम्पनी के सदस्यों की कम से कम संख्या दो और अधिक से अधिक संख्या पचास और सार्वजनिक कम्पनी के सदस्यों की

कम से कम संख्या सात और अधिक से अधिक संख्या कुछ भी हो सकती है।

(३ निजू कम्पनी के हिस्सो के हस्तान्तरित करने में प्रतिबन्ध रहता है किन्तु सार्वजनिक कम्पनी के हिस्से किसी भी व्यक्ति को हस्तान्तरित किये जा सकते हैं।

(४) निजू कम्पनी मे संचालकों (डाइरेक्टरो) का होना अनिवार्य नहीं है, किन्तु सार्वजनिक कम्पनी मे उनका होना अनिवार्य है। बात यह है कि निजू कम्पनी के सदस्यो की संख्या कम होने पर यह सम्भव है कि उसके सभी सदस्य उसके काम की देख-रेख कर सकें। हाँ, यदि संख्या काफी होती है तो उसके भी संचालक होते हैं। इसके विपरीत एक सार्वजनिक कम्पनी में तो सदस्यो की संख्या के अपरिमित होने के कारण उसमे तो विना सचालकों के काम चल ही नहीं सकता है।

(५) यद्यपि वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा (बैलन्स शीट) का बनाना निजू और सार्वजनिक कम्पनियों दोनो के लिये आवश्यक है किन्तु निजू कम्पनियो को उसकी प्रतिलिपि को रजिस्ट्रार के यहाँ नहीं भेजना पड़ता है। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनियों को ऐसा करना पड़ता है। यही बात हिसाब-किताब के निरीक्षण (आडिट) कराने के विषय में भी है। हिसाब का निरीक्षण कराना तो दोनों प्रकार की कम्पनियों के लिये आवश्यक है। किन्तु जब कि निजू कम्पनियाँ किसी से भी अपने हिसाब-किताब का निरीक्षण करा सकती हैं सार्वजनिक कम्पनियाँ केवल पासशुदा निरीक्षकों (रजिस्टर्ड आडिटरों) से ही उनका निरीक्षण करा सकती हैं।

(६) निजू कम्पनियाँ रजिस्ट्री होते ही अपना काम शुरू कर सकती हैं। किन्तु सार्वजनिक कम्पनियों को काम शुरू करने के पहिले कम्पनियों के रजिस्ट्रार से काम शुरू करने का प्रमाण-पत्र (Certificate for the Commencement of

business) प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है। इसके लिये उनको अनेकों वैधानिक तरीकों को पूरा करना पड़ता है।

(७) हिस्सों की बँटनी (Allotment) के सम्बन्ध में भी निजू कम्पनियों के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनियों के ऊपर इस सम्बन्ध के कुछ प्रतिबन्ध हैं।

(८) निजू कम्पनियों को उनकी रजिस्ट्री के एक निश्चित समय के बाद कोई वैधानिक (Statutory) मीटिङ्ग करना अनिवार्य नहीं है। उनको तो केवल १८ महीनों के अन्दर सब हिस्सेदारों की पहिली वार्षिक मीटिङ्ग ही करना पड़ता है। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनियों के लिये उनकी रजिस्ट्री के छै महीनो के अन्दर ही एक वैधानिक मीटिङ्ग करना आवश्यक है। इसके बाद वार्षिक मीटिङ्ग होती हैं।

(९) निजू कम्पनियों के संयोजकों को बहुत से वैधानिक कार्यों को करने से छुट्टी मिल जाती है। किन्तु सार्वजनिक कम्पनियों के संयोजकों को बहुत से वैधानिक कार्य करने पड़ते हैं।

निजू कम्पनियाँ साझों और सार्वजनिक कम्पनियों दोनों की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक हैं—हमें ज्ञात है कि साझों का स्वयम् का व्यक्तित्व नहीं होता है और न उनके सदस्यों की जोखिम ही पूर्ण-तया परिमित हो सकती है। अतः, उनको पग-पग पर कठिनाइयाँ पड़ती हैं। सर्व प्रथम तो साझे और साझियों दोनों का एक दूसरे के ऊपर प्रभाव पड़ता है। मान लीजिये कि साझे को कोई भारी क्षति उठानी पड़ी है तो उसको पूरा करने के लिये प्रत्येक साझी की निजू सम्पत्ति भी ज़िम्मेदार ठहराई जा सकती है। इसी प्रकार यदि कोई साझी पागल हो जाता है, अथवा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है, अथवा मर जाता है तो साझा भङ्ग हो जाता है। निजू कम्पनी के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है। इसके अलावा साझियो को साझे के काम की देख-रेख करनी पड़ती है किन्तु निजू कम्पनी के हिस्सेदार

संचालकों को चुन कर अलग हो सकते हैं। फिर निजू कम्पनियों को उनके सदस्यों की संख्या के साझों के सदस्यों की संख्या से अधिक होने के कारण पूँजी भी अधिक एकत्रित करने का अवसर मिलता है।

अब, यदि हम निजू कम्पनियों और सार्वजनिक कम्पनियों की तुलना करें तो हमको ज्ञात होगा कि निजू कम्पनियों को स्थापित करने में और चलाने में उतने वैधानिक प्रतिबन्ध हैं नहीं जितने सार्वजनिक कम्पनियों को स्थापित करने और चलाने में हैं। अतः, निजू कम्पनियाँ साझों और सार्वजनिक कम्पनियों दोनों की अपेक्षा साधारणतः छोटे कारबारों के लिये अधिक सुविधाजनक हैं।

सदस्यों की जोखिम के परिमित अथवा अपरिमित होने के अनुसार कम्पनियाँ—कम्पनियाँ परिमित जोखिम वाली और अपरिमित जोखिम वाली होती हैं। जहाँ तक परिमित जोखिम वाली कम्पनियों का प्रश्न है ये भी हिस्सों से परिमित जोखिम वाली और ज़मानत (Guarantee) से परिमित जोखिम वाली होती हैं।

हिस्सों से परिमित जोखिम वाली कम्पनियाँ—ये वे होती हैं जिनके सदस्यों की जोखिम केवल उनके हिस्सों की पूरी रक़म तक ही परिमित रहती है। मान लीजिये कि एक कम्पनी के किसी सदस्य ने सौ-सौ रुपयों के दस हिस्से लिये हैं तो उसकी जोखिम केवल एक हज़ार रुपये तक ही परिमित रहती है। यदि उसने यह एक हज़ार रुपये दे दिये हैं तो उसका उत्तर-दायित्व समाप्त हो जाता है।

ज़मानत से परिमित जोखिम वाली कम्पनियाँ—ये वे हैं जिनके सदस्यों की जोखिम उतने तक ही परिमित है जितने की ज़मानत उनमें से प्रत्येक ने ली है। हो सकता है कि इन सदस्यों ने कुछ हिस्से भी लिये हों और उनके ऊपर कुछ और रक़म तक देने की जिम्मेदारी ले रक्खी हो। बस, इनकी ज़िम्मेदारी उस रक़म तक देने की होती

है। परोपकार इत्यादि के लिये जो संगठन स्थापित किये जाते हैं वे ही आजकल इस रूप के होते हैं।

अपरिमित जोखिम वाली कम्पनियाँ—ये वह हैं जिनके सदस्यों की जोखिम साझियों की जोखिम की तरह अपरिमित रहती है। ऐसी कम्पनियाँ पहिले बनती थीं, किन्तु आजकल ये नहीं पाई जाती हैं।

(३) कम्पनियों की संस्थापना

कम्पनियो की सस्थापना भिन्न तरीक़ों से हो सकती है :—

१. सम्राट के अधिकार-पत्र द्वारा (Royal Charter)
२. सम्राट के साधारण पत्र द्वारा (Letters Patent)
३. पार्लियामेंट के किसी विधान के द्वारा (An Act of Parliament)
४. सकाउन्सिल गवर्नर जनरल द्वारा (Governor-General in Council)
५. कम्पनी विधान के द्वारा (Company Act)

अब कम्पनियों की संस्थापना सम्राट के अधिकार-पत्र अथवा साधारण पत्र के द्वारा नहीं होती है। जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में कम्पनियो के विकास के सम्बन्ध में बताया जा चुका है सन् १३६० में मर्चेण्ट्स आफ एडवेञ्चर्स कम्पनी और सन् १६०० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी इसी प्रकार खुली थी। बैंक आफ इङ्गलैण्ड की सस्थापना सन् १६६४ में पार्लियामेन्ट के एक विधान के द्वारा हुई थी। ब्रिटिश साम्राज्य की रेलवे कम्पनियाँ भी पार्लियामेण्ट के विशेष विधानों के द्वारा ही बनी थीं। भारत के प्रेसीडेन्सी बैङ्क सकाउन्सिल गवर्नर जनरल द्वारा स्थापित हुए थे। किन्तु अब वह समय नहीं है। भारतवर्ष में व्यवस्थापक सभायें और भारतीय कम्पनी विधान हैं। अतः, अब यहाँ कम्पनियाँ या तो भारतीय व्यवस्थापक सभाओं के

विशेष विधानो के द्वारा स्थापित होती हैं या भारतीय कम्पनी विधान के अन्तर्गत होती हैं। भारतीय व्यवस्थापक सभाओं के द्वारा जो कम्पनियाँ स्थापित हुई हैं उनके उदाहरण के लिये इम्पीरियल बैङ्क आफ़ इण्डिया और रिज़र्व बैङ्क आफ़ इण्डिया हैं। इनके लिये उनमें विशेष बिल पेश किये गये थे। अब रह गई भारतीय कम्पनी विधान के द्वारा कम्पनियों की स्थापना सो वह निम्न तरीके से होती है :—

भारतीय कम्पनी विधान क अनुसार कम्पनियो की स्थापना—निजू कम्पनियों की स्थापना के लिये कम से कम दो और सार्वजनिक कम्पनियों की स्थापना के लिये कम से कम सात व्यक्तियो की आवश्यकता पड़ती है। ये लोग कम्पनी के संस्थापक (company promotors) कहे जाते हैं।

सर्व प्रथम ये स्वयम् अथवा कम्पनी विधान के किसी विशेषज्ञ के द्वारा कम्पनी का योजना-पत्र (Memorandum of Association) और उनके नियम (Articles of Association) तैयार करते हैं।

कम्पनी का योजना पत्र—यह कम्पनी का सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण पत्र होता है। अतः, इसको बहुत होशियारी से तैयार करना चाहिये। इसके उद्देश्य का अनुच्छेद (Clause) विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है क्योंकि कम्पनी के काम उन्ही की पूर्ति के लिये किये जा सकते हैं। अतः, यदि कोई काम ऐसा है जो कम्पनी के योजना-पत्र में दिये हुए उद्देश्यों की पूर्ति के सम्बन्ध में नहीं है तो वह नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक हो यह अनुच्छेद ऐसा होना चाहिये कि जो उन सब कामों को अपने अन्तर्गत कर ले जिनके कभी भी करने की सम्भावना कम्पनी के लिये हो सकती है। वैसे तो भिन्न-भिन्न प्रकार की कम्पनियो के योजना-पत्र भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु अधिकतर उनमे निम्न प्रकार के अनुच्छेद होते हैं :—

(१) कम्पनी का नाम । यदि वह परिमित जोखिम वाली है तो उसके अन्त में लिमिटेड शब्द होना चाहिये।

(२) उस प्रान्त का नाम जिसमें कम्पनी का सबसे बड़ा कार्यालय (Registered office) होगा।

(३) कम्पनी के उद्देश्य।

(४) यदि कम्पनी के सदस्यों का दायित्व (liability) परिमित है तो यह लिखा होना चाहिये।

(५) पूँजी की रक़म, हिस्सों की तादाद और प्रत्येक हिस्से की रक़म।

इसके पश्चात् यह लिखा होता है कि हम लोग जिनके नाम और पते नीचे दिये गये हैं इस योजना-पत्र के अनुसार अपने को एक कम्पनी के रूप में संगठित करना चाहते हैं और इस बात का प्रण करते हैं कि नीचे हमारे नाम के आगे प्रथक-प्रथक जितने हिस्से दिये गये हैं उतने हिस्से हम अवश्य लेंगे।

अंत में सब संस्थापकों के नाम, पते, हिस्सों की तादाद जो उनमें से प्रत्येक लेगा, उनके हस्ताक्षर और साक्षी के हस्ताक्षर और योजना-पत्र के तैयार करने की तारीख़ होती है। यह योजना-पत्र छपा हुआ होता है।

कम्पनी के नियम—यदि कम्पनी के नियम न बनाये जायें तो भारतीय कम्पनी विधान के नक्शे अ (Table A) में दिये गये नियमो से कम्पनी का प्रबन्ध चलाया जा सकता है। किन्तु अधिकतर कुछ न कुछ नियम अवश्य बना लिये जाते हैं। हाँ, यदि कोई विषय रह जाता है और अधिकतर कुछ न कुछ विषय रह ही जाते हैं तो उनके स्थान पर नक्शे अ (Table A) में दिये हुए नियम काम में आते हैं। वैसे तो कोई भी नियम बनाये जा सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसे नियम हैं जो विधान में दिये गये नियमों के विरुद्ध नहीं होने चाहियें।

कम्पनी के नियमों के अलग-अलग शीर्षक (Headings) होते हैं और वे अनुच्छेदों में बँटे होते हैं । अन्त में उन्हीं संस्थापकों के हस्ताक्षर होते हैं जिनके हस्ताक्षर योजना-पत्र पर होते हैं । ये नियम भी छपे होने चाहियें ।

जब कम्पनी के योजना-पत्र और नियम तैयार हो जाते हैं और उन पर एक निश्चित रक़म के स्टाम्प लग जाते हैं तो वह एक निश्चित शुल्क के साथ जो पूँजी की रक़म पर निर्भर होता है और भारतीय कम्पनी विधान के अन्त में नक्शा ब (Table B) में दिया है उस प्रान्त के रजिस्ट्रार के पास भेज दिये जाते हैं जिस प्रान्त में कम्पनी की रजिस्ट्री करनी है ।

कम्पनी का रजिस्ट्रार उपरोक्त योजना-पत्र और नियम-पत्र तथा शुल्क पाने के बाद और यह देख लेने के बाद कि उनमें कोई अवैधानिक बात नहीं है कम्पनी के संगठन का एक प्रमाण-पत्र (certificate of Incorporation of the company) भेज देता है । बस अब कम्पनी का व्यक्तित्व सस्थापित हो जाता है और वह लोगों के साथ लिखा-पढ़ी (agreement) इत्यादि कर सकती है । एक निजू कम्पनी तो अपने संगठन का प्रमाण-पत्र पा जाने पर व्यापार इत्यादि भी प्रारम्भ कर सकती है । रह गई सार्वजनिक कम्पनी । उसको तो उसके सगठन के प्रमाण-पत्र को पाने के लिये निम्न अन्य पत्र (Documents) और भेजने पड़ते हैं तथा इनको भेजने के और अपने संगठन का प्रमाण-पत्र पाने के बाद भी व्यापार आदि प्रारम्भ करने का अधिकार नहीं रहता है । उसके लिये उसको कुछ और बातें करनी पड़ती हैं और प्रमाण-पत्र भेजने पड़ते हैं ।

एक सार्वजनिक कम्पनी को अपने संगठन का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिये अपने योजना-पत्र नियमों और शुल्क के भेजने के अतिरिक्त निम्न अन्य पत्र भी रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते हैं :—

(१) उन व्यक्तियों की सूची जिन्होने कम्पनी का संचालक बनना स्वीकार किया है।

(२) उपरोक्त व्यक्तियों का हस्ताक्षर किया हुआ स्वीकृति-पत्र।

(३) यदि उपरोक्त व्यक्तियों ने कम्पनी के योजना-पत्र पर हस्ताक्षर करके अपने इस पद के लिये आवश्यक संख्या में हिस्से लेने का प्रण किया है तो इतने हिस्से लेने और उनका रुपया दे देने का लिखा हुआ प्रत्येक का प्रमाण-पत्र भी भेजना चाहिये। यह प्रमाण-पत्र उपरोक्त प्रमाण-पत्र सं० २ में भी सम्मिलित किया जा सकता है।

(४) कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय का पूरा पता जिससे पत्र इत्यादि आ जा सकें।

(५) कम्पनी का विवरण-पत्र (Prospectus) अथवा उसके स्थान पर उसका एवजी पत्र (Statement in Lieu of Prospectus)—यह विवरण-पत्र योजना-पत्र इत्यादि के साथ न भेजा जा कर बाद में भी भेजा जा सकता है, किन्तु इसके विषय में यह नियम है कि जब तक यह रजिस्ट्रार के पास न भेज दिया जावे यह सर्व-साधारण में हिस्से देने के विचार से न बाँटा जावेगा।

(६) किसी ऐसे एडवोकेट, इत्यादि का जिसको हाईकोर्ट के सामने प्रविष्ट होने का अधिकार प्राप्त है, अथवा किसी ऐसे व्यक्ति का जिसको कम्पनी के नियमानुसार संचालक (Director) प्रबन्धक (Manager) अथवा मंत्री (Secretary) नियुक्त किया गया है लिखा हुआ एक ऐसा प्रमाण-पत्र जिसमें उपरोक्त कामों के पूरा हो जाने की सूचना हो।

उपरोक्त पत्रों के भेज देने पर एक सार्वजनिक कम्पनी को भी अपने संगठित होने का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। किन्तु यह कम्पनी अभी व्यापार इत्यादि नहीं प्रारम्भ कर सकती है। इसके लिये इसको पहिले पर्याप्त पूँजी और फिर व्यापार आरम्भ करने का प्रमाण-

पत्र प्राप्त कर लेना आवश्यक है। पूँजी प्राप्त करने के लिये सार्वजनिक कम्पनियाँ अधिकतर अपने विवरण-पत्र (Prospectus) निकालती हैं।

प्रत्येक निजू कम्पनी को भी चौथे और छठे तथा ऐसी निजू कम्पनी को जिसमें संचालक होते हैं पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे और छठे प्रमाण-पत्र रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते हैं। यदि एक निजू कम्पनी अपने को एक सार्वजनिक कम्पनी मे परिवर्तित करना चाहती है तो उसको भी एक प्रस्ताव पास करके उपरोक्त प्रमाण-पत्र और विवरण-पत्र रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते हैं।

विवरण-पत्र (Prospectus) किसी ऐसे सार्वजनिक निमंत्रण-पत्र को कहते हैं जो किसी कम्पनी के हिस्से अथवा ऋण-पत्र लेने के लिये सर्वसाधारण में वितरण किया जाता है। इसको भी छपाना पड़ता है। इसमें नीचे लिखी बातें दी रहती हैं :—

(१) योजना-पत्र की बातें, उसमें हस्ताक्षर करने वालों के नाम, विवरण और पते, उनके लिये हुए हिस्सों की संख्या, संस्थापकों या प्रबन्धकों के हिस्सों (Deferred Shares) की सख्या और कम्पनी की सम्पत्ति तथा उसके लाभ में हिस्सेदारों का क्या और कहाँ तक लाभ है।

(२) सचालक (Director) बनने के लिये कम से कम कितने हिस्सों के लेने का नियम है और संचालकों के परिश्रम के लिये उनको जो प्रतिफल (Remuneration) दिया जायगा उसके सम्बन्ध के क्या नियम हैं।

(३) संचालकों तथा प्रबन्धकों के नाम, विवरण तथा पते।

(४) कम से कम कितने हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र पाने पर संचालक हिस्सो की बॅटनी करेंगे तथा वह रुपया जो प्रार्थना-पत्र देने और हिस्सों की बॅटनी होने पर अथवा उसके बाद हर क़िस्त में प्रति

हिस्सों के हिसाब से देने होंगे, यदि किस्तें होंगी तो प्रत्येक किस्त कम से कम कितने दिनों बाद मांगी जायगी, और यदि ये हिस्से दूसरी, तीसरी अथवा और किसी बार बेचे जा रहे हैं तो दो वर्ष के भीतर अन्य कितने हिस्से और किन-किन शर्तों पर बेचे गये थे, इत्यादि ।

(५) उन हिस्सों और ऋण-पत्रों की संख्या जो पिछले दो वर्षों में नक़दी न लेकर कोई अन्य चीज़ लेकर अथवा किसी अन्य कारण से किसी को दिये गये हों और वह चीज़ मिली और वह शर्तें पूरी हुई कि नहीं जिनके लिये ऐसे हिस्से दिये गये थे ।

(६) उन सम्पत्तियों के बेचने वालों के नाम तथा पते जिनसे कम्पनी ने कोई सम्पत्ति ली हो अथवा लेने वाली हो और जिनका मूल्य कम्पनी के रुपयों से दिया जा चुका हो अथवा दिया जाने को हो, इत्यादि ।

(७) वह रुपया जो उपरोक्त के लिये नक़द, हिस्सों अथवा ऋण-पत्रों में दिया गया हो अथवा दिया जाने वाला हो, अथवा यदि कोई रुपया पगड़ी के लिये किसी को दिया गया हो अथवा दिया जाने वाला हो ।

(८) वह रुपया जो हिस्सों के बेचने वालों को कमीशन, इत्यादि की तरह दो वर्षों के अन्दर दिया गया हो अथवा भविष्य में दिया जाने वाला हो ।

(९) प्रारम्भिक व्यय (Preliminary Expenses) का अन्दाज़ ।

(१०) संस्थापना के लिये यदि किसी को कोई रुपया (Promotion Money) दिया गया हो, अथवा दिया जाने वाला हो ।

(११) कम्पनी के हर महत्वपूर्ण इक़रारनामे (document) की तारीख़ उसके लिखने वालों के नाम और वह स्थान और समय

जब उनकी प्रतिलिपि देखी जा सकती है। इसमें यह शर्त है कि ऐसे इक़रारनामे वे ही होने चाहिये जो पिछले दो वर्षों के बीच में लिखे गये हों और जिनका सम्बन्ध कम्पनी के साधारण, व्यापार इत्यादि से न हो।

(१२) कम्पनी के हिसाब निरीक्षकों के नाम और पते।

(१३) संचालकों का कम्पनी के संगठित होने से स्वयम् का अथवा उनके फर्म इत्यादि का अथवा उन लोगो का जिनसे उनमें से प्रत्येक ने कम्पनी के हिस्से ख़रीदने के लिये रुपये प्राप्त किये हैं क्या लाभ है।

(१४) यदि हिस्से कई प्रकार के हैं, तो हर प्रकार के हिस्सेदारों के भिन्न-भिन्न क्या अधिकार होंगे तथा वे लोग अपने मत किस हिसाब से देंगे। कहना न होगा कि विवरण-पत्र छपाने वालों के ऊपर इस बात का दायित्व रहता है कि उसमें लिखी हुई कोई बात झूठी न हो।

विवरण-पत्र का एवज़ी-पत्र (Statement in Lieu of Prospectus)। जो सार्वजनिक कम्पनी अपना विवरण-पत्र नहीं निकालती है उसे काम शुरू करने के पहिले उसका एवजी-पत्र (Statement in Lieu of Prospectus) जिसका नक्शा कम्पनी विधान के अन्त में दिया है भर कर भेजना पड़ता है।

हिस्सों का बीमा करना (Underwriting of Shares)— जिन हिस्सों को बेचने के लिये उपरोक्त विवरण-पत्रिका निकाली जाती है उनके बिकने की जमानत भी कोई ले सकता है। इसके यह अर्थ हैं कि यदि सर्वसाधारण वह सब हिस्से न लेंगे तो वह व्यक्ति शेष सब हिस्से ले लेगा। ऐसे व्यक्ति को हिस्सों का बीमा वाला (Share underwriter कहते हैं और उसको इसके लिये कुछ निश्चित कमीशन भी मिलता है।

हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र और उसके साथ के रुपये आना

तथा उनकी बॅटनी करना—विवरण-पत्र निकल जाने के बाद हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र और उनके साथ के रुपये (Application money) आने लगते हैं। कम्पनी विधान के अनुसार ये रुपये प्रति हिस्सा ५ प्रतिशत से कम न होने चाहियें। इन रुपयों को बैङ्क में जमा रखना चाहिये। अब, या तो विवरण-पत्र में वह न्यूनतम रक़म (Minimum Subscription) दी होती है जितनो के हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र अवश्य आ जाने चाहिये, अन्यथा हिस्सो की बॅटनी नहीं होगी, या यदि कोई ऐसी रकम नहीं दी है तो जितने के हिस्से निकाले गये हैं उन सब के लिये प्रार्थना-पत्र अवश्य आने चाहियें। भारतीय विधान में यह लिखा है कि ये सब प्रार्थना-पत्र और उनके साथ के रुपये विवरण-पत्र के निकलने की तारीख़ से अधिक से अधिक १०८ दिन के अन्दर आ जाने चाहियें। यदि ऐसा नहीं होता है तो कम्पनी भङ्ग हो जाती है और संस्थापकों को विवरण-पत्र की तारीख से १६० दिन के अन्दर प्रार्थना-पत्रो के साथ आई हुई समस्त रकम वापस कर देनी पड़ती है।

१०८ दिन बीत जाने अथवा यदि संस्थापकों ने अपने विवरण-पत्र में इस अवधि से कोई कम अवधि दी है तो उसके बीत जाने पर संस्थापक वर्ग अथवा यों कहिये कि सञ्चालक हिस्सो की बॅटनी करते हैं। इसके लिये उनकी एक सभा होती है। अब, यदि संचालको को जितने हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र आये हैं उन सब हिस्सों की बॅटनी करनी हैं तो वे सब प्रार्थना करने वालो के पास एक-एक बॅटनी का पत्र (Allotment letter) भेज देते हैं, और यदि कम हिस्सों की बॅटनी करनी है तो यह निश्चित करना पड़ता है कि किन-किन प्रार्थना-पत्रों पर पूरे हिस्सो की बॅटनी की जाय, किन-किन पर कुछ कम हिस्सों की और किन-किन को बिल्कुल अस्वीकृत कर दिया जाय। जिन पर पूरे हिस्सों अथवा कम हिस्सों की बॅटनी करनी है उनके भेजने वालों को बॅटनी के पत्र भेजे जाते हैं और जिन पर कोई बॅटनी नहीं करनी है उनके भेजने

वालों के पास अस्वीकृति के पत्र भेजे जाते हैं और उनके रुपये वापस कर दिये जाते हैं। जिनको बँटनी कर दी गई है उनके बँटनी पत्रों पर यह लिख दिया जाता है कि उनको बँटनी के रुपये कब भेजने हैं। यदि किसी को उतने हिस्से नहीं दिये गये हैं जितनों के लिये उसने प्रार्थना-पत्र भेजे थे तो उसके शेष रुपये यदि उतने ही हैं अथवा उतने से कम हैं जितनों को बँटनी पर मँगाना है तो वे रुपये रोक लिये जाते हैं, और यदि अधिक हैं तो जितने रुपये अधिक हैं वे वापस कर दिये जाते हैं।

बँटनी की सूचना (Return of Allotment)—हिस्सों के बँट जाने के एक माह के अन्दर इस बँटनी की सूचना जिसमें बँटनी के हिस्सों की संख्या, उनकी कुल रक़म, हिस्सेदारों के नाम और पते, कितना रुपया वसूल हुआ है, कितना प्रत्येक हिस्सेदार को प्रति हिस्सा देना है इत्यादि दिया रहता है रजिस्ट्रार के पास भेजनी पड़ती है।

निम्नतम पूँजी (Minimum Subscription) का निर्धारित करना—ऊपर कहा जा चुका है कि जब विवरण-पत्र में वह न्यूनतम रक़म दी होती है जितनों के हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र अवश्य आ जाने चाहियें अन्यथा हिस्सों की बँटनी नहीं होगी तब उतने के हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र आने पर ही उनकी बँटनी होती है। अतः, प्रश्न यह है कि यह न्यूनतम रक़म कैसे निर्धारित होती है। इसके निर्धारित करने में निम्न आवश्यकताओं का ध्यान रक्खा जाता है :—

(अ) हिस्सों के रुपयों में से कितने उस सम्पत्ति की कीमत के लिये दिये जावेंगे जो या तो खरीदी जाने वाली है या ख़रीदी जा चुकी है ;

(ब) प्रारम्भिक खर्चों के लिये और हिस्सों को बेचने अथवा

स्वयम् लेने का उत्तरदायित्व लेने के लिये जो कमीशन, इत्यादि के लिये रुपये दिये जाने हैं ;

(स) उपरोक्त के लिये यदि कुछ रुपये उधार लिये गये हैं तो उनको वापस करने के लिये जो रुपये चाहियें ;

(द) कार्यशील पूँजी के लिये जो रुपये चाहियें ।

व्यापार प्रारम्भ करने के लिये प्रमाण-पत्र (Certificate for Commencement of the business)—जब रजिस्ट्रार के पास किसी कम्पनी के हिस्सों के बँटनी की सूचना पहुँच जाती है तब वह उसको व्यापार प्रारम्भ करने के लिये प्रमाण-पत्र दे देता है। एक सार्वजनिक कम्पनी इस प्रमाण-पत्र को प्राप्त किये बिना व्यापार नहीं आरम्भ कर सकती है।

(४) कम्पनियों की पूँजी

कम्पनियो की पूँजी कई प्रकार की होती है, जैसे अधिकारित पूँजी (Registered or Authorised or Nominal Capital); ज़ारी की हुई पूँजी (Issued Capital); बिना ज़ारी की हुई पूँजी (Unissued Capital); खरीदी हुई पूँजी (Subscribed Capital); माँगी हुई पूँजी (Called up Capital); बिना माँगी हुई पूँजी (Uncalled up Capital) अथवा सुरक्षित पूँजी (Reserved Capital); प्राप्त पूँजी (Paid up Capital)। यहाँ पर हम इनमें से प्रत्येक के विषय में समझने का प्रयत्न करेंगे।

अधिकारित पूँजी—यह वह पूँजी है जिससे किसी कम्पनी की रजिस्ट्री होती है। इसी पूँजी पर कम्पनी को रजिस्ट्री का शुल्क देना पड़ता है। इस पूँजी से अधिक पूँजी को प्राप्त करने का किसी कम्पनी को अधिकार नहीं है। इसको बढ़ाने के लिये कम्पनी के हिस्सेदारो की मीटिङ्ग में प्रस्ताव पास करके एक योग्य अदालत की

स्वीकृति लेकर रजिस्ट्रार को सूचित करना पड़ता है। अतः, इसमें बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। इससे जहाँ तक हो सके कम्पनी के योजना-पत्र में ही यथेष्ट पूँजी दिखला देनी चाहिये किन्तु यह पूँजी बहुत अधिक नहीं होनी चाहिये, अन्यथा प्रारम्भ में ही एक बहुत बड़ी रक़म शुल्क के रूप में देनी पड़ती है। अधिकारित पूँजी पूरी रक़मों के एक, पाँच, दस, बीस, पचीस, पचास, सौ, पाँच सौ, एक हजार, इत्यादि रुपयों के कुछ हिस्सों में बँटी होती है।

जारी की हुई पूँजी—कभी-कभी पूरी अधिकारित पूँजी के सम्पूर्ण हिस्सों को खरीदने के लिये सर्व-साधारण को आमन्त्रित नहीं किया जाता। वरन् कुछ ही हिस्से उनको पेश किये जाते हैं। अतः, इन हिस्सों की रक़म ही जारी की हुई पूँजी कहलाती है।

बिना जारी की हुई पूँजी—अधिकारित पूँजी और ज़ारी की हुई पूँजी के शेष को बिना जारी की हुई पूँजी कह सकते हैं। इस पूँजी के हिस्से कम्पनी का कार्य बढ़ने पर और अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ने पर सर्वसाधारण के सामने पेश किये जाते हैं।

खरीदी हुई पूँजी—कुछ कम्पनियों के द्वारा पेश किये गए सब हिस्सों को सर्वसाधारण के लोग नहीं ख़रीदते हैं। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि यदि विवरण-पत्र में न्यूनतम पूँजी का उल्लेख नहीं है तब तो जब तक सभी पेश किये गये हिस्सों के लिये सर्व-साधारण के लोगों के प्रार्थना-पत्र नहीं आ जाते हिस्सों की बँटनी हो ही नहीं सकती और कम्पनी को भङ्ग कर देना ही पड़ेगा। किन्तु यदि विवरण-पत्र में न्यूनतम पूँजी का उल्लेख है तो यदि उस न्यूनतम पूँजी के हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र आ जाते हैं तो हिस्सों की बँटनी होती है और कम्पनी का कारबार प्रारम्भ हो सकता है। हाँ, यदि इस न्यूनतम पूँजी के हिस्सों के लिये भी प्रार्थना-पत्र नहीं आते तो उनकी बँटनी नहीं होती और कम्पनी भङ्ग हो जाती है। अब जितने हिस्सों

के लिये प्रार्थना-पत्र आते हैं और यदि जारी की हुई पूँजी के जितने हिस्से हैं उनसे अधिक के लिये प्रार्थना-पत्र आते हैं, तो जितने हिस्सों को बँटनी होती है उनको कुल रक़म को ख़रीदी हुई पूँजी कहते हैं।

माँगी हुई पूँजी—जितने हिस्सों की बँटनी होती है उनकी पूरी रक़म प्रायः नहीं मँगाई जाती, अथवा धीरे-धीरे क़िस्तों में मँगाई जाती है। अतः, समस्त हिस्सों पर जितनी रक़म मँगाई जा चुकी है वह माँगी हुई पूँजी कही जाती है।

बिना माँगी हुई पूँजी अथवा सुरक्षित पूँजी—जितनी रक़म माँगी नहीं जाती है वह जब तक माँगी न जाय बिना माँगी हुई पूँजी अथवा सुरक्षित पूँजी कहलाती है। इसको संचालकवर्ग जब चाहें तब अथवा कम्पनी की इतिक्रिया होने पर उसका इतिकर्ता मँगा सकता है। हिस्सों पर की जो रक़म माँगी नहीं गई है उस वक़्त तक का जब भी वह माँगी जाय देने का उत्तरदायित्व प्रत्येक हिस्सेदार पर रहता है। इसको हिस्सेदारों का सुरक्षित दायित्व (Reserved liability of the shareholders) कहते हैं।

प्राप्त पूँजी—हिस्सों पर जो रक़म माँगी जाती है उसको देने का कुछ समय नियत रहता है। अतः, उस समय के बीच में अथवा जब तक सब हिस्सेदार माँगी हुई पूरी रक़म नहीं दे देते हैं तब तक माँगी हुई पूँजी और प्राप्त पूँजी में अन्तर रह सकता है, अन्यथा माँगी हुई पूँजी और प्राप्त पूँजी एक ही रहेगी। अतः, प्राप्त पूँजी वह है जो कम्पनी के हिस्सेदारों से कम्पनी को प्राप्त हो चुकी है। वास्तव में यही पूँजी सबसे महत्वपूर्ण है। कम्पनी विधान के अनुसार किसी कम्पनी को जहाँ-जहाँ अपनी पूँजी का संकेत करना है वहाँ-वहाँ इस पूँजी को अवश्य दिखलाना पड़ता है।

हिस्सों की ज़ब्ती (Forfeiture of Shares)—माँगी हुई पूँजी और प्राप्त पूँजी में जो अन्तर रहता है उसको माँगी हुई

पूँजी का अप्राप्त हिस्सा (Calls in arrears) कहते हैं। किन्तु इसकी एक अवधि रहती है। यदि उस अवधि तक माँग की रक़म के पूरे रुपये नही आ जाते तो जिन हिस्सों पर यह माँग के रुपये बाकी हैं उन्हें संचालकवर्ग जब्त कर सकते हैं। हाँ, यह ज़ब्त किये हुये हिस्से दूसरों को दिये जा सकते हैं और यदि संचालकवर्ग चाहे तो इन पर जितनी रक़म वसूल हो चुकी है उतनी रक़म कम लेकर भी वे इन्हें दूसरों को दे सकते हैं।

(५) हिस्से और ऋण-पत्र

ऊपर हिस्सों और ऋण-पत्रों का नाम कई बार आ चुका है। अतः, हमको यहाँ पर उनके विषय की भी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये।

हिस्सा—जैसा कि हम जानते हैं किसी कम्पनी की अधिकारित पूँजी के भाग की निश्चित रक़म की वह एकाई है जिसको एक व्यक्ति ले सकता है। इसके कई भेद हैं; किन्तु उनमें से मुख्य निम्नाङ्कित हैं :—

(१) सपक्ष हिस्से (Preference Shares)—ये वे हिस्से हैं जिन पर एक निश्चित दर से ही मुनाफा दिया जा सकता है। यदि कम्पनी को लाभ हुआ है और वह लाभ हिस्सों पर बाँटना है, तो सबसे पहिले वह सपक्ष हिस्सों पर ही एक निश्चित दर से बाँटा जायगा। कभी-कभी तो कम्पनी की इतिक्रिया होने पर सपक्ष हिस्सों के रुपये भी अन्य हिस्सों के रुपयों के पहिले वापस किये जाते हैं अब ये सपक्ष हिस्से भी कई तरह के होते हैं :—

(अ) वर्धमान सपक्ष हिस्से (Cumulative Preference Shares)—यदि किसी वर्ष कम्पनी को यथेष्ट लाभ नहीं होता है, और वह अपने सपक्ष हिस्सों पर लाभ के हिस्से नहीं दे सकती है, तो जितना प्रतिशत लाभ उन पर बँटना चाहिये वह एकत्रित होता जाता है और जब भी लाभ बँटता है तो वह सब प्रतिशत एकत्रित लाभ

पहिले उन सपक्ष हिस्सों पर बँट जाता है तब दूसरे प्रकार के हिस्सों पर बाँटा जा सकता है।

(ब) साधारण सपक्ष हिस्से (Noncumulative Preference Shares)—यदि किसी वर्ष कम्पनी को यथेष्ट लाभ नहीं होता है और हिस्सो पर लाभ बिल्कुल नहीं बँटता है तो उस वर्ष का इन हिस्सों का लाभ भी उपरोक्त की तरह एकत्रित नहीं होता रहता है। वरन् जिस वर्ष लाभ बँटता है उस पर पहिले इन पर बँट कर तब किसी दूसरे प्रकार के हिस्सों पर बँट सकता है।

(स) शराकत के सपक्ष हिस्से (Participating Preference shares)—ये वे हिस्से हैं जिन पर एक निश्चित प्रतिशत लाभ तो मिलता ही है, किन्तु यदि कम्पनी को बहुत लाभ होता है तो पहिले अन्य प्रकार के हिस्सों पर भी एक निश्चित प्रतिशत (जो सपक्ष हिस्सों के निश्चित प्रतिशत से अधिक होता है) लाभ दे कर फिर इन पर कुछ और प्रतिशत लाभ अन्य हिस्सों के साथ-साथ बाँटा जाता है।

(२) साधारण हिस्से (Ordinary Shares)—ये वे हिस्से होते हैं जिन पर लाभ सपक्ष हिस्सों पर लाभ बाँटने के बाद बाँटा जाता है। हाँ, यदि किसी कम्पनी में सपक्ष हिस्से नहीं होते तो उसमें पहिले इन्हीं पर लाभ बाँटा जाता है। अधिकतर कम्पनियों में केवल साधारण हिस्से ही होते हैं। अतः उनमें जो भी लाभ बँटता है वह इन्हीं पर बँटता है। किसी कम्पनी में यदि संस्थापकों के भी हिस्से (Founders' or Deferred Shares) होते हैं तो ये साधारण हिस्से शराकत के साधारण हिस्से (Participating Ordinary Shares) भी हो सकते हैं।

शराकत के साधारण हिस्से (Participating Ordinary Shares)—ये वे हैं जिन पर पहिले तो एक निश्चित प्रतिशत

लाभ बँट जाता है और फिर संस्थापकों के हिस्सों पर भी एक निश्चित प्रतिशत (जो इन पर के प्रतिशत से अधिक होता है) लाभ बँट जाने पर उन पर संस्थापकों के हिस्सों के साथ-साथ कुछ और लाभ बँटता है।

(३) संस्थापकों के हिस्से (Founders' or Deferred Shares)—ये वे हिस्से होते हैं जिनको अधिकतर संस्थापक ही लेते हैं और जिन पर लाभ अन्य सब प्रकार के हिस्सों पर उनके निश्चित प्रतिशत लाभ बँट जाने पर ही बँटता है। यदि किसी कम्पनी को बहुत अधिक लाभ होता है तो इन पर बहुत ही अधिक प्रतिशत लाभ बँटता है। अत, ऐसी अवस्था में इनकी बाज़ारू कीमत भी बहुत बढ़ जाती है।

सर्वसाधारण को कौन से हिस्से लेने चाहियें—वास्तव में कम्पनियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के हिस्से इसीलिये निकालती हैं कि उनमें से प्रत्येक को सर्व-साधारण के लोग अपनी रुचि के अनुसार ले लें। अतः, एक सावधान व्यक्ति तो सपक्ष हिस्से लेगा, क्योंकि उसको कम्पनी में थोड़ा भी लाभ होने पर इन पर लाभ मिलने की सम्भावना रहती है। सच पूछा जाय तो इन हिस्सों पर ब्याज की तरह ही लाभ रहता है। फिर यदि कम्पनी भङ्ग होती है तो भी सपक्ष हिस्सों का ही रुपया सर्व-प्रथम मिलता है। हाँ, इन पर बहुत अधिक प्रतिशत लाभ नहीं मिलता। इसके विपरीत एक अधिक लाभ की इच्छा करने वाला व्यक्ति (Speculator) संस्थापकों के हिस्से लेगा क्योंकि इन पर यदि लाभ बँटता है तो एक बहुत ऊँची प्रतिशत के हिसाब से बँटता है, अथवा कुछ भी नहीं मिलता है। और साधारण व्यक्ति साधारण हिस्से लेते हैं।

ऋण-पत्र—जिस प्रकार कम्पनियाँ बहुत से व्यक्तियों से पूँजी प्राप्त करती हैं उसी प्रकार वे बहुत से व्यक्तियों से ऋण भी प्राप्त

करती हैं। यदि कोई कम्पनी ऐसा निश्चय करती है तो वह जितना ऋण लेना चाहती है उसके एक निश्चित रुपयों के बहुत से हिस्से कर लेती है। बस ये हिस्से ऋण-पत्र कहलाते हैं। ऋण-पत्र भी उसी तरह से बेचे जाते हैं जैसे हिस्से बेचे जाते हैं। इनके लिये भी प्रार्थना-पत्र और उनके साथ के रुपये आते हैं, इनकी भी बँटनी होती है, और इनकी शेष रक़म भी क़िस्त से प्राप्त की जा सकती है तथा प्रत्येक क़िस्त की अलग-अलग माँग की जाती है। हाँ, ऋण-पत्र लेने वालों के अधिकार और दायित्व हिस्सेदारों के अधिकार और दायित्व से भिन्न होते हैं :—

(१) जब कि हिस्सेदार कम्पनी के मालिक होते हैं ऋण-पत्र लेने वाले केवल उसके महाजन (Creditors) ही होते हैं।

(२) उपरोक्त के कारण जब कि हिस्सेदारों को कम्पनी के प्रबन्ध इत्यादि करने और उसके सम्बन्ध में अपना मत देने का अधिकार होता है ऋण-पत्र वालों को ऐसा कोई अधिकार नहीं होता है।

(३) जब कि हिस्सेदार घाटे, मुनाफे के जिम्मेदार होते हैं ऋण-पत्र वालों पर इसकी कोई जिम्मेवारी नहीं होती है। उनको तो एक निश्चित प्रतिशत व्याज मिलता रहता है चाहे कम्पनी को घाटा हो अथवा लाभ हो। कम्पनी की इतिक्रिया होने पर भी पहिले हिस्सेदारों को नुकसान लगने की सम्भावना है और फिर यदि उन सबसे जितना रुपया मिलता है उससे कम्पनी का सब ऋण नहीं चुक पाता है तभी ऋण-पत्र वालों का नुकसान होता है।

ऋण-पत्र के भेद—ऋण-पत्र के भेद कई प्रकार से किये जा सकते हैं, (१) उनके रुपयों की वापसी होगी अथवा नहीं, इसके अनुसार, (२) उनकी वापसी के लिये कोई ज़मानत है अथवा नहीं, इसके अनुसार और (३) उनके हस्तान्तरित करने की शर्तों के अनुसार।

(१) वापसी होगी अथवा नहीं इसके अनुसार ऋण-पत्रों के भेद :—

(अ) वापसी होने वाले ऋण-पत्र (Redeemable Debentures)—ये दो प्रकार के होते हैं एक तो वे जिनकी वापसी एक निश्चित अवधि के अन्दर होती है अर्थात् निश्चित अवधि वाले और दूसरे वे जिनकी वापसी कम्पनी की इच्छा पर निर्भर रहती है—जब कम्पनी चाहे उनकी वापसी कर दे। अर्थात् अनिश्चित अवधि वाले इस दूसरे प्रकार के ऋण-पत्र अधिकतर लाभ के अनुसार प्रति-वर्ष चिट्ठी डालकर (By lot) वापस किये जाते हैं।

(ब) वापिस न होने वाले ऋण-पत्र (Irredeemable Debentures)—ये वे ऋण-पत्र होते हैं जिनका वापसी कम्पनी के जीवन-काल में नहीं होती है। ऐसे ऋण-पत्रों की वापसी केवल कम्पनी की इतिक्रिया होने पर ही होती है। ये ऋण-पत्र आजकल बहुत कम प्रचलित हैं।

(२) जमानत है अथवा नहीं इसके अनुसार ऋण-पत्र के भेद :—

(अ) बन्धक-पत्र वाले ऋण-पत्र (Mortgage Debentures) ये वे ऋण-पत्र हैं जिनकी वापसी के लिये कम्पनी की किसी अचल सम्पति को रहन रख दिया जाता है। यदि कम्पनी की इतिक्रिया होती है तो इनका भुगतान उक्त सम्पत्ति को बेचकर कर दिया जाता है।

(ब) खुले ऋण-पत्र (Open Debentures)—ये वे ऋण-पत्र हैं जिनके भुगतान के लिये कोई विशेष सम्पत्ति नहीं रहती है। इनका भुगतान अन्य महाजनों के भुगतान की तरह होता है।

(३) उनके हस्तान्तरित करने की शर्तों के अनुसार ऋण-पत्रों के भेद :—

(अ) देखनहार ऋण-पत्र (Bearer Debentures)—इनको हस्तान्तरित करने के लिये कम्पनी के रजिस्टरों में हस्तान्तरित करने का लेखा कराना आवश्यक नहीं है। ये तो केवल इनके पृष्ठ भाग पर बेचान कर देने से ही हस्तान्तरित हो जाते हैं।

(ब) रजिस्ट्री शुदा ऋण-पत्र (Registered Debentures)—इनको हस्तान्तरित करने के लिये कम्पनी के रजिस्टरों में लेखा करवाना पड़ता है। अतः, ये केवल बेचान से हस्तान्तरित न हो कर एक प्रमाण-पत्र (Transfer form) भर कर हस्तान्तरित किये जाते हैं। यह प्रमाण-पत्र कम्पनी के पास भेज दिया जाता है और इसीके अनुसार कम्पनी के रजिस्टरों मे हस्तान्तरित होने का लेखा हो जाता है।

(६) कम्पनी और साझे में अन्तर

अब हम कम्पनी और साझे के अन्तर को भली-भाँति समझ सकते हैं। वे निम्नाङ्कित हैं :—

(१) जो लोग मिलकर कम्पनी का संगठन करते हैं उनका व्यक्तित्व कम्पनी ही मे विलीन हो जाता है और कम्पनी का स्वयम् का व्यक्तित्व निर्धारित हो जाता है। साझे में ऐसा नहीं है। इससे एक कम्पनी को जो चिरस्थाई उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त हो जाता है उसको हम लोग अच्छी तरह से देख चुके हैं। यह बात साझे के साथ नहीं है।

(२) कम्पनी के महाजनों (Creditors) की माँग उसकी सम्पत्ति तक ही पूरी की जा सकती है। उसके हिस्सेदारों को अपने हिस्सों के रुपयों के अलावा अपने पास से और कुछ नहीं देना पड़ता। इसके विपरीत साझे में उसके महाजनों को पूरी रक़म मिलती है। यदि साझे के पास पूरा रुपया नहीं है तो शेष रक़म साझियों की निजू सम्पत्ति से वसूल की जाती है।

(३) कम्पनी के हिस्सेदारों का अपना हिस्सा निजू कम्पनी में तो प्रतिबन्ध के अनुसार और सार्वजनिक कम्पनी में स्वतन्त्रतापूर्वक किसी को भी हस्तान्तरित करने का अधिकार है। इसके विपरीत साझे में ऐसी कोई बात नहीं है। उसमें कोई साझी अपना हिस्सा अन्य साझियों की सम्मति के बिना किसी को हस्तान्तरित कर ही नहीं सकता है।

(४) साझे में साझियों की सख्या व्यापार के साझे में बीस से अधिक और बैंकिंग के साझे में दस से अधिक नहीं हो सकती है। इसके विपरीत कम्पनी के हिस्सेदारों की सख्या कुछ भी हो सकती है। हाँ, निजू कम्पनी मे अधिक से अधिक सख्या केवल पचास ही हो सकती है।

(५) साझे में कम से कम एक साझी की जोखिम असीमित अवश्य होनी चाहिये। कम्पनी मे यह बात नही है; उसके तो सभी हिस्सेदारों की जोखिम परिमित हो सकती है।

(६) साझे में सभी साझियो को साझे का काम देखना पड़ता है—किन्तु कम्पनी में प्रत्येक हिस्सेदार को ऐसा नहीं करना पड़ता। उसमें संचालक चुने जाते हैं जो उसका काम देखते हैं। अवश्य ही यह संचालक हिस्सेदारो में से ही चुने जाते है किन्तु इनको इनके काम के लिये शुल्क मिलता है।

(७) साझे मे साझियों के अधिकार साझे के शर्तनामे में लिखे होते हैं। यदि साझे का कोई शर्तनामा नहीं होता तो प्रत्येक साझी के अधिकार बराबर माने जाते हैं। कम्पनी के हिस्सेदारों के अधिकार उसके नियमों के अनुसार होते हैं और साझियों के अधिकारों की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि कम्पनी के हिस्सेदार अपने अधिकारों को बहुत परिमित रख कर शेष सब अपने में से कुछ अर्थात् संचालक को दे देते हैं।

(८) कम्पनी के बनाने के लिये बहुत-सी वैधानिक बातों को पूरा करना पड़ता है। इसके विपरीत साझे के बनाने में ऐसी कोई बात नहीं करनी पड़ती। इधर सन् १६३२ से उसकी रजिस्ट्री करानी पड़ती है। वह भी कोई कठिन काम नहीं है।

(६) कम्पनी का हिसाब-किताब प्रति वर्ष हिसाब निरीक्षकों के द्वारा जाँचा जाता है और उसकी बैलन्स शीट, इत्यादि तैयार करनी पड़ती है किन्तु साझे के साथ ऐसी कोई बात नहीं है। उसकी बैलन्स शीट, इत्यादि बनाना अनिवार्य नहीं है।

(१०) साझे की पूँजी साझियों की सम्पत्ति से घटाई-बढ़ाई जा सकती है किन्तु कम्पनी की पूँजी के साथ ऐसी कोई बात नहीं हो सकती। उसकी एक अधिकारित पूँजी होती है। अधिक से अधिक वही पूँजी हो सकती है।

(११) कम्पनी का उत्तराधिकार चिरस्थाई होने के कारण वह बहुत दिनों तक चलती है किन्तु साझे का उत्तराधिकार चिरस्थाई नहीं होता। अतः, किसी साझी की मृत्यु इत्यादि से वह भङ्ग हो जाता है।

(७) कम्पनी के हिस्से खरीदने में सावधानी की आवश्यकता

जब नई कम्पनी स्थापित की जाती है और उसके हिस्से सर्व-साधारण में बेचे जाते हैं तो कभी-कभी ऐसे तरीकों का उपयोग किया जाता है जिससे हिस्से ख़रीदने वालों को अंत में हानि होती है।

सर्वसाधारण का रुपया मारने वाले लोगों की इसी गुप्त ध्येय से स्थापित कम्पनियों की चालों की कई तरह की बारीकियाँ होती हैं। इनके जाल में अच्छे-अच्छे चतुर लोग भी फँस जाते हैं। ये लोग नई खुलने वाली कम्पनी का नाम कोई व्यापक तथा बहुत बड़े अर्थ वाला रखते हैं तथा किसी विद्वान् या नेता या सम्भ्रान्त व्यक्ति जैसे मिस्टर जी० डी० बिडला, फूलचन्द धर्मचन्द गान्धी, आदि के नाम सञ्चालक

मण्डल में रख लेते हैं जिससे सर्वसाधारण इनको ओर आकर्षित होकर इनके हिस्से ले लेते हैं। किन्तु बाद में इन लोगों का उस कम्पनी से कोई विशेष सम्बन्ध न होने के कारण जब ये लोग उसके काम को नहीं देखते जिससे कम्पनी को हानि होती है और उसका काम बिगड़ता है तब इनको धोखा होता है। इसी तरह इन लोगों के छपे पत्र, नियम, विज्ञापन आदि एक बड़ी कम्पनी के विज्ञापन आदि की तरह अच्छे चिकने मोटे काग़ज़ पर होते हैं। इनके विवरण-पत्र में बड़ी ऊँची ऊँची आशायें छपी रहती हैं तथा ये लोग क़ानून से बचते हुये अपनी बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बड़े माहात्म्य के साथ छापते हैं जो व्यवहार में सरासर झूठी साबित होती हैं। अतः, नये व्यक्ति को किसी नई कम्पनी में हिस्से ख़रीदते समय बहुत सतर्क रहना चाहिये, तथा निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

सञ्चालकों के केवल नाम तथा उनकी उपाधियों ही पर निर्भर न रह कर उनके विषय में पूरी जानकारी ऐसे व्यक्तियों से लगा लेना चाहिये जो उनकी कम्पनी में शामिल न हो तथा उनके दलाल भी न हो। इस बात की भी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये कि उन लोगों ने सार्वजनिक कार्यों, राष्ट्रसेवा, देश-हित तथा सर्व-साधारण की स्वार्थ-रक्षा में अपने बीते जीवन में कितना भाग लिया है तथा उनकी व्यापारिक योग्यता तथा सगठन की क्षमता क्या है।

यदि नई कम्पनियों में शक हो तो पुरानी चालू कम्पनी ही के हिस्से ख़रीदने चाहिये। चालू कम्पनियों के हिस्से अधिक दाम पर मिलते हैं परन्तु उसमें रुपया मारे जाने का जोखम बिना किसी विशेष परिस्थिति के कम रहता है।

आधुनिक समय में यह देखा जाता है कि जहाँ कोई बड़ी देशोपयोगी कम्पनी बड़े-बड़े धनिकों ने खोलने का निश्चय किया और उसका कच्चा चिट्ठा तैयार किया और अभी रजिस्ट्री भी नहीं हुई कि बड़े-बडे दलाल तथा पूँजीपति उसके हिस्से निजी तौर से पहिले ही ले

आपस में बाँट लेते हैं जिससे रजिस्ट्री के बाद विवरण-पत्र निकलने पर जब सर्वसाधारण के हिस्से ख़रीदने के लिये पत्र आने लगते हैं तो उन्हें इन्कार-पत्र भेज दिया जाता है। सब हिस्से बड़े-बड़े धनी लोगों के ले लेने से सर्वसाधारण लोग कम्पनी की बड़ी ऊँची उपयोगिता का अनुमान लगाते हैं और उसके हिस्से ख़रीदने को बहुत लालायित रहते हैं। शेअर बाज़ार में प्रारम्भ ही से इसके हिस्सों की दर दूनी चौगुनी हो जाती है और इस तरह से बड़े-बड़े धनी व दलाल लोग सर्वसाधारण के हाथ निजी तौर से लिये हुये हिस्सों को दुगुनी चौगुनी दर से बेच कर मालामाल हो जाते हैं और सर्वसाधारण को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। हिस्से ख़रीदने वालों को इस प्रकार की चालबाज़ियों से सावधान रहना चाहिये।

---

४. कम्पनियों का कार्य संचालन

(१) कम्पनियों के संचालक (२) कम्पनियों के प्रबन्धक (३) कम्पनियों के विधान द्वारा निर्धारित रजिस्टर (४) कम्पनी की बैठकें (५) प्रस्तावों के भेद (६) कम्पनी के कार्य संचालन-सम्बन्धी अन्य बातें (७) हिस्सेदारों का अधिकार।

तीसरे अध्याय में हम लोगों ने कम्पनी के संगठन इत्यादि के विषय में अध्ययन किया है। अब इस अध्याय मे हमको उसके कार्य संचालन के संबंध में विचार करना है। वास्तव में संगठन और कार्य संचालन में एक बहुत बडा सम्बन्ध है। यदि किसी कम्पनी का संगठन अच्छा हुआ है तो उसका कार्य संचालन भी अच्छा होता है। कम्पनियों के नियमो में प्रायः उसके प्रारम्भिक संचालकों के नाम दिये रहते हैं। अधिकतर तो यह देखा गया है कि एक कम्पनी के सभी संस्थापक अथवा संस्थापको में से कुछ विशेष व्यक्ति उसके प्रारम्भिक संचालक होते हैं।

(१) कम्पनियों के संचालक

कम्पनी विधान के अनुसार प्रत्येक निजू कम्पनी के कम से कम दो और सार्वजनिक कम्पनी के कम से कम तीन संचालक होने आवश्यक हैं।

संचालकों की नियुक्ति—संचालकों की नियुक्ति के विषय में कम्पनी के नियमों में कुछ न कुछ अवश्य दिया रहता है। एक निजू कम्पनी में यदि थोड़े ही हिस्सेदार हैं तो वे सभी सदा के लिए उसके संचालक हो सकते हैं किन्तु यदि उसके हिस्सेदारों की संख्या अधिक है, और एक सार्वजनिक कम्पनी में तो ऐसा होता ही है, तो उनमे से कुछ उसके संचालक नियुक्त किये जाते हैं। कम्पनी विधान के अनुसार एक सार्वजनिक कम्पनी के प्रारम्भिक संचालकों को उसके व्यापार प्रारम्भ करने की

तारीख से अधिक से अधिक छः मास के अन्दर उसके हिस्सेदारों की एक वैधानिक सभा बुलानी पड़ती है और उसके अन्य कामों के साथ संचालकों की नियुक्ति की स्वीकृति करानी पड़ती है। निजू कम्पनी में यह वैधानिक सभा न भी बुलाई जाय तो भी कोई हर्ज नहीं है, किन्तु १८ मास के अन्दर एक साधारण सभा उसे भी बुलानी पड़ती है और उसमे अन्य बातों के साथ-साथ संचालकों की नियुक्ति की स्वीकृति भी लेनी पड़ती है। अतः, एक सार्वजनिक कम्पनी में तो उसके व्यापार प्रारम्भ कर सकने के प्रमाण-पत्र पाने की तारीख से छः मास के अन्दर और एक निजू कम्पनी में उसके संगठन से १८ मास के अन्दर संचालकों की नियुक्ति के लिये हिस्सेदारों की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। प्रायः कम्पनी के नियमों के अनुसार वे ही हिस्सेदार सचालक बनाये जा सकते हैं जो कम से कम एक निश्चित रकम के हिस्से लेते हैं। कम्पनी विधान के अनुसार संचालको मे से कम से कम दो तिहाई को तो ऐसा अवश्य होना चाहिये जो हिस्सेदारो की राय से बदले जा सकते हों। प्रायः संचालको की एक निश्चित संख्या की हर वार्षिक सभा मे फिर से नियुक्ति होती है। हो सकता है कि पुराने संचालको की ही दुबारा नियुक्ति हो जाय। किन्तु यह स्वीकृति अवश्य ही होनी चाहिये। जहाँ तक होता है सबसे पुराने सचालकों को ही बदली के लिये चुना जाता है। यदि सब संचालक एक ही अवधि के होते हैं जैसा कि पहिली सभा में होता है तो चिट्ठियाँ डाल कर यह निश्चित कर लिया जाता है कि कौन-कौन संचालक सबसे पहिले बदले जाने के लिये चुने जाने चाहियें। एक कम्पनी के अधिक से अधिक एक तिहाई संचालक स्थाई भी हो सकते हैं अर्थात् वे जीवन-पर्यन्त न बदले जाँय। जैसा पहिले कहा जा चुका है एक ऐसी निजू कम्पनी के सभी संचालक जिसके सभी हिस्सेदार सञ्चालक हैं सदा के लिये सञ्चालक रह सकते हैं। कम्पनी विधान के अनुसार एक दिवालिया संचालक नहीं हो सकता है।

संचालकों की पदच्युति—नये कम्पनी विधान के अनुसार किसी कम्पनी के हिस्सेदार उसके किसी भी अस्थाई संचालक को एक विशेष प्रस्ताव पास करके उसके पद से हटा सकते हैं और एक साधारण प्रस्ताव पास करके एक अन्य सदस्य को उस निकाले हुए सचालक की शेष अवधि के लिए नियुक्त कर सकते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त निम्न अवस्थाओं में भी किसी भी संचालक की पदच्युति हो जाती है :—

(१) जब उसके पास संचालकों की योग्यता के लिए आवश्यक हिस्से नहीं रह जाते हैं। अथवा वह उनको अधिक से अधिक दो मास के अन्दर नहीं प्राप्त कर लेता है।

(२) जब वह किसी अदालत के द्वारा पागल घोषित कर दिया जाता है।

(३) जब वह दिवालिया करार कर दिया जाता है।

(४) जब वह उन हिस्सों पर माँगी हुई रक़म अधिक से अधिक छः मास के अन्दर नहीं दे देता है जो उसके नाम में हैं।

(५) जब वह अथवा उसकी फर्म जिसका वह साझी है अथवा निजू कम्पनी जिसका वह संचालक है उस कम्पनी के अंतर्गत प्रबंधक संचालक अथवा प्रबन्धक अथवा वैधानिक या विशेष विधान-सम्बन्धी (Technical) परामर्शदाता अथवा महाजन के पद के अतिरिक्त का कोई ऐसा पद उस कम्पनी के हिस्सेदारों की सभा में पास हुए विना स्वीकार कर लेता है जिससे उसको कुछ लाभ हो सकता है।

(६) जब वह संचालक मंडल की आज्ञा के बिना उसकी लगातार तीन बैठकों अथवा तीन महीनों तक जितनी बैठकें हुई हैं इन दोनों में से जिसकी सबसे अधिक अवधि है उसमें से अनुपस्थित रहता है।

(७) जब वह अथवा उसकी फर्म जिसका वह साझी है अथवा एक निजू कम्पनी जिसका वह संचालक है कम्पनी से ऋण ले लेता है।

(८) जब वह अन्य संचालको के परामर्श के बिना कम्पनी की किसी सम्पत्ति इत्यादि को ख़रीदने अथवा बेचने का स्वयं से अथवा किसी फर्म से जिसका वह साझी है अथवा किसी ऐसी निजू कम्पनी से जिसका वह संचालक है कोई राज़ीनामा कर लेता है।

संचालकों के अधिकार—जहाँ तक सञ्चालकों के अधिकार इत्यादि का प्रश्न है संचालक लोग ही अपनी कम्पनी के सञ्चालन के लिये आवश्यक बातों को निश्चित कर देते हैं। अपने स्वयं के विषय की खास-खास बातो को छोड़ कर जिन्हें तो अवश्य ही हिस्सेदार तय करते हैं प्रायः अन्य सभी विषयों की बातें वे ही तय करते हैं। और सच तो यह है कि जिन बातों को हिस्सेदार तय करते हैं उनके विषय में भी यही लोग अपनी सिफ़ारिश उनके सामने पेश करते हैं। और अधिकतर वे ही सिफ़ारिशें मान ली जाती हैं। यदि कम्पनी को लाभ होता है तो भी वह तभी बँट सकता है जब सञ्चालकगण उसको बाँटने की सिफ़ारिश कर दें और जिस दर से उनके बँटने की सिफ़ारिश होती है उस दर से अधिक भी वह नहीं बँट सकता है। किन्तु संचालकगण अपने कामों के लिये तो हिस्सेदारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उनमें से अधिक से अधिक एक तिहाई को छोड़ कर जो स्थाई सञ्चालक हो सकते हैं, शेष सभी सञ्चालक उन्हीं के द्वारा नियुक्त होते हैं। सञ्चालकों की पदच्युति के सम्बन्ध में ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि उनमें से किसी को भी हिस्सेदार एक विशेष प्रस्ताव करके निकाल सकते हैं और उसके स्थान पर अन्य किसी को उसकी शेष अवधि के लिये नियुक्त कर सकते हैं।

सचालकों के प्रतिबन्ध—कुछ दिन पहिले तो सञ्चालकों के ऊपर बहुत कम प्रतिबन्ध थे किन्तु नये कम्पनी विधान के अनुसार यह बढ़ा

दिये गये हैं। ऊपर हम यह देख चुके हैं कि सञ्चालको मे से कम से कम दो तिहाई को अवश्य ही स्थाई होना पड़ता है। फिर बहुत से ऐसे कारण हैं जिनसे इनकी पदच्युति भी हो सकती है। ऋण देने के समय में भी ऐसे प्रतिबन्ध बना दिये गये हैं कि वे सञ्चालकों को स्वयं अथवा ऐसे फ़र्म को जिनमें वे साझी हो अथवा ऐसी निजू कम्पनी को जिसमें वे सञ्चालक हों अथवा किसी व्यक्ति को उनकी ज़मानत पर नहीं दिये जा सकते हैं। वास्तव में सञ्चालको को बहुत ही ईमानदार होना चाहिये। भूतकाल में उनमें से अनेको की बेईमानियाँ साबित हो चुकी हैं अतः, उन पर यह सब प्रतिबन्ध लगाये गये हैं किन्तु जैसा किसी ने कहा है कि 'प्रतिबन्ध तो ईमानदार व्यक्तियों के लिये होते हैं बेईमान व्यक्ति तो उनके होते हुए भी बेईमानी का हिसाब निकाल ही लेते हैं।' ईमानदारी के अतिरिक्त और भी ऐसे अनेको गुण हैं जिनका होना एक सञ्चालक के लिए बहुत ही आवश्यक है। एक सञ्चालक में दृढ़ता, गम्भीरता, धैर्य, सहिष्णुता इत्यादि सभी गुण तो होने चाहिये। उसे सत्यवादी तथा अपने स्वार्थ की तरह दूसरो के स्वार्थों को भी तत्सम सहानुभूति तथा समान दृष्टि से देखने वाला होना चाहिये। उस पर सर्वसाधारण विश्वास करते हैं तथा यही समझकर उसकी कम्पनी के हिस्से खरीदते हैं कि वह उनके लाभ का काम करेगा। अतः, उसको ऐसा ही करना चाहिये। व्यवहार में सर्वथा यहीं उचित है कि जब कोई निर्मल मन से किसी के ऊपर विश्वास करता है तब जिस पर विश्वास किया जाय वह विश्वास करने वाले को धोखा देकर विक्षुब्ध न करे।

(२) कम्पनियों के प्रबन्धक

सञ्चालक लोग तो विशेष-विशेष बातों को केवल तय ही कर सकते हैं। कम्पनियो का वास्तविक प्रबन्ध तो किसी प्रबन्धक तथा अन्य कर्मचारियों के द्वारा ही किया जाता है। जहाँ तक प्रबन्धक का प्रश्न है वह या तो स्वयं सञ्चालकों में से एक जिसको प्रबन्ध सञ्चालक

(Managing Director) कहते हैं अथवा कोई पेशेवर प्रबन्ध अढ़तिया (Professional Managing Agent), अथवा आम प्रबन्धक (General Manager) या मन्त्री (Secretary) हो सकता है।

प्रबन्ध संचालक—प्रायः ऐसा देखा गया है कि संस्थापकों में से एक स्थाई सञ्चालक कम्पनी विधान के अनुसार अधिक से अधिक बीस वर्ष के लिये उस कम्पनी का प्रबन्ध सञ्चालक नियुक्त कर दिया जाता है। वास्तव में वही सस्थापकों में सबसे अग्रगण्य होता है और संस्थापना तथा संगठन इत्यादि का सारा काम स्वय करता है अथवा सञ्चालक लोग अपने में से एक को किसी एक छोटी अवधि के लिए प्रबन्ध सञ्चालक बना देते हैं।

पेशेवर प्रबन्ध अढ़तिया—भारतवर्ष में कुछ पेशेवर प्रबन्ध अढ़तिये हैं जिनका काम कम्पनियों का प्रबन्ध करना ही है। यह लोग कम्पनी को संस्थापित भी करते हैं और ऐसी कम्पनियों का तो प्रबंध भी अपनें हाथों में ही रखते हैं। किन्तु कुछ अन्य लोग भी कम्पनियाँ स्थापित करके उनका प्रबन्ध इन्हीं को सौंप देते हैं। पहिले तो यह अपने जीवन पर्यन्त अथवा यदि उनकी फ़र्म होती थी तो फ़र्म के जीवन पर्यन्त के लिये कम्पनियों के प्रबन्ध करने के ठेके ले लिया करते थे। यही नहीं वरन् इनको यह भी अधिकार रहता था कि यह किसी को अपने इस प्रबन्ध करने के अधिकार को हस्तान्तरित भी कर दें। इनके और भी बहुत से अधिकार होते थे। किन्तु नये कम्पनी विधान में इनको बहुत सीमित कर दिया गया है। अब कोई प्रबन्ध अढ़तिया २० वर्ष से अधिक के लिये किसी कम्पनी का प्रबन्ध अढ़तिया नहीं नियुक्त हो सकता है। फिर इसको अपने इस अधिकार को हस्तान्तरित करने का भी अधिकार नहीं रह गया है। अब किसी सार्वजनिक कम्पनी के प्रबंन्ध अढ़तिये को उसके एक तिहाई संचालकों से अधिक को मनोनीत करने का भी अधिकार नहीं रह गया है। इसके अलावा

यदि उनको उनके वेतन के अतिरिक्त कुछ और उज़रत मिलती है तो वह केवल लाभ की ही कुछ प्रतिशत रकम हो सकती है। इसके पहिले यह लोग माल की तैयारी की कीमत अथवा बिक्री इत्यादि का कुछ प्रतिशत पाने की शर्त रख लेते थे। कम्पनी विधान में यह भी लिखा है कि जिस लाभ का प्रतिशत प्रबन्ध अढ़तिया को मिलता है वह सब ख़र्चों को काट कर निकालना चाहिये। यह सब प्रतिबन्ध एक प्रबन्ध संचालक पर भी पूर्णतया लागू है। उपरोक्त के अतिरिक्त प्रबन्ध सचालक तथा प्रबन्ध अढ़तिये न तो स्वय कोई ऋण कम्पनी से ले सकते हैं न किसी ऐसी फ़र्म को अथवा निजू कम्पनी को दे सकते हैं जिनके वे साझी अथवा संचालक हैं। न वे किसी को दिये हुए ऋण की जमानत ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह कम्पनी से अपने लाभ का कोई सौदा भी नहीं कर सकते हैं न ये अपने पदों के अलावा अथवा वैधानिक या विशेष विद्या-संबंधी परमार्शदाता अथवा महाजन के पदों के अलावा अन्य कोई लाभदायक पद कम्पनी मे ले सकते हैं।

आम प्रबन्धक अथवा मन्त्री—यह कम्पनी के वैधानिक कर्मचारी होते हैं। अतः, इनके ऊपर कम्पनी के संचालकों इत्यादि की पूरी देख-रेख रहती है जिससे कि यह कोई अनुचित लाभ नहीं उठा सकते।

अन्य कर्मचारी—उपरोक्त प्रबन्धकों के अतिरिक्त कम्पनियों के अन्य कर्मचारी होते हैं। वास्तव में उनकी नियुक्ति इत्यादि उपरोक्त प्रबंधको के हाथ में रहती है।

किसी कम्पनी के रोज़मर्रा के काम चलाने का भार उपरोक्त प्रबन्धकों और कर्मचारियों पर ही रहता है। कम्पनी विधान के अनुसार एक कम्पनी को जिन रजिस्टरों इत्यादि को रखना अथवा प्रमाण-पत्रो इत्यादि को रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ता है उनको रखने और भेजने का भी उत्तरदायित्व इन्हीं लोगों पर रहता है। यदि उसमे किसी में यह लोग भूल कर जाते हैं तो विधान इनको ही दोषी ठहराता है

और सज़ा देता है। किन्तु यह लोग जो कुछ करते हैं उसके लिए संचालक लोग इनको समय-समय पर आदेश और साथ ही साथ अधिकार इत्यादि भी देते रहते हैं अन्यथा काम सुचारु रूप से नहीं चलता है।

(३) कम्पनियों के विधान द्वारा निर्धारित रजिस्टर

प्रत्येक कम्पनी को हिसाब-किताब के रजिस्टरों के अलावा विधान द्वारा निर्धारित कुछ अन्य रजिस्टर भी रखने पड़ते हैं इन रजिस्टरों के अतिरिक्त प्रतिवर्ष उन्हें कितने ही प्रमाण-पत्र भी तैयार करने पड़ते हैं। रजिस्टरों में से मुख्य निम्नांकित हैं—

(१) हिस्सेदारों का रजिस्टर—कम्पनी के संगठित होने के बाद सबसे पहिले यही रजिस्टर तैयार किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम संस्थापकों के ही नाम रहते हैं क्योंकि वे ही कम्पनी के सर्वप्रथम हिस्सेदार होते हैं। उनके बाद जैसे-जैसे अन्य व्यक्ति कम्पनी के हिस्से लेते जाते हैं वैसे-वैसे क्रमानुसार इसमें उनके नाम भी चढ़ते जाते हैं। कम्पनी विधान की ३१ (१) धारा में लिखा है कि इसमें निम्न सूचना लिखी जानी चाहिये :—

(१) हिस्सेदारों के नाम, पते, पेशे, उन्होने कितने-कितने हिस्से लिये हैं, हर ऐसे हिस्सों की क्रम संख्या, और उस पर कितने रुपये प्राप्त हो चुके हैं, अथवा प्राप्त हुए माने जाने चाहिये;

(२) हिस्सेदारों के प्रविष्ट होने की तारीख़ें;

(३) उनके निकल जाने की तारीख़ें।

किन्तु व्यवहार में इसमें अन्य बहुत-सी सूचनायें भी होती हैं और इनको हिस्सेदारों का रजिस्टर नहीं बरन् हिस्सों का लेजर कहते हैं। यदि कई प्रकार के हिस्से होते हैं तो हर प्रकार के हिस्सों के लिये अलग अलग रजिस्टर होते हैं। इन हिस्सों के लेजर के विषय में दो खास बातें हैं, एक तो जब हिस्सों की पूरी रक़म वसूल हो गई है और दूसरी जब वह किस्तों से मिलने को है। पहिली अवस्था में तो इसमें अधिक

खानो की आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु दूसरी अवस्था में तो इसमें किस्तों के भी खाने होते हैं। कभी-कभी और विशेषकर दूसरी अवस्था में इसमें हर हिस्सेदारो के लिये अलग-अलग एक पृष्ठ होता है।

यह रजिस्टर कम्पनी के रजिस्टर्ड दफ़्तर में रक्खा रहना चाहिये, और कुछ हालतों में कुछ दिनों को छोड़ कर जिसके विषय के प्रतिबन्ध कम्पनी विधान में दिये हैं यह रोज़ कुछ घटों के लिये कम्पनी के हिस्सेदारो को तो विना किसी शुल्क के और अन्य लोगो को कुछ शुल्क लेकर (किन्तु एक रुपये से अधिक नहीं) देखने के लिये खुले रहने चाहियें। यदि कोई चाहे तो इसके पूरे की अथवा कुछ अशों की प्रतिलिपि भी छै आना प्रति सौ शब्दो के हिसाब से ख़र्च दे कर प्राप्त कर सकता है।

यदि हिस्सेदारों की संख्या अधिक है अथवा उनके लेख आकार आदि के क्रम से रजिस्टर मे नहीं रखे गये हैं तो प्रत्येक रजिस्टर के साथ उसकी सूची भी होनी चाहिये।

(२) हिस्सेदारों की वार्षिक सूची और सार—जो कम्पनी अपने हिस्सेदारों की वैधानिक सभा करती है उसको वैधानिक सभा करने के बाद, और जो वैधानिक सभा नहीं करती है उसको अपने हिस्सेदारों की प्रथम सभा करने के बाद और उसके बाद किसी भी कम्पनी को अपनी हर वार्षिक सभा करने के बाद हिस्सेदारो की एक वार्षिक सूची और सार तैयार करनी पड़ती है। इस सूची और सार मे उन सब हिस्सेदारों के नाम, पते, पेशे, और हिस्से जो उनके नाम में हैं, अथवा जितने समय की यह सूची है उतने समय में उन्होंने हस्तान्तरित किये हैं अथवा लिये हैं उनके विवरण के साथ दिये रहते हैं। इसके अलावा इसमे निम्न सूचनायें भी रहती हैं:—कम्पनी के पूँजी की रक़म, वह कितने हिस्सों में विभाजित है, उसके प्रारम्भ से अन्तिम समय तक कितने हिस्से बिक चुके हैं, प्रत्येक हिस्से पर कितने रुपयों की माँग की जा चुकी है, कितना

रुपया आ चुका है, कितना आना बाकी है; हिस्सों और ऋण-पत्रों पर जो कमीशन अथवा कटौती (discount) उक्त समय में दी गई है, अथवा अन्तिम समय तक ऐसी कितनी रकम हानि और लाभ के खाते में नहीं डाली गई है, कितने हिस्से ज़ब्त किये गये हैं, कितने हिस्सों के वारन्ट जारी किये गये हैं, कितनों के वापस आये हैं, प्रत्येक वारन्ट में कितने हिस्से हैं; कौन-कौन व्यक्ति उसके संचालक और प्रबन्धक हैं, कौन-कौन संचालक और प्रबन्धक इस बीच में बदले गये हैं, प्रत्येक प्रबन्धक और संचालक के बनने और हटने की तारीखें और कम्पनी के ऊपर के ऐसे ऋण की रकम जिनकी सूचना रजिस्ट्रार के यहाँ रहनी चाहिये।

उपरोक्त सूची और सार हिस्सेदारों के रजिस्टर के अन्दर भी दिये रहते हैं और जिस सभा के बाद वह तैयार किये गये हैं उसकी तारीख़ से इक्कीस दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के पास भी भेज दिये जाते हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो कम्पनी और और प्रबन्धक दोनों को जुर्माना, इत्यादि, देना पड़ता है।

(३) संचालकों और प्रबन्धकों का रजिस्टर—इस रजिस्टर में कम्पनी के संचालकों और प्रबन्धकों के नाम, पते, उनके पास के हिस्सों की संख्या, उनके साथ की गई शर्तें, उनके वेतन, इत्यादि की सूचना, इत्यादि दी रहती है। किसी संचालक अथवा प्रबन्धक की नियुक्ति अथवा पदच्युति के चौदह दिन के अन्दर यह सूचना रजिस्ट्रार के पास पहुँच जानी चाहिये। यह रजिस्टर भी उसी तरह से हिस्सेदारों और अन्य लोगों के देखने के लिये खुला रहना चाहिये जिस तरह से हिस्सेदारों का रजिस्टर खुला रहता है।

(४) रेहन, इत्यादि का रजिस्टर—इस रजिस्टर में कम्पनी के रेहन और ऐसे ऋण इत्यादि का विवरण रहता है जिसके लिये उसकी कोई विशेष सम्पत्ति उत्तरदायी रहती है। इनको रजिस्ट्रार के पास

भी रजिस्टर्ड कराना आवश्यक होता है, और ऐसा न कराने पर यह झूठे समझे जाते हैं।

(५) कार्यवाहियों के रजिस्टर—कार्यवाहियों के दो रजिस्टर होते हैं, एक तो सञ्चालक मण्डल की बैठकों की कार्यवाहियों के और दूसरा हिस्सेदारों की सभाओं की बैठको की कार्यवाहियों के। प्रत्येक बैठक होने के कुछ दिनों के अन्दर ही इनमें उक्त बैठक की कार्यवाहियाँ लिख जानी चाहियें और उस पर सभापति के हस्ताक्षर हो जाने चाहियें। ये रजिस्टर भी अन्य रजिस्टरों की तरह ही कम्पनी के रजिस्टर्ड दफ़्तर में रक्खे रहने चाहियें और उसके सदस्यों को देखने के लिये खुले रहने चाहियें। किसी बैठक के होने के सात दिन के बाद कोई भी सदस्य उस बैठक की किसी भी कार्यवाही की प्रतिलिपि माँग सकता है और उसके ऐसा करने पर यह प्रतिलिपि सात दिन के अन्दर भेज भी दी जानी चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो उस सदस्य को यह अधिकार है कि वह अपना यह अधिकार अदालत के द्वारा काम में ले आवे।

(६) ऋण-पत्र लेने वालों का रजिस्टर—जिस तरह से हिस्सेदारों का रजिस्टर रक्खा जाता है उसी तरह से ऋण-पत्र लेने वालों का रजिस्टर भी रक्खा जाता है। इसमें उनके सम्बन्ध की सूचनायें दी रहती हैं।

(७) कम्पनी की निरीक्षित आय-व्यय के चिट्ठे (बैलन्स शीट) का प्रतिलिपि—प्रत्येक कम्पनी को हर साल अपनी एक बैलन्स शीट भी बनानी पड़ती है। इसके साथ उसके हानि और लाभ का भी हिसाब रहता है। एक निजू कम्पनी में तो यह बैलन्स शीट किसी के भी द्वारा निरीक्षित (audit) कराई जा सकती है किन्तु एक सार्वजनिक कम्पनी में तो यह निरीक्षक केवल सरकार से रजिस्टर्ड निरीक्षक ही होना चाहिये। हर कम्पनी प्रति वर्ष वार्षिक सभा में एक या एक से अधिक निरीक्षक दूसरी वार्षिक सभा होने तक काम

करने के लिये नियुक्त करती है। हाँ, यदि कोई वार्षिक सभा कोई निरीक्षक नहीं नियुक्त करती है तो कम्पनी के किसी हिस्सेदार के प्रार्थनापत्र पर प्रान्तीय सरकार चालू वर्ष के लिये उस कम्पनी का निरीक्षक नियुक्त कर सकती है और साथ ही वह मेहनताना भी ठहरा सकती है जो उसको उसके काम के लिये कम्पनी की ओर से दिया जायगा। कम्पनी का सचालक या आफ़िसर अथवा ऐसे सचालक या अफ़सर का साझी और किसी निजू कम्पनी को छोड़ कर और किसी कम्पनी मे ऐसा कोई आदमी जो किसी ऐसे संचालक या अफ़सर के यहाँ नौकरी करता है कम्पनी का निरीक्षक नहीं बनाया जा सकता है। जहाँ पर वैधानिक सभा होती है संचालक लोग साथ ही एक ऐसे निरीक्षक की नियुक्ति कर सकते हैं जो उनके उस समय तक के हिसाब का निरीक्षण कर दे। यदि वार्षिक सभा से नियुक्त किया हुआ निरीक्षक अपना त्याग-पत्र दे देता है तो भी कम्पनी के सचालकगण उसके स्थान पर शेष समय के लिये कोई अन्य निरीक्षक नियुक्त कर सकते हैं और ऐसे निरीक्षकों का मेहनताना भी वे ही लोग नियुक्त करते हैं। वार्षिक बैठकों में जो निरीक्षक नियुक्त होते हैं उनका मेहनताना भी उन्हीं बैठकों में नियुक्त कर दिया जाता है। हर बैलन्स शीट के साथ निरीक्षक की रिपोर्ट रहती है जिसमे विशेष कर वह यह लिखता है कि उसने अपने मन के चाहे हुये सब बयान और प्रमाण-पत्र पाये अथवा नहीं, बैलेंस शीट विधान के मुताबिक है अथवा नहीं, बैलेंस शीट जहाँ तक उनको सूचना मिली है उसके मुताबिक ठीक है अथवा नहीं। एक सार्वजनिक कम्पनी को अपनी बैलेंस शीट की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजनी पड़ती है और हर कम्पनी को उसकी एक प्रतिलिपि उसके रजिस्टर्ड दफ़्तर में किसी के भी देखने के लिये रखनी पड़ती है। बैलेंस शीट और निरीक्षक की रिपोर्ट हिस्सेदारों की वार्षिक सभाओं में पेश की जाती है और पास की जाती है।

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रत्येक कम्पनी को कुछ ऐसे सहायक रजिस्टर भी रखने पड़ते हैं जिनमें वे विवरण होते हैं जो हिसाब-किताब के साधारण रजिस्टरों में नहीं लिखे जा सकते हैं। इनमें से मुख्य-मुख्य निम्नाङ्कित हैं :—

(१) हिस्सों का प्रार्थना और बँटनी रजिस्टर—इस रजिस्टर में प्रार्थना-पत्रों की अनुक्रम संख्या, तारीख़, प्रार्थी का नाम, पूरा पता, पेशा, कितने हिस्सों के लिये प्रार्थना-पत्र आया, प्रार्थना-पत्र के साथ कितने रुपये आये, बँटनी की तारीख, कितने हिस्से प्रत्येक प्रार्थना-पत्र पर बँटनी किये गये, हिस्सों की अनुक्रम संख्या, बँटनी पत्र की संख्या, प्रार्थना-पत्र और बँटनी पर चाहने वाली रक़म जो प्रत्येक हिस्सेदार के ऊपर चाहिये, बँटनी के बाद बाक़ी जो रक़म चाहिये, रक़म कब जमा की गई, अस्वीकृत-पत्र की संख्या व तारीख़, लौटाई गई रक़म, पेशगी प्राप्त हुई रक़म, हिस्से के प्रमाण-पत्र का नम्बर, हिस्सेदारों के रजिस्टर के पन्नों की संख्या, इत्यादि सूचनायें दी रहती हैं। यह रजिस्टर प्रार्थना-पत्रों और बैंक की पासबुक इत्यादि की मदद से बनता है।

(२) हिस्सों की किश्त की माँगनी का रजिस्टर—जैसे-जैसे हिस्सों पर किश्त माँगी जाती है उसके सम्बन्ध के लेखे इस रजिस्टर में लिखे जाते हैं।

(३) हिस्सों के प्रमाण-पत्र का रजिस्टर—इस रजिस्टर में हिस्सों के छपे हुये प्रमाण-पत्र रहते हैं। प्रत्येक हिस्सेदार के पास इसका एक वर्क़ भर कर भेज दिया जाता है और उसका भरा हुआ प्रतिरूप इसी में रह जाता है।

(४) हिस्सों के हस्तान्तरित होने का रजिस्टर—जब कोई हिस्सा हस्तान्तरित किया जाता है तो उसके हस्तान्तरित करने का प्रमाण-पत्र उसके निर्धारित शुल्क के साथ कम्पनी के पास आता

है। कम्पनी के सञ्चालकगण इसको स्वीकार करें अथवा न करें यह उनकी तबियत पर निर्भर रहता है किन्तु अधिकतर वे इसको स्वीकार कर लेते हैं। हाँ, एक निजू कम्पनी में वह यह देखते हैं कि हिस्सेदारो की संख्या पचास से अधिक न बढ़ जाय और जिन हिस्सों पर पूरी रकम नहीं माँगी गई है उन पर वह यह देखते हैं कि हस्तान्तरकृत्त (Transferee) उन पर जब शेष रकम माँगी जायगी उसको देने का वादा कर लेता है। अतः, इस हस्तान्तरित करने के प्रमाणपत्र से वे हिस्सों के हस्तान्तरित होने के रजिस्टर में उनके हस्तान्तरित होने का लेखा करते हैं।

(५) ऋण-पत्रों के व्याज का रजिस्टर—इस रजिस्टर में ऋण-पत्रों के ऊपर जो ब्याज दिया जाता है उसका पूरा विवरण रहता है।

(६) लाभ की बँटनी का रजिस्टर—कम्पनी का लाभ जब उसके हिस्सेदारों में बाँटा जाता है तब उसका लेखा इसमें होता है।

(४) कम्पनी की बैठकें

कम्पनी के सञ्चालक मंडल की और हिस्सेदारों की बैठकों के विषय में भी कम्पनियों के नियमों मे कुछ न कुछ अवश्य दिया रहता है। इसके अतिरिक्त कम्पनी विधान में भी इनके विषय में कुछ बातें दी हुई हैं।

संचालक मंडल की बैठकें—सचालक मंडल की बैठकें तो आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर होती ही रहती हैं और प्रत्येक सञ्चालक को इनमे उपस्थित होना ही पड़ता है। साथ ही जैसा कि पहिले बताया जा चुका है यदि कोई सञ्चालक सञ्चालक मंडल की आज्ञा के बिना उसकी तीन लगातार बैठकें अथवा तीन महीनों तक जितनी बैठकें हुई हैं उनमें सब में लगातार अनुपस्थित रहता है तो वह सञ्चालक के पद से हटा दिया जाता है।

हिस्सेदारों की बैठकें—हिस्सेदारो की पहिली बैठक एक निजू कम्पनी में तो उसके संगठित होने की तारीख़ के अधिक से अधिक अठारह महीनों के अन्दर और एक सार्वजनिक कम्पनी में कार्य प्रारम्भ करने के प्रमाण-पत्र के पा लेने की तारीख़ के अधिक से अधिक छै महीनों के अन्दर अवश्य बुलानी पड़ती है। ऐसी बैठक को वैधानिक बैठक कहते हैं।

वैधानिक बैठक—इसमें सञ्चालकों को एक वैधानिक रिपार्ट पेश करनी पड़ती है जिसमें यह दिया रहता है कि कितने हिस्सों की बँटनी हो गई है, कितने हिस्से पूरी अथवा अधूरी रक़म के नगद पाये बिना बँटनी किये गये हैं और क्यों किये गये हैं; बँटनी से कितना रुपया नगद मिला है, रिपोर्ट की तारीख़ के सात दिन पहिले तक कम्पनी में कितना रुपया जमा हुआ है और उसम से कितने का भुगतान हुआ है; जमा में कितने रुपये हिस्सों से मिले हैं, कितने ऋण-पत्रों से और कितने अन्य हिसाब में; किन-किन मद में रुपयो का भुगतान हुआ है; कितना रुपया हाथ मे बचा है; कितने का प्रारम्भिक व्यय है और उसमें हिस्सों के बेचने पर कितनी रक़म कमीशन और कटौती की है; सचालको, हिसाब-निरीक्षको, प्रबन्धक अढ़तिये और प्रबन्धको के नाम, पते और विवरण और यदि सगठन की तारीख़ से इनमें कुछ अदल-बदल हुई है तो उसका विवरण, जो ठेके हुये है और जिनमें कुछ बदलना है उनके विषय मे जो-जो बातें हिस्सेदारों की बैठक में रखना है; यदि हिस्सो का कोई बीमा हुआ था तो वह कहाँ तक पूरा किया गया है; यदि सञ्चालकों अथवा प्रबन्धक अढ़तियों और प्रबन्धको के ऊपर उनके हिस्सो की मँगनी का कुछ रुपया बाक़ी है; और सञ्चालकों, प्रबन्धक अढ़तियों या अन्य प्रबन्धक या प्रबन्धक अढ़तियों की फ़र्म या ऐसी निजू कम्पनी को जिसका वह सञ्चालक है जो हिस्से दिये गये हैं इन पर यदि कोई कमीशन, इत्यादि दिया गया

है तो उसकी रक़म, इत्यादि, इत्यादि। वैधानिक बैठक होने की तारीख़ के इक्कीस दिन पहिले उसकी सूचना और उपरोक्त रिपोर्ट कम्पनी के दो सञ्चालकों के हस्ताक्षर से उसके हिस्सेदारों के पास और रजिस्ट्रार के पास भेज दी जाती है। इसके अतिरिक्त ऐसी बैठक में हिस्सेदारों के नाम, विवरण पते और उनमें से प्रत्येक ने जितने हिस्से लिये हैं उनकी संख्या, इत्यादि के साथ उनकी एक सूची भी पेश की जाती है। उक्त बैठक में हिस्सेदार उपरोक्त के सम्बन्ध में और अन्य जो बात वह चाहें उसके सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं। हाँ, वे ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं पास कर सकते हैं जिसकी सूचना उन्होंने पहिले से नहीं दी है। यह बैठक स्थगित भी हो सकती है और फिर नियत दिन पर हो सकती है। यदि ऐसी बैठक नहीं की जाती है तो कम्पनी भंग की जा सकती है और सञ्चालकों के ऊपर जुर्माना किया जा सकता है।

वार्षिक बैठक—हर साल कम्पनी के हिस्सेदारों की एक वार्षिक बैठक भी होनी आवश्यक है जो पिछली बैठक से पन्द्रह महीनों से अधिक मे नहीं होनी चाहिये। इसमें सञ्चालकों की वार्षिक रिपोर्ट और कम्पनी का वार्षिक हिसाब पेश होता है। साथ ही यदि कम्पनी को लाभ हुआ है तो इसमें यह भी निश्चय होता है कि उस लाभ में से कितना सुरक्षित कोष, इत्यादि में ले जाया जाय और कितना हिस्सेदारों में बाँट दिया जाय। इस बैठक में नये सञ्चालकों की और हिसाब निरीक्षकों, इत्यादि की भी नियुक्ति होती है। यदि सञ्चालकगण ऐसी बैठक नियमों के अनुसार नहीं बुलाते हैं तो उनको सज़ा हो सकती है और किसी हिस्सेदार की प्रार्थना पर अदालत स्वयम् इसको बुला सकती है।

असाधारण बैठकें—उपरोक्त के अतिरिक्त, हिस्सेदारों की असाधारण बैठकें भी हो सकती हैं। कम्पनी विधान के अनुसार किसी कम्पनी के कोई भी ऐसे हिस्सेदार जिनके पास जारी की हुई

पूँजी के कम से कम दशमांश के ऐसे हिस्से हैं जिन पर मँगनी का पूरा रुपया चुकाया जा चुका है एक साथ मिल कर कम्पनी के सञ्चालको के पास उसके हिस्सेदारों की असाधारण बैठक करने की माँग पेश कर सकते हैं। इस माँग में ऐसी बैठक के उद्देश्य लिखे होने चाहियें और यह कम्पनी के रजिस्टर्ड आफिस में आनी चाहिये। अब, यदि संचालकगण इस माँग को पाने के इक्कीस दिन के अन्दर ऐसी बैठक नहीं बुलाते हैं तो माँग करने वालों को इस बात का अधिकार रहता है कि वह स्वयम् ऐसी बैठक बुला लें। इसके लिये अवश्य ही उनको उसी प्रकार सूचना देनी पड़ती है जिस प्रकार सचालकगण अपनी बुलाई हुई बैठको की सूचना देते हैं और इसमें उनका जो उचित व्यय होता है वह वे कम्पनी से ले सकते हैं।

बैठकें बुलाने की सूचना, इत्यादि—जहाँ तक इन बैठकों के बुलाने की सूचना, इत्यादि देने का प्रश्न है वह भी कम्पनी विधान में बहुत स्पष्ट है। जिन बैठकों में कोई विशेष प्रस्ताव (special resolution) पास कराना है उनके बुलाने के लिये तो विधानतः कम से कम इक्कीस दिन की लिखित सूचना दी जानी चाहिये तथा अन्य बैठकों के बुलाने के लिये कम से कम चौदह दिन की भी सूचना से काम चल सकता है। हाँ, यदि वे सब सदस्य जिनको यह सूचना मिलनी है इससे कम दिनों की भी सूचना लेने के लिये तैयार हो जाते हैं तो यदि कम दिनों की भी सूचना दी जाय तो कोई हानि नहीं है। प्रत्येक बैठक की सूचना ऐसे सभी व्यक्तियो को दी जानी चाहिये जिनको उसके पाने का अधिकार है, किन्तु यदि किसी बैठक की सूचना किसी कारणवश कुछ व्यक्तियों को नहीं मिली है तो उस बैठक की कार्यवाही इस कारण से रद्द नहीं की जा सकती है। किसी बैठक की सूचना के साथ-साथ उसमें जो काम होने हैं उनकी भी सूची दी जानी चाहिये। वैधानिक बैठको के सम्बन्ध में संचालको की

वैधानिक रिपोर्ट जैसा कि पहिले कहा जा चुका है उस बैठक की तारीख से कम से कम इक्कीस दिन पहिले और वार्षिक बैठकों के सम्बन्ध में निरीक्षित बैलन्स शीट, हानि-लाभ के हिसाब और सचालकों तथा निरीक्षकों की रिपोर्ट कम से कम चौदह दिन पहिले अर्थात् उनकी सूचना के साथ सब हिस्सेदारों के पास अवश्य पहुँच जानी चाहिये।

मतों की गणना—अब रह गया मतों इत्यादि के विषय में वह भी यह हैं कि कोई भी ऐसे पाँच सदस्य जो किसी बैठक में स्वयम् अथवा अपने किसी प्रतिनिधि के द्वारा उपस्थित हैं, अथवा बैठक का सभापति, अथवा ऐसे सदस्य जिनके पास जारी की हुई पूँजी के कम से कम दशमांश के हिस्से हैं एक साथ मिल कर किसी भी उपस्थित विषय पर लोगो का मत माँग सकते हैं। हाँ, यदि यह बैठक किसी ऐसी निजू कम्पनी की है जिसमें सात से भी कम सदस्य उपस्थित हैं तो कोई भी एक सदस्य और यदि उसमे सात से अधिक सदस्य उपस्थित हैं तो कोई भी दो सदस्य ऐसा कर सकते हैं। किसी निजू कम्पनी की बैठक में दो सदस्यो और अन्य कम्पनियों की बैठक में पाँच सदस्यो के होने पर भी कार्यवाही चल सकती है।

सभापति का निर्वाचन—संचालक मण्डल का यदि कोई सभापति है तो वह और यदि वह अनुपस्थित है अथवा संचालक मण्डल का कोई सभापति है ही नहीं तो कोई भी ऐसा सदस्य जिसको अधिकाश सदस्य चाहते हैं हिस्सेदारों की बैठकों का सभापति हो सकता है। यदि किसी कम्पनी के नियम में कोई अन्य शर्त नहीं है तो प्रत्येक हिस्से पर एक मत का अधिकार रहता है अर्थात्, एक व्यक्ति के पास जितने भी अधिक हिस्से हैं वह उतने ही अधिक मत भी दे सकता है।

(५) प्रस्तावों के भेद

कम्पनी की बैठकों में तीन प्रकार के प्रस्ताव पेश किये जा सकते हैं (१) साधारण (General), (२) असाधारण (Extraordi-

nary) और (२) विशेष (Special)। इसमें से असाधारण प्रस्ताव की सूचना तो कम से कम चौदह दिन पहिले और विशेष प्रस्ताव पास करने की सूचना कम से कम इक्कीस दिन पहिले देनी पड़ती है। हाँ, यदि एक बैठक में जितने सदस्य उपस्थित हैं सब किसी ऐसे प्रस्ताव को विशेष प्रस्ताव क़रार देना चाहते हैं जिसकी इक्कीस दिन पहिले से सूचना नहीं दी गई है तो वह ऐसा कर सकते हैं।

असाधारण प्रस्ताव—किसी सञ्चालक को निकालने के; कम्पनी की स्वयम् की ज़िम्मेदारियों के कारण जब उसका व्यापार चालू नहीं रक्खा जा सकता तब उसको भङ्ग करने के; और स्वेच्छा से काम समेटने के समय कम्पनी के प्रमाण-पत्रों, इत्यादि को ठिकाने लगाने के प्रस्ताव असाधारण प्रस्ताव होते हैं।

विशेष प्रस्ताव—विशेष प्रस्तावों में कम्पनी के नाम बदलने के; योजना-पत्र मे जो उद्देश्य दिये हैं उनको परिवर्तित करने के; कम्पनी के रजिस्टर्ड दफ़्तर को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बदलने के; उसके नियमों को बदलने के; हिस्सो की पूँजी के फिर से सगठित करने अथवा घटाने के; किसी परिमित दायित्व वाली कम्पनी में सुरक्षित दायित्व करने के; नियमों को इस प्रकार बदलने के कि जिनसे किसी एक अथवा एक से अधिक संचालकों का दायित्व अपरिमित हो जाय; सञ्चालकों के अपने पद को हस्तांतरित करने की स्वीकृति के; प्रबन्धक अभिकर्ता को विशेष तौर पर मेहनताना देने के, कम्पनी के प्रारम्भिक जीवन में पूँजी से ब्याज देने के; उसके कामों को जाँचने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति के; बिना किसी कारण को दिये हुए कम्पनी के काम समेटने के और काम समेटने वालों को साधारण अथवा असाधारण अधिकार से कम्पनी की सम्पत्ति की बिक्री पर किसी अन्य कम्पनी के हिस्सों, इत्यादि को लेने की स्वीकृति देने के प्रस्ताव सम्मिलित हैं। इनको पास करने के लिये उपस्थित मतों के कम से कम तीन चौथाई मत

पक्ष में आने चाहियें। इसके विपरीत साधारण प्रस्ताव केवल बहुमत से ही पास समझे जाते हैं।

साधारण प्रस्ताव—हिस्सों की पूँजी के बदलने के; अपरिमित जोखिम वाली कम्पनियों को परिमित जोखिम वाली कम्पनियों में परिवर्तित करने के; वार्षिक बैठक के बैलन्स तथा हिसाब पास करने के, संचालकों को नियुक्त करने के, हिसाब निरीक्षकों की नियुक्ति और उनके मेहनतानों को तै करने के, लाभ की बँटनी के); वैधानिक रिपोर्ट को पास करने के; किसी संचालक को अथवा ऐसा फर्म को जिसमें वह साझी है अथवा ऐसी निजू कम्पनी को जिसमे वह एक संचालक है कम्पनी में कोई लाभदायक पद ग्रहण करने के; कम्पनी की सम्पत्ति का बेचने के तथा किसी सचालक के ऊपर कम्पनी का जो ऋण है उसकी माफ़ी के; किसी प्रबन्धक अढ़तिये की नियुक्ति अथवा उसको निकालने अथवा उसके साथ जो शर्तें हुई हैं उनको बदलने और उसके दफ़्तर को हटाने, इत्यादि के; हिस्सों को छूट (discount) पर जारी करने के; किसी सहायक कम्पनी के हिसाब, इत्यादि का निरीक्षण करने के; यदि कम्पनी एक निश्चित अवधि अथवा कार्य करने के लिये सगठित हुई थी तो उस निश्चित अवधि के बीत जाने पर अथवा उस निश्चित कार्य के हो जाने पर उसको भङ्ग करने के; अपनी इच्छा से जब कम्पनी को भङ्ग किया जा रहा है तब इतिकर्ता (liquidator) की नियुक्ति, उसके मेहनताने, उसके द्वारा पेश किये गये हिसाब को पास करने और कम्पनी के भङ्ग करने, इत्यादि के प्रस्ताव साधारण प्रस्ताव हैं

प्रत्येक विशेष प्रस्ताव और असाधारण प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि उसके पास होने की तारीख़ के पन्द्रह दिनों के अन्दर कम्पनी के किसी प्रधान पदाधिकारी के हस्ताक्षरों सहित रजिस्ट्रार के दफ़्तर में अवश्य दाख़िल हो जानी चाहिये। यदि कम्पनी के नियमों का रजिस्ट्रेशन हुआ है तो प्रत्येक विशेष प्रस्ताव को उसके पास हो जाने के बाद उन

नियमों की प्रत्येक नकल के साथ लगा देना चाहिये और यदि उसके नियमों का रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है तो उसकी प्रतिलिपि सदस्यों के मँगाने पर अधिक से अधिक एक रुपया लेकर उनको दे देने का प्रबन्ध कर देना चाहिये। उपरोक्त के उलंघन करने पर पदाधिकारियों को सज़ा दी जा सकती है।

(६) कम्पनी के कार्य संचालन सम्बन्धी अन्य बातें

परिचायक-पट (Sign-Board)—कम्पनी विधान में यह लिखा है कि प्रत्येक कम्पनी के प्रधान कार्यालय के सामने बाहर एक परिचायक-पट पर उसका नाम अंग्रेज़ी में दूर से पढ़े जाने वाले अक्षरों में लिखा होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो कम्पनी के प्रबन्धकों पर जुर्माना हो सकता है।

कम्पनी की मोहर—प्रत्येक कम्पनी की एक मोहर होनी चाहिये जिसमें उसका नाम खुदा रहता है। यह मोहर उसके सब काग़ज़ों पर पड़नी चाहिये। यदि किसी कम्पनी का कोई प्रबन्धक उसके महत्वपूर्ण काग़ज़ों पर इस मोहर को डाले बिना ही हस्ताक्षर कर देता है तो उस पर जुर्माना हो सकता है।

कम्पनी के व्यवहारिक काग़ज़ात—किसी कम्पनी के बिलों, चिट्ठी के काग़ज़ों, उसकी सूचनाओं, उसके विज्ञापन तथा दूसरे छपे हुये काग़ज़ों के ऊपर, हुण्डियों, प्रण-पत्रों, बिलों, उनके बेचानों, चिकों, रुपयों और माल, इत्यादि देने के आदेश पत्रों में जहाँ पर उसके किसी पदाधिकारी के हस्ताक्षर होते हैं उसके नज़दीक तथा पारसलों के बिलों, बीजकों, रसीदों और साख पत्रों, इत्यादि पर कहीं भी अंग्रेजी अक्षरों में स्पष्ट रूप से उस कम्पनी का नाम अवश्य रहना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता है तो उसके पदाधिकारी इसके लिये उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं।

कम्पनी के योजना-पत्र में दिये हुए अनुच्छेदों में परिवर्तन—यह तो हमें पहिले ही मालूम हो चुका है कि किसी कम्पनी के

योजना-पत्र में दिये हुए अनुच्छेदों में परिवर्तन करने में एक बहुत बड़ी कठिनाई पड़ती है। किन्तु अब प्रश्न यह है कि यदि ऐसा करना ही पड़े तो वह कैसे किया जा सकता है। प्रथम तो कम्पनी का नाम होता है। उसको बदलने के लिये कम्पनी के हिस्सेदारों को पहिले तो इस आशय का एक विशेष प्रस्ताव पास करना पड़ता है और फिर प्रान्तीय सरकार से उसकी लिखित स्वीकृति उसके किसी सेक्रेटरी के हस्ताक्षर सहित प्राप्त करनी पड़ती है। इतना हो जाने पर उसको रजिस्ट्रार के यहाँ इस परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन कराना पड़ता है जिसको वह संगठन के एक नये प्रमाण-पत्र को देकर पूरा करता है। कहना न होगा कि इस नाम के परिवर्तन से कम्पनी के उत्तर-दायित्व, इत्यादि में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि उसके पुराने नाम से कोई मुकदमा, इत्यादि चल रहा है तो उस पर भी इसका कोई असर नहीं पड़ता है।

कम्पनी के नाम के बाद उसके प्रधान कार्यालय के प्रान्त का नाम और उद्देश्य होते हैं। यदि इनमें परिवर्तन करना है तो भी उन कारणों में से कोई सा कारण दिखाते हुए जो कम्पनी विधान में दिये हुए हैं इस आशय का एक विशेष प्रस्ताव पास कराकर अदालत से उसकी स्वीकृति लेनी पड़ेगी और उसको योजना-पत्र में ठीक करके उस रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ेगा जिससे उसके संगठन का प्रमाण-पत्र प्राप्त हुआ था। प्रधान कार्यालय के प्रान्त के नाम के परिवर्तन की अवस्था में यह रजिस्ट्रार उस कम्पनी के सब कागजात उस प्रान्त के रजिस्ट्रार के पास भेज देगा जिसमें कम्पनी का प्रधान कार्यालय अब जाना है और वह रजिस्ट्रार कम्पनी के संगठन का एक नया प्रमाण-पत्र दे देगा।

जहाँ तक हिस्सों की पूँजी के बदलने का प्रश्न है उसको बढ़ाने के लिये अथवा हिस्सो के ऐकीकरण करने के लिये अथवा उनको स्टाक में बदलने के लिये और स्टाक से हिस्सों में बदलने के

लिये अथवा हिस्सो के टुकड़े करने के लिये यदि कम्पनी के नियमों में ऐसा करने का अधिकार है तो यह एक साधारण प्रस्ताव के द्वारा किया जा सकता है और यदि उसके नियम में ऐसा कोई अधिकार नहीं है तो पहले एक विशेष प्रस्ताव से उसके नियमों को बदल कर किया जा सकता है। पूँजी की बढ़त कम्पनी के नियमों के अनुसार साधारण और यदि आवश्यक हो तो असाधारण अथवा विशेष प्रस्तावो के द्वारा की जा सकती है। ऐसे प्रस्ताव के पास होने के पन्द्रह दिन के अन्दर इसकी सूचना रजिस्ट्रार को मिलनी चाहिये। हिस्सों के पुनर्संगठन के लिये अथवा हिस्सो की पूँजी पर जो रुपया मिल चुका है उसकी घटत के लिये विशेष प्रस्ताव पास करने पड़ते हैं। साथ ही घटत की अवस्था में अदालत की स्वीकृति भी लेनी पड़ती है और बैलन्स शीट में बहुत दिनों तक इस घटत का संकेत रखना पड़ता है। पूँजी में जब कोई अदल-बदल होती है तो उसकी सही जहाँ-जहाँ आवश्यक है वहाँ-वहाँ योजना-पत्र में और नियमों में करनी पड़ती है।

कम्पनी के नियमों में परिवर्तन—कम्पनी के नियम भी विशेष प्रस्तावों द्वारा घटाये-बढ़ाये और बदले जा सकते हैं। हाँ एक बात इस विषय में अवश्य है और वह यह है कि यदि ऐसा करने से कम्पनी के पुराने हिस्सेदारों को कुछ अधिक रुपया देना पड़ता है अथवा उनका उत्तरदायित्व बढ़ जाता है तो जब-तक वह सब उक्त बात को न मान लें वह उनके ऊपर बाध्य नहीं होती। ऐसी अवस्था मे कम्पनी को उनके हिस्से किसी दूसरे को दिलवा देने चाहिये जिससे कि वह उससे अलग हो सकें।

कम्पनी के कार्य-संचालन के लिये आवश्यक-गुण—उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि किसी कम्पनी के कार्य-संचालन के लिये उसके संचालकों और विशेषकर उसके मुख्य प्रबन्धक को विधान-सम्बन्धी बातों का पूरा ज्ञान होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो

कम्पनी का बहुत-सा काम अधूरा रह जायगा और संचालकों तथा मुख्य प्रबन्धक को जुर्माना देना पडेगा और सज़ा भी हो सकती है। इस एक गुण के अलावा इनमें और जो गुण होने चाहिये वह हम इस अध्याय के आरम्भ में ही दे चुके हैं। एक सफल सचालक और प्रबन्धक मे जो गुण होने चाहियें वह न होने से बहुत-सी कम्पनियों को भग होना पडा है और देश की बहुत हानि हुई है। अतः, जहाँ तक हो हमको गुणी संचालकों और प्रबन्धकों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(७) हिस्सेदारों का अधिकार

यों तो हिस्सेदार ही कम्पनी के मालिक समझे जाते हैं तथा वैधानिक दृष्टि से इनका अधिकार भी सामूहिक रूप से बहुत है अर्थात् हिस्सेदार ही संचालकों का चुनाव करते हैं तथा हर प्रकार के प्रस्तावो पर मत देते हैं, तथा नियम आदि मे फेर-फार कर सकते हैं। परन्तु यह सब होते हुये भी एक साधारण हिस्सेदार जो कम्पनी के दो-चार हिस्सों का मालिक होता है प्रायः अपने इस अधिकार का व्यवहारिक रूप से कोई लाभ नहीं उठा सकता है। क्योंकि साधारणतया वह अपने अधिकार का उपयोग नहीं कर पाता है। इसके कई कारण हैं। प्रायः ऐसा रिवाज होता है कि एक हिस्सा पीछे एक मत लिया जाता है (बहुत-सी कम्पनियों मे ऐसे भी नियम होते हैं कि सौ हिस्सों या किसी निर्धारित संख्या वाले हिस्सों पर केवल एक मत लिया जाय)—इससे जो अधिक हिस्सों के हिस्सेदार होते हैं उन्हीं का बहुमत होता है। एक गरीब हिस्सेदार की दृष्टि में जो दो-चार हिस्सों से अधिक हिस्से नहीं ख़रीद सकता जितना उपयोगी उसका एक या दो हिस्सा होता है उतना ही उपयोगी एक धनी हिस्सेदार की दृष्टि में उसका हज़ार हिस्सा होता है। इस तरह से ग़रीब और धनी के हिस्सो की उपयोगिता प्रत्येक के अपने दृष्टिकोण से अपने-अपने लिये समान होते हुये भी प्रायः ऐसा देखा

गया है कि धनी हिस्सेदार तो अपने मत देने के अधिकार का लाभ सदैव उठा लेते हैं किन्तु ग़रीब हिस्सेदारों के मत साधारण सभाओं में धनी हिस्सेदारों के मत के मुक़ाबिले में सदैव गिर जाया करते हैं। यही धनी हिस्सेदार जो कम्पनी के अधिक हिस्सों के मालिक होते हैं, विशेषतया मत, आदि में इन्हीं का प्रभुत्व रहने के कारण संचालक आदि का चुनाव भी अपनी इच्छानुसार ही करते हैं जिससे वे लोग अपने ऊपर इन्हीं के एहसान का भार सा मानकर इनसे कुछ झुकते हैं और मित्रता, तथा अपनत्व का-सा व्यवहार मानते हैं जिसका फल यह होता है कि इन धनी हिस्सेदारों तथा संचालकों, मैनेजरों आदि में एक गुटबन्दी स्थापित हो जाती है। मतो की संख्या के अनुसार धनी हिस्सेदारो का बहुमत होने के कारण नियम आदि का परिवर्त्तन भी इन्हीं के इच्छानुकूल होता है। इसलिये इनकी गुटबन्दी के कारण ग़रीब हिस्सेदार अपने वैधानिक अधिकार से लाभ उठाने से सदैव वंचित रहते हैं। कम्पनी के कारबार का सारा खेल इसी गुटबन्दी के हाथ में रहता है। इसी गुटबन्दी वाले लोग, सञ्चालक, प्रबन्धक अढ़तिये मंत्री, शाखा मैनेजर आदि बन कर लम्बे वेतन, भत्ता आदि के रूप मे कम्पनी का सारा मुनाफ़ा साफ़ कर देते हैं जिससे ग़रीब हिस्सेदारो के दस रुपये के हिस्से पर दो-चार आना वार्षिक से अधिक मुनाफ़ा नहीं मिलता। प्रायः आधुनिक समय में कम्पनियों की वार्षिक साधारण सभा मे जो वार्षिक विवरण सुनाये जाते हैं वह बहुत संक्षिप्त होते हैं और इसी कारण से हिस्सेदारों को कम्पनी की ठीक-ठीक असलियत नहीं मालूम होती। इस तरह की रिपोर्ट केवल क़ानून से पिण्ड छुड़ाने के लिये ही लिखी जाती है। संचालकगण बहुत सी व्यापारिक भेद की बातें कम्पनी के साधारण हिस्सेदारों से इसलिये छिपाते हैं कि उससे वे कम्पनी की भीतरी दशा में किन्हीं बातो के भन्डाफोड़ होने का डर समझते हैं। संचालकगण समझते हैं कि कम्पनी के इन व्यापारिक

भेदों का साधारण सभा में हिस्सेदारों के सामने खोलना व्यापारिक चतुरता के विरुद्ध है। परन्तु उचित तो यही है कि जब कम्पनी सार्वजनिक पूँजी से चल रही है तो उसकी कोई बात हिस्सेदारों से छिपाई न जाय तथा हर बात का विस्तृत ब्योरेवार सत्य-सत्य वर्णन वार्षिक विवरण में दिया जाया करे जिससे कम्पनी की साख हिस्सेदारों के प्रति सदैव बढ़ती रहे।

---

५. कम्पनी की इतिक्रिया

(१ कम्पनी की इतिक्रिया के अर्थ और उसके कारण (२) स्वेच्छा से इतिक्रिया (३) परेच्छा से इतिक्रिया (४) इतिक्रिया की अवस्था में रुपया भरने वाले (५) इतिकर्ता की नियुक्ति (६) इतिक्रिया का क्रम (७) इतिक्रिया की अवस्था में भुगतान का क्रम (८) संचालकों और प्रबन्धक अढ़तियों की बेईमानी के कारण कम्पनी की इतिक्रिया।

संसार की सभी वस्तुएँ अनित्य हैं। जिसकी उत्पत्ति हुई है उसका विनाश भी अवश्य होता है। तीसरे अध्याय में हम यह देख आये हैं कि एक कम्पनी का उत्तराधिकार चिरस्थाई होता है। अतः, जब एक साझा उसके साझियों की मृत्यु, इत्यादि से भंग हो जाता है कम्पनी उसके सदस्यो की मृत्यु, इत्यादि से भंग नहीं होती है। यह ठीक है किन्तु समय के फेर से लगातार घाटा पडने पर कम्पनियो को भी भंग होना पड़ता है।

(१) कम्पनी की इतिक्रिया के अर्थ और उसके कारण

किसी कम्पनी के भङ्ग होने को उसकी इतिक्रिया होना कहते हैं। इतिक्रिया (Liquidation) और दिवाले (Bankruptcy) में अन्तर है। इतिक्रिया का अर्थ है कम्पनी का भंग होना और दिवाले का अर्थ है उसकी ऐसी अवस्था मे होना कि वह कर्जदारो का ऋण न दे सके। इतिक्रिया ऐसी अवस्था में भी हो सकती है कि जब कम्पनी ऋणदाताओं का पूरा ऋण दे सकती है और ऐसी अवस्था में भी जब वह ऐसा नहीं कर सकती है। अतः, इतिक्रिया दिवाले से अधिक व्यापक शब्द है। दिवाले का फल इतिक्रिया अवश्य है किन्तु इतिक्रिया विना दिवाले के भी हो सकती है। इतिक्रिया कम्पनी के सदस्यों की स्वेच्छा से अथवा परेच्छा से हो सकती है।

(२) स्वेच्छा से इतिक्रिया

कम्पनी विधान के अनुसार किसी कम्पनी की इतिक्रिया उसकी स्वेच्छा से निम्न अवस्थाओं में हो सकती है।

(१) जब उसके नियमों में यदि कोई अवधि दी है और वह समाप्त हो गई है अथवा ऐसी कोई बात लिखी है कि अमुक काम के समाप्त हो जाने पर कम्पनी तोड़ दी जायगी और वह काम समाप्त हो गया है तो उसके सदस्य अपनी साधारण सभा में एक साधारण प्रस्ताव पास करके उस कम्पनी को तोड़ सकते हैं। बहुत सी कम्पनियाँ प्रदर्शनी आदि करने के लिये खड़ी की जाती हैं, जब वह प्रदर्शनी आदि समाप्त हो जाती है तो ऐसी कम्पनियाँ भी भंग कर दी जाती हैं। अथवा यदि एक कम्पनी किसी खदान का काम करने के लिये खड़ी की जाती है तो खदान के बन्द होते ही वह कम्पनी भंग हो जाती है।

(२) जब कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पास करके यह निश्चय कर देती है कि कम्पनी तोड़ दी जाय। ऐसा प्रायः तब होता है जब एक कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी से मिल जाती है अथवा उससे किसी तरह का सहयोग करके अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खो देती है। इस प्रकार जब कोई कम्पनी भंग होती है तब उसका एकीकरण (Amalgamation), शोषण (Absorption) अथवा पुनर्निर्माण (Reconstruction) होता है। जब दो या दो से अधिक कम्पनियाँ अपना व्यक्तित्व खोकर एक नई कम्पनी के नाम से काम करना प्रारम्भ करती हैं तब उसको एकीकरण कहते हैं। इसके विपरीत यदि एक कम्पनी चलती रहती है और दूसरी अपना व्यक्तित्व खोकर उसमे मिल जाती है तब हम उसको शोषण कहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक बड़ी कम्पनी अनेको कम्पनियो को उनमें से प्रत्येक के इतने हिस्सों को खरीद कर जितनो से उसके हाथ में उनका प्रभुत्व आ जाता है उन कम्पनियों का शोषण कर लेती है। इस बड़ी कम्पनी को प्रभुत्व

प्राप्त (Holding) कम्पनी कहते हैं। हमारे देश में इलाहाबाद बैंक का पी० ओ० बैंक ने किसी समय इसी तरह से शोषण किया था और चार्टर्ड बैंक ने कर रक्खा है। रह गया कम्पनियो का पुनः निर्माण, वह तब होता है जब कोई पुरानी कम्पनी भग कर दी जाती है और उसके स्थान पर एक नई कम्पनी खड़ी कर दी जाती है। मान लीजिये कि किसी कम्पनी ने अपने सब हिस्सेदारों की पूरी रक़म प्राप्त कर ली है और तो भी उसके पास पूँजी की कमी है। ऐसी अवस्था में एक नई कम्पनी बनाकर उसके हिस्से पुरानी कम्पनी में पूरे भरे हिस्सो से इस तरह से परिवर्तित किये जा सकते हैं कि उन पर और रक़म शेष लेनी रहे। अर्थात् इस नई कम्पनी में पुरानी कम्पनी के हिस्सों से बड़ी रक़म के हिस्से निकाले जाते हैं। जब किसी कम्पनी को उसके योजना-पत्र के दिये गये अधिकारों से उसको जो व्यापार-क्षेत्र प्राप्त है उसको बढ़ाना है अथवा कम्पनी का कार्यक्षेत्र (Domicile) बदलना है अथवा जब कर्जदारों से ऐसा कोई समझौता हो जाता है कि वह अपने ऋण के स्थान पर कम्पनी के हिस्से ले लें अथवा जब कम्पनी की अधिकारित पूँजी घटानी है तब भी कम्पनी का पुनः निर्माण किया जाता है। यहाँ पर यह याद रखना चाहिये कि पुनः निर्माण और पुनः संगठन में अंतर है। पुनः संगठन हिस्सो को एकत्रित करके अथवा कुई प्रकार के हिस्सों के अधिकार बदल करके होता है। वास्तव मे पुनः निर्माण का मुख्य कारण किसी कम्पनी की असमर्थ अवस्था होती है और पुनः संगठन का कारण उसकी उपयोगिता वृद्धि होती है। पुनः संगठन में कम्पनी के भंग होने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु पुनः निर्माण में होती है।

उपरोक्त दोनों प्रकार की इतिक्रिया को सदस्यो की स्वेच्छा से इतिक्रिया होना कहते हैं। यह तभी होता है जब संचालक-गण इस बात को घोषित कर देते हैं कि वह तीन वर्ष के अन्दर कम्पनी के ऋण-दाताओं का कर्ज चुका देंगे। स्वेच्छा से काम समेटने का एक और

तरीका है और वह है ऐसी अवस्था मे जब कम्पनी के ऋणदाताओ का पूरा रुपया न दिया जा सके।

(२) कभी-कभी किसी कम्पनी के सदस्य जब यह देखते हैं कि वे अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकते हैं अर्थात् कर्जदारो को रुपया नहीं दे सकते हैं तब वह एक असाधारण प्रस्ताव पास करके कम्पनी को भंग कर देते हैं। ऐसी अवस्था में कम्पनी के ऋणदाताओं की भी एक बैठक बुलानी पडती है जिसमें वह लोग भी कम्पनी की इतिक्रिया का प्रस्ताव पास करते हैं।

(३) परेच्छा से इतिक्रिया

परेच्छा से इतिक्रिया के अर्थ हैं अदालत के द्वारा कम्पनी का भङ्ग किया जाना। अदालत के द्वारा कोई कम्पनी तभी भङ्ग की जाती है जब या तो कम्पनी स्वयम् अथवा उसका कोई ऋणदाता अथवा कम्पनी के भङ्ग होने पर जिनको रुपया भरना पड़ता है उनमें से कोई, अथवा कम्पनी का रजिस्ट्रार किसी कम्पनी को भङ्ग करने की प्रार्थना अदालत में करता है। यह प्रार्थना निम्न अवस्थाओं में हो सकती हैं :—

(१) यदि कम्पनी ने एक विशेष प्रस्ताव द्वारा यह पास कर दिया है कि वह अदालत द्वारा भङ्ग कर दी जाय।

(२) यदि कम्पनी की वैधानिक बैठक नहीं हुई है।

(३) यदि कम्पनी अपने संगठन की तारीख से एक वर्ष के अन्दर व्यापार नहीं आरम्भ कर देती है।

(४) यदि एक निजू कम्पनी के सदस्यों की संख्या दो से भी कम और एक सार्वजनिक कम्पनी के सदस्यों की संख्या सात से भी कम हो जाती है।

(५) यदि कम्पनी अपना ऋण नहीं दे सकती है। सच पूछिये तो यह बात बड़ी कठिनता से साबित हो सकती है। हाँ, कम्पनी विधान

इसके दो अन्य प्रमाण मानता है। एक तो जब किसी ऋणदाता को कम्पनी से ५००) या इससे अधिक पाना है और वह कम्पनी के रजिस्टर्ड दफ्तर में ऐसी माँग पेश करने के तीन सप्ताह के अन्दर रुपया नहीं पा जाता है। दूसरे जब कोई डिग्री-प्राप्त ऋणदाता अपनी डिग्री का रुपया नहीं प्राप्त कर सकता और डिग्री का रुपया वसूल करने वाला अफसर अदालत से यह कहता है कि कम्पनी से डिग्री का रुपया नहीं प्राप्त हो सका है।

(६) यदि अदालत को उसके सामने जो वाकयात रक्खे गये हैं उनसे इस बात का विश्वास हो जाता है कि कम्पनी को भङ्ग कर देना ही चाहिये। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि कम्पनी का व्यापार अवैधानिक हो गया है, अथवा वह केवल हानि पर ही चल सकती है।

(४) इतिक्रिया की अवस्था में रुपया भरने वाले

इतिक्रिया की अवस्था मे रुपया भरने वाले उस कम्पनी के सदस्य होते हैं। यदि कम्पनी हिस्सो के परिमित दायित्व की है तो हिस्सेदारों को अपने हिस्सों की वह रकम देनी पड़ती है जो उन पर बाकी है अर्थात् जिसकी उस समय तक मॅगनी नहीं हुई है। और यदि कम्पनी जमानत की परिमित दायित्व की है तो सदस्यो को अपनी जमानत का रुपया भरना पड़ता है। अथवा यदि उसके सदस्यों के पास हिस्से भी हैं और उनके अतिरिक्त उनके ऊपर एक परिमित जमानत की जोखिम भी है तो उनको हिस्सों के और उस जमानत के रुपये भरने पड़ते हैं। इन लोगों को केवल उतना ही रुपया देना पड़ता है जितने से कम्पनी का ऋण चुक जाय और रुपया हर हालत में उनके परिमित दायित्व तक ही परिमित रहता है। यदि सदस्यों के रुपयो से कम्पनी के ऋणदाताओं का कर्ज नहीं चुक पाता तो फिर ऐसे लोगों से रुपया भराया जाता है जो उसकी इतिक्रिया की कार्यवाही के आरम्भ होने की तारीख से एक वर्ष पहिले तक उसके सदस्य रहे हैं किन्तु अब नहीं

है। लेकिन इनसे केवल उतना ही रुपया लिया जा सकता है जो उनके संभय का देना बाकी है और वह भी उस हद तक जिस हद तक उनके ऊपर हिस्सों इत्यादि का दायित्व बाक़ी था।

(५) इतिकर्ता की नियुक्ति

किसी कम्पनी की इतिक्रिया पर उसकी इतिक्रिया के लिये जो अफ़सर नियुक्त किया जाता है उसको इतिकर्ता (Liquidator) कहते हैं। जब कम्पनी के हिस्सेदार स्वयम् अपने प्रस्ताव पास करके कम्पनी को भङ्ग करते हैं वे ही उसके इतिकर्ता को नियुक्त कर देते हैं। हाँ, जब कम्पनी ऋणदाताओं का ऋण देने की क्षमता नहीं रखती तब ऋणदाता यदि चाहते हैं तो अपना मनमाना इतिकर्ता नियुक्त करते हैं। जब अदालत के आदेश से कोई कम्पनी भङ्ग की जाती है तब अदालत ही उसका इतिकर्ता नियुक्त कर देती है जो इतिकर्ता को नियुक्त करता है वही उसका मेहनताना भी तै कर देता है।

(६) इतिक्रिया का क्रम (Procedure)

इतिक्रिया का क्रम उसी दिन से आरम्भ होता है जिस दिन इति-क्रिया का प्रस्ताव पास किया जाता है अथवा जिस दिन इतिक्रिया की प्रार्थना पर अदालत सुनवाई आरम्भ करती है। यदि इतिक्रिया का प्रस्ताव पास किया गया है तो ऐसे प्रस्ताव के पास करने की तारीख के दस दिन के अन्दर इस इतिक्रिया की सूचना प्रान्तीय गज़ट में और कुछ समाचार-पत्रों में अवश्य दे देनी चाहिये अन्यथा कम्पनी के प्रबन्धक पर पचास रुपया प्रति दिन जुर्माना लगता है। और यदि यह अदालत की आज्ञा के अनुसार हुई है तो जिस दिन यह आज्ञा हुई है उस दिन से एक माह के अन्दर इसकी सूचना कम्पनी को और इस आज्ञा को कराने वाले प्रार्थी को कम्पनी के रजिस्ट्रार के यहाँ भेज देनी चाहिये। तब कम्पनी का रजिस्ट्रार इसको अपने यहाँ लिख लेता है और प्रान्तीय गज़ट में इसकी सूचना दे देता है।

यदि किसी कम्पनी की इतिक्रिया उसके सदस्यों की स्वेच्छा से हो रही है तो उसके संचालकों को स्वयम् ही उसकी आर्थिक स्थिति का एक विवरण-पत्र बना कर उसके सदस्यों के सामने रखना होता है। और यदि उस कम्पनी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है अर्थात् वह कम्पनी ऋणदाताओं का पूरा ऋण नहीं चुका सकती है तो उसके ऋणदाताओं की भी जो बैठक बुलाई जाती है उसके सामने भी यह रखना पड़ता है। इसी के आधार पर तो ऋणदाताओं को यह मालूम होता है कि कम्पनी उनका रुपया पूरे तौर से नहीं चुका सकती है, अतः, उन्हें उसे भङ्ग करने में उसके सदस्यों की सहायता करनी चाहिये। हाँ, जब अदालत के आदेश के अनुसार किसी कम्पनी को भङ्ग किया जाता है तब अवश्य यह विवरण-पत्र ऐसे आदेश के मिलने तक के समय तक नहीं बन पाता है। अतः, इसके लिये कम्पनी-विधान की एक धारा में यह लिखा है कि उपरोक्त आदेश निकलने की तारीख के २१ दिन के अन्दर एक ऐसी विवरण-पत्रिका अवश्य तैयार हो जानी चाहिये और इतिकर्ता के पास पहुँच जानी चाहिये। इस विवरण-पत्र में निम्न सूचनायें रहती हैं:—

(१) कम्पनी की सम्पति का विवरण और यह कि उसके पास कितना नकद हाथ में है और कितना बैङ्क में।

(२) कम्पनी के ऊपर कितना ऋण है और उसके क्या दायित्व हैं।

(३) कम्पनी के ऊपर जितना ऋण है उसमें से कितने के लिये कोई जमानत है और कितने के लिये कोई जमानत नहीं है। जिसके लिये जमानत है वह जमानत क्या है।

(४) कम्पनी का कितना रुपया दूसरों के ऊपर बाकी है और उसमें से कितना वसूल हो जाने की सम्भावना है।

यदि कम्पनी में ऋण-शोधन की क्षमता नहीं है और उसकी इति॰ क्रिया उसके सदस्यों की इच्छा से हो रही है तो उसके ऋणदाताओं

की बैठक बुलाई ही जा चुकी होगी। किन्तु यदि यह अदालत के आदेश से हो रही है तो इतिकर्ता को चाहिये कि वह अदालत के उपरोक्त आदेश निकलने की तारीख के एक माह के अन्दर उनकी बैठक बुला ले। ऋणदाताओं की बैठक में कम्पनी की आर्थिक अवस्था का विवरण रक्खा जाता है और यह मालूम किया जाता है कि उन लोगों की क्या इच्छा है। कम्पनी के ऋणदाता अपनी बैठक में इतिकर्ता के काम का निरीक्षण करने के लिये निरीक्षकों की एक कमेटी भी बना सकते हैं। अदालत के आदेश से जब किसी कम्पनी को भङ्ग किया जाता है तब तो इस कमेटी में अधिक से अधिक बारह सदस्य हो सकते हैं और जब स्वयम् सदस्यों की इच्छा से ऐसा होता है तो इसमे अधिक से अधिक पाँच सदस्य तो ऋणदाताओं के और पाँच कम्पनी के सदस्यों के होते हैं। हाँ, कम्पनी के सदस्यों के द्वारा जो सदस्य नियुक्त होते हैं उनके विषय मे यदि ऋणदाता चाहें तो आपत्ति करके उनको बदलवा सकते हैं।

जब अदालत के आदेश से कोई कम्पनी भङ्ग की जाती है तब अदालत के आदेश की तारीख के चार माह के अन्दर इतिकर्ता को अदालत के सामने कम्पनी की आर्थिक अवस्था को रखना पड़ता है। साथ ही वह यह भी बतलाता है कि उसके विचार से कम्पनी का काम असफल होने के क्या कारण हैं और वह उसके सचालकों तथा प्रबन्धकों पर उनकी बदनीयती का तो सन्देह नहीं करता है। यदि बदनीयती का सन्देह है तो संचालकों, इत्यादि को अपनी सफ़ाई पेश नी पड़ती है, अन्यथा उनको सज़ा दी जा सकती है।

इतिकर्ता को जब वह चाहे कम्पनी के ऋणदाताओं और उन लोगों की बैठकें बुलाने का और उनकी इच्छा मालूम करने का अधिकार है जिनको कम्पनी की इतिक्रिया के सम्बन्ध में रुपया भरना है। इसके अलावा यदि ऋणदाताओं में से इतने ऋणदाता जिनका रुपया कम्पनी के पूरे कर्ज़ का दशमांश है अथवा ऐसे व्यक्तियो

में से जिनको कम्पनी की इतिक्रिया के सम्बन्ध में रुपया भरना है इतने व्यक्ति जिनको ऐसा रुपया भरने की जो रक़म है उसका दशमांश देना है उससे अपनी बैठकें बुलाने को कहते हैं तो भी उसको उनकी बैठकें बुलानी पड़ती हैं। जब किसी कम्पनी की इतिक्रिया उसके सदस्यों की अपनी इच्छा से होती है और इसमें बहुत समय लगता है तब इतिकर्ता के लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह उनकी वार्षिक बैठकें बुलाता रहे।

इतिकर्ता के बहुत बड़े अधिकार हैं। उसकी नियुक्ति के बाद कम्पनी के संचालको के समस्त अधिकार उसी के पास आ जाते हैं। कम्पनी की सारी सम्पत्ति की देख-रेख वही करता है और जैसे जैसे सम्भव होता है वही उनके दाम खड़े करता है। वही उन लोगों से भी रुपया वसूल करता है जिनको कम्पनी को रुपया देना है और वही यदि आवश्यकता पड़ती है तो उनसे भी रुपया भरवाता है जिनको कम्पनी की इतिक्रिया के सम्बन्ध मे रुपया भरना पड़ता है। उसको कम्पनी का पूरा हिसाब-किताब भी रखना पड़ता है और यदि वह अदालत के द्वारा नियुक्त हुआ है तो उसको हर वर्ष जब तक कि कम्पनी की इतिक्रिया पूरी न हो जाय दो बार अदालत के सामने अपने द्वारा वसूल किये और दिये गये रुपयो का हिसाब पेश करना पड़ता है।

यदि कम्पनी में ऋण-शोधन क्षमता के होते हुये भी उसके सदस्यों की स्वेच्छा से उसकी इतिक्रिया हुई है तो जब उसका काम पूरी तरह से सिमट जाता है तब उसके इतिकर्ता को उसके सदस्यों की एक अन्तिम बैठक बुलाकर उसका सारा हिसाब-किताब समझा देना पड़ता है साथ ही ऐसी बैठक की तारीख़ के एक सप्ताह के अन्दर रजिस्ट्रार को इसकी सूचना और हिसाब की एक नक़ल भेज देनी पड़ती है। यदि उपरोक्त बैठक में सदस्यों की अधिक अनुपस्थिति के कारण काम नहीं हो सका है तो भी यह सूचना और हिसाब रजिस्ट्रार के पास भेजना आवश्यक है और वह इनको पाने के बाद अपने

यहाँ इनका लेखा कर लेता है और उस दिन से तीन माह की समाप्ति पर कम्पनी की अन्तिम समाप्ति समझ लेता है। यदि कम्पनी में ऋण-शोधन क्षमता नहीं थी और उसके सदस्यों की इच्छा ही से उसकी इतिक्रिया हुई है तो उसके सदस्यों की बैठक के अलावा उसके ऋणदाताओं की भी अन्तिम बैठक बुलाना आवश्यक है। हाँ, इस अवस्था में रजिस्ट्रार के पास सूचना भेजने के लिये जो समय का प्रतिबन्ध है वह नहीं रहता। और यदि अदालत के आदेश से कम्पनी की इतिक्रिया हुई है तो इतिकर्ता अदालत को इसकी सूचना देता है और वह उसके भङ्ग होने की घोषणा करती है। साथ ही इतिक्रिया की तारीख़ के पन्द्रह दिन के अन्दर इतिकर्ता इसकी सूचना रजिस्ट्रार को दे देता है और वह उसको अपने यहाँ लिख लेता है।

(७) इतिक्रिया की अवस्था में भुगतान का क्रम

इतिक्रिया की अवस्था में भुगतान का निम्न क्रम है :—

(१) सुरक्षित ऋण—वह ऋण जिसके लिये किसी सम्पत्ति को सुरक्षित कर दिया गया है, अर्थात् जो किसी बन्धक के आधार पर है। ऐसे ऋणदाता को कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इतिकर्ता यदि किसी बन्धक सम्पत्ति को बेच कर किसी दूसरे का भी ऋण चुका देता है तो भी उपरोक्त ऋणदाता को उस सम्पत्ति को वापस ले कर फिर से बेचने का अधिकार रहता है। हाँ, यदि वह चाहे तो पहिले ही से ऐसी सम्पत्ति को बिकने से रुकवा दे। यदि ऐसा ऋणदाता यह देखता है कि जो सम्पत्ति बन्धक मे है उससे उसका पूरा रुपया नहीं मिल सकेगा तो वह या तो उसको छोड़ कर अपने को अरक्षित ऋण देने वाले व्यक्तियों के साथ में करवा लेता है अथवा पहिले उस सम्पत्ति से जितना वसूल हो सके उसको वसूल कर लेता है और फिर शेष के लिये अरक्षित ऋण देने वाले व्यक्तियों के साथ मे हो लेता है। कहना न होगा यह बाद वाला तरीका उसके लिये अधिक लाभदायक है।

(२) इतिक्रिया के सम्बन्ध के जितने व्यय हैं और इसमें इतिकर्ता का मेहनताना भी सम्मिलित है वह उपरोक्त के बाद सबसे पहिले चुकाये जाते हैं।

(३) इसके बाद ऐसे भुगतान होते हैं जिनको सर्व प्रथम होने वाले भुगतान (Preferential Payments) कहते हैं। ये निम्नाङ्कित हैं :—

(अ) सरकार का (इसमें केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानिक सभी सरकारें सम्मिलित हैं) कोई ऐसा कर इत्यादि जो इतिक्रिया के प्रारम्भ होने की तारीख़ से एक वर्ष के अन्दर देय हो गया हो।

(ब) किसी क्लर्क अथवा नौकर का ऐसा वेतन जो इतिक्रिया होने के दो मास पहिले के अन्दर का है और प्रत्येक क्लर्क अथवा नौकर के पीछे १०००) से अधिक नहीं है।

(स) मज़दूरों की मज़दूरी यदि वह प्रत्येक मज़दूर के पीछे ५००) से अधिक नहीं है और उपरोक्त अवधि की ही है।

(द) कम्पनी के किसी कर्मचारी को क्षतिपूरक विधान के अनुसार यदि कोई क्षति की रकम देनी है।

(ध) कम्पनी के कर्मचारियों के किसी ऐसे कोष के रुपये जैसे प्रावीडेन्ट फण्ड, पेन्शन फण्ड, ग्रेचुटी फण्ड, इत्यादि।

(न) ऐसे जमीन के मालिक (Landlord) का किराया जिसने उसके लिये कम्पनी की कोई सम्पत्ति तीन माह पहिले अपने अधिकार में करवा ली थी।

ये ऋण पूरे-पूरे चुकाये जाते हैं, और यदि ऐसा नहीं हो सकता तो बराबर अनुपात से चुकाये जाते हैं।

(४) ऐसे ऋण-पत्र जिनके लिये चालू सम्पत्ति बन्धक थी अथवा जिनका कम्पनी की इतिक्रिया के कारण रुपया वापस मिलना चाहिये।

(५) ऐसे ऋण जिनके लिये कोई जमानत नहीं थी।

(६) उपरोक्त भुगतान के बाद भी यदि कुछ शेष रहता है तो वह हिस्सेदारों मे उनके अधिकार के अनुसार वितरण हो जाता है।

(८) संचालकों और प्रबन्धक अढ़तियों की बेईमानी के कारण कम्पनी की इतिक्रिया

कुछ संचालक और प्रबन्धक कम्पनी-विधान के संशोधित नियमों से भी बारीकी के साथ बचते हुए किसी कम्पनी का सारा लाभ स्वयम् ही शोषित करते रहते हैं। पहिले तो यह लोग अपने इष्ट-मित्रो को नौकर बनाकर लंबे-लबे वेतन देते हैं और स्वयम् भी लंबे-लबे वेतन तथा अन्य खर्चे लेते रहते हैं। यहाँ तक तो कोई हर्ज नहीं है किन्तु विशेष बात तो यह है कि इनके इष्ट-मित्रों को काम करना भी नहीं आता और ये स्वयम् कुछ ध्यान देते नहीं। अतः, कम्पनी का काम दिन पर दिन गिरता जाता है और उसको लाभ न होकर हानि होती रहती है। इससे हिस्सेदारों को कोई मुनाफ़ा नहीं मिलता और उनके हिस्सों की कीमतें घट जाती हैं। कभी-कभी यदि कम्पनी को मुनाफ़ा भी होता है तो भी यह लोग उसको नहीं दिखाते और अपकर्ष इत्यादि में अधिक लगा लेते हैं। ऐसी हालत में जब कम्पनी के हिस्सों की दर गिर जाती है तब यह स्वयम् उनको ख़रीद लेते हैं। जो हो, इस अवस्था में तो यह लोग केवल हिस्सेदारो ही को धोखा देते हैं और स्वयम् लाभ उठाते रहते हैं और अन्त मे कम्पनी को अपनी बना लेते हैं; कम्पनी को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता। किन्तु पहिली अवस्था में तो कम्पनी को नुक़सान पहुँचता है और उसको भङ्ग करना पड़ता है। जो हो दोनों ही अवस्थाएँ हिस्सेदारों के लिये तो हानिकर हैं ही, और क्योंकि भारतवर्ष में ऐसा बहुत होता रहा है, अतः, साधारण लोगो की राय इन कम्पनियों के हिस्सो के विरुद्ध हो

गई है । वास्तव मे यह बहुत ही शोक की बात है । यह देश तो आधुनिक व्यापार में बहुत ही पिछड़ा हुआ है । अतः, यहाँ पर ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिये जिससे कि यहाँ के सर्वसाधारण को कम्पनियों के विरुद्ध कोई मत बनाना पड़े । यह भविष्य के लिये अच्छा नहीं है । देश का व्यापार तो कम्पनियो के द्वारा ही बढ़ेगा और उनके हिस्सों को सर्वसाधारण ही मे बेचना पड़ेगा । यह अवश्य है कि इस समय यहाँ पर कुछ बड़े-बड़े आदमी हैं जो स्वयम् बहुत से कारबार खोल सकते हैं, किन्तु उनकी शक्ति आख़ीर मे तो परिमित ही है। और बात तो यह है कि हमको इस देश को ऐसा नहीं बनाना है कि कुछ लोग बहुत ही धनी हो जायँ और व्यापार इत्यादि पर उन्ही का एकाधिकार रहे । हमें तो इस देश में सर्वसाधारण को उठाना है । उन्हीं की छोटी-छोटी रक़मो को कम्पनियो मे लगाना है । इससे उनका भी लाभ होगा और रुपया लगाने का एक नया ढङ्ग फैलेगा तथा व्यापार को भी पर्याप्त पूँजी मिलेगी । यहाँ पर यह न भूलना चाहिये कि बहुत-सी छोटी-छोटी रक़में मिल कर बहुत बडी रक़मे हो जाती हैं । अतः, जहाँ तक हो सके, ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिये जिससे हिस्सों के द्वारा पूँजी एकत्रित करने की इस प्रणाली को यहाँ पर कोई धक्का लगे । सच बात तो यह है कि किसी देश का उत्थान और पतन वहाँ के मुखियाओ पर निर्भर रहता है, चाहे यह मुखिया राजनीति के मुखिया हों, चाहे धर्म के, चाहे समाज के और चाहे व्यापार के । हमारे व्यापार के मुखियों को भी बहुत ही ईमानदार होना चाहिये ।

---

६. आफ़िस का संगठन

(१) आफ़िस की प्राचीनता तथा उसके रूप (२) आफिस के संगठन तथा उसके विभाग (३) आफिस के लिये लाभदायक मशीनें (४) पत्रों की नक़ल लेने के ढङ्ग (५) पत्रों के फाइल करने और उनके संकेत के ढङ्ग (६) शीघ्र सूचना भेजने के ढङ्ग (७) आफिस के कर्मचारियों के साथ व्यवहार।

अभी तक हमने जिन बातों का अध्ययन किया है वह सब ऐसी हैं जिनकी जानकारी एक ऐसे व्यक्ति के लिये बहुत ही आवश्यक है जो व्यापार में प्रवेश करना चाहता है। किन्तु अब हम यहाँ पर व्यापार की व्यवस्था के सबसे प्रधान अङ्ग, अर्थात् आफ़िस के संगठन का अध्ययन करते हैं।

(१) आफ़िस की प्राचीनता तथा उसके रूप

कुछ लोग यह समझते हैं कि आफ़िस आधुनिक समय की एक नवीन वस्तु है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। आफ़िस के नाम का प्रचार भले ही इस देश मे अंग्रेज़ी राज्य के फैलने के साथ हुआ हो, किन्तु उसका पर्यायवाची फ़ारसी शब्द दफ़्तर तो यहाँ पर मुसलमानी समय से चालू है। इसके और पहिले भी भारतवर्ष में प्राचीन काल से आफ़िसों के संगठन पर बहुत ध्यान रक्खा जाता था। प्रत्येक कोठी की अपनी गद्दी होती थी जिसको चलाने के लिये अनेकों कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। बड़ी-बड़ी कोठियों की शाखाये भी होती थीं और उनकी स्वयम् की गद्दियाँ होती थीं। इन सब में कोष विभाग, माल के क्रय-विक्रय का विभाग, पत्र-व्यवहार का विभाग, हिसाब-किताब का विभाग और प्रबन्ध-विभाग, इत्यादि होते थे। उस समय की आवश्यकता के अनुसार इनका संगठन बहुत ही ऊँचे

दर्जे का था। औरो के विषय में तो शायद तुलना की आवश्यकता नही पडी, किन्तु जहाँ तक हिसाब-किताब के विभाग की बात है, उसके विषय में फ्रान्सीसी यात्री टैवरनियर ने लिखा था कि भारतवर्ष के हिसाब-किताब रखने वाले इतने दक्ष हैं कि रोम के बड़े से बड़े हिसाब-किताब रखने वाले इनकी शागिर्दी कर सकते हैं। सच पूछा जाय तो यही बात यहाँ के दफ़्तरो के हर विभाग के विषय मे लागू थी। इन दफ़्तरों के सम्बन्ध के जितने कागज़ो की लिखावट का प्रश्न है अथवा उनके प्रयोग और रखने का प्रश्न है वह सभी उस समय के हिसाब से बहुत ही ऊँचे दर्जे का था। हमारे यहाँ हुण्डियों का चलन उस समय था जब पाश्चात्य देशों में कही भी बिलो का नाम भी नहीं मालूम था और यथार्थ तो यह है कि हुण्डी जो काम करती थी बिल वह काम आज भी नहीं कर पाता है। इसके अलावा हुण्डी में रक्षा का जितना ध्यान रक्खा जाता था उतना बिलों और चेक मे आज भी सम्भव नहीं है। हमारे यहाँ की बहियों के और कागज़ों के रखने का भी अपना एक ढङ्ग था। भारतीय कोषाध्यक्ष का मुक़ाबला रुपयों और नोटो के परखने तथा गिनने में आज भी कोई नहीं कर सकता है। पत्रो की लिखावट का, माल के ख़रीदने का, उसकी तौल का, उसके रखने का, उसके बेचने का सभी का एक विशेष ढङ्ग था। लेकिन इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि आज कल के अंग्रेज़ी दफ़्तर ने इधर कुछ दिनों के अन्दर जितनी उन्नति कर ली है, उतनी ही हमारी गद्दियाँ पिछड़ गई हैं। उन्नति तो दूर रही वे तो अवनिति के गड्ढे मे गिरती जा रही हैं, और अब हम लोग यही समझते हैं कि यदि उनका पुनर्निर्माण हो सकता है तो वह अंग्रेज़ी ढङ्ग पर ही हो सकता है।

व्यापार चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो उसमे कोष को सम्भालना ही पड़ता है, माल का क्रय-विक्रय करना ही पड़ता है, कभी-कभी तो पत्र-व्यवहार से भी जान नही बचती, हिसाब-किताब

तो हर हालत में आवश्यक ही है और इन सब के साथ इनके प्रबन्ध की अनेकों बातें हैं। अतः, यह सब काम आफ़िस के द्वारा ही होता है। यह सम्भव है कि आफ़िस निम्नतम श्रेणी का ही हो अथवा अदृश्य या अस्थाई रूप का ही हो किन्तु वह होगा अवश्य। छोटे-छोटे दूकानदार अपना सारा काम स्वयम् ही बिना कोई कर्मचारी रक्खे हुए अथवा आफ़िस का कोई अलग कमरा रक्खे हुए कर लेते हैं। वे अपने रुपयों-पैसों को गल्ले के नीचे रखते हैं, माल इत्यादि को भी वहीं रखते हैं जहाँ वह स्वयम् बैठते हैं, (दूकान का वास्तव में यही अर्थ माना जाता है), उनके जितने पत्र, इत्यादि होते हैं, उन्हें वे एक तार में नत्थी कर देते हैं। उनकी बहियें और उनके कलम एक बस्ते में रक्खे रहते हैं और कहीं-कहीं एक सन्दूक रहती है जिसमें वह बस्ता, दावात, पत्र, इत्यादि नत्थी करने का तार और न मालूम क्या क्या रक्खा जाता है। ऐसे दूकानदार का आफ़िस उसकी दूकान अथवा उसकी सन्दूक के ही रूप में रहता है। इसको हम चाहे अदृश्य कहें और चाहे अस्थाई कहे। जब वह अपना गल्ला गिनता है, अथवा बहियों को फैला कर उनमें लेखे करता है तब उसका आफ़िस दृश्य हो जाता है अन्यथा अदृश्य रहता है। थोड़ी देर के लिये उसका अस्तित्व रहता है और फिर वह अस्तित्वहीन हो जाता है। जो हो आफ़िस का प्रचलित अर्थ तो यही है कि उसकी एक शानदार इमारत हो जिसमें एक बड़ा हाल हो, अनेकों कमरे हों, हर विभाग अलग-अलग हों, हाल में काउन्टर हो, हिसाब-किताब रखने वालों के पास बड़े-बड़े रजिस्टर हों, कोषाध्यक्ष का स्वयम् का स्थान हो, कोष के रखने का स्थान हो, मैनेजर का अलग कमरा हो, पत्र इत्यादि के टाइप करने की मशीनें हों, उनकी नकल करने का और उनको रखने का सामान हो, स्टोर-रूम अलग हो, रिकार्ड-रूम अलग हो, सबके अपने-अपने कर्मचारी हों, उनके बैठने के लिये कुर्सियाँ हों, सामने मेज़ हो, टेलीफ़ोन हो, इत्यादि, इत्यादि।

(२) आफिस का संगठन तथा उसके विभाग

प्रत्येक आफ़िस का अपना संगठन होता है, उसके विभाग होते हैं। सारे आफ़िस का एक प्रधान प्रबन्धक होता है, प्रत्येक विभाग का अपना अध्यक्ष होता है, उसके कर्मचारी होते हैं, सबकी आवश्यकताओं की सब वस्तुयें होती हैं। आफ़िस का प्रधान प्रबन्धक ही आफ़िस की जान है। आफ़िस की नेकनामी और बदनामी उसीकी नेकनामी और बदनामी है। उसको बड़ा ही सजग तथा फुर्तीला होना चाहिये। उसकी स्मृति बड़ी ही तीव्र होना चाहिये। यदि वह ज़रा-सी भूल कर जाता है तो उसका बड़ा भारी दुष्परिणाम हो सकता है। उसकी दृष्टि भी बड़ी पैनी होनी चाहिये। अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही उसको सारे आफ़िस का ध्यान रखना चाहिये। जिधर से वह निकल जाय उधर की सारी बातें उसकी निगाह में चढ़ जानी चाहियें। उसको बहुत अनुभवी भी होना चाहिये। उसके नीचे बहुत से कर्मचारी होते हैं। उन सबकी पृथक-पृथक योग्यता का उसको ज्ञान होना चाहिये; उनकी शक्तियों को समझने की उसमें बुद्धि होनी चाहिये, जिससे कि वह उनकी रुचि के अनुसार उनमें काम बाँट सके। उसको उनकी कठिनाइयों को भी महसूस कर लेना चाहिये और उनसे सहानुभूति रखनी चाहिये।

जहाँ तक किसी आफ़िस के विभागों का प्रश्न है वह तो उसकी आवश्यकता के अनुसार होते हैं, किन्तु साधारणतया वह निम्नाङ्कित हो सकते हैं :—

कोष विभाग—यह विभाग बड़े ही दायित्व का है। इसके अध्यक्ष की नियुक्ति बहुत ही देखभाल के बाद होती है। प्रायः यह ऐसा आदमी होता है कि जिस पर आसानी से विश्वास किया जा सके। अधिकांश में इसकी ज़मानत ली जाती है। कहीं-कहीं तो कोई मातबर आदमी इसकी ज़मानत ले लेता है, अर्थात् इसके बेईमानी करने से अथवा इसकी ग़लती से यदि आफ़िस को कोई क्षति पहुँचती है तो

उसका ज़िम्मेदार यह जमानत लेने वाला व्यक्ति होता है। पश्चिमीय देशों में तो कुछ बीमा कम्पनियाँ यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती हैं, और इसके लिये उनको या तो मालिक या नौकर कोई न कोई कुछ प्रीमियम देता है। हमारे यहाँ जो ज़िम्मेदारी लेते हैं वह कहीं-कहीं तो काम करने वालों के प्रति केवल सहायता के लिये ही ऐसा करते हैं, अथवा कहीं-कहीं पर उनको इसके लिये प्रीमियम भी मिलता है। कहीं-कहीं काम करने वाला स्वयम् कुछ रुपया ज़मानत के तौर पर जमा कर देता है। कहीं-कहीं पर उसकी ज़मानत के लिये कुछ रक़म उसके वेतन से कटती रहती है, और अन्त में जब वह काम से अलग होता है वह कुल रक़म उसको मिल जाती है। कहीं-कहीं पर मालिक भी कुछ रक़म बराबर इसमें मिलाता जाता है। वेतन से कुछ रक़म काट कर जमा करने से और मालिक के उसमें कुछ मिलाने से एक यह लाभ होता है कि जैसे-जैसे कोई कर्मचारी पुराना होता जाता है उसके ज़मानत की रकम बढ़ती जाती है, और वह सतर्क रहता है। अन्त में यह रक़म उसके बुढ़ापे मे काम आती है। वास्तव में यही उसकी गाढ़ी कमाई की बचत होती है।

किसी आफ़िस में कोष के रखने का स्थान भी बड़ा सुरक्षित होना चाहिये। जितने समय कोष कोषाध्यक्ष के पास रहे उतने समय के लिये उसके लिये सन्दूक होने चाहिये, और इन सन्दूकों मे हर तरह के नोटों को, रुपयों को, रेज़गारी को रखने के लिये अलग-अलग खाने होने चाहिये। जहाँ पर कोषाध्यक्ष बैठे कोई ऐसी आड़ होने चाहिये जिससे कि उसके पास में रक्खे हुये रुपयो को कोई निकाल न सके। जब काम समाप्त हो जाय इनको सेफ मे रखना चाहिये और उसके रखने के लिये अलग एक कमरा होना चाहिये। उसमें बहुत ही अच्छा ताला लगना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो उस पर पहरा भी होना चाहिये। प्रधान प्रबन्धक को कभी-कभी रोकड़ सहेज लेनी चाहिये। इससे कोषाध्यक्ष सतर्क रहता है।

किन्तु आजकल यह सब करने की आवश्यकता नहीं भी है। अधिकतर शहरों में बैङ्क हैं, और व्यापारियों के बैङ्क एकाउन्ट हैं। यदि सभी लोग चेक का प्रयोग करते हैं तो आफ़िस में बहुत कम रुपयों को रखना पड़ता है। किन्तु भारतवर्ष में यह बात नहीं है, अतः, यहाँ पर जो रक़म वसूल होती है उसका अधिकांश बैङ्क भेज दिया जाता है। जितने चेक मिलते हैं वह भी अपने ही बैङ्क में भेज दिये जाते हैं, और बैङ्क इनके रुपये वसूल करके व्यापारी के हिसाब में लिख लेता है। अधिकांश भुगतान चेक से करना चाहिये। इससे कोषाध्यक्ष का बहुत-सा समय भी बच जाता है और उसकी जोखिम भी कम हो जाती है। हर भुगतान का साक्षी बैङ्क रहता है और जिसका रुपया मिलना है उसीके नाम का चेक दिया जाता है, अतः, गलत व्यक्ति को भुगतान करने की सम्भावना नहीं रहती है। इतना होने पर भी कोषाध्यक्ष को कुछ रुपया तो लेना और देना ही पड़ता है। इन सब को लिखने के लिये उसके पास एक कैश बुक (रोकड़ बही) रहती है। जो रुपया मिलता है उसको रसीद दी जाती है अतः, उनके प्रतिरूप (Counterfoils) रहते हैं और जो रुपया दिया जाता है उसकी रसीदें ली जाती हैं। यह कैश बुक के लेखो के प्रमाण-स्वरूप रक्खे जाते हैं।

यदि कोषाध्यक्ष के पास बहुत काम रहता है तो उसके सहायक नियुक्त किये जाते हैं। ऐसी अवस्था में एक कोषाध्यक्ष रुपया लेता है, और एक देता है, अथवा एक से अधिक कोषाध्यक्ष रुपया लेते हैं और एक से अधिक देते हैं। कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी रक़मों को देने के लिये एक अलग कोषाध्यक्ष होता है। इसके सम्बन्ध में एक स्थाई रक़म दे देने की प्रणाली (Imprest System) बहुत प्रचलित है। जब यह रक़म समाप्त हो जाती है तब फिर जितनी ख़र्च हो जाती है उतनी फिर दे दी जाती है। इससे हर प्रारम्भ करने के समय एक स्थाई रक़म रहती है। इसका यह लाभ है कि जब-जब एक नई रक़म

दी जाती है तब-तब प्रबन्धक को यह मालूम हो जाता है कि इतना व्यय हुआ है, जिससे इन छोटे-छोटे ख़र्चों पर भी उसकी दृष्टि रहती है। इन पर दृष्टि न रहने से कभी-कभी यह इतने अधिक हो जाते हैं कि व्यापार के लाभ के एक बहुत बड़े भाग का इन्हीं में शोषण हो जाता है। इस प्रणाली के कारण ऐसा नहीं हो पाता है। इन छोटे-छोटे ख़र्चों को जिस किताब में लिखा जाता है उसको पेटी कैश बुक कहते हैं। उसमे हर प्रकार के ख़र्चों के लिये अतिरिक्त खाने भी हो सकते हैं, जिससे हर मद में जो ख़र्च होता है वह भी मालूम होता रहता है।

माल के क्रय-विक्रय का विभाग—माल का क्रय-विक्रय किस प्रकार होता है इस पर तो हम किसी अगले अध्याय में विशेष रूप से विचार करेंगे। किन्तु यहाँ पर हमे यह जान लेना आवश्यक है कि प्रत्येक आफ़िस में इसका अलग एक विभाग होता है। इसके विषय में मालिक और प्रबन्धक अपनी एक नीति निर्धारित कर देते हैं और फिर उसीके अनुसार काम होता रहता है। गोदाम का अध्यक्ष हर माल पर निगाह रखता है और जैसे ही किसी माल की कमी होते देखता है क्रय विभाग के अध्यक्ष को उसकी सूचना दे देता है। जितना माल ख़रीद कर आता है उसके बीजक को वह आर्डर से मिला लेता है, और फिर माल को बीजक से मिला लेता है। इसमें जो कुछ अन्तर पड़ता है उसको वह क्रय विभाग के अध्यक्ष को सूचित कर देता है। विक्रय विभाग के अध्यक्ष की आज्ञा के अनुसार वह सारा माल बिक्री के लिये उस विभाग को भेजता जाता है। जो माल उसको मिलता है उसके आने का और जाने का वह पूरा विवरण स्टाक बुक में रखता है। यदि व्यापार छोटा है तो क्रय का, विक्रय का और माल रखने का सब काम एक ही अध्यक्ष करता है। आवश्यकता के अनुसार उसको सहायक, इत्यादि भी मिल जाते हैं। स्टाक पर प्रधान प्रबन्धक की बहुत सूक्ष्म दृष्टि रहनी चाहिये। उसको इस बात का ध्यान रखना चाहिये

कि कोई चीज़ वहाँ से ग़ायब न हो जाय। साथ ही उसको इसका भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई वस्तु ख़राब न हो और न कोई वस्तु ऐसी रह जाय जो बहुत दिनों तक नहीं बिक पाती है। इसके लिये वह माल को खाली करने की बिक्री (Clearance Sale) करता है। माल के लिये जो आर्डर दिया जाता है उसमें अनेकों बातों का ध्यान रखना पड़ता है। अतः, उसको भी प्रधान प्रबन्धक की दृष्टि से निकलना चाहिये। माल की कीमत का जो भुगतान हो उस पर भी उसकी निगाह रहनी चाहिये। बिक्री में यदि सम्भव हो तो एक कीमत की नीति बरतनी चाहिये। इससे ग्राहकों का विश्वास भी जम जाता है और ग़बन की भी सम्भावना कम हो जाती है। इसके लिये हर बिक्री की चीज़ पर उसके दाम का टिकट लगा देना चाहिये। नक़द बिक्री के दैनिक रजिस्टर का निरीक्षण भी प्रधान प्रबन्धक को स्वयम् करना चाहिये। इसी तरह से उधार बिक्री के रजिस्टर का भी निरीक्षण उसको अवश्य करना चाहिये। जिन लोगों को उधार माल बेचा जाय पहिले उनकी आर्थिक अवस्था का पता लगा लेना चाहिये। इसके लिये उनसे किसी ऐसे व्यक्ति का नाम मँगाया जाता है जो उनकी अवस्था के विषय में बता सकता है, अथवा उनकी पिछले वर्ष की बैलन्स शीट मँगाई जाती है। बैङ्क भी इस काम को कर देते हैं। उनके स्वयम् के दफ़्तर सभी जगह होते हैं, अथवा उनका कोई न कोई सम्बन्ध हर जगह रहता है। वह वहाँ से अपने ग्राहकों के लिये उन लोगों की आर्थिक अवस्था का पता लगा देते हैं जिनसे वह व्यापार करना चाहता है। जिन लोगों को उधार माल दिया जाता है उनसे रुपया प्राप्त करने का भी प्रयत्न करना चाहिये।

पत्र-व्यवहार का विभाग—किसी आफ़िस का यह विभाग बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। उस आफ़िस को अथवा उसके प्रबन्धक को अथवा मालिक को तो वही लोग देखते हैं जो उसके यहाँ आते हैं। किन्तु हर व्यापारी का सम्बन्ध तो दूर-दूर रहता है। इनसे उसको जो

कुछ भी सम्पर्क होता है वह पत्रों के द्वारा ही होता है। अतः, किसी आफ़िस के प्रतिनिधि उसके पत्र ही होते हैं। यदि वे प्रभावशाली हैं तो फ़र्म का नाम ऊँचा होता है और यदि वे प्रभावहीन तो उस फर्म की अवस्था सुधरने के बजाय गिरती जाती है। पत्र एक विशेष नापके काग़ज़ पर लिखे जाने चाहियें। यदि वह टाइप हो तो बहुत ही अच्छा है। पत्र का काग़ज़ साफ़ और चिकना होना चाहिये। व्यापारिक पत्रों का काग़ज़ सफ़ेद होना चाहिये। रंगीन काग़ज़ पर व्यापारिक पत्र अच्छे नहीं लगते हैं। उन पर फ़र्म का नाम और पता छपा रहना चाहिये। बड़ी-बड़ी फ़र्मों के पत्रों के काग़ज़ों पर उनके टेलीफ़ोन का नम्बर, उनका तार का पता, तार में वे जिस कोड की भाषा प्रयोग में लाते हैं उसका नाम, प्रत्येक पत्र का हवाला देने का कोई संकेत, और कभी-कभी तो उन चीज़ों के नाम भी उस पर छपे रहते हैं जिनमें वह व्यापार करता है। बहुत से लोगों से तो पत्र-व्यवहार आफ़िस स्वयम् आरम्भ करता है और बहुत से लोगों के जब पत्र आते हैं तब उनका उत्तर दिया जाता है।

प्रत्येक आफ़िस की जो डाक होती है वह या तो उसके यहाँ स्वयम् आ जाती है, किन्तु इसमें देर लगती है। डाकिया तो अपने हिसाब से ही आता है। अतः, अधिकाश में व्यापारी लोग अपनी डाक रोज़ की रोज़ समय से डाकख़ाने से मँगा लेते हैं। अधिकतर यह डाक सबेरे ही मिल जाती है। अतः, उसी दिन की दिन उनका उत्तर भी दे दिया जाता है। पत्रों को प्रधान प्रबन्धक को स्वयम् खोलना चाहिये। इससे उसको अपने आफ़िस के काम का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। फिर उनको एक ऐसे क्लर्क के पास भेज देना चाहिये जो उनको रजिस्टर मे चढ़ा देवें। इसके यह अर्थ हैं कि वह उन पर उनके आने की तारीख़ की मोहर लगायें और उनका एक संक्षिप्त हवाला प्राप्त पत्रो के रजिस्टर (Letter Received Book) में दे दें। इस हवाले में पत्रों के प्राप्त होने की तारीख़, उनके भेजने वालों का

नाम और पता, उनमें जो बात लिखी है उसका एक संक्षिप्त विवरण, इत्यादि दे दिया जाता है। यदि किसी पत्र की प्राप्ति पर झगड़ा है तो वह इस किताब को देख कर तै हो सकता है। फिर यदि प्रधान प्रबन्धक कुछ दिनों के लिये कहीं चला गया है तो उसके लौटने पर उसकी अनुपस्थिति मे आफ़िस में जो कुछ हुआ है उसका संकेत उसको इस पुस्तक को देखने से मिल जाता है, और यदि वह किसी पत्र के सम्बन्ध में कोई विशेष बात जानना चाहता है तो वह उसको मँगवा कर देख सकता है। यदि कोई नया प्रबन्धक भी आता है तो भी उसको उसके आफ़िस की जानकारी इस पुस्तक को देखने से प्राप्त हो जाती है। रजिस्टर मे चढ़ा लेने के बाद ये सब पत्र आफ़िस के भिन्न-भिन्न विभागो में बाँट दिये जाते हैं और वहाँ पर इन पर कार्यवाही होती है। जिन पत्रो का उत्तर जाना है उनका उत्तर का मसौदा बनाया जाता है। प्रधान प्रबन्धक को अथवा विभागो के अध्यक्ष को जिन पत्रो का उत्तर देना है उनके उत्तर वे लोग संकेत लिपि (Short-hand) जानने वालो को लिखवा देते हैं तथा ये लोग उनको टाइप कर लेते हैं। अन्य पत्रों पर जो कार्यवाही होती है वह उन पर लिख दी जाती है और उससे पत्र का मसौदा बनाने वाले क्लर्क पत्रों को तैयार कर लेते हैं तथा यह टाइप भी हो जाते हैं। जिन पत्रो के मसौदों में कोई काँट-छाँट करनी होती है उन पर प्रधान प्रबन्धक अथवा विभागों के अध्यक्ष उनके टाइप होने के पहिले काँट-छाँट कर देते हैं अथवा यदि टाइप किये हुए पत्रों पर हस्ताक्षर करते समय उनको कोई बात अनुचित जान पड़ती है तो वह फ़ौरन ही उसको बदलवा कर दूसरा पत्र टाइप करवा लेते हैं। पत्र लिखने वालो क्लर्कों को विशेष तौर पर होशियार होना चाहिये। आजकल पत्र लिखने की शैली में बहुत उन्नति हो गई है। उनमे मौलिकता होनी चाहिये। अतः, इसको बढ़ावा देने के लिये प्रधान प्रबन्धक को पत्र लिखने वालो को कभी-कभी इनाम, इत्यादि भी देना चाहिये।

जो पत्र टाइप होते हैं उनकी प्रतिलिपि तो अधिकतर टाइप करते समय ही कारबन लगा कर ले ली जाती है। इसके अतिरिक्त पत्रों, इत्यादि की प्रतिलिपि लेने के कुछ अन्य ढङ्ग भी हैं। इनके विषय में हम आगे चल कर विचार करेंगे। अब, जो पत्र आते हैं वह और उनके जो उत्तर जाते हैं उनकी प्रतिलिपि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर देखने के लिये आफ़िस में इस ढङ्ग से रख लिये जाते हैं कि जब चाहें वह आसानी से प्राप्त हो जायँ। इसके लिये भी फाइलिङ्ग के और उनकी संकेत के जो बहुत से तरीक़े हैं उनको हम आगे चल कर देखेंगे। अब, जो पत्र जाते हैं वह दो प्रकार के होते हैं, एक तो वह जो अपने ही शहर के होते हैं और दूसरे वह जो बाहर के होते हैं। अपने शहर के पत्रों को अधिकतर अपने चपरासियों के द्वारा भेजा जाता है और जो पत्र बाहर के होते हैं उनको डाक के द्वारा भेजा जाता है। प्रत्येक पत्र पर उसके पाने वाले का नाम और पता होता है। अतः, एक क्लर्क उनके पते, इत्यादि लिफ़ाफ़ों पर लिखता है। बहुत-सी जगह खिड़कीदार लिफ़ाफ़े प्रयोग मे लाये जाते हैं। अतः, वहाँ पर पत्रो को इस प्रकार मोड़ा जाता है कि उन पर जो पता अन्दर लिखा हुआ है वह उन लिफ़ाफ़ों के ऊपर से दिखाई पड़ता रहे जिनमें वह रक्खे जाते हैं। पत्रों को लिफ़ाफ़ों में रखने के बाद उनमें से जो अपने ही शहर के हैं उनको तो चपरासियों की किताबो (Peon Books) में चढ़ा देते हैं और जो बाहर के होते हैं उन पर टिकट लगा कर उन्हें टिकट रजिस्टर पर चढ़ा लेते हैं। चपरासी लोग जैसे-जैसे पत्रो को बाँटते हैं अपनी किताब में उनको लेने वालो के हस्ताक्षर करा लेते हैं। इससे इस बात का पता लग जाता है कि प्रत्येक पत्र बँट गया है। क्लर्कों को इन चपरासियों की किताबों को अवश्य देख लेना चाहिये अन्यथा बहुत से पत्र बँटते ही नहीं और बँटते भी हैं तो बहुत देर में बँटते हैं। टिकट रजिस्टर से टिकटो के व्यय का पता चलता है। प्रधान प्रबन्धक को इन पर कभी-कभी अपनी निगाह डाल लेनी चाहिये।

किसी आफ़िस में पत्रों के अलावा तार भी आते-जाते रहते हैं। जो तार भेजा जाय उसका स्पष्टीकरण भी उसी समय एक पत्र (Confirmatory Letter) द्वारा अवश्य कर देना चाहिये। तारो के रजिस्टर पत्रों के रजिस्टरों से पृथक होते हैं।

हिसाब-किताब का विभाग—यह विभाग बहुत ही महत्वपूर्ण है। इससे क़र्ज़दारो से रुपया वसूल करने में सहायता मिलती है और वर्ष के अन्त में यही यह बताता है कि किसी फ़र्म को हानि हुई है अथवा लाभ, और हानि हुई है तो कितनी और लाभ हुआ है तो कितना। यही यह भी बतलाता है कि उस फ़र्म की आर्थिक अवस्था कैसी है, उसके पास कितना नक़द है, उसका कितना बैङ्क में है, उसके पास कितने का माल है, उसका कितना रुपया दूसरो के ऊपर चाहिये, उसकी मकान, फर्नीचर, इत्यादि की सम्पत्ति कितने की है, उसको कितना रुपया दूसरो को देना है और उसका कितना रुपया स्वयम् का है। यह सब बात हिसाब-किताब के अच्छी तरह रखने से ही मालूम हो सकती है। हिसाब-किताब से आय-कर की भी रक़म निश्चित हो जाती है; अन्यथा यह विभाग व्यापारियों के लिये महाकाल की तरह है। ठीक हिसाब-किताब न होने से यह जितना चाहे उतना कर किसी भी व्यापारी पर लगा देता है और वह वास्तव में उससे अधिक होता है जो अच्छे हिसाब-किताब रखने पर लगता। हिसाब-किताब के ठीक रखने से और भी बहुत से फ़ायदे होते हैं, साझे के हिसाब बहुत ही साफ़ होने चाहिये अन्यथा साझियों में झगड़ा खड़ा हो सकता है और कम्पनियों मे तो इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता इसलिये है कि उसमें तो वार्षिक हिसाब को पासशुदा निरीक्षकों से जँचवाना पड़ता है। हिसाब-किताब की अंग्रेज़ी प्रणाली में पड़तल (Cost accounting) के हिसाब होते हैं जिनसे फ़र्म मे तैयार किये हुए प्रत्येक माल की उचित क़ीमत मालूम हो जाती है। एक कारखाने के लिये यह बहुत ही आवश्यक है।

हिसाब-किताब की कई प्रणालियाँ हैं। उनका अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे। किन्तु प्रणाली जो चाहे वह हो, हिसाब-किताब में निरीक्षण की बड़ी आवश्यकता रहती है। प्रधान प्रबन्धक को कैश-बुक (रोकड़ बही) और लेजर (खाता बही) प्रभृति हिसाब-किताब की पुस्तकों को बराबर देखते रहना चाहिये। हिसाब-किताब के विभाग का यह भी काम है कि वह रुपयों की वसूली करने वाले विभाग को हर कर्ज़दार के ठीक-ठीक हिसाब दे। उसको यह भी देखना चाहिये कि किसी ऋणदाता को अधिक रुपया तो नहीं दे दिया गया है। उसको बहुत ही होशियारी रखने की आवश्यकता है।

प्रबन्ध-विभाग—इस विभाग का कार्य भी बहुत महत्व का है। जिस प्रकार से पत्र-व्यवहार के विभाग की आवश्यकता कारबार की बाहरी शाख और व्यवस्था के लिये है, उसी प्रकार इस विभाग की आवश्यकता उसकी भीतरी व्यवस्था के लिये है। इसके द्वारा कारबार के सभी कर्मचारियों के नियत कार्य तथा उनके किये हुये दैनिक कार्यों का विवरण रोज़नामचे, इत्यादि में लिख लिया जाता है। उनकी नियुक्ति तथा वेतन, इत्यादि के लिये भी यही विभाग उत्तरदायी होता है। इसीके द्वारा आफ़िस के प्रत्येक विभाग के लिये रजिस्टर, क़लम, दावात, पैड, रसीद-बुक, इत्यादि बाँटे जाते हैं और यही विभाग आफ़िस के लिये पर्याप्त मेज़, कुर्सी, बेंच, आल्मारी, बिजली, पंखा, पानी, इत्यादि का भी प्रबन्ध करता है। इसी विभाग से मज़दूरों व कर्मचारियों के लिए औज़ार, मशीनें मोटर तथा अन्य दूसरे प्रकार के आवश्यक सामान बाँटे जाते हैं। यही विभाग आफ़िस के सामान की रँगाई मरम्मत इत्यादि कराता है। आफ़िस के क्लर्कों का समय, श्रम तथा उसका व्यय बचाने के लिए जिन मशीनों इत्यादि की ज़रूरत पड़ती है जैसे टेलीफ़ोन, टाइपराइटर बहुत-सी प्रतिलिपि करने वाली मशीनें, हिसाब करने वाली मशीनें, बिल बनाने वाली मशीन, नत्थी करने वाली मशीन इत्यादि इत्यादि को

ख़रीदने का प्रबन्ध यही विभाग करता है। कर्मचारियो और चपरासियों की वर्दी, टोपी, बिल्ला, पेटी, चपरास, पगड़ी इत्यादि का यही प्रबन्ध करता है। आफ़िस के साइनबोर्ड को यही ठीक रखता है और कर्मचारियों के लिए या अन्य लोगों के लिए आफ़िस की जो सूचनाएँ हैं उनका भी यही विभाग प्रबन्ध करता है और भी कितने ही सामान ऐसे हैं जैसे काग़ज़, क़लम, स्याही, रजिस्टर इत्यादि जिनके समाप्त हो जाने पर और आवश्यकता के अनुसार न मिलने पर सारे आफ़िस का काम रुक जाने का डर रहता है उनका भी प्रबन्ध यही विभाग करता है। इस विभाग का अध्यक्ष स्वयं प्रधान-प्रबन्धक अथवा उसका कोई सहायक होता है। आफ़िस की जितनी चीज़ें है उन सबकी एक सूची रहनी आवश्यक है और उनमें जो चीज़ें नई आती हैं उनका भी उसमे लेखा कर लेना ज़रूरी है। जो चीज़ें ख़र्च हो जाती हैं उनका ख़र्च दिखला कर शेष पर इस विभाग के अध्यक्ष को अपनी निगाह रखना बहुत ही आवश्यक है।

(३) आफ़िस के लिए लाभदायक मशीनें

जितना बड़ा आफ़िस होता है उसके लिए काम को अच्छे ढंग से और शीघ्रता से करने के लिए उसको मशीनों की आवश्यकता पड़ती है। इन मशीनों में से कुछ का संकेत कर देना यहाँ पर अत्यन्त आवश्यक है।

टाइपराइटर—यह मशीन प्रत्येक अच्छे आफ़िस के लिए बहुत ही आवश्यक है। अब तो यह टाइपराइटर हिन्दी, उर्दू, बंगला, गुजराती इत्यादि भाषाओं के लेखो के टाइप करने के लिए भी आने लगे हैं। इनके प्रयोग से काम शीघ्र और अच्छा होता है। टाइप किया हुआ लेख बहुत ही सुगमता के साथ पढ़ा भी जा सकता है। टाइप करने वाले क्लर्क को टाइप के काम मे बहुत होशियार

होना चाहिये। उसको इसके पुर्जों इत्यादि का भी ज्ञान होना चाहिये। मशीन को हमेशा बहुत ही अच्छी अवस्था में रखना चाहिये।

पता छापने की मशीन—इस मशीन से नाम और पते बहुत आसानी से छापे जाते हैं। रोनियो की मशीन पर पैरा टाइप स्टैन्सिल से नाम और पते छपते हैं और एड्रेसोग्राफ पर वह जस्ते की एक छोटी तख्तियों या प्लेटों से छपते हैं। यह स्टैन्सिल या तख्तियाँ एक आफ़िस के उन सब ग्राहकों की जिनको पत्र बहुधा भेजे जाते हैं पहिले से बना कर रख ली जाती है और आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं स्टैन्सिल या तख्तियों को रोनियो या एड्रेसोग्राफ़ की मशीन पर चढ़ा कर लिफ़ाफ़ों इत्यादि पर आवश्यकता के अनुसार नाम और पते उतार लिए जाते हैं।

डिक्टाफोन—इससे पत्रों के उत्तर का या और किसी प्रकार के लेख का एक टाइप करने वाले बाबू को इमला देने में बहुत आसानी पड़ती है। यह बिजली से काम करता है। इसके दो मुख्य अंग होते हैं एक तो बोलने का जिसमें जो कुछ बोला जाता है वह मशीन के अन्दर एक मोम के बेलन पर चिन्हों की शक्ल में लिख जाता है और दूसरा सुनने का जिसको चलाने से जो कुछ बोलने वाले पुर्जे पर बोला गया है और जो कुछ उसके मोम के बेलन पर लिखा जा चुका है वह फिर मशीन के द्वारा खुद बोलने लगता है। इसमें किसी भी गति से बोला जा सकता है और किसी गति से सुना जा सकता है। इसमें बोली हुई बात को कई बार सुना जा सकता है। अतः, यदि इस मशीन से टाइप करने वाले बाबू को दूसरे का कोई शब्द न समझ में आया हो तो वह फिर इसको घुमा कर इसकी बात सुन सकता है। मशीन के मोम के बेलन की सतह को साफ़ कर लेने से वह फिर किसी दूसरे इमले के लिखने के लिए तैयार हो जाता है। इस ढङ्ग से एक बेलन बहुत समय तक प्रयोग में आता रहता है और जब वह खराब हो जाता है तब बदला भी जा सकता है।

टैलेराइटर और प्रिन्टर—इनकी सहायता से जो कुछ किसी स्थान पर इनसे लिखा या छापा जाता है वह हस्ताक्षर सहित बड़ी सुगमता से किसी दूसरी जगह टेलीफ़ोन या टेलीग्राफ़ के तारों और बिजली द्वारा वैसे ही लिख और छप जाता है।

काग़ज़ के मोड़ने को मशीन—इससे अनेक छोटे या बड़े काग़ज़ों को भिन्न-भिन्न ढङ्गों से मोड़ा जा सकता है एक बड़े कारख़ाने में जहाँ एक ही समय में एक ही प्रकार के बहुत से पत्रों को भेजने के लिए मोड़ने की आवश्यकता पड़ती है यह सुगमता के लिए भली-भाँति प्रयोग में आ सकती है।

छेद करने की मशीन—इसको पंचिंग मशीन कहते हैं। इससे काग़ज़ों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के छेद किए जा सकते हैं। यह फाइलिंग के लिए बहुत ही आवश्यक है।

नत्थी करने की मशीन—यह मशीन काग़ज़ों के नत्थी करने के काम में आती है इससे आलपीनों का ख़र्च बच जाता है।

डाक तौलने का कांटा—पत्रो पर टिकट उनके वज़न के हिसाब से लगते हैं। अतः, पत्रों का वज़न करने के लिए यह कांटा बहुत ही काम की वस्तु है।

टिकट लगाने वाली मशीन—इसकी सहायता से लिफ़ाफ़ों पर डाक के टिकट बहुत सुगमता से और शीघ्र लग जाते हैं। वह यह भी बता सकती है कि किसी समय मे इसमें कितने टिकट लगाए गये हैं। इसमे लगाने वाले टिकटों की गोल लिपटी हुई एक लम्बी चिट की चरखी लगा दी जाती है और फिर मशीन में नीचे लिफ़ाफ़े रख दिए जाते हैं। बस मशीन के चलाने से लिफ़ाफ़ों पर टिकट लग जाते हैं।

समय का लेखा करने वाली मशीन (Time Recorder)—यह एक प्रकार की घड़ी है जिसकी सहायता से समय मालूम

होता है और जिस पर एक काग़ज़ लगा कर इसके एक पुर्जे के दबाने से घड़ी का समय उस काग़ज़ पर छप जाता है। जिस आफ़िस में हज़ारों कर्मचारी काम करते हैं उनके ठीक समय पर आने और जाने का, हाज़िरी लेने का काम भी एक कठिन काम है। अतः, इनमें लोगों के ठीक समय पर आने और जाने के लिए और उसका ठीक लेखा करने के लिए यह घड़ी बड़े काम की है।

कैश रजिस्टर—इसके अन्दर एक लम्बे काग़ज़ की चिट की चरखी लगा दी जाती है और फुटकर माल बेचने वाले क्लर्क से यह कह दिया जाता है कि वह जो कुछ माल बेचे उसका रुपया इस मशीन के नीचे के दराज़ में रखता जाय और कैशमीमों पर इस मशीन से उनका कुल जोड़ छाप कर उन्हें ग्राहकों को दे दे। ऐसा करने से जब किसी कैशमीमों पर कोई रकम इस मशीन से छापी जाती है तो वह रक़म मशीन के अन्दर वाले काग़ज़ की चिट पर भी छप जाती है। और साथ ही साथ उस अन्दर के काग़ज़ पर मशीन से कुल छापी हुई रक़मों का हर बार कुल जोड़ भी छपता जाता है। इससे आफ़िस का कोई भी व्यक्ति कुल नगद बिक्री की रक़म का पता लगा सकता है।

उपरोक्त तथा अन्य प्रकार की बहुत-सी मशीनें आजकल के आफ़िसो मे बहुत काम में आ रही हैं इससे काम में सफ़ाई आती है और सहूलियत होती है।

(४) पत्रों की नक़ल लेने के ढंग

जो पत्र आफ़िस से बाहर भेजे जाते हैं उनकी नक़ल रखना भी उस आफ़िस के लिए बहुत ही आवश्यक है। पत्रों की नक़ल लेने के अनेकों ढग हैं किन्तु उनमे से कोई भी ढग सब आफ़िसो के लिए आदर्श नहीं कहा जा सकता है। नक़ल करने का सबसे साधारण ढग तो यह है कि मूल को एक बार फिर लिख लिया जाय किन्तु

ऐसी प्रतिलिपि तैयार करने में बहुत समय लगता है और वह सच्ची तथा प्रमाणिक भी नहीं मानी जाती है। नक़ल करने का एक दूसरा ढंग कारबन काग़ज़ के द्वारा है। जिस काग़ज़ पर कोई चीज़ लिखी जाती है उसके नीचे एक कारबन काग़ज़ और एक बिना लिखा हुआ काग़ज़ लगा कर उस पर लिखने से नीचे वाले काग़ज़ पर नक़ल आ जाती है। इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कारबन काग़ज़ की रोशनाई वाली तरफ़ नीचे वाले काग़ज़ की तरफ़ रहे। साथ ही काग़ज़ इधर-उधर हिलने या खिसकने से रोकने के लिए इन काग़ज़ो के चारों कोनों में नोकीली कीलें भी लगा ली जाती हैं। काग़ज़ो के नीचे कड़ापन रखने के लिए लिखने के पहिले उनके नीचे एक लकड़ी अथवा लोहे की तख़्ती भी लगा लेनी चाहिये। इस तरह से कई नक़लें एक साथ तैयार की जा सकती हैं। कहना न होगा कि जितनी नक़लें तैयार करनी हों उतने कारबन काग़ज़ और नक़ल लेने के लिए सफ़ेद काग़ज़ों की ज़रूरत होती है। यदि लेख टाइपराइटर पर छापे जाते हैं तो भी कारबन लगा कर उनकी चार-पाँच नक़लें निकाली जा सकती हैं। हाँ, ऐसा करने के लिए उँगलियों को ज़ोर से मारना पड़ता है। कारबन से नक़ले बनाने में समय बिल्कुल भी नहीं लगता है। साथ ही कारबन की नक़लें अधिक प्रमाणित भी मानी जाती हैं। नक़ल करने का एक तीसरा ढङ्ग लोहे के प्रेस का है। इस ढङ्ग में भेजने वाला मूल पत्र पहले तो पत्र वाले काग़ज़ पर साधारण क़लम से और नक़ल बनाने वाली स्याही से लिख लिया जाता है अथवा टाइपराइटर पर ऐसी ही रोशनाई वाले फ़ीते से छाप लिया जाता है। इसके बाद उस पर ऐसी ही रोशनाई से हस्ताक्षर भी करा लिये जाते हैं। यदि पत्र हाथ से लिखा जाता है तो उसको ब्लाटिंग से न सुखाना चाहिये, अन्यथा रोशनाई का चटकीलापन निकल जाता है। इसके बाद इसकी प्रतिलिपियाँ एक ऐसी कापी में कर ली जाती हैं जिसके पन्ने बहुत

ही पतले कागज़ों के बने होते हैं। जिस कागज़ पर नक़ल करना हो उसकी पीठ को पहिले बुरुश से भिगो देना चाहिये और उसके ऊपर एक ब्लाटिङ्ग पेपर रख देना चाहिये। इसके बाद ब्लाटिङ्ग पेपर के ऊपर और जिस पन्ने पर नक़ल करना है उसके पहिले एक मोमी कागज़ रख देना चाहिये। तब उसको लोहे के प्रेस में धीरे से दबा देना चाहिये। इसके बाद उसको बाहर निकाल कर उसमें ब्लाटिङ्ग पेपर की जगह पत्र रख देना चाहिये और उस किताब को फिर से लोहे के प्रेस में काफ़ी ज़ोर से दबा देना चाहिये। बस, उस पत्र की नक़ल हो जायगी। हाँ, यह नक़ल ज़रा कठिनाई से पढ़ी जाती है। यदि टाइप किये हुए किसी पत्र की नक़ल लेना है तो नक़ल लेने वाली कापी के पन्ने को बुरुश से न भिगो कर रबड़ की चादर से भिगोना चाहिये। रबड़ की इस चादर को भिगो कर पहिले एक लोहे की तख़्ती पर फैला लिया जाता है और फिर उसको उठा कर उस कागज़ की पीठ पर रख दिया जाता है जिस पर पत्र की नक़ल लेनी होती है। इससे वह गीला हो जाता है और फिर जैसे ऊपर लिखा गया है टाइप किये हुए पत्र की नक़ल ले ली जाती है। इस तरह से नक़ल लेने का यह लाभ है कि आफ़िस के प्रबन्धक के हस्ताक्षर की और यदि उसने मूल पर कुछ सही की है तो उसकी भी नक़ल नक़ल में आ जाती है।

पत्रों की नक़ल की किताब में बहुत से पतले पन्ने होते हैं जिन पर क्रमानुसार एक ही तरफ़ उनकी संख्या पड़ी रहती है। इन सब पन्नों पर बराबर नक़लें की जाती हैं, अतः, उनमें से किसी एक नक़ल को ढूँढ़ना कठिन हो जाता है। इसलिये हर नक़ल की किताब के शुरू में कुछ ऐसे सादे पन्ने होते हैं जिन पर पत्रों की नक़लों का एक संकेत रहता है। मान लीजिये कि पत्र अंग्रेज़ी भाषा में लिखे गये हैं तो जिनके नाम वे पत्र लिखे जाते हैं उनके नामों के पहिले अक्षर A से लेकर Z तक किसी न किसी अक्षरों में से

होंगे। वैसे तो ये अक्षर संख्या में २६ हैं किन्तु x, y, z ये तीनों अक्षर ऐसे हैं जिनसे बहुत कम नाम आरम्भ होते हैं अतः २३ अक्षरों के लिये तो एक-एक करके २३ पन्ने और इनके लिये एक पन्ना, अर्थात् सब मिला कर कुल २४ पन्ने पत्रों के नकल करने की हर किताब के आरम्भ में पत्रों की नकलों के संकेत के लिये होते हैं। इन पन्नों के दाहिने किनारे पर A, B, C, D, इत्यादि अक्षर बड़े और लाल रंग से छपे होते हैं। हर पन्ने पर केवल एक ही अक्षर छपा होता है और वह साफ़ दिखलाई पड़ता है। बस आफ़िस के उन लोगों के नाम जिनको उस आफ़िस से पत्र भेजे जाते हैं, इन पन्नों पर इस ढङ्ग से लिखे जाते हैं कि वह सब नाम जो एक अक्षर से आरम्भ होते हैं उसी अक्षर वाले पन्ने पर एक के बाद एक लिख जाते हैं। इसके बाद प्रत्येक नाम के सामने उन सब पत्रों के क्रमानुसार नम्बर लिखे जाते हैं कि जिन पर उन सब पत्रों की नकलें की गई हैं जो प्रत्येक नाम से भेजे गये हैं। इस ढङ्ग से नामों के संकेत की सूची रखने को प्रथम अक्षर के अनुसार संकेत की सूची कहते हैं।

यदि किसी आफ़िस में संकेत के नाम इतने अधिक हैं कि प्रथम अक्षर के अनुसार संकेत की सूची रखने से प्रत्येक अक्षर के इतने नाम हो जाते हैं कि उनमें से किसी का भी ढूँढना बहुत कठिन हो जाता है तो इस सूची के उपरान्त प्रत्येक अक्षर के नामों को फिर छै भागों में प्रत्येक नाम के पहिले स्वर अर्थात् a, e, i, o, u, y के विचार से बाँट देते हैं। इससे सब नामों के २४ अथवा २६ भागों की जगह ६ × २४ = १४४ अथवा ६ × २६ = १५६ भाग हो जाते हैं और अब इनमें से कोई एक नाम ढूँढना आसान हो जाता है। एक अक्षर से आरम्भ होने वाले वह नाम जिनमें पहिला स्वर a होता है एक पन्ने पर, जिनमें पहिला स्वर e होता है दूसरे पन्ने पर; जिनमें पहिला स्वर i होता है तीसरे पन्नें पर, इत्यादि, इत्यादि होवे

हैं, अर्थात् एक ही अक्षर से आरम्भ होने वाले नाम छै पन्नो में बँटे होते हैं। इसको स्वर के अनुसार संकेत की सूची कहते हैं।

किसी व्यक्ति के किसी एक पत्र की नक़ल के पन्ने से उसके अगले अथवा पिछले पत्र की नक़ल पर पहुँचने के लिये पत्रों की नक़लो में स्वयम् उनके पन्नों का एक दूसरे से पारस्परिक सकेत दिया जाता है। जैसे मान लीजिये कि किसी व्यक्ति के तीन लगातार पत्र १५, ४५, और ६० पन्नों पर नक़ल किये गये हैं तो इन पत्रों का पारस्परिक सकेत १५ वें पृष्ठ पर $\frac{०}{४५}$, ४५ वें पृष्ठ पर $\frac{१५}{६०}$, और ६० वें पृष्ठ पर ४५ दिये जायँगे। इसको अगला-पिछला सकेत (Cross referencing) कहते हैं। $\frac{०}{४५}$ के अर्थ हैं कि जिस व्यक्ति की भेजे हुये पत्र की नक़ल १५ पृष्ठ पर है उसको इससे पहिले भेजे हुये पत्र की नक़ल ० पृष्ठ पर है अर्थात् ऐसा कोई पत्र भेजा ही नहीं गया है और अगले पत्र की नक़ल ४५ पृष्ठ पर है, अथवा $\frac{१५}{६०}$ के अर्थ हैं कि उसके जिस पत्र की नक़ल ४५ पृष्ठ पर है उससे पहिले जो पत्र भेजा गया था उसकी नक़ल १५ पृष्ठ पर है और जो बाद में भेजा गया है उसकी नक़ल ६० पृष्ठ पर है, इत्यादि, इत्यादि।

पत्रों की नक़ल करने का एक चौथा ढङ्ग भी है जिसको काग़ज़ लिपटा हुआ बेलन घुमाने वाली मशीन (Rotary Copier) से नक़ल बनाने वाला ढङ्ग कहते हैं। इस मशीन से नक़ल बनाने के लिये भी यह आवश्यक है कि जिन पत्रो की नक़ल बनानी हैं उनको नक़ल करने वाली स्याही से लिखा जाय अथवा नक़ल करने वाली स्याही के फीते से टाइपराइटर पर छापा जाय। पत्र तैयार हो जाने पर इसी स्याही से उन पर हस्ताक्षर भी करा लिये जाते हैं। इसके बाद ये मशीन पर ला कर रख दिये जाते हैं। अब, गीले काग़ज़ के लिपटे हुये बेलन को निकाल कर उसकी ठीक जगह पर लगा दिया जाता है। फिर रबड के बेलनों के बीच की जगह उनके हत्थों से पत्रों के काग़ज़ की मुटाई के अनुसार ठीक कर दी जाती है। इसके पश्चात्

मशीन चलाने वाले हत्थे को पेंच की तरह चलाया जाता है जिससे कि सब पत्रों की नक़लें होती जाती हैं और साथ ही ये नक़लें दाहिनी ओर पर लगे हुये एक चाकू से काट ली जाती हैं। बस, अब नक़लें एक ओर और पत्र दूसरी ओर गिरते जाते हैं।

जिन पत्रों की नक़लें छप जायँ चाहे वह किसी भी ढङ्ग से छपे उन पर कोई ऐसा निशान या तो मशीन या हाथ से एक कोने में बना देना चाहिये कि जिससे मालूम हो जाय कि इन पत्रों की नक़लें की जा चुकी हैं। इसके लिये इन पर बहुधा 'नक़ल हो गई है' (Copied) की एक मोहर डाल दी जाती है।

पत्रों की नक़ल करने के जितने ढङ्ग ऊपर दिये गये हैं वह केवल इसी बात को ध्यान में रख कर दिये गये हैं कि उनकी एक अथवा अधिक से अधिक दो, तीन, चार तक नक़लें करनी हैं। वास्तव में इन नक़लों का तो यही ध्येय है कि वह भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर देखी जा सकें। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही तरह के पत्र अनेकों व्यक्तियों के पास भेजने पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी बहुत-सी नक़लों की आवश्यकता पड़ती है, जो उपरोक्त ढङ्गों में से किसी से भी नहीं हो सकते हैं। अतः, इनके लिये कुछ विशेष ढङ्ग हैं।

पत्रों की ४० प्रतिलिपियों तक के करने के लिये सबसे सरल और सस्ता ढङ्ग जिलेटिन का ढङ्ग बोला जाता है। इससे हाथ से लिखे हुये अथवा टाइपराइटर से छपे हुये दोनों तरह के पत्रों की नक़लें बनाई जा सकती हैं। इसके लिये पहिले एक रकाबी में ऊपर तक कुछ गर्म पानी भर दिया जाता है, फिर उस पर जिलेटिन जो बाज़ार में मिलता है डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जिलेटिन रकाबी में पड़ती जाती है त्यों-त्यों वह पानी को सोखती जाती है। अन्त में बचा हुआ बेकार पानी रकाबी के बाहर निकाल दिया जाता है और उस पर चिपकने वाले जिलेटिन का एक साफ़ धरातल बन जाता

है। इसके बाद उसको साये में रख देते हैं जिससे उसका गीलापन जाता रहता है और वह इस योग्य बन जाती है कि उस पर नक़ल बनाने वाले पत्र की एक उल्टी नक़ल आ जाये। अतः, मूल पत्र को एक विशेष स्याही (Hectograph Ink) से लिख कर उल्टा करके जिलेटिन पर किसी बेलन से अथवा हाथ से दबा देते हैं। बस उसका उल्टा उस पर आ जाता है। अतः, अब उस पत्र की जितनी प्रतिलिपियाँ लेनी होती हैं उतने काग़ज़ों को एक-एक करके उसके ऊपर रख कर दबाया जाता है जिससे उन पर उसकी नक़लें आती जाती हैं। कहना न होगा कि मूल पत्र की सारी स्याही जिलेटिन के धरातल पर सोख जाती है, अतः, उसका काग़ज़ साफ़ हो जाता है। यदि किसी ऐसी चीज़ की प्रतिलिपियाँ लेनी हैं जिस पर कोई चित्र अथवा नक्शा है तो यह ढङ्ग अत्युत्तम है। किन्तु इस ढङ्ग से एक तो नक़लें बहुत कम आती हैं और दूसरे वह गन्दी भी हो जाती हैं। अतः, यह ढङ्ग आजकल बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है।

व्यापारिक पत्रों अथवा लेखों की बहुत सी प्रतिलिपियों के लेने का एक अन्य ढङ्ग भी आज कल बहुत प्रचलित है और वह है मोमी काग़ज़ (Stencil) से प्रतिलिपियों के लेने का ढङ्ग। इसके दो क्रम हैं एक तो मोमी काग़ज़ पर लिखना और दूसरा उससे प्रतिलिपियाँ निकालना। जहाँ तक मोमी काग़ज़ पर लिखने का प्रश्न है वह हाथ से अथवा टाइपराइटर पर दोनों तरह से हो सकता है। यदि मोमी काग़ज़ हाथ से तैयार करना हो तो उसको एक लोहे की तख्ती पर बिछा लेना चाहिये। मोमी काग़ज़ के तीन हिस्से होते हैं, एक तो ऊपर का पतला काग़ज़, दूसरा उसके बाद का मोमी काग़ज़ और तीसरा सबसे नीचे का एक मोटा काग़ज़। बस उसके ऊपर का पतला काग़ज़ निकाल देना चाहिये। फिर मोमी काग़ज़ और उसके नीचे के मोटे काग़ज़ के बीच में एक कारबन काग़ज़ इस प्रकार लगा लेना चाहिये जिससे उसकी स्याही की तरफ़ ऊपर रहे। अब इस मोमी

कागज़ के चारों कोनों में पिने लगा कर ऐसा कर लेना चाहिये कि उसमें से कोई चीज़ खिसकने न पावे। इसके बाद जिस चीज़ की प्रति-लिपि लेनी है उसको मोमी कागज़ पर लोहे के एक कलम (Stylus) से लिखना चाहिये। लिखने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ लिखा जाय वह मोमी कागज़ की उस सीमा के अन्दर ही होना चाहिये जो नीचे के मोटे कागज़ पर चारों तरफ़ बनी हुई है और जो मोमी कागज़ पर झलकती है। इसके लिये कारबन का कागज़ भी उतना ही बड़ा होना चाहिये जो मोटे कागज़ पर बनी हुई सीमा के अन्दर ही अन्दर आ जाये, अन्यथा वह सीमा पतले कागज़ पर न झलक सकेगी। एक दूसरी बात का जो ध्यान रखना चाहिये वह यह है कि लिखने के लिये स्टाइलस को ऐसा चलाया जाय कि मोमी कागज़ कट जाय किन्तु फटने न पावे। मोमी कागज़ सफेद होता है और स्टाइलस में कोई स्याही से नहीं लिखा जाता। किन्तु मोमी कागज़ का लेख इस कारण पढ़ा जा सकता है कि उसके नीचे जो कारबन कगज़ है उसकी स्याही मोमी कागज़ के कटे हुए जगहों में भर जाती है। यदि संयोगवश कोई अशुद्धि हो जाय तो मोमी कागज के साथ जो सल्यूशन आता है उसे लेकर एक बुरुश से उस अशुद्धि के ऊपर लगा देना चाहिये। इससे कटे हुये स्थान भर जायेंगे और उन पर फिर से लिखा जा सकेगा। जब किसी पत्र का स्टेन्सिल तैयार हो जाय तो उस पत्र लिखने वाले का हस्ताक्षर भी उसी प्रकार करा लेना चाहिये।

यदि मोमी कागज़ को टाइपराइटर पर तैयार करना है तो पहिले टाइपराइटर के रंगीन फीते को हटा देना चाहिये। इसके बाद मशीन के कुल अक्षरों को पैटरोल से बुरुश द्वारा साफ़ कर देन चाहिये। फिर मोमी कागज़ और उसके पीछे वाले मोटे कागज़ के बीच में पहिले की ही भांति एक कारबन कागज़ लगा देना चाहिये। टाइप-राइटर पर मोमी कागज़ पर टाइप करते समय उसके ऊपर के महीन

कागज़ को नहीं निकालना चाहिये, अन्यथा टाइप खराब हो जाने का डर रहता है। मोमी कागज़ पर छापने के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि टाइप करने के अक्षरों को इतने जोर से दबाया जाय कि टाइप सुगमता से महीन कागज़ और उसके नीचे वाले मोमी कागज़ को काट दें। पूरा स्टेन्सिल कट जाने के बाद कागज़ों को मशीन से निकाल लेना चाहिये और ऊपर का महीन कागज़ फाड़ कर फेंक देना चाहिये और स्टाइलस से पत्र के लेखक का हस्ताक्षर करवा लेना चाहिये।

हाथ से लिखे हुये अथवा टाइप से छपे हुये एक मोमी कागज़ के स्टेन्सिल से किसी पत्र की नक़लें करने के लिये चार प्रकार की मशीनें होती हैं। किन्तु हम यहाँ पर केवल दो ही को समझने का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि एक मशीन तो चपटी तख़्तीदार (Flat Duplicator) होती है और शेष मशीनों में घूमने वाले बेलन होते हैं। अतः, उनमें से एक के विषय में भी जान लेने से काम चल सकता है। इन तीनों को बेलन घूमने वाली मशीनें (Rotary Duplicator) कहा जा सकता है। चपटी तख्तीदार मशीन पर नक़लें बनाने के लिये जिसे मोमी कागज़ स्टेन्सिल से नक़लें बनानी हो उसे लेकर उसके नीचे का मोटा कागज़ भी फाड़ कर फेंक देना चाहिये। उसके ऊपर का महीन कागज़ तो पहिले ही फाड़ कर फेंक दिया जाता है। अब, इस मोमी कागज़ को नीचे वाले चौखटे पर इस प्रकार लगा देना चाहिये कि उस पर सिकुड़न न पड़ने पावे जिससे लिखावट साफ़-साफ़ दिखाई पड़ती रहे। इसके बाद स्याही के ट्यूब से कुछ स्याही स्याहीवाली तख़्ती पर डाल कर रबड़ के बेलन से फैलानी चाहिये। इससे स्याही रबड़ के बेलन पर हर तरफ़ बराबर-बराबर लग जायगी। अब जिस तख़्ती पर मोमी कागज़ लगाया है उसके नीचे वाली तख़्ती पर एक ब्लाटिंग लगा देना चाहिये और उस पर मोमी कागज़ का तख़्ता और उसके

ऊपर का रेशमी कपडे वाला तख्ता दोनों मिला कर चौखटों को नीचा करके उस सफ़ेद ब्लाटिंग पर रख देना चाहिये। इसके बाद रेशमी कपड़े के ऊपर स्याही देने वाले बेलन को आगे-पीछे धीरे-धीरे चलाना चाहिये। इससे बेलन की स्याही रेशमी कपड़े के छेदों को पार करके नीचे के मोमी काग़ज़ पर आ जाती है और उसके कटे हुये अक्षरों के चिन्हों के बीच से पार करके नीचे के ब्लाटिंग पर आ कर छप जाती है। उस ब्लाटिंग पर नक़ल के भलीभाँति साफ़-साफ़ आ जाने पर ऊपर के चौखटे को उठा कर ब्लाटिंग हटा कर उसके स्थान पर एक नक़ल लेने वाला साफ़ काग़ज़ रख देना चाहिये। इसके बाद ऊपर का चौखटा उस पर लाकर फिर स्याही वाला बेलन ऊपर से चलाना चाहिये। फिर ऊपर वाले चौखटे को उठा कर नक़ल वाला काग़ज हटा लेना चाहिये और उसके स्थान पर एक दूसरा साफ़ काग़ज लगा देना चाहिये। इसी तरह से बार-बार काग़ज लगा कर रेशमी कपडे पर स्याही के बेलन को फेरने से नक़लें आती रहती हैं। ऐसी नकलें काफी संख्या में प्राप्त हो सकती हैं।

घूमने वाली किसी मशीन पर स्टेन्सिल से नकल लेने के लिये पहिले तो उसमें एक स्याही के ट्यूब से स्याही देनी पड़ती है। यह स्याही देने का ट्यूब हर मशीन के साथ मिलता है। स्याही के ट्यूब को लेकर उसके नीचे के भाग को दबा कर मशीन के बड़े बेलन पर या तो अन्दर से या बाहर से जैसी मशीन हो स्याही दी जाती है जो उसके ऊपर के कपडे के ऊपर आ जाती है। अब, मोमी काग़ज़ के स्टेन्सिल और पीछे के मोटे काग़ज़ दोनों को उल्टा करके उस बड़े बेलन के ऊपर वाले कपड़े पर लगा दिया जाता है। ऐसा करने से स्टेन्सिल नीचे हो जाता है और उसके पीछे का मोटा काग़ज़ उसके ऊपर हो जाता है। इसके बाद नीचे वाले रबड़ के छोटे बेलन और ऊपर वाले बड़े बेलन के बीच का अन्तर मोमी

काग़ज़ और मोटे काग़ज़ की मुटाई के अनुसार कर लिया जाता है। फिर मशीन चलाने वाले हत्थे से मशीन चलाई जाती है जिससे बड़े बेलन के आठ-दस बार घूमने से स्टेन्सिल पर कटे हुये लेख की एक नक़ल उसके ऊपर के मोटे काग़ज़ पर छप जाती है। इससे यह मालूम हो जाता है कि स्टेन्सिल नक़लें छापने के लिये तैयार हो गया है। अतः, अब स्टेन्सिल के ऊपर के मोटे काग़ज़ को फाड़ कर फेंक दिया जाता है और मशीन में नक़ल लेने वाले काग़ज़ों के बण्डल को इतना उठा दिया जाता है कि जिससे उसके काग़ज़ एक-एक करके उसमें स्वयम् आने लगें। फिर ऊपर के बड़े स्टेन्सिल वाले बेलन और उसके नीचे के काग़ज़ दबाने वाले रबड़ के बेलन के बीच का अन्तर नक़ल लेने वाले काग़ज़ों की मोटाई के विचार से ठीक कर लिया जाता है। अब, मशीन के बड़े हत्थे को चलाने से नक़ल लेने वाले काग़ज़ एक-एक करके स्वयम् मशीन में जाते हैं और उन पर स्टेन्सिल के लेख की नक़ल छपती जाती है। ये काग़ज़ दूसरी ओर की रक़ाबी में इकट्ठे होते जाते हैं। मशीन के हत्थे को बराबर ज़ोर से लगातार चलाते रहना चाहिये। यह हाथ के अतिरिक्त बिजली से भी चलाई जा सकती है। साधारण स्टेन्सिल काग़ज़ से इस प्रकार एक हज़ार नक़लों तक और बढ़िया स्टेन्सिल काग़ज़ से इस प्रकार छै, सात हज़ार नक़लों तक हो सकती हैं।

पत्रों, इत्यादि की नक़लें प्राप्त करने का एक सबसे बढ़िया ढङ्ग टाइप सेटिंग मशीन के प्रयोग का है। इसके द्वारा पत्रों की नक़लें प्राप्त करने के लिये जिस लेख की नक़लें प्राप्त करना है उसको पहिले हाथ या मशीन से टाइप बैठा कर एक फारम पर जमा कर लिया जाता है। इसके बाद टाइप के उस फारम को मशीन के ऊपर के बड़े बेलन पर लगा दिया जाता है। टाइप जस्ते के और उल्टे अक्षरों के बने होते हैं और वह फारम जिस पर वह जमा किये जाते हैं लचकदार

होता है फिर स्याही का फीता टाइप वाले बेलन से लगा दिया जाता है और सादे कागज़ों को रखने वाली रकाबी पर नकल लेने वाले सादे कागज रख दिये जाते हैं। इसके बाद टाइप के ऊपर वाले बेलन और कागज़ दबाने के नीचे वाले बेलन के बीच का अन्तर नकल लेने वाले कागज़ों की मोटाई के अनुसार ठीक कर लिया जाता है। अब मशीन नकलें छापने के लिये तैयार हो जाती हैं और उसके बड़े हत्थे को घुमाने से नकल लेने वाले कागज़ स्वयम् एक-एक करके मशीन के अन्दर आते जाते हैं और उन पर नकलें छप कर बाद में वह दाहिनी ओर की एक रकाबी पर गिरते जाते हैं। इसमें एक घड़ी भी लगी रहती है जिससे नकलों की संख्या का पता चलता रहता है। इससे थोड़े ही समय में सुगमता से चालीस-पचास हज़ार नकलें छापी जा सकती हैं। यह मशीन भी हाथ और बिजली दोनों से चलाई जा सकती है। इसकी कीमत अवश्य बहुत अधिक होती है। अतः, यह केवल बहुत बड़े आफ़िसों ही मे इस्तेमाल में लाई जा सकती है।

(५) पत्रों के फाइल करने और उनके संकेत के ढङ्ग

पत्रो की फ़ाइल करने और उनके सकेत के भी अनेकों ढङ्ग हैं और उनके विषय में भी यही बात है कि उनमें से कोई भी प्रत्येक आफ़िस के लिये आदर्श नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में बात तो यह है कि हर आफ़िस अपनी आवश्यकता के अनुसार इनमें से किसी को भी चुन सकता है। जो हो एक आदर्श फ़ाइल के लिये यह आवश्यक है कि वह सरलता से प्रयोग मे लाई जा सके जिससे कोई भी व्यक्ति उसको समझ ले। साथ ही वह उस आफ़िस की आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिये जिसमें वह प्रयोग मे लाई जाती है। तीसरी बात यह है कि आवश्यकता पड़ने पर उसमें से पत्र शीघ्र ही मिल जायें। फिर वह पत्र उसमें सुरक्षित भी रह सके जिससे उनको दीमक इत्यादि का डर न रहे। पाँचवे, उसमें व्यय भी कम होना चाहिये,

और अन्तिम बात यह है कि उसमें आवश्यकता के अनुसार घटने तथा बढ़ने की योग्यता हो।

पत्रों को फ़ाइल करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहिली बात तो यह है कि हर आया हुआ पत्र और उसके उत्तर की नक़ल एक दूसरे से नत्थी करके फ़ाइल में रक्खी जानी चाहिये। दूसरी बात यह है कि एक फ़ाइल के कुल पत्र तारीख़ के अनुसार लगे रहने चाहिये। सबसे पुराना पत्र सबसे नीचे और सबसे नया पत्र सबसे ऊपर होना चाहिये। तीसरी और अंतिम बात यह है कि सब पत्रों को किसी प्रबन्ध के अनुसार बाँट लेना चाहिये और फिर उनको इस तरह से फ़ाइलों में रखना चाहिये कि एक फ़ाइल में एक तरह के पत्र हों। हाँ, यदि किसी आफ़िस के फ़ाइल करने वाले पत्रों की संख्या बहुत कम है जैसे २० अथवा २५ तो उनको किसी विशेष प्रबन्ध के अनुसार बाँटने की आवश्यकता नहीं है। वे सब केवल एक ही फ़ाइल में तारीख़ के अनुसार रक्खे जा सकते हैं। इससे उनको ढूँढ़ने में बहुत समय न लगेगा। किन्तु यदि किसी आफ़िस के पत्रों की संख्या बहुत है तो उनको कई अङ्गों में बाँट कर प्रत्येक अङ्ग के पत्र एक फ़ाइल में तारीख़ के अनुसार रखने चाहियें। फ़ाइल करने वाले पत्रों को बाँटने का एक ढङ्ग तो उनके विषय के अनुसार है। मान लीजिये कि किसी आफ़िस का व्यापार कपड़े, जूते, स्टेशनरी और किताबों का है तो उसके पत्रों को कपड़े, जूते, स्टेशनरी, किताबों और सर्वसाधारण (General) विषयों में बाँटा जा सकता है। अथवा यही पत्र ख़रीद, बिक्री तक़ाज़ा, प्रबन्ध-सम्बन्धी विषयों में भी बाँटे जा सकते हैं। पत्रों के बाँटने का एक तीसरा ढङ्ग उनके पतों के अनुसार बाँटने का भी हो सकता है, जैसे जिस शहर में आफ़िस है उस शहर के कुल व्यापारियों के पत्र एक फ़ाइल में, और उस शहर के कुल व्यापारियों को छोड़ कर उस प्रान्त के कुल व्यापारियों के दूसरे फ़ाइल में, तथा उस प्रान्त के कुल व्यापारियों को छोड़ कर उस

देश के कुल व्यापारियों के तीसरे फ़ाइल में, इत्यादि, इत्यादि। जब पत्रो की संख्या और अधिक होती है तब उनको उनके नाम के पहिले अक्षर के अनुसार भी बाँटा जा सकता है। इस अवस्था मे सब पत्र एक ही फ़ाइल में अथवा कई फाइलों मे भी रक्खे जा सकते हैं। यदि एक ही फ़ाइल होगी तो वह अंग्रेज़ी अक्षरो के हिसाब से २६ अङ्गो मे बॅटी होगी, और यदि कई फाइलें होगी तो हर फ़ाइल कुछ विशेष अक्षरों के हिसाब से बॅटी होंगी; यहाँ तक कि एक फ़ाइल एक ही अक्षर से आरम्भ होने वाले नामों के पत्रों के लिये भी हो सकती है। फिर एक अक्षर स्वरों के हिसाब से भी छै अङ्गो मे बाँटा जा सकता है। अन्तिम, प्रत्येक व्यक्ति के कुल पत्रों के लिये एक प्रथक फ़ाइल भी हो सकती है। अब ये फ़ाइलें अथवा पत्र पडे हुये अथवा खड़े हुये रह सकते हैं, तथा पत्र खुले अथवा छुट्टे अथवा एक दूसरे से नत्थी करके भी रक्खे जा सकते है।

पत्र को खुले रखने के ढङ्गो मे एक ढङ्ग उनको तार में फ़ाइल करने का है। एक बहुत छोटे आफिस के लिये फ़ाइल का यह ढङ्ग सबसे सरल और सस्ता है। इस प्रकार फ़ाइल करने के लिये एक तार के फाइल की आवश्यकता पडती है जिसके ऊपर का हिस्सा मुड़ा होता है और नीचे के हिस्से मे लकड़ी का एक टुकड़ा लगा होता है। इसमें फ़ाइल करने वाले पत्र तार के ऊपर की नोक में चुभो कर नीचे की लकड़ी के ऊपर पट रख दिये जाते हैं। यदि पत्रों की संख्या यथेष्ट है तो ऐसी कई नत्थियाँ काम में लाई जा सकती हैं और प्रत्येक नत्थी में एक विशेष प्रकार के पत्र लगाये जा सकते है। किन्तु इस ढङ्ग में पत्रों के बीच में छेद हो जाता है, और वह खुले रहने के कारण सुरक्षित नही रहते हैं।

पत्रों को फ़ाइल करने का एक दूसरा ढङ्ग उनको दफ़्तियो में रखने का है। इसके लिये एक मोटे कागज़ की दफ़्ती पर दोनों किनारों की तरफ़ कागज़ के दो टुकड़े लगे रहते हैं और नीचे प्रायः

एक लाल फ़ीता लगा रहता है। इसमें फ़ाइल होने वाले पत्र दफ़्ती पर रहते हैं और उनके ऊपर से एक फ़ीता बँधा रहता है। पत्रों को कई अङ्गों में बाँट कर फ़ाइल करने के लिये इस प्रकार की कई दफ़्तियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं। जिस दफ़्ती में जिस प्रकार के पत्र हों उनका संकेत दोनों ओर के काग़ज़ के टुकड़ों के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया जाता है।

पत्रों को फ़ाइल करने का एक तीसरा ढङ्ग उनके दफ़्तियों की जिल्दों में फ़ाइल करने का है। एक मोटे, लचकदार काग़ज़ की दफ़्ती के जिल्द के बीच में एक लोहे का पटरीदार ताला लगा होता है। इसमें फ़ाइल करने वाले पत्रों में पहिले छेद बनाने वाली मशीन से उनके हाशिया में दो छेद कर लिये जाते हैं। फिर लोहे की पटरी हटा कर उनको दफ़्ती से निकली हुई दो कीलों में पहना कर पटरी कीलों और तालो से कस दी जाती है। इससे बिना पटरी निकाले हुये पत्र फ़ाइल से नहीं निकाले जा सकते, अतः, वे सुरक्षित रहते हैं। इसमें भी पत्रों को किसी प्रकार भी बहुत से अङ्गों में बाँट कर प्रत्येक अङ्ग के लिये एक-एक फ़ाइल अलग-अलग रक्खी जा सकती है। जिस जिल्द में जिस प्रकार के पत्र रक्खे जाते हैं उसका संकेत उस जिल्द के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में कर दिया जाता है। अधिक रक्षा के लिये यह जिल्दें किसी आल्मारी में एक विशेष क्रम से रक्खी जा सकती हैं। ऊपर जिस प्रकार की फ़ाइल के विषय में लिखा गया है उसके अतिरिक्त अनेकों तरह की अन्य फ़ाइलें भी बाज़ार में मिलती हैं जैसे लोहे की शलाको वाली, मोटी दफ़्तियो की जिल्दो की फ़ाइलें (Lever Arch files) अथवा अन्य कोई फ़ाइल।

सरकारी दफ़्तरों में पत्रों को फ़ाइल करने के लिये प्रायः कबूतरों के से ख़ानों वाली एक आल्मारी प्रयोग में लाई जाती है। इसको अंग्रेज़ी में पिजन होल फ़ाइलिङ्ग (Pigeon Hole filing)

कहते हैं। बहुधा इसमें २४ खाने होते हैं जिनमें फ़ाइल करने वाले पत्रों को उनके नाम के पहिले अक्षर के अनुसार एक-एक करके क्रमशः रख देते हैं। पहिले २३ ख़ानो में पहिले २३ अक्षरों से और २४ वें ख़ाने में x, y, अथवा z से प्रारम्भ होंने वाले नामों के पत्र रक्खे जाते हैं। इसमे पत्रों को रखने के पहिले प्रायः उनके पीछे उनका संक्षिप्त विवरण (Docket) लिख देते हैं। इसमें पत्र वाले का नाम और पता, पत्र का नम्बर और उसके लिखने की तारीख़ तथा उसके विषय का संक्षिप्त विवरण कुछ शब्दों मे दे दिया जाता है। इससे उनको ढूँढ़ने मे सरलता पड़ती है। इस आल्मारी के ख़ानों के अन्दर पत्र खुले अथवा छुट्टे ही रहते हैं। हाँ; रक्षा के लिये प्रायः इसके बाहर एक तालेदार किवाड़ा लगा दिया जाता है। जो हो यह फ़ाइल बहुत अच्छी नहीं है। इसमें से पत्रों को ढूँढ़ने में यथेष्ट समय लग जाता है और साथ ही यह बहुत अधिक पत्रों को रखने के योग्य नहीं है। जब इसके ख़ाने पत्रो से भर जाते हैं तब बहुधा वर्ष के अन्त मे उन खानों से सब पत्र निकाल लिये जाते हैं और उन्हें पृथक-पृथक़ बाँध कर तथा बँधने के ऊपर उनका संकेत लिख कर उनको एक सुरक्षित स्थान में रख देते हैं।

कबूतरों के ख़ानों वाली आल्मारी की तरह एक अन्य आल्मारी भी होती है जो शैनन फाइलिङ्ग आल्मारी के नाम से विख्यात है। इसमें ख़ानों के अन्दर ऐसे दराज़ होते हैं जिनका बाहर भीतर किया जा सकता है। अतः, उनमे पत्र दो लोहे की पटरियों से फँसा और कस करके फ़ाइल किये जाते हैं। किसी दराज़ को बाहर खींच कर पत्रों को बिना निकाले हुये ही इधर-उधर पलट कर देखने की सुविधा के लिये इस आल्मारी के दराज़ों में केवल आगे की ही ओर एक दीवार होती है शेष तीनों ओर कोई दीवार नहीं होती है। दराज़ों को आसानी से बाहर निकालने के लिये उनके नीचे पहिये और

ख़ानो में पतली-पतली रेलें भी लगी होती हैं। खींचने पर कोई दराज़ बिल्कुल बाहर न निकल आवे इसको रोकने के लिये उसमें पीछे की ओर एक काँटा लगा रहता है जो उसको पूरी तौर से बाहर निकलने से रोकता है। हाँ, यदि किसी दराज़को बाहर ही निकालना है तो उसके काँटे को हटाया जा सकता है।

फ़ाइल करने के जितने ढङ्ग ऊपर दिये गये हैं उनमें सबमें पत्र-पट रक्खे रहते हैं। अतः, उनको निकालने में कुछ असुविधा होती है। इससे फ़ाइलिङ्ग के कुछ ऐसे ढङ्ग भी हैं जिनमें पत्र खड़े रहते हैं। ऐसे ढङ्गों में एक तो किसी चमड़े, किरमिच अथवा दफ़्ती के एक फैलने और सिकुड़ने वाले बक्स में पत्रों के फ़ाइल करने का ढङ्ग है। इस बक्स को आगे खींच लेने से वह फैल जाता है और दबा देने से वह सिकुड़ जाता है। इसमें प्रायः २४ खाने रहते हैं जिनमें से पहिले २३ खानों में उन व्यक्तियों के पत्र क्रमानुसार रक्खे जाते हैं जिनके नाम अंग्रेज़ी के पहिले २३ अक्षरों से प्रारम्भ होते हैं, और २४ वे खाने में वे पत्र रक्खे जाते हैं जो ऐसे व्यक्तियों के होते हैं जिनके नाम x, y, अथवा z से प्रारम्भ होते हैं। पत्रों को खड़े करके फ़ाइल करने का एक दूसरा ढङ्ग उनको एक ऐसी आल्मारी में (Vertical Filing Cabinet) रखने का है जिसमें वे खड़े रह सकते हैं। इस आल्मारी की दराजें बड़ी गहरी होती हैं। एक आल्मारी में थोड़ी अथवा बहुत जैसी आवश्यकता हो उतनी दराज़े हो सकती हैं और इन दराज़ों के नीचे भी उनको खींचने के लिये छोटे-छोटे पहिये और इधर-उधर दो पतली रेलें लगी होती हैं। इसको बन्द करने के लिये इसमें बाहर एक तालेदार किवाड़ा भी होता है। इस ढङ्ग में प्रत्येक व्यक्ति के पत्रों के लिये पृथक-पृथक फ़ाइलें होती हैं जो बीच से ऐसी मुड़ी होती हैं कि उनकी एक दफ़्ती का किनारा दूसरी दफ़्ती के किनारे से कुछ ऊपर निकला रहता है। हर व्यक्ति के सब पत्र एक फ़ाइल में तारीख़ के अनुसार रख दिये जाते हैं और ये

फाइलें आल्मारी के भिन्न-भिन्न दराजों में खड़ी कर दी जाती हैं। जहाँ तक उनको उनमें रखने का प्रश्न है इसके लिये तीन रीतियाँ हैं :—

(१) एक रीति में तो हर फ़ाइल में उसके निकले हुये किनारे पर उस व्यक्ति का नाम और पता रहता है जिसके पत्र उसमें रक्खे जाते हैं। अब सारी फ़ाइलें आल्मारी की दराज़ों में उन नामों के प्रथम अक्षर के अनुसार बाँट कर खड़ी कर दी जाती हैं और हर दराज़ के बाहर एक कार्ड पर वह अक्षर लिख कर लगा दिये जाते हैं जिनसे प्रारम्भ होने वाले नामों की फ़ाइलें उस दराज में रक्खी जाती हैं। ऐसा करने से यदि किसी व्यक्ति का कोई पत्र खोजना है तो यह आसानी से मालूम हो जाता है कि उसके पत्रों की फ़ाइल किस दराज में है। हाँ, जब फ़ाइलें बहुत सी होती हैं तब उनको दराज़ के अन्दर से निकालने में बड़ी कठिनता पड़ती है।

(२) दूसरी रीति मे हर फ़ाइल में उसके निकले हुये किनारे पर उस व्यक्ति की एक संख्या डाल दी जाती है जिसके पत्र उस फ़ाइल में होते हैं। अब, ये फ़ाइलें दराजों में क्रमानुसार खड़ी कर दी जाती हैं और उनके बाहर उनके अन्दर की फाइलों की संख्याओं की आदि और अन्त की संख्या कार्डों पर लिख कर लगा दी जाती हैं। यदि फ़ाइलों की संख्या अधिक रहती है तो उनको ढूँढ़ने की सुविधा के लिये प्रत्येक दराज़ के अन्दर दस दस फ़ाइलों के बाद उपयुक्त संख्याओं के साङ्केतिक कार्ड भी लगा दिये जाते हैं। अब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति की फ़ाइल को ढूँढ़ने के लिये यह कैसे मालूम हो कि उसके लिये कौन-सी संख्या नियत की गई है। इसके लिये यह आवश्यक है कि इसकी अलग एक सूची हो। यह दो ढङ्ग से रक्खी जा सकती है, एक तो किसी किताब के अन्दर और दूसरे कार्डों पर। किताब के अन्दर की सूची में यह ख़राबी है कि वह नामों के पहिले अक्षरों के अनुसार रह ही नहीं सकती है। मान लीजिये कि 'अ' अक्षर

से आरम्भ होने वाले तीन व्यक्तियों के पत्रो की फ़ाइलें हैं, अकबर की, अखिलानन्द की और अमृतलाल की। अब, यदि किताब के अन्दर की सूची में ये नाम एक के बाद दूसरे क्रम से लिख दिये गये हैं, तो भविष्य में यदि अजुध्या प्रसाद की फ़ाइल खुलती है तो उसका नाम जो अखिलानन्द के बाद वाली सतर पर लिखना चाहिये वहाँ न लिखा जा कर अमृतलाल के नाम वाली सतर पर लिखा जायगा। इससे सूची का क्रम बिगड़ जाता है और नाम ढूँढ़ने में असुविधा होती है। अतः, कार्डों पर की सूची इस सूची से कहीं अच्छी मानी जाती है। इसके लिये एक-एक कार्ड पर एक-एक व्यक्ति के नाम, इत्यादि लिख लिये जाते हैं और वह सब एक छोटी आल्मारी (Card Index Cabinet) की दराज़ो मे उन पर के नामो के पहिले अक्षरों के आधार पर बाँट कर खड़े कर दिये जाते है और यह बाँट प्रत्येक दराज़ के बाहर एक कार्ड पर साङ्केतिक अक्षरों के द्वारा दिखला दी जाती है। यदि इस प्रकार की बाँट से प्रत्येक दराज में कार्डों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि उनका ढूँढ़ना कठिन हो जाता है तो इन दराजों के अन्दर के कार्ड फिर स्वरों के अनुसार बाँट दिये जाते हैं और उनके बीच-बीच में साङ्केतिक कार्ड लगा दिये जात हैं। अब, यदि किसी व्यक्ति का कोई पत्र निकालना है तो पहिले कार्डों की सूची से उसकी फ़ाइल की संख्या का पता लगाया जाता है और फिर फ़ाइलों की आल्मारी से उस संख्या की फ़ाइल निकाल कर उस पत्र को देख लिया जाता है। खड़ी रक्खी जाने वाली फ़ाइलों मे पत्र छुट्टे ही रक्खे जाते हैं उनको कसने की कोई क्रिया नहीं है।

(३) तीसरी रीति में फ़ाइलें आल्मारी की दराजों में नाम और नम्बर दोनों के अनुसार रक्खी जाती हैं। अतः, इसके लिये नामों और नम्बरों की एक अलग सूची की आवश्यकता नहीं होती है।

किन्तु कार्डों की सूची के इतने लाभ हैं कि अधिकतर फ़ाइलें दूसरी रीति से ही रक्खी जाती हैं।

फ़ाइलिङ्ग के जितने ढङ्ग ऊपर दिये गये हैं उन सब में यह अन्तिम ढङ्ग ही ऐसा है कि जो एक बहुत बड़े आफ़िस में प्रयोग में आ सकता है। पहिले तो इसमे प्रत्येक व्यक्ति के सारे पत्र एक ही फ़ाइल में मिल जाते हैं। अतः, आवश्यकता पड़ने पर वे सब एक साथ देखे जा सकते हैं। दूसरे इसमें फ़ाइलो के खड़े होने के कारण, जिस फ़ाइल को निकालना है सिर्फ़ उसी को हटाना पड़ता है। इसके विपरीति फ़ाइलों के पट रक्खी रहने पर यदि किसी फ़ाइल को निकालना है तो उसको ऊपर की सभी फ़ाइलों को हटाना पड़ता है। इसमें इधर-उधर की फ़ाइलो को केवल थोड़ा सा दबा देने से ही काम चल जाता है। तीसरे इसमें व्यक्तियों की निर्धारित संख्यायें ही उनकी फ़ाइलों पर डाली जाती हैं, अतः, यदि उस व्यक्ति से पत्र-व्यवहार बन्द हो जाता है तो उसके पत्र, इत्यादि उस फ़ाइल से हटा कर कहीं दूसरे स्थान मे रख दिये जाते हैं और वह फ़ाइल तथा नम्बर किसी नये व्यक्ति के पत्रों और नामों के लिये काम मे आ जाते हैं। अन्तिम बात यह है कि इसमे नये व्यक्तियों की फ़ाइलों के खुलने से पुराने क्रम मे कोई गड़बड़ी नहीं पड़ती है।

(६) शीघ्र सूचना भेजने के ढङ्ग

वैसे तो किसी आफ़िस का अधिकतर काम उसके पत्रो से चलता है। किन्तु, यदि उस आफ़िस का प्रबन्धक यह चाहता है कि कोई पत्र उसके पाने वाले के पास बहुत ही शीघ्र पहुँच जाय तो वह उसको हवाई जहाज़ से अथवा डाक के शीघ्र पहुँचने के ढङ्ग (Express Delivery) से भेज सकता है। पत्रों को हवाई जहाज़ से भेजने के लिये उन पर एक ऐसा टिकट लगाना पड़ता है जो यह सूचित करता है कि यह पत्र हवाई जहाज़ द्वारा (By Air Mail) जायगा। यह टिकट

हर डाकखाने से मुफ़ मे प्राप्त हो सकता है। फिर हवाई जहाज़ से पत्रों को भेजने के लिये इस देश के अन्दर हर पोस्टकार्ड पर ६ पाई का और लिफ़ाफ़े पर एक आना प्रति तोला अथवा उसके किसी अंश पर का अतिरिक्त टिकट लगता है। डाक के शीघ्र भेजने के ढङ्ग को प्रयोग मे लाने के लिये हर पत्र पर लाल रङ्ग का एक अतिरिक्त टिकट जिससे यह मालूम हो जाता है कि यह पत्र डाक के शीघ्र भेजने (Express Delivery) का है लगाया जाता है। यह भी प्रत्येक डाकख़ानों में बिना किसी दाम के मिलता है। फिर इस देश में इस पर भी दो आने का एक अतिरिक्त टिकट लगता है। इस तरह का पत्र वैसे तो अन्य पत्रों की तरह ही जाता है किन्तु उस डाकखाने में पहुँचने के बाद जहाँ इसको जाना है उसी समय किसी पास के तार आफ़िस के द्वारा तार बाँटने वाले चपरासी से फ़ौरन ही उसके पाने वाले के पास भिजवा दिया जाता है। कभी-कभी किसी प्रबन्धक को उपरोक्त में से कोई ढङ्ग भी ठीक नहीं जँचता। तब वह अपनी सूचना को टेलीफ़ोन अथवा तार से भेजता है। टेलीफ़ोन से सूचना भेजने वाले और सूचना पाने वाले दोनों व्यक्तियों में परस्पर बातें हो सकती है, किन्तु इसमें जितनी अधिक दूरी होती है उतना ही अधिक व्यय पड़ता है, और साथ में यह उसी अवस्था में सुविधाजनक पड़ता है जब दोनों व्यक्तियों के आफ़िसों में टेलीफ़ोन लगा हो। यदि सूचना भेजने वाले व्यक्ति के आफ़िस में टेलफ़ोन नहीं है तो वह किसी ऐसे आफ़िस में जा सकता है जहाँ टेलीफ़ोन लगा है, अथवा तार-घर के किसी ऐसे स्थान पर जहाँ सर्वसाधारण के लिये टेलीफ़ोन लगा हुआ है (Public Exchange में) जा सकता है। किन्तु यदि सूचना पाने वाले के आफ़िस में टेलीफ़ोन नहीं है तो इसको उसके शहर के किसी ऐसे स्थान पर बुलाना पड़ेगा जहाँ पर टेलीफ़ोन है। अतः, इसमें बड़ी झंझट पड़ती है। इससे बहुधा तार के द्वारा सूचना भेजनी ही पड़ती है।

तार के द्वारा सूचनायें देश के अन्दर तथा बाहर दोनों ही जगह भेजी जा सकती हैं। भिन्न-भिन्न तारघरों के लेने और भेजने के भिन्न-भिन्न समय नियत है। अब यदि किसी तारघर से इस नियत समय के बाद तार भेजना है तो १) प्रति तार अधिक देना पड़ता है। कहना न होगा कि कुछ तारघर इसीलिये २४ घंटे खुले रहते हैं। जब किसी को कोई तार भेजना हो तो उसे चाहिये कि वह तार पाने वाले का पता और सूचना किसी काग़ज़ पर लिख ले। इसके लिये तारघरों के तार के फ़ार्म भी बिना किसी क़ीमत के मिलते हैं। यदि तार पाने वाले का कोई तार का छोटा पता है तो केवल वही लिख कर शहर का नाम लिख दिया जाता है। व्यापारी लोगों के प्रायः ऐसे पते होते हैं। इनकी रजिस्ट्री साल भर के लिये फी पता २०) और ६ माह के लिये फ़ी पता १२) दे कर तार-विभाग से करानी पड़ती है। इससे तार भेजने वालों का ख़र्च बच जाता है। अतः, कोई व्यापारी इसे केवल इसीलिये कराता है कि जिससे उन लोगों का लाभ हो जो उससे व्यवहार करते हैं। इससे उसका स्वयम् का भी अप्रत्यक्ष रूप में लाभ होता है। तार के बीच के अङ्ग मे उसकी सूचना के शब्द रहते हैं। यदि तार का फ़ार्म है तो उसके बीच का स्थान छोटे-छोटे टुकडो में बँटा होता है। अतः, प्रत्येक टुकडे में एक ही शब्द लिखा जाता है। तारों की सूचना पूरे वाक्यों में नहीं लिखी जाती क्योंकि ऐसा करने से ख़र्च ज़्यादा पड़ता है। इससे जो सूचना भी किसी तार में लिखनी हो उसको ऐसे शब्दों में लिखना चाहिये कि सूचना के शब्दों की संख्या भी कम हो और उसके अर्थ भी स्पष्ट हों। तार टाइप हो जाय तो बडा अच्छा है। यदि उसमें कोई संख्या हो तो उसे शब्दों ही में लिखा जाय तो अत्युत्तम है। तार का कोई भी शब्द १५ अक्षरों से बडा न होना चाहिये अन्यथा उसके दो शब्द गिने जाते हैं। तार भेजने वाला चाहे तो अपना नाम तार के साथ-साथ भेजे

अथवा नहीं। किन्तु प्रत्येक तार के नीचे उसको अपने हस्ताक्षर और अपना पूरा पता अवश्य देना चाहिये। तार के पाने वाले के पास यह नहीं भेजा जाता और न इस पर तार का महसूल ही लगता है। यह तो तारघर मे केवल भविष्य में यदि काम पड़े तो उसकी सुविधा के लिये रहता है। जिसके नाम कोई तार भेजा जाता है यदि उसका पता नहीं लगता है तो तार पत्र की तरह वापस आ जाता है और तार भेजने वाले के पास उसके पते पर वापस कर दिया जाता है। हमारे देश के अन्दर चाहे जहाँ तार भेजा जाय तार का महसूल आठ अथवा आठ से कम शब्दों के लिये तेरह आने और उसके ऊपर प्रति शब्द एक आना लगता है। ऐसे तार को साधारण तार कहते हैं। यह तार अन्य तारों के साथ उसी क्रम से भेजा जाता है जिस क्रम से वह तारघर मे पहुँचता है। किन्तु यदि तार भेजने वाला यह चाहता है कि उसका तार साधारण तारों की अपेक्षा शीघ्र भेज दिया जाय तो इसके लिये उसको साधारण तार का दुगना महसूल देना पड़ता है। ऐसे तार को शीघ्र भेजने वाला (Express) तार कहा जाता है। यदि किसी को बधाई का तार भेजना है तो उसके लिये एक रियायती महसूल लगता है। यदि एक ही तार को किसी जगह के कई व्यक्तियों के पास भेजना है तो पहिले तार का पूरा महसूल और उसके बाद हर तार पर उसके पते के लिये साधारण तार पर प्रति शब्द एक आना और शीघ्र भेजने वाले तार पर प्रति शब्द दो आना महसूल पड़ता है और तार के समाचार के लेख के हर १०० शब्दों अथवा उसके किसी अंश के लिये ४ आना प्रति नकल कराई देनी पड़ती है। तार जवाबी भी भेजे जा सकते हैं। इसके लिये तार भेजने वाले को उसके जवाब का महसूल भी दे देना पड़ता है और तारघर वाले तार देते वक्त तार पाने वाले को तार का एक फ़ार्म भी उस पर यह लिख कर कि उसके सम्बन्ध में तारघर के पास कितना महसूल जमा है दे देते हैं। अब तार पाने वाला यदि

चाहे तो उसका उत्तर भी भेज सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो तार भेजने वाला यह अतिरिक्त महसूल तारघर से अर्ज़ी देने पर वापस पा सकता है। तार के सम्बन्ध की शिकायत प्रान्त के पोस्ट मास्टर जनरल से की जा सकती है।

भारतवर्ष से बाहर पाँच प्रकार के तार भेजे जा सकते हैं:—(१) शीघ्र भेजने वाले तार (Urgent Telegrams or Cablegrams)—ये साधारण तार से जल्दी जाते हैं। इनमें पाने वाले के पते के पहिले D लिख देते हैं जो महसूल लगाने के लिये एक शब्द माना जाता है। ऐसे तारों का महसूल साधारण तारों से दुगना लगता है। विदेशी तारों में भिन्न-भिन्न देशों के लिये प्रति शब्द भिन्न-भिन्न महसूल लगता है, और यह भारतीय तार के महसूल की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। (२) साधारण विदेशी तार (Ordinary or Full Rate Cable)—यह शीघ्र भेजने वाले तारों के बाद भेजा जाता है। (३) देर में भेजने वाले विदेशी तार (Deferred Cables)—ये उपरोक्त तारों के बाद भेजे जाते हैं, और इन पर साधारण विदेशी तार से आधा महसूल लगता है और कम से कम ५ शब्दों का महसूल लगता है। इनमें पते के पहिले LC लिख दिया जाता है जो महसूल के लिये एक शब्द माना जाता है। यह तारघर के नियत समय के अन्दर ही भेजे जा सकते हैं। (४) प्रतिदिन तार से भेजने वाले पत्र (Daily Letter Telegrams)—ये उपरोक्त तीनों प्रकार के तारों के बाद भेजे जाते हैं। इनमें पते के पहिले DLT लिख दिया जाता है जो महसूल के लिये एक शब्द माना जाता है। इन पर साधारण विदेशी तारों की अपेक्षा एक तिहाई महसूल लगता है और वह कम से कम २१ शब्दों पर लिया जाता है। ये तार पाने वालों को प्रायः दूसरे दिन मिल जाते हैं। (५) बिना तार के भेजने वाले तार (Radio Telegrams)—ये समुद्र पर चलने वाले उन जहाज़ों को भेजे

जा सकते हैं जिन पर बिना तार वाली तार भेजने की मशीन (Radio Telegraph) लगी रहती है।

विदेशों को तार यां तो साधारण भाषा (Simple Language) में भेजे जा सकते हैं या गुप्त भाषा में। गुप्त भाषा के तार दो प्रकार के होते हैं :—

(१) कोड के तार (Coded Cables)—बाज़ार में बहुत सी ऐसी पुस्तकें मिलती हैं जिनमें व्यापारिक सूचनाओं के वाक्यों, वाक्य समूहों और अर्धवाक्यो के लिये एक-एक ऐसे शब्द नियत हैं जिनके या तो कोई अन्य अर्थ होते है या कोई अर्थ होते ही नहीं हैं। शब्दों के अतिरिक्त इनकी निश्चत संख्यायें भी होती हैं। ये शब्द अधिक से अधिक १० अक्षरों के और संख्याये अधिक से अधिक ५ हिन्दसो की होती हैं। बाज़ार में जो कोड मिलते हैं उनमें एजर्स ए० बी० सी० (Ager's A B C), लाइवर्स एक्स० वाई० ज़ेड (Liver's X Y Z), और बेन्टलेज़ ए० बी० सी० (Bentley's A B C) बहुत प्रचलित हैं। जिस सूचना को भेजना है उसको एक सादे कागज़ पर लिख कर कोड द्वारा तार में या तो कोड के शब्द अथवा उसकी संख्यायें लिख लेनी चाहिये और इन्हीं को भेज देना चाहिये। तार का पाने वाला फिर इस सूचना को कोड की सहायता से साधारण भाषा मे परिवर्तित कर लेता है। कोड से तार का खर्च कम पड़ता है क्योंकि इसमे कई साधारण शब्दों के लिये एक ही शब्द प्रयोग में आता है और दूसरे यह साधारण व्यक्तियों से गुप्त भी रहता है। हाँ, जो लोग कोड जानते हैं वे अवश्य इसको समझ सकते हैं। अतः, कुछ बड़े-बड़े फ़र्म अपने निजू कोड तैयार कर लेते हैं और उनको अपनी शाखाओं के प्रधान प्रबन्धकों के पास भेजे देते है। इससे उनकी शाखाओ के बीच मे जो सूचनाये भेजी जाती हैं वह गुप्त रहती हैं।

(२) साइफर केबिल (Cypher Cable)—तार को गुप्त रखने की एक दूसरी विधि भी है। वह यह है कि उन सब व्यापारियों के बीच में जिनमें तार आता-जाता है पहिले से ही कोई एक ऐसा शब्द नियत कर लिया जाय जिसमें १० अक्षर हों। अब, जिस सूचना को तार द्वारा भेजना है उसको पहिले कोड की संख्याओं में परिवर्तित कर लेना चाहिये और फिर परस्पर नियत किये हुए शब्द में जो अक्षर हैं उनमें प्रत्येक संख्या को नियत शब्द के एक-एक अक्षर के लिये क्रमशः, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और ० मान कर परिवर्तित कर लेना चाहिये। बस ये अक्षर तार में भेज दिये जाते हैं और इनके अर्थ वही व्यक्ति निकाल सकता है जो तार भेजने वाले और पाने वाले व्यक्तियों के बीच में नियत शब्द को जानता है। इस प्रकार का तार उपरोक्त तार की अपेक्षा अधिक गुप्त रहता है।

(७) आफ़िस के कर्मचारियों के साथ व्यवहार

आफ़िस के कर्मचारियों के साथ उसके प्रधान प्रबन्धक को बहुत ही अच्छा व्यवहार रखना चाहिये। बहुत से अच्छे कर्मचारी किसी एक आफ़िस में अधिक दिन तक केवल इसीलिये नहीं ठहर पाते हैं कि उसके प्रधान प्रबन्धक का व्यवहार उनके प्रति ठीक नहीं रहता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि उनसे नीचे के कर्मचारियों को विशेषकर नौकरों इत्यादि को उनकी डाँट, फटकार तथा गाली, इत्यादि की परवा नहीं करनी चाहिये और सच तो यह है कि बहुत से लोग इसकी परवा नहीं भी करते हैं। अतः, इसीसे उनका साहस और भी बढ़ जाता है। किन्तु एक ऐसा व्यक्ति कि जिसके हृदय में आत्माभिमान है ऐसी बातों को सहन नहीं कर सकता है, और वास्तव में जिसके हृदय में आत्माभिमान है ही नहीं वह विश्वासपात्र व्यक्ति हो ही नहीं सकता है। इसलिये केवल विश्वासपात्र व्यक्तियों को ही रखना चाहिये, और क्योंकि यह बुरा बर्ताव सहन ही नहीं कर

सकते हैं इनके साथ बुरा बर्ताव करना ही नहीं चाहिये। फिर प्रधान प्रबन्धक को सहानुभूतिसूचक होना चाहिये। उसको अपने कर्मचारियों के दुख-सुख का पता रखना चाहिये और समय-समय पर उनसे समवेदना प्रगट करते रहना चाहिये। जो अच्छे कर्मचारी हैं उनकी बराबर वेतन-वृद्धि करते रहना चाहिये और समय-समय पर उनके अच्छे कामों के लिये उन्हें पारितोषिक भी देना चाहिये। जो कर्मचारी जितना ही अधिक पुराना होता जाता है वह उतना ही काम में होशियार और अनुभवी होता जाता है। अतः, यदि उसकी बराबर वेतन-वृद्धि होती जाती है तो कारबार की कोई हानि नहीं होती है। इसके विपरीत यदि कर्मचारियों की वेतन-वृद्धि नहीं होती है तो वह इधर-उधर नौकरी ढूँढ़ते रहते हैं और अवसर पाते ही दूसरी जगह चले जाते हैं। एक नये कर्मचारी को फिर से काम सिखाना पड़ता है। कर्मचारियों को स्थाई रूप से रहने का लालच देने के लिये उनका प्राविडेन्ट फण्ड, इत्यादि रख देना चाहिये जिससे वह बीच बीच में काम छोड़ कर अन्य जगह न चले जायँ। समय-समय पर पारितोषिक आदि देने से कर्मचारियों मे काम करने की दिलचस्पी बढ़ती है जिसका अन्तिम फल व्यापार की उन्नति ही होता है।

कर्मचारियों में काम का उचित विभाजन भी होना चाहिये। बहुधा ऐसा देखा गया है कि किसी-किसी प्रधान प्रबन्धक के कुछ कर्मचारी बड़े मुँह लगे हो जाने के कारण बहुत कम काम करते हैं। इसका अन्य व्यक्तियों पर बहुत बुरा असर पड़ता है और वह भी भुनभुनाते रहते हैं। सब कर्मचारियों को बराबर का काम मिलना चाहिये, और जो व्यक्ति अपना काम जल्दी पूरा कर देता है उसके ऊपर और काम नहीं लाद देना चाहिये। यदि काम अधिक है तो पर्याप्त कर्मचारी रखने चाहिये। ऐसा न हो कि जो लोग काम करते हैं वह अधिकाधिक काम के कारण रात-दिन पिसा करें। कुछ

आफ़िसों में कर्मचारियों से रात के समय भी बहुत देर तक काम लिया जाता है। ऐसा उचित नहीं है, ६ घंटे से लेकर ८ घंटे का काम यथेष्ट है। यदि इससे अधिक काम है तो कर्मचारियों की संख्या को बढा देना चाहिये।

कुछ प्रबन्धक अपने यहाँ के कर्मचारियों की सभायें नहीं होने देते हैं। वह उनकी एकता से डरते हैं। वास्तव में वही व्यक्ति अपने कर्मचारियों की एकता से डरता है जो या तो स्वयम् कमज़ोर है अथवा जो अपने कर्मचारियो के प्रति ठीक व्यवहार नहीं रखता है। प्रत्येक आफ़िस के कर्मचारियों की अपनी एक सभा होनी चाहिये और प्रधान प्रबन्धक को अपने कर्मचारियों से व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से बराबर मिलते रहना चाहिये और उनकी शिकायतों को दूर करना चाहिये। यह अवश्य है कि कभी-कभी कुछ ऐसे कर्मचारी आ जाते हैं जो स्वभाव ही से उपद्रवी होते हैं। वास्तव में कर्मचारियो की नियुक्ति के समय बहुत होशियारी की आवश्यकता रहती है। साथ ही उनको एक वर्ष की जाँच पर नियुक्त करना चाहिये और इस अवधि में उन पर बराबर दृष्टि रखना चाहिये। यदि कोई नया कर्मचारी ठीक नहीं जँचता है तो उसको अलग कर देना चाहिये अन्यथा एक ही मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

कर्मचारियों को रविवार इत्यादि की छुट्टी देनी चाहिये और कुछ और छुट्टियों का भी उनको अधिकार होना चाहिये जिससे कि वे लोग उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार ले सकें। उनके लिये पढ़ने का भी प्रबन्ध होना चाहिये। उनको व्यापारिक परीक्षाओं को पास करने के लिये भी प्रोत्साहित करना चाहिये। ऐसा करने से उनके काम करने की योग्यता बढेगी। ऊँचे स्थानों के रिक्त होने पर यदि अपने यहाँ ही का कोई कर्मचारी उसके योग्य हो तो उसे अवश्य अवसर देना चाहिये। इसी तरह से उनकी सुविधा और उन्नति का बराबर ध्यान रखना चाहिये।

७. हिसाब-किताब की भिन्न-भिन्न रीतियाँ

(१) हिसाब-किताब की भिन्न-भिन्न रीतियाँ (२) हिसाब-किताब के दोहरे लेखे की रीति ही उसको रखने की परिपूर्ण रीति है (३) हिसाब-किताब की पुस्तकें तथा बहियाँ (४) एकहरे लेखे की रीति (५) दोहरे लेखे की अंग्रेजी प्रणाली (६) दोहरे लेखे की अंग्रेजी प्रणाली के कुछ विशेष हिसाब-किताब (७) दोहरे लेखे की भारतीय प्रणाली (८) हिसाब-किताब की अंग्रेजी प्रणाली और भारतीय प्रणाली में अन्तर (९) हिसाब-किताब का निरीक्षण (Auditing).

हिसाब-किताब का रखना बहुत ही आवश्यक है। इसके कई लाभ हैं। प्रथम तो प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः ही यह जानना चाहता है कि उसकी सच्ची आर्थिक अवस्था कैसी और क्या है। व्यापारियों के लिये तो यह अत्यन्त ही आवश्यक है। उनको तो इस बात का पता लगना ही चाहिये कि एक अमुक अवधि के अन्दर उन्हें कितना लाभ अथवा कितनी हानि हुई है, उनके पास कौन-कौन सी वस्तुयें और कितने-कितने की हैं, उनको दूसरो को क्या देना है और उनसे क्या पाना है। दूसरे, साझों और कम्पनियों में तो यह इसलिये भी आवश्यक है कि प्रत्येक साझी और सदस्य को संतोष हो जाय। तीसरे, आय-कर के लिये भी हिसाब-किताब का रखना बहुत ही आवश्यक है। इसके न होने पर आय-कर विभाग जो आय-कर लगा देता है वह कितना भी अधिक क्यो न हो देना ही पड़ता है। अंतिम बात यह है कि मुक़दमों की हार-जीत तो हिसाब-किताब के ही ऊपर निर्भर है।

(१) हिसाब-किताब की भिन्न-भिन्न रीतियाँ

हिसाब-किताब की मुख्यतः दो ही रीतियाँ हैं। एक एकहरे लेखे की (Single Entry System) और दूसरी दोहरे लेखे की (Double Entry System)। अब, इनकी अंग्रेज़ी और भारतीय प्रणालियाँ भी हैं। अंग्रेज़ी प्रणाली में भी हिसाब-किताब एकहरे लेखे की और दोहरे लेखे की रातियों से रक्खे जा सकते हैं और भारतीय प्रणाली में भी ये ही दो रीतियाँ चलती हैं। बात यह है कि किसी व्यापारी के जो लेन-देन होते हैं उनका प्रभाव या तो उसकी सम्पति पर अथवा उसके आय-व्यय के श्रोतो पर अथवा उन लोगों पर पड़ता है जिनसे उसके लेन-देन होते हैं। अतः, उसके यहाँ इनमें से प्रत्येक का पृथक-पृथक स्थान होता है जिसमें उसके समस्त लेन देनों का प्रभाव उस विशेष मद पर दिखाया जाता है। बस हर मद का जो एक स्थान होता है उसीको अग्रेज़ी प्रणाली में एकाउंट (Account) और भारतीय प्रणाली में खाता कहते हैं। वैसे तो इन दोनों शब्दों के एक ही अर्थ हैं, किन्तु इनमें कुछ सैद्धान्तिक अन्तर हैं जिनको हम आगे चल कर देखेंगे। उपरोक्त के अनुसार एकाउन्ट और खाते तीन प्रकार के होते हैं, एक तो सम्पत्ति के, दूसरे आय-व्यय के, तीसरे व्यक्तियों के। अग्रेज़ी प्रणाली में इनके नाम क्रमशः रीयल (Real), नामिनल (Nominal) और पर्सनल (Personal) है, और भारतीय प्रणाली के अनुसार यही क्रमशः वास्तविक, नाम-मात्र के, और व्यक्तिगत कहे जा सकते हैं। बस तो, एकहरे लेखे की रीति में चाहे वह अंग्रेज़ी प्रणाली में हो और चाहे भारतीय प्रणाली में केवल पर्सनल एकाउन्ट अथवा व्यक्तिगत खाते ही रक्खे जाते हैं और दोहरे लेखे की रीति में चाहे वह किसी प्रणाली में हो तीनों प्रकार के एकाउन्ट अथवा खाते रक्खे जाते हैं।

(२) हिसाब-किताब के दोहरे लेखे की रीति ही उसको रखने की परिपूर्ण रीति है

हिसाब-किताब में किसी व्यापारी के लेन-देनों के ही प्रभाव दिखाये जाते हैं। वास्तव में प्रत्येक लेन-देन के दो प्रभाव होते हैं। बात यह है कि हर लेन-देन में लेन भी होता है और देन भी होता है। यदि व्यापारी कुछ पाता है तो कुछ देता भी है और कुछ देता है तो कुछ पाता भी है। हो सकता है कि यह देना और पाना एक ही समय में न समाप्त हो जाय। देना बाक़ी रहे अथवा पाना बाक़ी रहे। किन्तु पाने के बिना देना और देने के बिना पाना नहीं हो सकता है। अतः, हिसाब-किताब की वही रीति परिपूर्ण रीति है जिसमें प्रत्येक लेन-देन के यह दोनो ही रूप दिखलाये जाते हों। बस हिसाब-किताब के दोहरे लेखे की रीति मे चाहे वह अँग्रेज़ी प्रणाली की हो चाहे भारतीय प्रणाली की किसी लेन-देन के ये दोनो ही रूप दिखाये जाते हैं। इसके विपरीत एकहरे लेखे की रीति में चाहे वह उपरोक्त में से किसी भी प्रणाली का क्यों न हो यह बात नहीं है। जैसा कि हम आरम्भ में ही कह आये हैं उसमें तो केवल पर्सनल एकाउन्ट अथवा व्यक्तिगत खाते ही होते हैं। अतः, उसमें हर लेन-देन का केवल वही रूप दिखाया जा सकता है जो पर्सनल एकाउन्टों अथवा व्यक्तिगत खातों पर पड़ता है। क्योंकि अन्य एकाउन्ट और खाते होते ही नहीं, इसलिये लेन-देनों का यह रूप जो उन पर पड़ता है दिखाया ही नहीं जा सकता है। इसके विपरीत दोहरे लेखे की रीति में सब प्रकार के एकाउन्टो अथवा खातो के होने के कारण उसमे प्रत्येक लेन-देन के दोनो रूप दिखाये जा सकते हैं। अब यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि हिसाब-किताब की वही रीति परिपूर्ण समझी जा सकती है जिसमें प्रत्येक लेन-देन के दोनो रूप दिखाये जाते हैं और क्योंकि यह रीति दोहरे लेखे की रीति ही है इससे हिसाब-किताब की यही रीति उसको रखने की परिपूर्ण रीति है।

(३) हिसाब-किताब की पुस्तकें तथा बहियाँ

अंग्रेज़ी प्रणाली में तो हिसाब-किताब के लिये रजिस्टर, पुस्तकें रक्खी जाती हैं और भारतीय प्रणाली में बहियें होती है। रजिस्टर और बहियें सहायक तथा मुख्य होते हैं। अंग्रेज़ी प्रणाली मे सहायक पुस्तकों में सबसे पहिले जर्नल (Journal) था। इसमें प्रत्येक लेन-देन के दोनों रूपों का निरूपण कर दिया जाता है। इसके बाद उसमें अन्य सहायक पुस्तकें भी प्रयोग में आई। इनमें से मुख्य कैश बुक (Cash Book), परचेजेज़ बुक (Purchases Book), सेल्स बुक (Sales Book), रिटर्न्स इनवर्ड बुक (Returns Inward Book), रिटर्न्स आउट-वर्ड बुक (Returns Outward Book), बिल्स रेसीवेबिल बुक (Bills Receivable Book), और बिल्स पेबिल बुक (Bills Payable Book) हैं। भारतीय प्रणाली में यही रोकड़ बही, जमा नक़ल बही, नाम नक़ल बही, जाकड़ बही, हुण्डी बही, इत्यादि के नाम से प्रचलित हैं। मुख्य पुस्तक को अंग्रेज़ी प्रणाली में लेजर (Ledger) और भारतीय प्रणाली में खाता बही कहते हैं। उपरोक्त पुस्तकें अथवा बहियाँ एक मध्यम श्रेणी के व्यापारी के हिसाब-किताब के लिये हैं। यदि व्यापार छोटा है तो सहायक पुस्तकों अथवा बहियो में जैसा हो कमी की जा सकती है और यदि व्यापार बड़ा हो तो वह और बढ़ाई जा सकती हैं। दोहरे लेखे की अपेक्षा एकहरे लेखे में चाहे वह अंग्रेज़ी प्रणाली में हो और चाहे भारतीय मे सहायक पुस्तकें अथवा बहियाँ स्वभावतः ही कुछ कम रक्खी जाती हैं। अंग्रेज़ी प्रणाली में जबकि दोहरे लेखे की रीति मे जर्नल अवश्य रक्खा जाता है एकहरे लेखे की रीति में यह होता ही नहीं है। इसी तरह से जैसा कि पहिले कहा जा चुका है चाहे वह अंग्रेज़ी प्रणाली में हो और चाहे भारतीय प्रणाली में हो दोनों में एकहरे लेखे के सम्बन्ध मे लेजर अथवा खाते में केवल पर्सनल एकाउन्ट अथवा व्यक्तिगत खाते ही

होते हैं। इसके विपरीत दोहरे लेखे की रीति के सम्बन्ध में दोनों प्रणालियों में लेजर अथवा खाते में प्रत्येक प्रकार के एकाउन्ट अथवा खाते होते हैं।

(४) एकहरे लेखे की रीति

एकहरे लेखे की रीति में जैसा कि पहिले कहा जा चुका है चाहे वह अंग्रेज़ी प्रणाली में हो चाहे भारतीय प्रणाली में दोहरे लेखे की रीति से कम सहायक पुस्तकें अथवा बहियें होती हैं। इसमें केवल एक कैश बुक अथवा रोकड़ बही ही से काम चल सकता है, अथवा कई पुस्तकें अथवा बहियें हो सकती हैं। इनमें लेखे उसी प्रकार होते हैं जैसे दोहरे लेखे की रीति में जिसको कि हम आगे चल कर देखेंगे। हाँ, मुख्य पुस्तक में लेखा करते समय इसमें केवल पर्सनल एकाउन्टों अथवा व्यक्तिगत ख़ातों ही मे लेखे होते हैं। इसके लेजर अथवा इसके ख़ाते में अन्य प्रकार के एकाउन्ट अथवा ख़ाते होते ही नहीं। जहाँ तक उपरोक्त पर्सनल एकाउन्टों अथवा व्यक्तिगत ख़ातों में लेखा करने का प्रश्न है वह उसी तरह से होता है जैसे दोहरे लेखे की रीति में जिसके विषय में हम आगे चलकर समझेंगे। एकहरे लेखे की रीति में हानि-लाभ का पता अन्त की पूँजी का प्रारम्भिक पूँजी से मिलान करके और उसमे व्यापारी ने जो कोई और रक़म मिलाई है, अथवा उसमें से निकाली है उसका हिसाब करके मालूम होता है। इसमें हानि-लाभ का एकाउन्ट अथवा खाता भी बन सकता है किन्तु उसकी वास्तविकता का पता नहीं चल सकता है।

(५) दोहरे लेखे की अंग्रेज़ी प्रणाली

दोहरे लेखे की अंग्रेज़ी प्रणाली का विकास पहिले-पहिल इटली मे हुआ था। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है उस समय सहायक पुस्तकों में केवल एक जर्नल था और उसमें भी रक़म का केवल एक खाना था; किन्तु फिर अन्य सहायक पुस्तकें प्रयोग मे आई

और जर्नल मे भी रक़म का एक और खाना बढ़ा। धीरे-धीरे यह प्रणाली सभी जगह फैल गई। अंग्रेज़ो ने इसको विशेष तौर पर उन्नत किया था, अतः यह अंग्रेज़ी प्रणाली भी कही जाने लगी। वास्तव में यह इटली ही की प्रणाली है। यह प्रणाली अब बहुत उत्तम अवस्था को पहुँच गई है। दोहरे लेखे की भारतीय प्रणाली भी भारतवर्ष के व्यापार के उच्चतम समय मे एक ही प्रणाली थी। किन्तु इधर व्यापार के ढङ्ग, इत्यादि बदल जाने पर भारतीय व्यापारियों ने इस प्रणाली का विकास नहीं किया। अतः, यह बहुत दिनों तक व्यापार के नये ढङ्ग में काम आने योग्य न बन सकी। किन्तु हाल ही मे इसकी उन्नति की गई है और अब यदि यहाँ के लोग इस पर ध्यान दें तो यह व्यापार के नये ढङ्गों मे भी काम में लाई जा सकती है।

हिसाब-किताब की अंग्रेज़ी प्रणाली को समझने के लिये उसमें प्रयोग में आने वाले पदों को जान लेना बहुत आवश्यक है। अतः, वह यहाँ पर दिये जा रहे हैं :—

एकाउन्ट की परिभाषा—एकाउन्ट लेजर का एक भाग है जिसमें लेन-देनों का किसी विशेष व्यक्ति पर अथवा सम्पत्ति पर अथवा आय-व्यय के श्रोतों पर जो सामूहिक प्रभाव पड़ता है, वह दिखलाया जाता है।

एकाउन्टों के भेद—उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि एकाउन्ट तीन तरह के होते हैं (१) पर्सनल (व्यक्तिगत), (२) रीयल (वास्तविक) और (३)नामिनल (नाममात्र के)। रीयल और नामिनल एकाउन्टों को इम्पर्सनल (ग़ैर व्यक्तियों के) एकाउन्ट भी कहते हैं।

पर्सनल एकाउन्ट—यह वे एकाउन्ट होते हैं जो किसी व्यक्ति, अथवा संस्था के नाम के होते हैं। संस्था मे साझे, कम्पनियाँ इत्यादि सभी आ जाते हैं। उदाहरण के लिये मोहन का एकाउन्ट, श्यामलाल रामलाल का एकाउन्ट, रामा ब्रादर्स का एकाउन्ट, उलेन मिल्स कम्पनी का एकाउन्ट, इलाहाबाद युनिवर्सिटी का एकाउन्ट, इत्यादि।

रीयल एकाउन्ट—यह वे एकाउन्ट होते हैं जो किसी सम्पत्ति के हैं, उदहरणार्थ कैश (नक़दी का) एकाउन्ट, माल-एकाउन्ट, फर्नीचर-एकाउन्ट। इनको प्रापर्टी (Property) एकाउन्ट भी कहते हैं।

नामिनल एकाउन्ट—यह वे एकाउन्ट होते हैं जो किसी आय, व्यय के श्रोत के नाम में हैं जैसे ब्याज (Interest), मज़दूरी (wages) कमीशन, इत्यादि। इनको फिक्टीशियस (Fictitious) और प्रोपाइटरी (Proprietary) एकाउन्ट भी कहते हैं।

एकाउन्ट के भाग—हर एकाउन्ट के बीचोबीच एक लकीर खींची जाती है। उसका बायाँ भाग डेबिट और दायाँ भाग क्रेडिट कहा जाता है। डेबिट और क्रेडिट प्रत्येक भाग में तारीख़, विवरण, पृष्ठ संख्या और रक़म के एक-एक खाने होते हैं।

Dr. ACCOUNT *Cr.*

Date	Particulars	F	Amount	Date	Particulars	F	Amouut

डेबिट करने (To Debit) से हमारा मतलब किसी एकाउन्ट के बायें तरफ़ और क्रेडिट करने (To Credit) से हमारा मतलब किसी एकाउन्ट के दाहिने तरफ़ लेखा करने से होता है। डेबटर (Debtor) के माने पाने वाला और क्रेडिटर (Creditor) के माने देने वाला होता है।

लेजर मे लेखा करने के नियम—वास्तव में लेजर में लेखा करने का एक ही नियम है और वह यह है कि जो एकाउन्ट पाये उसको डेबिट करो और जो एकाउन्ट दे उसको क्रडिट करो। यदि राम ने नकदी दी, तो राम के एकाउन्ट ने दिया, इससे वह क्रेडिट होगा, और नकदी के एकाउन्ट ने पाया इससे वह डेबिट होगा। इसी तरह से मज़दूरी के लिये नकदी दी तो मज़दूरी के एकाउन्ट ने पाया इससे वह डेबिट होगा और नकदी के एकाउन्ट ने दिया इससे वह क्रेडिट होगा। यहाँ पर हमने वस्तुओं को और आय, व्यय के श्रोतों को उसी तरह से व्यक्ति मान लिये हैं जिस तरह से वह लोग होते हैं जिनसे व्यापार होता है। जिस व्यापारी की किताबों में हिसाब लिखा जाता है वह व्यापारी इनको अर्थात् वस्तुओं को और आय-व्यय के श्रोतों को व्यापार से उसी प्रकार पृथक् मानता है जिस प्रकार वह बाहरी व्यक्तियों को अर्थात् जिनसे लेन-देन करता है मानता है। यहाँ तक कि वह स्वयम् को भी व्यापार से पृथक् मानता है, और अपने नाम का एकाउन्ट जिसको कैपिटल एकाउन्ट कहते हैं खोलता है, और यदि वह व्यापार को नकदी देता है तो यह समझ कर कि उसके कैपिटल एकाउन्ट ने नकदी दी है, कैपिटल एकाउन्ट को क्रेडिट करता है, और क्योंकि नकदी एकाउन्ट ने पाया है नकदी एकाउन्ट को डेबिट करता है। व्यक्तियों के एकाउन्ट तो पाते और देते हैं और वस्तुओं के एकाउन्ट भी पाते और देते हैं (उनमें कुछ जुड़ने को पाना और उनमें से कुछ निकलने को देना कहना भ्रमपूर्ण नहीं मालूम पड़ता) यह तो समझ में आ जाता है; किन्तु मज़दूरी का एकाउन्ट पाता है, वेतन का एकाउन्ट पाता है, ब्याज का एकाउन्ट पाता है अथवा देता है, कमीशन का एकाउन्ट पाता है अथवा देता है यह जल्दी नहीं समझ में आता। बात यह है कि यदि मज़दूरी का एकाउन्ट नहीं पाता तो मज़दूरों का एकाउन्ट पाता है, यदि वेतन का एकाउन्ट

नहीं पाता है तो वेतनभोक्ताओं का एकाउन्ट पाता है, यदि ब्याज का एकाउन्ट नहीं पाता अथवा देता है तो महाजनों का एकाउन्ट पाता है और ऋणियों का एकाउन्ट देता है, यदि कमीशन का एकाउन्ट नहीं पाता और देता है तो कमीशन पाने वालों का एकाउन्ट पाता और कमीशन देने वालो का एकाउन्ट देता है। बस, हम मज़दूरी के एकाउन्ट को मज़दूरो का सम्मिलित एकाउन्ट, वेतन के एकाउन्ट को वेतनभोक्ताओं का सम्मिलित एकाउन्ट, ब्याज के एकाउन्ट को महाजनों और ऋणियो का सम्मिलित एकाउन्ट, कमीशन के एकाउन्ट को कमीशन पाने वालों और देने वालों का सम्मिलित एकाउन्ट मान लेते हैं। यही बात एक अन्य रीति से भी समझ में आ सकती है। मज़दूरी, बेतन, ब्याज, कमीशन सभी के लिये नक़दी तभी दी जाती है जब व्यापार को कुछ सेवायें मिलती हैं, और इनके लिये नक़दी तभी मिलती है जब व्यापार की ओर से कुछ सेवाये दी जाती हैं। यदि मज़दूरों की सेवा प्राप्त हुई तो यह मज़दूरी एकाउन्ट को मिली, यदि वेतनभोक्ताओं की सेवा प्राप्त हुई तो यह इस प्रकार की सेवाओं के एकाउन्ट को मिली, यदि महाजनों की सेवा (उनके रुपयों की सेवा) प्राप्त हुई तो यह इस प्रकार की सेवा के एकाउन्ट को मिली, यदि ऋणियों को सेवा दी गई तो यह इस प्रकार की सेवा के एकाउन्ट में से गई, यदि कमीशन पाने वालो की सेवा प्राप्त हुई तो यह इस प्रकार की सेवा के एकाउन्ट को मिली और यदि कमीशन देने वालो को सेवा दी गई तो यह इस प्रकार की सेवा के एकाउन्ट में से गई, अतः, जब सेवायें प्राप्त होती हैं, उनके एकाउन्ट को डेबिट करते हैं और जब सेवायें दी जाती हैं उनके एकाउन्ट को क्रेडिट करते हैं। सुविधा के लिये तीनो प्रकार के एकाउन्टों को डेबिट और क्रेडिट करने के लिये तीन नियम माने जा सकते हैं।

पर्सनल एकाउन्ट—पाने वाले के एकाउन्ट को डेबिट करो और देने वाले के एकाउन्ट को क्रेडिट करो।

रीयल एकाउन्ट—जो वस्तु आये उसके एकाउन्ट को डेबिट करो और जो वस्तु जाये उसके एकाउन्ट को क्रेडिट करो।

नामिनल एकाउन्ट—व्यय और हानि के लिये उनके एकाउन्ट डेबिट करो और आय तथा लाभ के लिये उनके एकाउन्ट को क्रेडिट करो।

सहायक पुस्तकों मे लेखा करना—लेजर में लेखा करने के पहिले प्रत्येक लेन-देन का लेखा किसी न किसी सहायक पुस्तक में अवश्य हो जाना चाहिये। यदि केवल एक ही सहायक पुस्तक अर्थात् जर्नल है तो प्रत्येक लेन-देन का लेखा पहिले उसीमे होता है, और यदि अन्य सहायक पुस्तकें भी हैं तो सब लेन-देनों का लेखा पहिले उस पुस्तक में होता है जो उस प्रकार के लेन-देनों के लेखों के लिये नियत है, और यदि कोई लेन-देन ऐसा है जिसके लिये कोई भी पुस्तक नियत नहीं है तो उसका लेखा पहिले जर्नल में होता है।

जर्नल में लेखा करना—जर्नल में प्रथम खाना लेन-देन की तारीख़ का, दूसरा उसके विवरण (Particulars) का, तीसरा लेजर के उस पृष्ठ का जहाँ उसका लेखा लेजर में है, चौथा डेबिट रक़म का और पाँचवाँ क्रेडिट रक़म का होता है। इनमें से तीसरा खाना तो उसी वक्त भरा जाता है जिस वक्त उस लेन-देन का लेखा लेजर में होता है, शेष पहिले ही भरे जाते हैं। इस खाने को भरने के यह अर्थ हैं कि इसका लेखा लेजर में हो गया है। यह खाना लेजर के लेखे को ढूँढने में भी सहायक होता है। तारीख़ के खाने में हर लेन-देन की तारीख़ लिखी जाती है, विवरण के खाने में पहिली लकीर पर उस एकाउन्ट का नाम जो डेबिट होता है जिस

जगह से यह खाना आरम्भ होता है उसी जगह से आरम्भ करके और अन्त में जहाँ तीसरा खाना आरम्भ होता है उसीको छूते हुये Dr शब्द लिख कर लिखा जाता है, फिर उसीके आगे चौथे खाने में लेन-देन की रक़म लिखी जाती है। इसके बाद दूसरी लकीर पर विवरण के खाने में तारीख़ का खाना जहाँ समाप्त होता है उसके आगे कुछ जगह छोड़कर उस एकाउन्ट का नाम जो एकाउन्ट लेजर में क्रेडिट होता है पहिले To शब्द लिख कर लिखा जाता है, और साथ ही उसीके आगे पाँचवें खाने में उस लेन-देन की रक़म भी लिखी जाती है। जर्नल के हर लेखे का स्पष्टीकरण (Narration) भी उस लेखे के नीचे देना पड़ता है। सब लेखों के अन्त में जर्नल का जोड़ होता है।

JOURNAL

Date	Particulars	F.	Dr.			Cr		
			Rs.	a	p	Rs.	a	p
1-6-67								

कैश-बुक में लेखा करना—कैश-बुक में भी उसी प्रकार के खाने होते हैं जैसे किसी एकाउन्ट में होते हैं इसके बायें भाग को डेबिट अथवा पाउने (Receipt) का भाग और दायें भाग को क्रेडिट अथवा भुगतान (Payment) का भाग कहते हैं। अब, हर भाग में उसी तरह से तारीख़, विवरण, पृष्ठ-संख्या और रक़म के खाने होते हैं जिस तरह से किसी एकाउन्ट में होते हैं। यदि नक़दी पाई जाती है तो कैश-बुक के बाईं तरफ़ और यदि नक़दी दी जाती है तो कैश-बुक की दाहिनी तरफ़ लेखा होता है। लेखा

करते समय लेन-देन की तारीख़, जिस एकाउन्ट में उसका दोहरा लेखा होगा उसका नाम बाईं ओर पहिले To शब्द और दाहिनी ओर पहिले By शब्द लिख कर और रक़म लिखी जाती है। पृष्ठ संख्या का खाना यहाँ भी तभी भरा जाता है जब इसका लेखा एकाउन्टों में होता है। अन्त में इसका शेष निकाल कर इसको उसी तरह से बन्द कर देते हैं जिस तरह से लेजर के किसी एकाउन्ट को। यह याद रखना चाहिये कि कैश-बुक का शेष हमेशा डेबिट ही का शेष रहेगा क्योंकि जो रक़में जमा होती हैं उनसे अधिक भुगतान हो ही नहीं सकता।

Dr. Receipt CASH BOOK *Payments Cr.*

Date	Particulars	F.	Amount		Date	Particulars	F.	Amount	
			Rs	a. p.				Rs	a. p.

परचेजेज बुक (क्रय की पुस्तक) मे लेखा करना—इसमें माल के उधार क्रय का लेखा होता है (नक़द क्रय का लेखा कैश-बुक ही में हो जाता है)। इस सम्बन्ध में यह भी याद रखना चाहिये कि इसमें केवल उसी माल के क्रय का लेखा होगा जिसको व्यापारी विक्रय के लिये लेता है। यदि वह व्यापार में काम में लाने के लिये फ़र्नीचर लेता है, अथवा बिल्डिङ्ग ख़रीदता है तो उसका लेखा इसमें नहीं होता। यह भी याद रखना चाहिये कि लेखा उसी रक़म से होता है जो बीज़क (Invoice) में छूट इत्यादि काटने के बाद दिखलाई जाती है। यदि उसमें व्यय जुड़ा है तो वह जुड़ा ही रहेगा। इस पुस्तक में पृष्ठ के दो भाग नहीं होते। यह केवल तारीख़, विवरण, पृष्ठ-संख्या और रक़म के ख़ानो में विभाजित रहती है। कभी-कभी

इसमें रक़म के दो ख़ाने भी होते हैं, एक ब्यौरा लिखने के लिये और दूसरा अन्तिम रक़म लिखने के लिये। इसमें भी तारीख़ के ख़ाने में क्रय की तारीख़, विवरण के ख़ाने में जिससे माल ख़रीदा गया है उसका नाम, पृष्ठ-संख्या के ख़ाने में लेज़र के उस एकाउन्ट की पृष्ठ-संख्या जिसमें इसका दूसरा लेखा होता है और रक़म के ख़ाने में रक़म लिखी जाती है। यदि आवश्यक होता है तो क्रय का ब्योरा भी विवरण के ख़ाने में दे दिया जाता है। अन्त में इस पुस्तक का जोड़ उसी प्रकार होता है जैसे जर्नल का होता है। इसके अन्य नाम परचेजेज़ जर्नल (Purchases Journal), परचेजेज़ डे-बुक (Purchases Day Book) और इनवर्ड इनवाइस बुक (Inward Invoice Book) भी हैं।

PURCHASES BOOK

Date	Particulars	F.	Amount		
			Rs.	as	p

सेल्स-बुक (विक्रय की पुस्तक) में लेखा करना—इसमें उधार विक्रय का लेखा होता है। जो बातें परचेजेज़ बुक के विषय में हैं वही सब बातें इसके विषय में भी लागू हैं। लेखा करते समय विवरण के खाने में इसमें उनका नाम लिखा जाता है जिनका माल बेचा जाता है। इसको भी सेल्स जर्नल (Sales Journal), सेल्स डे बुक (Sales Day Book) और आउट-वर्ड-इनवाइस बुक (Outward Invoice Book) आदि नामों से पुकारा जाता है।

SALES BOOK

Date	Particulars	F.	Amount		
			Rs.	as.	p.

रिटर्न्स इनवर्ड बुक (माल के लौट कर आने की किताब में लेखा करना)—इसमें माल के लौट कर आने का लेखा होता है। साथ ही यदि बिक्री किये हुये माल की कीमत कम करनी पड़ती है तो भी इसमें लेखा होता है। इसके खाने और इसमें लेखे उसी प्रकार होते हैं जैसे परचेजेज़ अथवा सेल्स-बुक में होते हैं।

RETURNS INWARD BOOK

Date	Particulars	F.	Amount		
			Rs	as.	p.

रिटर्न्स आउट-वर्ड बुक (माल बाहर लौटाने की किताब में लेखा करना)—इसमें उस समय लेखा होता है जब कोई ख़रीदा हुआ माल वापस किया जाता है, अथवा उसकी रकम में कोई कमी होती है। इसकी अन्य सभी बातें भी परचेजेज़ और सेल्स-जर्नल ही की तरह हैं।

RETURNS OUTWARD BOOK

Date	Particulars	F.	Amount		
			Rs	as	p.

बिल्स रेसी-वेबिल बुक (प्राप्य बिलों की किताब में लेखा करना—इसमें संक्षिप्त अथवा ब्योरेवार ख़ाने हो सकते हैं। संक्षिप्त ख़ानों में बिल पाने की तारीख़ का ख़ाना, जिससे बिल पाया हो उसके नाम का खाना, जिसने बिल पर स्वीकृति दी हो उसके नाम का खाना, बिल की मुद्दत का खाना, उसके भुगतान को तारीख़ का खाना और उसके रक़म का खाना होता है। ब्योरेवार खानों में उपरोक्त सभी खाने तथा कुछ और खाने होते हैं। बिल की प्राप्ति का लेखा इसी पुस्तक में होता है। अन्त में इसको भी जोड़ दिया जाता है।

BILLS RECEIVABLE BOOK

Date	From whom Received	Accepter's name	Term	Date of payment	Rs.	as.	ps.

बिल्स-पेबिल बुक (देय बिलों की किताब) में लेखा करना—यह भी बिल्स रेसीवेबिल-बुक की तरह होती है। इसके संक्षिप्त खानों वाली किताब में बिल स्वीकृत करने की तारीख़ का खाना जिसको बिल दिया जाय उसके नाम का खाना, बिल की मियाद का खाना, बिल के भुगतान की तारीख़ का खाना, कहाँ भुगतान करना है उसका खाना और बिल की रक़म का खाना होता है। जो बिल स्वीकृत किये ज़ाते हैं उनका लेखा इसमें होता है। यह याद रखना चाहिये कि यदि कोई प्राप्य बिल किसी को दे दिया जाता है तो उसका लेखा इसमें न होकर जर्नल में होता है। अन्त में इसको जोड़ दिया जाता है।

BILLS PAYABLE BOOK

Date	To whom given	Term	Due date	Where payable	Amount		
					Rs	as	p.

अन्य पुस्तकें—अन्य पुस्तकों में एक तो पेटी कैश-बुक आती है जिसमें एक सहायक कैशियर छोटे-छोटे भुगतानों का लेखा करता है। बात यह है कि इन सबका लेखा मुख्य कैश-बुक में करने से एक तो उसके बहुत बोझीले हो जाने की सम्भावना रहती है और दूसरे कैशियर का भी काम इनके कारण बढ़ा रहता है। इसके अलावा छोटे-छोटे ख़र्चों में कभी-कभी तो इतना ख़र्च हो जाता है कि उसको रोकने की ज़रूरत पड़ती है। अब, यदि वह एक अलग पुस्तक मे होता है तो आसानी से सामने आता रहता है, और इससे उसमें कमी का ध्यान रक्खा जा सकता है। पेटी कैश-बुक के अलावा और भी कई पुस्तकें होती हैं, किन्तु उन सबसे लेखा इत्यादि करने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। वे केवल कुछ विशेष चीजो की जानकारी प्राप्त करने के लिये रक्खी जाती हैं, जैसे स्टाक-बुक, पे-बुक, शेयरों के सम्बन्ध की किताबें, कन्साइनमेंट की किताबें, इत्यादि, इत्यादि।

ANALYTICAL PETTY CASH BOOK

Amount Received			Dates	Particulars		Total			Postage			Office Expenses			Printing of Stationery			Advertisement			Miscellaneous		
Rs.	a	p.				Rs.	a	p.	Rs.	a	p.	Rs.	a	p	Rs.	a.	p.	Rs.	a.	p	Rs.	a	p.

उपरोक्त सहायक पुस्तकों के होने पर जर्नल का काम— उपरोक्त सहायक पुस्तको के होने पर जर्नल का यही काम है कि उसमें आरम्भ के लेख, बीच के ऐसे लेन-देनों के लेख जो किसी और किताब मे नहीं किये जा सकते, लेजर मे एक एकाउन्ट से दूसरे एकाउन्ट मे भेजने के लेखे, सुधार के लेखे और अशुद्धियों के शोधने के लेखे ही किये जायँ।

सहायक पुस्तकों से लेजर में लेखा करना—सहायक पुस्तकों से लेजर में लेखा करने को पोस्टिङ्ग (Posting) कहते हैं। भारतीय प्रणाली मे इसीको खतियाना कहते हैं। किन्तु पोस्टिङ्ग और खतियाने मे अन्तर है जैसा कि अंग्रेजी प्रणाली और भारतीय प्रणाली के अन्तर बताते समय बताया जायगा। अतः, ये दोनो शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। जर्नल से पोस्टिङ्ग करने मे, जर्नल मे जिस एकाउन्ट को डेबिट करने को लिखा है उसको लेजर मे डेबिट और दूसरे एकाउन्ट को क्रेडिट करना पड़ता है। हम यह देख ही चुके हैं कि डेबिट करने के अर्थ एकाउन्ट के बाँये भाग में और क्रेडिट करने के अर्थ उसके दायें भाग मे लिखना है बस जहाँ आवश्यक हो, लेन-देन की तारीख़, उस दूसरे एकाउन्ट का नाम जिसमे दूसरा लेखा हो डेबिट में पहिले To लगा कर और क्रेडिट मे पहले By लगा कर, सहायक पुस्तक मे उस लेन-देन के लेखे की जो पृष्ठ संख्या हो वह, और रक़म के खाने मे रक़म लिख दी जाती हैं। जर्नल मे जो आरम्भ के लेखे होते हैं, उनसे केवल यह प्रगट होता है कि किन एकाउन्टो में डेबिट के शेष जाते हैं और किनमें क्रेडिट के। अतः, उनकी पोस्टिङ्ग करने में ये शेष उन एकाउन्टो के डेबिट मे अथवा क्रेडिट में जैसा हो लिख दिये जाते हैं। विवरण के खाने में केवल To Balance b/d अथवा By Balance c/d जैसा हो लिखा जाता है। कैश-बुक से पोस्टिङ्ग करना बहुत ही आसान है। एक तो कैश-बुक को ही हम कैश एकाउन्ट मान लेते हैं, अतः, एक लेखा तो वहीं पूरा हो गया समझा जाता है। जहाँ तक दूसरे लेखे का प्रश्न है, वह पाउने की

तरफ़ के लेखों के लिये विवरण के खाने में दिये गये एकाउन्टों में लेजर में क्रेडिट की ओर होते हैं और भुगतान की तरफ़ के लेखों के लिये विवरण के खाने में दिये गये एकाउन्टों में लेजर में डेबिट की तरफ़ होते हैं। इन लेखों को करते समय पृष्ठ संख्या के खाने को भरना न भूलना चाहिये। परचेजेज़ बुक की पोस्टिङ्ग के लिये उसके जोड़ से परचेजेज़ एकाउन्ट को To Sundries लिख कर डेबिट और उसके विवरण के खाने में लिखे हुए नामों के एकाउन्ट में पृथक्-पृथक् रकमों से क्रेडिट कर देते हैं। सेल्स बुक की पोस्टिङ्ग के लिये उसके जोड़ से सेल्स एकाउन्ट को By Sundries लिख कर और उसके विवरण के खाने में लिखे हुए नामों के एकाउन्टो में पृथक्-पृथक् रक़मों से डेबिट कर देते हैं। रिटर्न्स इनवर्ड बुक और रिटर्न्स आउट-वर्ड-बुक की पोस्टिङ्ग भी क्रमशः परचेजेज़ और सेल्स बुक की पोस्टिङ्ग की तरह ही होती है, केवल अन्तर यह है कि रिटर्न्स इनवर्ड की पोस्टिङ्ग के लिये परचेजेज़ एकाउन्ट में नहीं वरन् रिटर्न्स इनवर्ड एकाउन्ट में और रिटर्न आउटवर्ड बुक की पोस्टिङ्ग के लिये सेल्स एकाउन्ट में नहीं वरन् रिटर्न आउटवर्ड एकाउन्ट में लेखा होता है। जर्नल से लेजर में आरम्भ के लेखे करते समय स्टाक के शेष के लिये स्टाक एकाउंट डेबिट हुआ होगा। इस तरह से स्टाक एकाउन्ट परचेजेज़ एकाउंट, सेल्स एकाउंट, रिटर्न्स इनवर्ड-एकाउंट और रिटर्न्स आउटवर्ड एकाउट गुड्स (माल) एकाउंट के ही भाग हैं। अतः, चाहें तो इन सब एकाउन्टों को न खोल कर गुड्स एकाउन्ट ही खोल लिया जाय। किन्तु आजकल अंग्रेज़ी प्रणाली में चलन यही है कि ये सब एकाउन्ट रक्खे जायँ। हाँ, भारतीय प्रणाली में केवल माल खाता ही रहता है। बिल्स रेसीवेबिल और बिल्स पेबिल बुकों की पोस्टिङ्ग भी उपरोक्त तरीक़े स ही होती है। केवल बिल्स रेसीवेबिल बुक का जोड़ बिल्स रेसीवेबिल एकाउन्ट में और बिल्स पेबिल बुक का जोड़ बिल्स पेबिल एकाउन्ट में जाते हैं।

उदाहरण १

निम्न सूचना से सहायक पुस्तकों और लेजर में लेखा कीजिये :—

राम के पास १ जनवरी सन् १६४६ को नक़द १००), बैंक में १०००) और माल १०००) का था। उस दिन उसका हरी के ऊपर ५००) और मनोहर के ऊपर ६००) चाहिये था। इसके अतिरिक्त उसके ऊपर कृष्ण का ८००) और माधो का १२००) चाहिये था।

जनवरी में उसके निम्न लिखित लेन-देन हुये :—

तारीख	विवरण	रु०
२	माल बेचा	रु० १००
४	हरी से पाया	” ५००
६	माल खरीदा	” ४००
८	कृष्ण से माल खरीदा	” ६००
१०	मनोहर से प्राप्य बिल पाया	” ६००
१२	मनोहर के बिल को भुनाया	” ५६०
१४	हरी को माल बेचा	” ८००
१५	माधो को दिया	” ४००
१७	हरी ने माल लौटाया	” ५०
२०	कृष्ण से माल खरीदा	” ८५०
२२	कृष्ण को माल लौटाया	” १५०
२४	कृष्ण का बिल स्वीकृत किया	” २,१००
२६	बैंक में जमा किया	” ३००
२८	माधो को चेक दिया	” ४००
३१	वेतन दिया	” १००
	अन्य व्यय किये	” ५०

JOURNAL Cr

			Rs.	a.	p.	Rs.	a.	p.
Jan. 1	Cash a/c Dr.		100	0	0			
	Bank a/c .. ,,		1,000	0	0			
	Stock a/c .. ,,		1,000	0	0			
	Hari .. ,,		500	0	0			
	Manohar .. ,,		600	0	0			
	To Krishna					800	0	0
	,, Madho ..					1,200	0	0
	,, Capital .					1,200	0	0
	(For opening Balances)							
	Total of opening Balances		3,200	0	0	3,200	0	0
,, 12	Discount a/c .. Dr.		10	0	0	10	0	0
	To B R a/c							
	(Discount on Manohar's sale) ...							

Dr. RECEIPTS CASH BOOK PAYMENT Cr.

			Rs.	a	p				Rs	a.	p.
Jan. 1	To balance	b/d	100	0	0	Jan. 6	By purchases		400	0	0
,, 2	,, Sale ..		100	0	0	,, 15	,, Madho ..		400	0	0
,, 4	,, Hari		500	0	0	,, 26	,, Bank ...		300	0	0
,, 12	,, B R		590	0	0	,, 31	,, Salaries		100	0	0
							,, Sundry exp.		50	0	0

PURCHASES BOOK

			Rs	as.	p
January 8	Krishna		600	0	0
	Krishna		850	0	0
	Purchases A/c	Dr.	1,450	0	0

SALES BOOK

			Rs.	as	p
January 14	Hari		800	0	0
	Sales a/c	Cr	800	0	0

RETURNS INWARD BOOK

			Rs.	as	p.
January 17	Hari		50	0	0
	Returns Inward A/c Dr.		50	0	0

RETURNS OUTWARD BOOK

			Rs	as	p
January 22	Krishna		150	0	0
	Returns Inward A/c Cr.		150	0	0

BILLS RECEIVABLE BOOK

						Rs	as.	p
January 10	Manohar	Manohar				600	0	0
	B R. A/c				Dr	600	0	0

BILLS PAYABLE BOOK

						Rs.	as.	p.
Jan. 24	Krishna					2,100	0	0
	B.R. A/c				Cr.	2,100	0	0

LEDGER

Dr. BANK A/c *Cr.*

Date	Particulars	F.	Amount Rs.	as	p	Date	Particulars	F.	Amount Rs.	as.	p
Jan. 1	To Balance	b/d	1000	0	0	Jan 28	By Macho		400	0	0
	To Cash		300	0	0						

Dr. STOCK A/c *Cr*

			Rs.	a.	p.				Rs.	a.	p.
Jan. 1	To Balance	b/d	1000	0	0						

Dr HARI'S A/c *Cr.*

			Rs.	a	p.				Rs.	a.	p.
Jan. 1	To Balance	b/d	500	0	0	Jan. 4	By Cash		500	0	0
,, 14	To Sales		800	0	0	,, 17	By Returns In		50	0	0

Dr. MANOHAR'S A/c *Cr.*

			Rs	a.	p				Rs.	a.	p.
Jan. 1	To Balance	b/d	600	0	0	Jan 10	By B. R.		600	0	0

Dr MADHO'S A/c Cr.

Date	Particulars		Rs.	a.	p.	Date	Particulars		Rs.	a.	p.
15	To Cash ...		400	0	0	Jan. 1	By Balance	b/d	1200	0	0
28	„ Bank ..		400	0	0						

Dr CAPITAL A/c Cr

Date	Particulars		Rs.	a.	p.	Date	Particulars		Rs.	a.	p.
						Jan 1.	By Balance	b/d	1200	0	0

Dr. PURCHASES A/c Cr.

Date	Particulars		Rs	a.	p	Date	Particulars		Rs.	a.	p.
6	To Cash ..		400	0	0						
31	„ Sundries		450	0	0						

Dr. SALES A/c Cr.

Date	Particulars		Rs.	a	p	Date	Particulars		Rs.	a.	p.
						Jan. 2	By Cash ..		100	0	0
						„ 31	„ Sundries		800	0	0

Dr. **RETURNS OUTWARD A/c** Cr.

Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.	Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.
						Jan. 31	By Sundries		150	0	0

Dr. **RETURNS INWARD A/c** Cr.

Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.	Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.
Jan. 31	To Sundries		50	0	0						

Dr. **KRISHNA'S A/c** Cr.

Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.	Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.
Jan. 22	To Returns Out		150	0	0	Jan. 1	By Balance	b/d	800	0	0
,, 24	,, B. P.		2100	0	0	,, 8	,, Purchases		600	0	0
						,, 20	,, Do.		850	0	0

Dr **BILLS RECEIVABLE A/c** Cr.

Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.	Date	Particulars	Folio	Rs.	a.	p.
Jan. 31	To Sundries		600	0	0	Jan. 12	By Cash ...		590	0	0
							,, Dis.		10	0	0

Dr. **BILLS PAYABLE A/c** Cr.

			Rs.	a.	p.				Rs.	a.	p.
						Jan. 31	By Sundries		2100	0	0

Dr. **DISCOUNT A/c** Cr

			Rs.	a.	p				Rs	a	p.
an. 1	To B. R.		10	0	0						

Dr. **SALARIES A/c** Cr.

			Rs	a.	p				Rs.	a	p.
an.31	To Cash		100	0	0						

Dr. **SUNDRY EXPENSES A/c** Cr.

			Rs	a.	p				Rs.	a.	p.
an 31	To Cash .		50	0	0						

कैश-बुक और लेजर से अन्तिम हिसाब करना—उपरोक्त लेखों से व्यापारी के लेन-देन का पृथक्-पृथक् असर और सब लेन-देनों का सामूहिक असर एकाउन्टों पर तो मालूम हो जाता है किन्तु उसके व्यापार पर नहीं मालूम होता। व्यापार पर लेन-देनों का सामूहिक असर मालूम होने के यह अर्थ हैं कि यह मालूम हो जाय कि उसको कितने का लाभ अथवा हानि हुई, उसके पास क्या सम्पत्ति है, उसको कितना पाना और कितना देना है, उसकी स्वयम् की पूँजी कितनी है और वह बढ़ी अथवा घटी है। अब, यह सब अन्तिम हिसाब (Final Accounts) बनाने से मालूम होता है। अन्तिम हिसाब में ट्रेडिङ्ग और प्राफ़िट और लास एकाउन्ट (नफ़ा-नुक़सान खाता) तथा बैलन्स शीट (पक्का चिठ्ठा) सम्मिलित हैं। ट्रेडिङ्ग और प्राफ़िट और लास एकाउन्ट एक ही एकाउन्ट माना जाता है यद्यपि इसके दो हिस्से कर लिये जाते हैं, ऊपर ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट और नीचे प्राफ़िट और लास एकाउन्ट। अब, ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट के डेबिट में, स्टाक एकाउन्ट, परचेजेज़ एकाउन्ट, रिटर्न्स इनवर्ड एकाउन्ट और उन ख़र्चों के एकाउन्ट जो या तो माल के ख़रीद के अथवा लाने के अथवा तैयार करने के सम्बन्ध के हैं शेष ले जाये जाते हैं। इसके लिये ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट डेबिट और अन्य सब एकाउन्ट क्रेडिट होते हैं। फिर ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट के क्रेडिट में सेलस एकाउन्ट, रिटर्न्स आउटवर्ड एकाउन्ट, और अन्त के स्टाक के शेष ले जाये जाते हैं। इसके लिये ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट क्रेडिट और अन्य सब एकाउन्ट डेबिट होते हैं। अन्त के स्टाक का शेष किसी एकाउन्ट से नहीं मालूम होता बरन् मालगुदाम में माल सहेज कर और उसकी क्रय की अथवा विक्रय की जो भी दर कम हो उससे क़ीमत लगा कर मालूम होता है। इसको स्टाक टेकिङ्ग और वैलुएशन (Stock Taking and Valuation) कहते हैं। उपरोक्त लेखे करने के बाद ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट का शेष मालूम कर लेते हैं। यदि वह डेबिट का है तो

व्यय अधिक होने से हानि और क्रेडिट का है तो आय अधिक होने से लाभ होता है । जिस तरफ़ का शेष हो उसके दूसरी तरफ़ To Profit and Loss Account अथवा By Profit and Loss Account जैसा हो लिखकर उसको प्राफ़िट और लास एकाउन्ट में जिस तरफ़ ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट में लिखते हैं उसके दूसरी तरफ़ To Trading Account अथवा By Trading Account जैसा हो लिख देते हैं। यह लाभ और हानि ग्रास (Gross) होती है, अतः, ग्रास प्राफ़िट अथवा ग्रास लास भी लिख देते हैं। यदि लेजर में माल एकाउन्ट होता है, और भारतीय प्रणाली में तो खाता बही में यही होता ही है तो उसी माल एकाउन्ट मे ही लाभ और हानि निकाल लेते हैं। प्राफ़िट और लास एकाउन्ट मे अब शेष आय और व्यय के एकाउन्टों के शेषों को उसी प्रकार ले आते हैं जैसे माल एकाउन्ट के सहायक एकाउन्टों के शेष ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट मे लाये गये थे तथा उसके शेष से उसी प्रकार लाभ अथवा हानि मालूम कर लेते हैं जैसे ट्रेडिङ्ग एकाउन्ट से मालूम करते हैं। याद रखना चाहिये कि यह लाभ और हानि नेट (net) होती है। ग्रास को हम पूर्ण और नेट को शुष्क, लाभ और हानि भी कह सकते हैं। प्राफ़िट और लास एकाउन्ट से या तो यह लाभ अथवा हानि व्यापारी के केपिटल (पूँजी एकाउन्ट) में चला जाता है और उसके दोनों एकाउन्टों में उसी प्रकार लेखा हो जाता है जैसा ट्रेडिङ्ग एकाउंट के लाभ और हानि का हुआ था या प्राफ़िट और लास अप्रोप्रियेशन (विभाजन) एकाउंट में चला जाता है (इसके लिये भी लेखा कर लिया जाता है) । कम्पनियों के हिसाब मे यह प्राफ़िट और लास अपरोप्रियेशन एकाउंट ही में जाता है क्योंकि यह उस समय तक शेयर-होल्डरों का नहीं समझा जाता जिस समय तक मीटिङ्ग से निश्चय नहीं हो जाता। साझों के हिसाब में प्रत्येक साझी का पृथक कैपिटल एकाउंट होता है, अतः,

उसमें यह बँटकर उनके पृथक्-पृथक् कैपिटल एकाउंटों में चला जाता है ।

उपरोक्त जितने लेखे होते हैं वह पहिले जर्नल में हो जाते हैं फिर लेजर में होते हैं। इनसे लेजर के सब आय-व्यय के एकाउट बन्द हो जाते हैं और उनको जोड़ देते हैं। अब रह गये केवल वस्तुओं और व्यक्तियों के एकाउंट। इनके शेष निकाल कर जिधर के यह होते हैं पहिले उसकी दूसरी तरफ़ उसी एकाउंट में लिख लिये जाते हैं और उन एकाउन्टों को भी बन्द कर देते हैं, जोड़ देते हैं। फिर इनको उन्हीं एकाउन्टो के उस ओर लिख लेते हैं जिधर के वे होते हैं इससे वे एकाउन्ट फिर से खुल जाते हैं। किन्तु इनको खोलने के पहिले जर्नल में प्रारम्भिक लेखे कर लेने चाहिये जो कि जो एकाउन्ट डेबिट होते हैं उनको जर्नल में डेबिट लिख कर और जो क्रेडिट होते हैं उनके पहिले To लगा कर और उनकी पृथक्-पृथक् रक़में लिख कर कर लेते हैं। पहिले सब डेबिट और फिर सब क्रेडिट के एकाउट लिखे जाते हैं। सब डेबिटों का जोड़ सब क्रेडिटों के जोड़ के बराबर होता है।

अब जो डेबिट बैलन्स हैं वे सब बैलन्स शीट की दाईं ओर जो क्रेडिट बैलन्स हैं सब उसकी बाईं ओर लिख लिये जाते हैं। बैलन्स शीट में एसेट्स (Assets) और लाइब्लिटीज़ (Liabilities) होते हैं। व्यापार से सम्बन्ध रखती हुई जो सम्पत्ति और नक़दी एक विशेष समय पर किसी व्यापारी के पास रहती है और उसको मिलनी होती है वह एसेट्स कहलाती है। व्यापार के सम्बन्ध में जो कुछ भी किसी व्यापारी को दूसरों को देना होता और स्वयम् भी लेना रहता है वह लायब्लिटीज़ कहलाती हैं। बैलन्स शीट में किसी एक समय की ही स्थिति का पता लगता है। यह एकाउंटों के उस समय के शेषों की सूची है। इसके विपरीत ट्रेडिङ्ग और प्राफिट और लास

एकाउंट एक विशेष अवधि का होता है, और इससे आय-व्यय और लाभ-हानि का पता लगता है।

उदाहरण २

उदाहरण १ के सम्बन्ध के कैश-बुक और लेजर से शेष स्टाक को २७०० मान कर अन्तिम लेखे बनाइये।

Dr TRADING AND P AND L A/c Cr.

	Rs	a.	p		Rs.	a	p.
To Stock opening	1,000	0	0	By Sales	900	0	0
„ Purchases	1,850	0	0	„ Returns outwards	150	0	0
„ Returns Inward	50	0	0	„ Closing Stock	2,700	0	0
„ P/l A/c (G. P.)	150	0	0				
Rs.	3,750	0	0		3,750	0	0
To Discount	10	0	0	By Trading A/c (G. P.)	850	0	0
„ Salaries	100	0	0				
„ Sundry Ex.	50	0	0				
„ Capital A/c (N P.)	690	0	0				
	850	0	0		850	0	0

BALANCE SHEET

Liabilities	Rs	a	p	Assets	Rs.	a.	p.
Sundry Creditors				Cash	40	0	0
Madho	400	0	0	Bank	900	0	0
Bills Payable	2,100	0	0	Stock	2,700	0	0
Capital 1,200				Debtors :—			
Add N. P 690				Hari Rs 750/-	750	0	0
	1,890	0	0				
	4,390	0	0		4,390	0	0

ट्रायल बैलन्स (Trial Balance)—क्योंकि हर लेन-देन का एक डेबिट होता है और दूसरा क्रेडिट, अतः, सब डेबिटों के जोड़ सब क्रेडिटो के जोड़ के बराबर होते हैं। ट्रायल बैलन्स में सब एकाउंटों के (नामिनल एकाउंटो के भी) डेबिट और क्रेडिट जोड़ अथवा शेष दिखाये जाते हैं। इसके डेबिट और क्रेडिट के जोड़ मिल जाने के अर्थ हैं कि पोस्टिङ्ग कम से कम गणित की दृष्टि से तो सही है। हाँ, इसके मिल जाने पर भी पोस्टिङ्ग में कुछ अशुद्धियाँ रह सकती हैं, किन्तु वे केवल सहायक पुस्तकों के लेखो की अशुद्धियाँ, सिद्धान्त की अशुद्धियाँ, क्षतिपूरक अशुद्धियाँ और एक एकाउंट के स्थान पर दूसरे एकाउंट को लिख जाने की अशुद्धियाँ ही हो सकती हैं। इसके मिल जाने पर सहायक पुस्तकों की पोस्टिङ्ग करते समय किसी लेखे को न करने की, लेजर के किसी एक एकाउंट में अशुद्ध रक़म का लेखा करने की, किसी एक एकाउंट में डेबिट के तरफ़ लेखा करने के स्थान में क्रेडिट की तरफ़ लेखा करने की अथवा इसके विपरीत करने की सहायक पुस्तकों और लेजर एकाउंटों के जोड़ में अशुद्धि कर जाने की, एकाउटों के शेष निकालने में ग़लती कर जाने की और किसी एकाउंट के जोड़ अथवा शेष को ट्रायल बैलन्स में न लाने की ग़लतियाँ नहीं रह सकती हैं। ट्रायल बैलन्स अन्तिम हिसाब के बनाने के पहिले ही बना लेना चाहिये। किन्तु यह केवल अपने ही सतोष के लिये है। इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इसको न बनाने पर भी हिसाब-किताब रखने का ध्येय पूरा हो जाता है।

(६) दोहरे लेखे की अंग्रेज़ी प्रणाली के कुछ विशेष हिसाब-किताब

दोहरे लेखे की अंग्रेज़ी प्रणाली उन्नति की इस चरम सीमा को पहुँच गई है कि उसमें न केवल साझों और कम्पनियो के गूढ़ हिसाब

बल्कि कुछ अन्य विशेष हिसाब भी जैसे खानों के (Tabular), स्वयम् संतुलन हो जाने वाले लेजरो के (Self-Balancing Ledgers) दोहरे हिसाब (Double Accounting) और पड़तल के हिसाब (Cost Accounting) इत्यादि भी रक्खे जा सकते हैं।

खानो का हिसाब-किताब (Tabular System)—कभी-कभी हिसाब की पुस्तको में रक़मो के कई खाने होते हैं जिससे एक साथ जानने योग्य सभी बातों का एक जगह पता चल जाता है। इसको खानो का हिसाब-किताब कहते हैं। कैश-बुक मे कैश बैंक और डिस्काउंट के खाने होते हैं। इसके अलावा स्कूलो की, होटलो की, अस्पतालों, इत्यादि की कैश बुके भी रक़मो के कई खानों की होती है। व्यापार में यदि कई विभाग हैं, तो हर विभाग का पृथक्-पृथक् हिसाब मालूम करने के लिये डे बुकें और उनके सम्बन्ध के एकाउट तथा ट्रेडिङ्ग और प्राफिट और लास एकाउंट भी रक़मों के कई खानों के होते हैं। यदि कई लेजरों के होने पर वे स्वयम् सतुलन प्रणाली (Self-Balancing System) पर होते हैं तो भी प्रारम्भिक लेखों की सभी पुस्तकों में रक़म के कई खाने होते हैं। ऐसे ही अनेक दशाओं में यह खानों का हिसाब-किताब प्रयोग में आता है।

स्वयम् सन्तुलन होने वाले लेजरो की प्रणाली (System of Self-Balancing Ledgers) यदि व्यापार बहुत बड़ा है तो कई लेजर होते हैं। ऐसी दशा में यदि सबको मिला कर एक ट्रायल बैलन्स बनाते हैं और उससे ज्ञात होता है कि कहीं पर पोस्टिङ्ग मे ग़लती है तो सभी लेजरों मे यह ग़लती ढूंढनी पड़ती है जो लेजर ठीक भी है उसके बनाने वाले को भी यह देखना पड़ता है कि उसके लेजर में तो ग़लती नहीं रह गई है। इससे बचने के लिये प्रत्येक

लेजर को उसमें एक गुर (नियन्त्रण) एकाउंट (Control Account) बना कर स्वयम् संतुलन होने वाला लेजर बना लेते हैं। अब, प्रत्येक लेजर का पृथक्-पृथक् ट्रायल बैलन्स बन जाता है और जिस लेजर का ट्रायल बैलन्स मिल जाता है वह लेजर ठीक समझा जाता है और उसमें ग़लती नहीं ढूँढ़ी जाती। अतः, ग़लती जहाँ है वहीं ढूँढ़ी जाती है।

दो हिसाब पद्धति (Double Account System) दो हिसाब पद्धति दोहरे लेखे की प्रणाली का ही एक अङ्ग है। अतः, इन दोनों के नाम प्रायः एक से मालूम होने के कारण, किसी को कोई भ्रम न होना चाहिये। यह पद्धति रेलों, बिजली कम्पनियों, गैस के कारखानों और ऐसी ही अनेकों कम्पनियो के सम्बन्ध में काम में लाई जाती है जो प्रायः व्यवस्थापक सभाओं की विशेष अनुमति मिलने पर ही संस्थापित होती हैं। इन कम्पनियों के हिसाब का ढाँचा इनके क़ानून में दिया रहता है जिसके अनुसार इन्हे ये हिसाब तैयार करने पड़ते हैं। भारतीय रेलवे आइन के परिशिष्ट में कितने ही नक्शे दिये हैं वे सब इसी पद्धति के हैं। इन कम्पनियों के पूँजी का एक बड़ा भाग स्थाई सम्पत्ति (Fixed Assets) में रुक जाता है। अतः, इनको बैलन्स शीट दो भागो में बँटी रहती है, ऊपर का भाग तो सम्पत्ति विभाग (Receipts and Payments on Capital A/cs) और नीचे का भाग साधारण बैलन्स शीट (General Balance Sheet) कहलाता है। सम्पत्ति विभाग में कम्पनी की प्राप्त पूँजी किस प्रकार की स्थाई सम्पत्ति में रोक दी गई है इसका विवरण दिया जाता है। यदि स्थाई सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये ऋण-पत्र आदि से भी पूँजी एकत्रित की गई है तो उसका भी इसीमें हिसाब रहता है। साधारण बैलन्स शीट मे कम्पनी की कार्यशील पूँजी (Working Capital) किस प्रकार पाउने और देने में रोकी गई है यह विवरण सहित बताया जाता है। इसमें अपकर्ष (Depreciation) को

स्थाई सम्पत्ति मे नहीं घटाते वरन उसका कोष साधारण बैलन्सशीट मे दिखाते है। सम्पत्ति विभाग में एक ओर सम्पत्ति रहती है और दूसरी ओर स्थाई पूंजी और यह एक खाने में पिछले वर्ष की और दूसरे खाने में उस वर्ष की गई, और तीसरे खाने में कुल जोड़ कर दिखाई जाती है। इस पद्धति में पूंजी और आय (Capital and Revenue) का विवेक बड़ी सूक्ष्मता से रक्खा जाता है। इसका विशेष लाभ यह है कि इससे हिसाब न जानने वाले भी इसके हिसाब को देख कर उसके विषय में जानने योग्य बातें जान लेते है।

पड़ताल के हिसाब (Cost Accounting)—यह प्रणाली बहुत ही आधुनिक है, केवल इसी शताब्दि की है। इसका एक मात्र उद्देश्य तैयार किये हुये प्रत्येक माल की लागत का पता लगाना है। अधिकतर यह देखा गया है कि जब कई तरह के माल साथ-साथ तैयार किये जाते हैं अथवा एक माल कई क्रम (Process) से होकर बनता है तो हर माल की और हर क्रम के अन्त में जो माल बनता है उसकी ठीक-ठीक लागत का पता नहीं चलता है। अतः, एक माल पर कम कीमत और दूसरे पर अधिक कीमत अथवा एक क्रम के अन्त में जो माल मिलता है उसकी कम कीमत और दूसरे क्रम के अन्त में जो माल मिलता है उसकी अधिक कीमत लग जाती है। माल के तैयार करने में तीन प्रकार के ख़र्च होते हैं अनिवार्य ख़र्च (Prime Cost) कारख़ाने के सहायक ख़र्च (Factory On-cost) दफ़्तर के सहायक ख़र्च (Office Oncost)। अनिवार्य ख़र्च में कच्चे माल का ख़र्च, मज़दूरी और ऐसा ख़र्च जो उस तैयार की जाने वाली चीज़ पर स्पष्ट रूप से लगाया जा सकता है रहता है, कारख़ाने के सहायक ख़र्च में कारख़ाने का किराया, कर (Taxes), रोशनी, मरम्मत, अपकर्ष, मशीनों का अपकर्ष, मरम्मत, तेल इत्यादि देने का ख़र्च, देख-रेख का ख़र्च, इत्यादि रहता है; और दफ़्तर के

सहायक खर्च में दफ्तर का किराया, रोशनी, वेतन, स्टेशनरी, इत्यादि रहती है। अब, प्रत्येक माल के बनाने के अनिवार्य खर्च का पता लगना चाहिये जो कि जितना कच्चा माल खर्च हुआ है उसकी मज़दूरी और अन्य खर्चों का ठीक-ठीक हिसाब रखने से मालूम हो जाता है, और उसके ऊपर ठीक अनुपात से कारखाने के सहायक खर्च और दफ्तर के सहायक खर्च को डाल देना चाहिये जिससे कि माल की ठीक लागत का पता चल जाय। बस, पड़ताल के हिसाब में ऐसे ही तरीक़ों का विश्लेषण है जिनसे इस काम में सफलता मिले। कच्चे माल की खपत को जानने के दो तरीके हैं। (१) अन्तिम झड़ती (Physical Inventory) का और (२) लगातार झड़ती (Perpetual) का। इसी तरह से मज़दूरी का खर्च जानने के भी कई तरीक़े हैं। स्पष्ट खर्चों के जानने में कोई कठिनता है ही नहीं जैसे जिस चीज़ के काम के लिये बाहर जाने में खर्च हो या कोई और खर्च हो उसी चीज़ में डाल देते हैं। शेष बचे सहायक खर्च। इनके डालने के कई तरीक़े हैं एक तो एक निश्चित दर से (Percentage System), दूसरे मज़दूरी के अनुपात से, तीसरे कच्चे माल के खर्च के अनुपात से, चौथे जितनी देर मशीन चली हो उसके अनुपात से, इत्यादि। इन सब तरीक़ों के पृथक् पृथक् गुण और दोष हैं, और हर कारखाने के लिये इनमें से कोई न कोई तरीक़ा उपयुक्त है। हाँ, एक तरीक़ा सबके लिये उपयुक्त नहीं है। अब, यदि पड़ताल के हिसाब की बारीकियाँ मालूम हैं और उसके सम्बन्ध के भिन्न-भिन्न तरीक़ों की जानकारी है तो ठीक-ठीक लागत लगाने में सहूलियत पड़ती है। इसके लिये अनुभव की विशेष आवश्यकता है। यह न भूलना चाहिये कि इस हिसाब को रखने में जो श्रम करना पड़ता है, अथवा खर्च पड़ता है वह छोटे-छोटे व्यापारी नहीं सहन कर सकते हैं। अत, उनको तो मामूली तरीक़े पर ही अपने प्रत्येक माल की ठीक-ठीक लागत लगा लेनी चाहिये। इसको तो उन्हीं को अपनाना

चाहिये जिनका काम बहुत बड़ा है और जिनके यहाँ ज़रा-सा फेर होने पर बहुत घाटा-मुनाफ़ा हो सकता है।

(७) दोहरे लेखे की भारतीय प्रणाली

इस प्रणाली में या तो प्रारम्भिक लेखे की एक ही बही (रोकड़) या अन्य कई बहियाँ भी रक्खी जाती हैं। यदि केवल रोकड़ बही ही रक्खी जाती है तो उसमें सभी तरह के लेन-देनों का लेखा होता है। रोकड़ आने पर और जाने पर तो उसमें क्रमशः जमा और नाम किया ही जाता है, किन्तु उधार माल आने पर अथवा जाने पर जमा और नाम दोनों ही किया जाता है। मान लीजिये रामलाल से उधार माल प्राप्त हुआ तो रोकड़ बही में रामलाल के जमा करेंगे और माल खाते नाम डालेंगे। इसी तरह से यदि श्यामलाल को माल उधार दिया गया है तो रोकड़ बही में माल खाते जमा और श्यामलाल के नाम होगा। रोकड़ बही से खाता बही में खातों के अन्दर लेखा करने (खतियाने) में जिस तरफ़ रोकड़ बही में लेखा होता है, उसी तरफ़ खाते में लेखा होता है। मान लीजिये रोकड़ बही में माधोलाल के १००) जमा हैं तो खाता बही में माधोलाल के खाते के अन्दर जमा की तरफ़ ही यह रक़म रोकड़ बही के पन्ने की संख्या और मिती देकर दिखा दी जावेगी। इसी तरह से यदि रोकड़ बही में हरिहर के नाम ५०) हैं तो खाता बही में भी हरिहर के खाते के अन्दर नाम की तरफ़ ही यह रक़म रोकड़ बही के पन्ने की संख्या और मिती देकर दिखाई जायगी। ऐसे ही यदि रोकड़ बही में माल खाते जमा अथवा नाम है तो खाता बही में माल खाते के अन्दर क्रमशः जमा और नाम की तरफ़ ही उसी तरह से लेखा होगा जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में बताया गया है।

उदाहरण ३

रोकड बही | २५ |

श्री सम्बत् २००३ माघ बदी ५ वार बृहस्पतिवार तारीख़ २ जनवरी सन् १९४७ ई०

१००) श्री रोकड बाक़ी रहे	५०) भाई राम सुन्दर को दिया रोकड़ हस्ते खुद
२००) भाई राम लाल के जमा रोकड हस्ते खुद	४००) माल खाते नाम ४००) माल भाई श्याम-लाल से खरीदा
४००) भाई श्यामलाल के जमा ४००) गेहूँ बोरा १० तौल २५ मन दर १६) मन खरीदा	४५०)
४००)	२५०) श्री रोकड बाकी रहा
७००)	७००)

खाता बही

श्री लेखा भाई रामलाल

२००) रोकड पन्ना २५ मिती माघ बदी ५, सं० २००३

श्री लेखा भाई श्यामलाल

४००) रोकड पन्ना २५ मिती माघ बदी ५, सं० २००३

श्री लेखा भाई राम सुमेर

५०) रोकड़ पन्ना २५ मिती
माघ बदी ५ सं० २००३

श्री माल खाता

४००) रोकड़ पन्ना २५ मिती
माघ बदी ५, सं० २००३

जमा नकल बही—इस बही में उधार माल की खरीद दिखाई जाती है। पहिले एक लकीर पर माल खाते नाम छोड़ कर और फिर जैसे-जैसे लोगो से माल खरीदा जाता है अलग-अलग लकीरों पर व्यौरा समेत उन लोगों के नाम माल के खरीद की रकम छोड़ दी जाती है। अन्त में माल के खरीद का कुल जोड़ लगा दिया जाता है और सबसे ऊपर जहाँ पर माल खाते नाम लिखा हुआ है इस जोड़ की रकम लिख दी जाती है। जमा नकल बही के लेखे खाता बही मे माल के खाते के अन्दर नाम की तरफ़ कुल जोड़ की रकम से और व्यक्तियों के खातों के अन्दर जमा की तरफ़ उनकी पृथक्-पृथक् रकमों से होते हैं। खातो में जमा नकल बही की पृष्ठ-संख्या और मिती रकम के साथ-साथ दिखाई जाती है।

उदाहरण ४

जमा नकल बही ।१०।

श्री सम्वत् २००३ मिती माघ बदी ६ बार शुक्रवार तारीख ३ जनवरी सन् १९४७ ई०

५,०००) श्री माल खाते नाम

२०००) भाई मनोहर लाल के जमा
गेहूँ बोरा ५० तौल १२५ मन
दर १६) मन

२०००)

३०००) भाई कृष्ण दास के जमा
चना बोरा १०० तौल २५० मन
दर १२) मन

३०००),

५,०००।

खाता वही

माल खाता

७००) जमा नक़ल वही
पन्ना १० मिती माघ वदी
६ सं० २००३

लेखा भाई मनोहरलाल

२०००) जमा न० व० पन्ना १० मिती
माघ वदी ६, सं० २००३

लेखा भाई कृष्णदास

३०००) जमा न० व० पन्ना १० मिती
माघ वदी ६, सं० २००३

नाम नक़ल वही—इस वही में माल की उधार बिक्री के उसी तरह लेखे होते हैं जिस तरह से माल की उधार ख़रीद के लेखे जमा नक़ल वही में होते हैं। इसमें पहिली लकीर पर माल खाते जमा लिखते हैं और फिर हर नई लकीर पर उन सब व्यक्तियों के पृथक्-पृथक् नाम लिखते हैं जिनको माल बेचा जाता है। इसका जोड़ और इसका लेखा खाता वही में उसी प्रकार हो जाता है जैसे जमा नक़ल वही का। इसमें माल खाते मे रक़म जमा होती है और व्यक्तियों के खाते में नाम पड़ती है।

उदाहरण ५

नाम नक़ल बही ।५।

श्री सम्वत् २००३ मिती माघ वदी ७ वार शनिवार तारीख़ ४ जनवरी सन् १९४७ ।

४०००) श्री माल खाते जमा

१५५०) भाई रामदास के नाम
गेहूँ बोरा ४० तौल ९६
३५ सेर दर १६ मन

१५५०)

२४५०) भाई जयरामदास के नाम
गेहूँ बोरा ६२ तौल १५३
मन ६ सेर दर १६ मन

२४५०)

४०००)

खाता बही

श्री माल खाता

४०००) नाम नक़ल बही पन्ना ५ मिती माघ वदी ७ सं० २००३

श्री लेखा भाई रामदास

१५५०) नाम नक़ल बही पन्ना ५ मि० माघ वदी ७ सं० २००३

लेखा भाई जैरामदास

२४५०) नाम नक़ल बही पन्ना ५ मि० माघ वदी ७ स० २००३

हुण्डी बहियाँ—इनमें हुण्डियों की नक़ल होती है। यह हिसाब की बहियें नही हैं। भारतीय प्रणाली मे हुण्डियों का हिसाब रोकड ही मे लिखा जाता है और वह भी जब हुण्डियो का रुपया मिलता है अथवा उनका रुपया दिया जाता है। यदि हुण्डियों के बेचान से हिसाब चुकता हो जाता है तो जिससे हुण्डी मिलती है रोकड़ बही में उसके जमा और जिसको हुण्डी दी जाती है रोकड़ बही में उसके नाम कर दिया जाता है।

अन्य सहायक पुस्तकें—इनमें माल बही, जाकड बही, बिल्टी बही, चिट्ठी नक़ल बही, सौदा बही, तकादा बही, तखपट्टी, दस्तख़त बही इत्यादि सम्मिलित हैं किन्तु इनका हिसाब-किताब से कोई सम्बन्ध नहीं है।

खाता बही—इस बही मे अंग्रेज़ी प्रणाली के सब तरह के एकाउन्टो की तरह सब तरह के खाते होते हैं। हाँ—खाते जमा और नाम में विभाजित होते हैं जैसा ऊपर बताया जा चुका है। प्रारम्भिक लेखों की बहियों से इन खातों में उसी तरफ़ लेखे होते हैं जिस तरफ़ वे प्रारम्भिक बहियों में रहते हैं। इसमें आय-व्यय के श्रोतो के पृथक्-पृथक् खाते न होकर अधिकतर केवल दूकान ख़र्च खाता ही होता है और उसका शेष माल ख़र्च खाते में ले जाकर माल ख़र्च खाते से ही लाभ और हानि निकाल लेते हैं। इसमें खातों को बन्द करने के लिये हर तरफ़ का जोड़ उस तरफ़ के लेखों के अन्त में लिख दिया जाता है, और फिर शेष निकालकर उस तरफ़ लिख देते हैं जिधर का जोड़ कम होता है और फिर उसको वहीं जोड़ देते हैं। अन्त में इसमें पक्का चिठ्ठा बनता है जो Balance Sheet का काम देता है। अन्तर केवल इतना ही है कि जब Balance Sheet में डेबिट क्रेडिट की तरफ़ें बदल जाती हैं इसमें जमा नाम की हरफ़ें नहीं बदलती हैं। इस प्रणाली

में भी कच्चा चिट्ठा (ट्रायल बैलेन्स) बनाया जाता है। यदि इस प्रणाली को अपनाया जाय तो यह पूरा काम दे सकती है।

(८) हिसाब-किताब की अंग्रेज़ी प्रणाली और भारतीय प्रणाली में अन्तर

हिसाब-किताब की अंग्रेज़ी प्रणाली और भारतीय प्रणाली में निम्न अन्तर है :—

(१) हिसाब-किताब की अंग्रेज़ी प्रणाली में किताबें जिनको रजिस्टर भी कहते हैं प्रयोग में आती हैं और भारतीय प्रणाली में बहियाँ काम में लाई जाती हैं। बहियाँ लिपटी रहने के कारण रजिस्टरों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहती हैं।

(२) बहियाँ बग़ैर लाइन के काग़ज़ों की बनी होती हैं और रजिस्टर लाइनदार काग़ज़ों के बने होते हैं। अतः, बहियों में खानों के लिये काग़ज़ों को मोड़ देते हैं जिनको कस (Folds) कहते हैं। रजिस्टरों में लाल स्याही से लाइनें खींची जाती हैं।

(३) भारतीय प्रणाली मे रुपये, आने, पाई और पैसे अंग्रेज़ी प्रणाली के तरीक़े से भिन्न रूप में लिखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रणाली में रक़म पहिले खाने मे होती है और अंग्रेज़ी प्रणाली मे अन्तिम खाने में होती है।

(४) भारतीय प्रणाली मे रोकड़ बही का बहुत ऊँचा स्थान है। बहुत से व्यापारी अपने सभी लेखों को पहिले रोकड़ बही ही में करते हैं, अन्य कोई सहायक बही रखते ही नहीं हैं। ऐसी अवस्था मे उसमें न केवल रोकड़ का आना-जाना ही वरन् हर तरह के लेन-देन दिखाये जाते हैं। अंग्रेज़ी प्रणाली में कैश-बुक में केवल नक़दी के ही लेन-देन दिखाये जाते हैं। हाँ, यदि और कोई अन्य सहायक पुस्तक नहीं होते तो सारे लेन-देन जर्नल में दिखाये जाते हैं, किन्तु जर्नल और रोकड़ बही एक-सी चीज़ें नहीं हैं। फिर रोकड़

बही दो भी हो सकती हैं, कच्ची और पक्की। कच्ची में तो नक़द जमा नाम उसी क्रम से दिखाये जाते हैं जिस क्रम से वे व्यापार में घटित होते हैं, किन्तु पक्की में वे छाँट-छाँट कर इस प्रकार दिखाये जाते हैं कि एक मद के जमा एक जगह और नाम एक जगह आ जायँ।

(५) अंग्रेज़ी प्रणाली में हर लेन-देन के प्रमाण-स्वरूप वाउचर होते हैं। अतः, सहायक पुस्तकों में केवल लेखा कर लेते हैं उनका ब्योरा नहीं देते। भारतीय प्रणाली में वाउचर नहीं होते। अतः, उसमें सहायक वहियों मे हर लेखे का ब्योरा दिया जाता है।

(६) अंग्रेज़ी प्रणाली मे एकाउन्ट का बायाँ भाग डेबिट Debit (Dr) तथा दाहिना भाग Credit (Cr) कहलाता है। इसके विपरीत भारतीय प्रणाली में खाते के भाग उलट जाते हैं, अर्थात् बायाँ भाग जमा और दायाँ भाग नाम कहलाता है। इसका यह फल होता है कि जब कि अंग्रेज़ी प्रणाली में कैश बुक के लेखों का लेजर में लेखा करते समय बायें भाग अर्थात् डेबिट का लेखा लेजर में एकाउंटों के क्रेडिट मे और दायें भाग अर्थात् क्रेडिट का लेखा लेजर में एकाउंटों के डेबिट मे होता है भारतीय प्रणाली में रोकड़ बही के लेखो का खाता बही मे लेखा करते समय बाँये भाग अर्थात् जमा का लेखा खाता बही के खातों में बाँये भाग अर्थात् जमा ही मे और दाँये भाग अर्थात् नाम का लेखा खाता वही के खातो में दाहिने भाग अर्थात् नाम ही मे होता है। वास्तव में अंग्रेजी और भारतीय प्रणालियों मे यही एक मुख्य अन्तर है।

(७) अंग्रेज़ी प्रणाली में बैलन्स शीट में एसेट्स (Assets) और लायबिलटीज़ (Liabilities) लेजर के एकाउन्टों की तरह नहीं बल्कि उनसे उल्टे दिखलाये जाते हैं अर्थात् यदि किसी एकाउंट का डेबिट या बाँये तरफ़ का बैलन्स है तो वह बैलन्स शीट में दाहिने तरफ़ और यदि किसी एकाउट का क्रेडिट या दाहिने तरफ़ का

बैलन्स है तो वह बैलन्स शीट मे बाँये तरफ़ दिखलाया जाता है। भारतीय प्रणाली मे ऐसी बात नहीं है। उसमे पक्के चिट्ठे में शेष उसी तरफ़ दिखलाये जाते हैं जिस तरफ़ खाते बही के खानों में रहते हैं।

(८) अंग्रेज़ी प्रणाली मे सहायक पुस्तको को लेजर मे पोस्ट करते समय सहायक पुस्तकों की पृष्ठ संख्या और तारीखों के अतिरिक्त उन एकाउंटों का नाम भी लिखते हैं जिनमें उनका दूसरा रूप दिखलाया गया है। भारतीय प्रणाली मे ऐसी बात नहीं है। उसमें केवल सहायक पुस्तको की पृष्ठ सख्या और तिथि ही लिखी जाती है। इसका यह फल होता है कि जब कि लेजर से लेन-देनों की प्रकृति का पता चल जाता है, खाते बही से इसका पता नहीं चलता है। ऐसी दशा में भारतीय प्रणाली मे सहायक पुस्तकों को फिर से देखना अनिवार्य-सा हो जाता है।

(९) अंग्रेज़ी प्रणाली मे एकाउंटो का शेष पहिले अलग कहीं पर निकाला जाता है और फिर उसको उस तरफ़ लिख कर जिधर का जोड़ कम होता है डेबिट और क्रेडिट दोनों का बराबर जोड़ एक दूसरे की समानान्तर रेखाओ पर रख देते हैं। जिस तरफ़ बीच में जगह रह जाती है उस पर एक टेढ़ी रेखा खींच देते हैं। भारतीय प्रणाली में ऐसा नहीं करते। उसमें प्रत्येक तरफ़ का जोड़ उसके अन्त में लिख देते हैं और फिर शेष निकाल कर जिधर का जोड़ कम है उधर लिख देते हैं। दोनों तरफ़ के जोड़ों को समानान्तर रेखाओं पर लिखना इसमें आवश्यक नही है।

(१०) अंग्रेज़ी प्रणाली में उन लेखो को लाल स्याही से लिखते हैं जिनको महत्व देना होता है जैसे बैलन्स इत्यादि, किन्तु भारतीय प्रणाली में ऐसा नहीं होता, केवल एक ही प्रकार की स्याही प्रयोग में लाई जाती है।

(११) अंग्रेज़ी प्रणाली में जर्नल में पहिले डेबिट का लेखा और फिर क्रेडिट का लेखा होता है। भारतीय प्रणाली में नक़ल बहियों में जिनमें जर्नल ही की तरह लेखे होते हैं ऐसी कोई बात नहीं है। जमा नक़ल बही में पहिले माल खाते नाम और फिर उन लोगों के जमा होता है जिनसे माल ख़रीदा जाता है और नाम नक़ल बही में पहिले माल खाते जमा और फिर उन लोगों के नाम होता है जिनको माल बेचा जाता है।

(१२) अंग्रेज़ी प्रणाली मे कई खानों की कैश-बुक और अन्य-अन्य सहायक पुस्तकें तथा लेजर, इत्यादि प्रयोग में आते हैं किंतु भारतीय प्रणाली में ऐसी कोई बात नहीं होती।

(१३) अंग्रेज़ी प्रणाली में खानों का हिसाब स्वयम् सन्तुलन करने वाले लेजरों की प्रणाली, दो हिसाब पद्धति, पड़तल के हिसाब, इत्यादि का विकास हो गया है जो भारतीय प्रणाली में नहीं हुआ है यद्यपि हो सकता है।

(९) हिसाब-किताब का निरीक्षण (Auditing)

हिसाब-किताब के निरीक्षण के लिये अंग्रेज़ी में जो आडिट (Audit) शब्द है वह लेटिन भाषा का है जिसका अर्थ सुनना है। प्राचीन समय की एक प्रथा के अनुसार ग्रीस के एकाउटैन्टों को अपने हिसाब-किताब का ब्योरा सुनाने के वास्ते एक आडिटर के पास जाना पड़ता था। रानी एलिज़ाबेथ के समय तक इंगलैंण्ड में यह प्रथा अधूरी-सी थी, किन्तु सन् १४६४ में जब लुकस (Lucas) ने पहिले पहिल हिसाब-किताब के दोहरे लेखे की प्रणाली की प्रथा चालू की उसी समय से आडिटिङ्ग की प्रथा भी ज़ोरों से चल निकली यहाँ तक कि आजकल इसने एक बडे भारी विज्ञान का रूप धारण कर लिया है।

आडिटिङ्ग शब्द के आधुनिक अर्थ, व्यापार-सम्बन्धी लेन-देन के

लेखों का (रजिस्टरों और वाउचरों, इत्यादि का; इसलिये अनुसन्धान करना, तुलना करना, निग्रह करना, गुण और दोष का निरूपण करना, प्रमाणित करना, सूक्ष्म परीक्षा करना, विचार करना, तथा समर्थन करना है कि जिससे व्यापार-सम्बन्धी हिसाब और उसकी आय-व्यय-सम्बन्धी अन्य बातों का ठीक-ठीक पता चल जाय। हिसाब-किताब के निरीक्षण के दो ध्येय होते हैं, एक छल-कपट इत्यादि को अनुसन्धान करना और उनको रोकना और दूसरे अशुद्धियों को खोजना। वास्तव में आडिटिङ्ग से इन दोनों बातों का पता चल जाता है।

आडिटिङ्ग के मुख्य लाभों में निम्नाङ्कित हैं :—

(१) इससे छल, कपट और अशुद्धियों, इत्यादि का पता चल जाता है और उन्हें रोका जा सकता है।

(२) इससे व्यापार-सम्बन्धी लेखे पूरे-पूरे तैयार हो जाते हैं।

(३) इससे व्यापारी अपनी हानि-लाभ का हमेशा पता पा सकता है।

(४) आय कर देने के समय आडिट किये हुये हिसाबों पर विशेष तौर पर विश्वास किया जा सकता है।

(५) हिसाब के आडिट हो जाने से साझियों को भी सन्तोष हो जाता है।

(६) हिसाब-किताब आडिट हो जाने से उसके हिसाब से रुपया उधार मिल सकता है।

(७) आग, इत्यादि लग जाने से यदि कोई हानि हो जाती है तो आडिट किये हिसाब को दिखाने से पूरी-पूरी रक़म मिलने में आसानी होती है।

(८) आडिट किये हुये हिसाबों से व्यापार को बेंचने इत्यादि में बहुत सी कठनाइयाँ दूर रहती हैं।

वैसे तो हिसाब-किताब समझने वाला कोई भी व्यक्ति आडिटिंग का काम कर सकता है। किंतु सरकार उन्हीं के द्वारा आडिट किये

हुये हिसाबों को प्रमाणित मानती है जिन्हे उसकी तरफ़ से एक विशेष प्रमाण-पत्र प्राप्त है। जो हो एक सफल आडिटर में निम्न गुण होने चाहिये :—

(१) सरकारी प्रमाण-पत्र के साथ-साथ उसमे हिसाब-किताब की भिन्न-भिन्न रीतियों और प्रणालियों के समझने की योग्यता होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि उसको उन सब भाषाओं और लिपियों का भी ज्ञान हो जिनमे हिसाब-किताब अधिकतर लिखे जाते हैं।

(२) उसको आडिटिंग के विज्ञान से पूर्ण परिचित होना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने काम से सम्बंध रखने वाले क़ानूनों को भी समझता हो।

(३) उसको सचेत, नियमित तथा मेहनती होना चाहिये और ~ट करते समय अपनी इन सब योग्यताओं को पूर्ण रूप से प्रयोग मे लाना चाहिये।

(४) उसको प्रत्येक बात को ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये। ऐसा न हो कि वह लोगों का सहज ही में विश्वास कर ले और फिर धोखा उठाये।

(५) उसे युक्तिपूर्ण तथा चरित्रवान होना चाहिये। ऐसा न हो कि वह किसी प्रकार से दूसरों से प्रभावित हो जाय।

(६) उसे इतना बुद्धिमान होना चाहिये कि वह प्रत्येक सूचना अथवा विश्लेषण के मूल्य को भली भाँति समझ ले

(७) उसे सच्चाई का मार्ग ग्रहण करना चाहिये और सदा यथार्थ बातो का ही प्रमाण देना चाहिये।

(८) उसे आभ्यासिक होना चाहिये और अपने ग्राहकों की आवश्यकतानुसार काम करना चाहिये।

प्रत्येक व्यापारी के लिये उसके हिसाबो का आडिट करा लेना बहुत ही लाभदायक है।

८. माल का ख़रीदना और बेचना

(१) खरीद बिक्री कन्ट्राक्ट (२) ख़रीद बिक्री की शर्तें (३) माल ख़रीदने और बेचने वाले के अधिकार और दायित्व (४) बीजक तथा अन्य व्यापारिक रुक्के (५) भुगतान—थोक और खुदरा।

माल का ख़रीदना और बेचना देश के अन्दर भी किया जा सकता है और दूसरे देशों से भी। किन्तु इनके विषय में तो हम विशेष अध्ययन अगले दो अध्यायों में करेंगे। यहाँ पर तो हमें माल के ख़रीदने और बेचने के सम्बन्ध की जो अन्य बातें हैं उनको देखना और समझना है।

(१) खरीद बिक्री कान्ट्राक्ट

किसी माल के खरीदने और बेचने या सौदे में ख़रीदने और बेचने वालों के बीच में कुछ बातो का तै हो जाना बहुत ही आवश्यक है। ये बातें आपस में जबानी भी तै हो सकती हैं और लिख कर भी। जब ख़रीदने और बेचने वाले दूर-दूर के होते हैं तब तो उनमें पत्र-व्यवहार होता ही है, और उसी के अन्दर लिखा-पढ़ी हो जाती है। किन्तु यदि वे एक-दूसरे के सामने हैं तो चाहे ज़बानी बात-चीत हो और चाहे लिखा-पढी करके हो जाय। दोनो ही बातें चालू हैं। किन्तु अधिक अच्छा यही है कि जो कुछ तै हो वह लिख-पढ़ जाय। किसी बात की लिखा-पढ़ी हो जाने से वह बात पक्की हो जाती है। उसका सबूत हो जाता है। सौदो में जो बातें तै होती हैं उनके विषय में कुछ बताने के पहिले यह बता देना बहुत ही आवश्यक है कि बहुत से सौदों के लिये सभी बातों को तै करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हर बाज़ार में सौदो के कुछ नियम हैं जो हर सौदे मे लागू होते हैं।

हाँ, उनमें से किसी में यदि कोई परिवर्तन कराना है तो उसको अवश्य तै कर लेना चाहिये। यहाँ पर एक बात और ध्यान देने की है और वह यह है कि सौदे दो प्रकार के हो सकते हैं एक तो तैयार और दूसरे वायदे के। तैयार सौदों में माल की सुपुर्दगी उसी समय कर देनी पड़ती है और उसका भुगतान या तो उसी समय हो जाता है या यदि उसमें उधार का चलन है तो उधार की अवधि बीत जाने पर अथवा यदि उधार का कोई चलन तो नहीं है किन्तु परस्पर ऐसा निश्चय हो गया है तो निश्चित अवधि के बीत जाने पर उसका भुगतान हो जाता है। इसके विपरीत वायदे के सौदों में माल की सुपुर्दगी एक निश्चित अवधि के बीत जाने पर की जाती है और उसी समय उसका भुगतान हो जाता है। ऐसी अवस्था में सौदा ज़बानी अथवा लिख कर किसी तरह से भी हो सकता है। साथ ही सौदा होने के समय कहीं-कहीं पर कुछ पेशगी देने का चलन है और कहीं-कहीं किसी पेशगी की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। वायदे के सौदों मे अधिकतर तो यह चलन है कि वह आपस में अथवा किसी दलाल के मार्फ़त पहिले तो ज़बानी तै हो जाता है, और फिर उसकी लिखा-पढ़ी हो जाती है। यदि कोई सौदा बिना किसी दलाल की सहायता के तै होता है तो लिखा-पढ़ी के लिये प्रायः यह होता है कि सौदा बेचने वाला उसको अपनी बही में लिख लेता है अथवा किसी कन्ट्राक्ट पर लिख कर उसकी सही ख़रीदने वाले से करवा लेता है। यदि ख़रीदने वाला चाहता है तो वह भी उसको अपनी बही में लिख लेता है। जहाँ कहीं कन्ट्राक्ट तैयार किये जाते हैं, उनकी दो प्रतिलिपियाँ भी हो सकती हैं जिनमें से एक तो बेचने वाले के पास और दूसरी ख़रीदने वाले के पास रह सकती है। और यदि कोई सौदा किसी दलाल के मार्फ़त होता है तो प्रायः दलाल उसका कन्ट्राक्ट स्वयम् तैयार करता है। इसकी तीन प्रतिलिपियाँ होती हैं, एक बेचने वाले के पास रहती है, दूसरी ख़रीदने वाले के पास और तीसरी स्वयम् दलाल के पास रह जाती है। बहुत से वायदे

के सौदों के माल की सुपुर्दगी और भुगतान के लिये हफ़्ते में अथवा महीने में, अथवा तिमाही एक दिन अथवा तारीख़ निश्चित होती है। उस बीच में जितने सौदे होते हैं सभी का लेन-देन उस निश्चित दिन अथवा तारीख़ पर ही होता है। यदि माल ख़रीदने वाला उस निश्चित दिन अथवा तारीख़ को भुगतान देकर माल की सुपुर्दगी नहीं लेता है, तो जितने दिन बाद वह ऐसा करता है उतने दिन का ब्याज उसको माल के बेचने वाले को देना पड़ता है। इसके विपरीत यदि माल बेचने वाला उस निश्चित दिन को अथवा तारीख़ पर माल नहीं देता है तो माल ख़रीदने वाले को इससे जो हानि होती है वह वह उससे ले सकता है। वायदे के सौदो मे सट्टा भी होता है, अर्थात् यदि माल बेचने वाला माल नहीं देना चाहता और माल ख़रीदने वाला माल नहीं लेना चाहता तो जिस भाव से सौदा तै हुआ था उस भाव में और जिस दिन माल की सुपुर्दगी होनी है उस दिन जो भाव है उसमें जो अन्तर है वह जैसा भी हो माल बेचने वाला अथवा ख़रीदने वाला एक दूसरे को दे देता है। मान लीजिये कि 'क' ने 'ख' को १०० बोरा परताबपुर चीनी ५०) प्रति बोरा के हिसाब से बेची है। अब, यदि वायदा पूरा होने के दिन इस चीनी का भाव ४६) प्रति बोरा है तो १) प्रति बोरा के हिसाव से 'ख' १००) 'क' को दे देगा अथवा यदि इसका भाव ५१) प्रति बोरा है तो 'क' १) प्रति बोरा के हिसाब से १००) 'ख' को दे देगा। अधिकतर सट्टों में भी माल की लेनी देनी होती है। यह बात दूसरी है कि माल ख़रीदने वाला माल की सुपुर्दगी के दिन तक उसको किसी न किसी को बेच देता है और माल बेचने वाला भी उस दिन तक उसको किसी न किसी से ख़रीद लेता है। अतः, अधिकतर माल की लेवा-देई के स्थान पर यही ख़रीद-बिक्री के कन्ट्राक्ट की लेवा-देई होती है और साथ-साथ क़ीमत के अन्तर का भी भुगतान होता रहता है। यदि कोई व्यक्ति अपना सौदा बराबर नहीं करता है अर्थात् माल बेचने वाला उसको

ख़रीदता नहीं है और माल ख़रीदने वाला उसको बेचता नहीं है त' माल बेचने वाला माल की सुपुर्दगी देता है और ख़रीदने वाला उसकी सुपुर्दगी लेता है। कुछ सौदा करने वाले अपने सौदे का बदला कर लेते हैं, अर्थात् बेचने वाला उस दिन का सौदा ख़रीद कर अगले वायदे का सौदा बेच देता है और ख़रीदने वाला उस दिन का सौदा बेच कर अगले वायदे का सौदा ख़रीद लेता है। अब, यदि अगले वायदे का सौदा उस दिन के सौदे की अपेक्षा मँहगा होता है, तो बेचने वाले को उसका अन्तर देना पड़ता है और यदि वह सस्ता है तो उसको उसका अन्तर मिलता है। सौदा ख़रीदने वाले को इसका ठीक उल्टा करना पड़ता है।

(२) ख़रीद बिक्री की शर्तें

माल के ख़रीद-बिक्री में निम्न शर्तों का तै हो जाना आवश्यक है :—

(१) माल की क़िस्म—जिस माल का सौदा किया जाय उसकी क़िस्म को तै कर लेना चाहिये। बाज़ माल की क़िस्म तो चलन के अनुसार निश्चित रहती है किन्तु बाज़ के विषय में ऐसी कोई बात नहीं है। जिस माल की क़िस्म चलन के अनुसार निश्चित नहीं है उसकी क़िस्म के विषय में निम्न तरीक़ों से तै किया जाता है।

(अ) नमूना—बहुत से ऐसे माल हैं जिनकी क़िस्म के लिये उनमें से थोड़ा-सा हिस्सा निकाल कर दिखला देते हैं। ये अधिकतर कच्ची चीज़ें होती हैं, जैसे गेहूँ, चावल, चना, रुई, ऊन, रेशम, सन, इत्यादि। इसको नमूना अथवा बानगी कहते हैं। अतः, नमूना अथवा बानगी का यह अर्थ है कि सचमुच असली माल से उसका कुछ अंश निकाल लिया जाय और सौदे को तै करने में माल की क़िस्म उस अंश या नमूने से तै की जाय। जब किसी सौदे के सम्बन्ध में माल की क़िस्म इस तरह से तै की जाती है तो सौदा करने वालों को यह समझ लेना चाहिये कि माल नमूने के समान रहेगा।

(ब) पैटर्न (Pattern)—कुछ चीज़ें ऐसी हैं कि उनमें सफ़ाई तथा रंग इत्यादि का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है, जैसे कपड़ा। अतः, इनका नमूना सौदे के माल से काट कर निकाल लिया जाता है। इसको पैटर्न कहते हैं। यह पक्के माल के सम्बन्ध में होता है।

(स) टाइप (Type)—कुछ ऐसे कच्चे माल हैं कि जिनका नमूना दिखाने की आवश्यकता नहीं है। वह जहाँ पैदा होते हैं वहीं के नाम से प्रसिद्ध होते हैं और उनकी एक ख़ास क़िस्म होती है जिसको टाइप कहते हैं। अतः, उस टाइप का नाम ले लेने से उनका बोध हो जाता है। जैसे चँदौसी का गेहूँ, पूसा का गेहूँ, पञ्जाब का गेहूँ, भडौंच की रुई, सूरत की रुई, इत्यादि।

(द) व्यापारिक मार्का अथवा चिह्न—कुछ चीज़ों के बनाने वाले का कोई छोटा नाम अथवा चीज़ों का स्वयम् नम्बर अथवा कोई चिह्न सरकार के रजिस्ट्री विभाग से रजिस्टर्ड करा लिया जाता है। अब उस नाम की, नम्बर की अथवा मार्के की चीज़ अन्य कोई व्यक्ति नहीं बना सकता। उनके बनाने वाले अपनी चीज़ में जो गुण रखते हैं वह वह किसी को नहीं बताते। अतः, वह चीज़ें उसी नाम, नम्बर अथवा मार्के से अपने गुणों के कारण बिकती रहती हैं जैसे स्वान पेन, पार्कर पेन, स्वान स्याही, वाटर मैन स्याही, सुधासिन्धु, अमृतधारा, दन्तसुधा मंजन, चाबी मार्का मिट्टी का तेल, ५०१ साबुन, इत्यादि।

(ध) माल का वर्णन—बहुत सी चीजों की शकल बना कर और उनके नाप, रंग तथा अन्य गुणों का वर्णन करके उनके विषय में तै किया जाता है, जैसे जार, आल्मारी, कुर्सी, मशीन, इत्यादि।

(२) माल का परिमाण—माल की क़िस्म के साथ-साथ सौदा करने वालों को यह भी निश्चय कर लेना चाहिये कि उसका परिमाण क्या होगा। अब यह परिमाण कुछ चीज़ों का तो तौल से, कुछ चीज़ों का नाप से और कुछ चीज़ों का गिनती से तै होता है। अतः,

यह तौल, नाप अथवा गिनती निश्चित हो जानी चाहिये। तौल में भी हमारे भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर बड़ा अन्तर है। कहीं तो ८० तोले का सेर है, कही १०० तोले का और कहीं ४० तोले का, इत्यादि, इत्यादि। इसी तरह से बाज़-बाज़ स्थानों में बाज़-बाज़ चीज़ों में सैकड़ा २८ पजे अर्थात् १४० का होता है। अतः, इन सब चीज़ों का पता लगा लेना चाहिये।

(३) माल बाँधना या बंडल बनाना—माल के बाँधने इत्यादि के विषय में भी माल की ख़रीद और बिक्री के समय तै कर लेना चाहिये। वैसे तो हर माल के बाँधने इत्यादि के विषय में बाज़ार चलन के अनुसार काम होता है। किन्तु यदि माल बहुत दूर भेजना है, अथवा वह ऐसा है कि आसानी से टूट सकता है तो उसको विशेष होशियारी से बँधवाना चाहिये। फिर इनका प्रभाव माल के मूल्य पर भी पड़ता है। मान लीजिये कि किसी चीज़ के बाँधने में दोहरा बोरा लगता है तो उससे माल के बेचने वाले का ख़र्च अधिक पड़ता है और उसके ख़रीदने वाले को लाभ होता है। अतः, इन सब बातों को समझ लेना चाहिये।

अधिकतर वस्तुये किसी न किसी चीज़ के अन्दर रख कर दी जाती हैं, उनको विशेषकर थोक सौदे मे अलग से तौलना एक प्रकार से असम्भव-सा है, जैसे घी टीन में आता है, मिट्टी का तेल टीन में आता है, चीनी बोरे में रहती है, इत्यादि। अब इन टीनों, इत्यादि के मूल्य और तौल दोनों का प्रश्न है। माल उसके टीन अथवा बोरे के साथ तौला जाता है। ऐसी तौल को हिन्दी में पूर्ण तौल और अंग्रेज़ी मे ग्रास वेट (Gross Weight) कहते है। पूर्ण तौल में से माल की वास्तविक तौल का निकालना आवश्यक होता है। अतः, इसके कई ढङ्ग हैं। जिस चीज़ में माल रक्खा जाता है उसकी तौल को अंग्रेज़ों में टेयर (Tare) और हिन्दी मे बारदाने की तौल कहते हैं। यह तौल या तो बारदाने की वास्तविक

तौल (Actual Tare) का पता लगा कर लगाई जा सकती है अथवा कुछ बारदानों को तौल कर उनका औसत निकाल कर (Average Tare) लगाई जा सकती है, अथवा कहीं-कहीं पर यह बाज़ार चलन (Customary Tare) के अनुसार दी जाती है और कहीं-कहीं पर इसका अनुमान (Estimated Tare) लगा लिया जाता है।

माल की पूर्ण तौल में से उसके बारदाने की तौल (Tare) तो घटा ही दी जाती है किन्तु कहीं-कहीं पर उस पर कुछ छूट भी मिलती है। इसको अंग्रेज़ी में ड्राफ्ट (Draft) कहते हैं और हिन्दी में घेलुआ अथवा धाता कहते हैं। कहीं-कहीं इसको सुभाव भी कहते हैं।

(४) माल की क़ीमत—माल की ख़रीद-बिक्री के समय उसकी क़ीमत तो निश्चित हो ही जाती है। किन्तु यह क़ीमत भी अनेकों प्रकार की होती है। अतः, इसको भली भाँति समझ लेना चाहिये जिससे कि माल के बेचने और खरीदने वाले में कोई झगड़ा न पड़े।

(अ) स्थानीय मूल्य—(Loco, Spot, Ex-warehouse) इसके अर्थ हैं कि माल बेचने वाला इस क़ीमत में माल अपने स्थान पर दे देगा। अतः, माल के खरीदने वाले को इसके ऊपर के तमाम खर्चों को देना पड़ता है। माल का बेचने वाला माल को बाँधने इत्यादि का भी ख़र्च माल के खरीदने वाले से माल की क़ीमत के अतिरिक्त ले लेने का अधिकार रखता है।

(ब) पहुँचौता स्टेशन—(At Station) इसके अर्थ हैं कि माल बेचने वाला माल को अपने यहाँ के रेलवे स्टेशन तक अपने व्यय से पहुँचा देगा। अतः, इसमें वह माल की क़ीमत के अतिरिक्त उसके बाँधने इत्यादि का व्यय अलग से नहीं माँग सकता।

(स) पहुँचौता रेल (F.O.R.)- इसके अर्थ हैं कि माल बेचने वाला माल को अपने व्यय से रेल के ऊपर तक पहुँचा देगा।

इसमें और पहुँचौता स्टेशन में यह अन्तर है कि इसमें यदि माल को रेल के डिब्बों में लादने का भी कोई व्यय होता है तो वह भी माल का बेचने वाला देता है। इसमें रेल का किराया सम्मिलित नहीं है।

(द) पहुँचौता मुकाम खरीदार (F. O. R. Destination)—इसके अर्थ हैं कि माल का बेचने वाला माल को अपने व्यय से उस स्टेशन तक पहुँचा देगा जिसमें माल का ख़रीदने वाला रहता है। इसमें रेल का किराया भी सम्मिलित है।

(ध) पहुँचौता गोदाम खरीदार (Franco)—इसके अर्थ हैं कि माल का बेचने वाला माल को अपने व्यय से ख़रीदार के गोदाम तक पहुँचा देगा।

उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ क़ीमतें ऐसी हैं जो केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध की है। वे निम्नाङ्कित हैं:—

(न) पहुँचौता जहाज़ किनारे (F. A. S.)—इस क़ीमत पर माल के बेचने वाला माल को जहाज़ के किनारे तक अपने व्यय से पहुँचा देता है। किसी-किसी बन्दरगाह पर जहाज़ समुद्र में दूर पर खड़े होते हैं। ऐसी दशा में माल को नावों द्वारा उनके किनारे तक पहुँचाना पड़ता है। अतः, इस क़ीमत में नाँव का किराया भी सम्मिलित समझा जाता है। इसमें जहाज़ का किराया सम्मिलित नहीं है।

(य) पहुँचौता जहाज़ पर (F. O. B.)—इस क़ीमत के अर्थ हैं कि माल का बेचने वाला माल को अपने व्यय से जहाज़ पर लदा देगा। इसमें भी जहाज़ का किराया सम्मिलित नहीं है।

(र) क़ीमत और जहाज़ किराया (C. and F.)—इसमें जहाज़ का किराया भी सम्मिलित है। यह क़ीमत देशान्तर्गत व्यापार के सम्बन्ध में भी प्रयोग में आती है। अतः, वहाँ पर इसमें रेल का किराया भी सम्मिलित रहता है।

(ल) क़ीमत और बीमा तथा जहाज़ का महसूल (C. I. F.)—इसमें माल बेचने वाले को जहाज़ के किराये के अतिरिक्त माल के बीमें का भी महसूल देना पड़ता है।

(५) माल की सुपुर्दगी—प्रत्येक ख़रीद-बिक्री के सम्बन्ध में माल की सुपुर्दगी की शर्त भी स्पष्ट रहनी चाहिये। इसका यह अर्थ है कि माल का बेचने वाला माल को कब, किस प्रकार और कहाँ सुपुर्द करेगा। इसमें यह भी स्पष्ट हो जाता है कि माल ख़रीदार के पास किसी नौकर के द्वारा भेजा जायगा, अथवा डाकख़ाने के पार्सल से, अथवा रेल की सवारी गाड़ी से अथवा माल गाड़ी से भेजा जायगा।

तुरन्त सुपुर्दगी (Spot sale or Immediate Delivery)—इसके अर्थ हैं कि माल सौदा होते ही ख़रीदार को सुपुर्द कर दिया जायगा।

वायदे की सुपुर्दगी (Future Delivery)—उपरोक्त के विपरीत वायदे की सुपुर्दगी भी हो सकती है। ऐसी अवस्था में माल की सुपुर्दगी वायदे के दिन दी जाती है।

शीघ्र सुपुर्दगी—(Prompt/Ready Sale/Delivery or Prompt Day)—इसके अर्थ हैं कि माल की सुपुर्दगी बहुत जल्द दी जायगी। ऐसी अवस्था में माल की सुपुर्दगी का दिन बता दिया जाता है।

माल आने पर उसकी सुपुर्दगी (Delivery to Arrive)—कभी कभी माल बेचने वाले के पास माल तैयार नहीं रहता है किन्तु आने वाला होता है। ऐसी अवस्था में माल के आने पर ही माल की सुपुर्दगी दी जाती है। यदि माल नहीं आता तो माल की सुपुर्दगी नहीं होती।

(६) माल का दाम चुकता करना—माल के भुगतान की शर्त भी बड़ी महत्वपूर्ण है। कभी-कभी माल बेचने वाला उसके

आर्डर के साथ चुकता दाम (Cash with Order) चाहता है। कभी-कभी माल का दाम उसकी सुपुर्दगी पर (Cash on Delivery—C. O. D.) दिया जाता है। वी० पी० पी० से भी माल मँगाने का यही अर्थ है। इसमें पोस्टमैन भुगतान लेकर पार्सल देता है। यदि किसी सौदे में माल का दाम बैङ्क के द्वारा वसूल किया जाता है तो इसके लिये बैङ्क को माल की बिल्टी सुपुर्द कर दी जाती है। बैङ्क माल ख़रीदने वाले से पहिले माल का भुगतान ले लेता है और फिर बिल्टी दे देता है। इसको भुगतान चुकता करने पर प्रमाण-पत्र की सुपुर्दगी (Cash against Documents) कहते हैं।

कभी-कभी माल का बेचने वाला माल के खरीदने वाले पर बिल अथवा हुण्डी करता है। अब, यदि बिल अथवा हुण्डी के भुगतान पर प्रमाण-पत्रों की सुपुर्दगी निर्भर रहती है तो उसको हुण्डी के भुगतान पर प्रमाण-पत्रो की सुपुर्दगी (Documents against Payment) कहते हैं। और यदि प्रमाण-पत्रो की सुपुर्दगी केवल बिल की स्वीकृति पर ही निर्भर है तो उसको बिल की स्वीकृति पर प्रमाण-पत्रो की सुपुर्दगी (Documents against Acceptance) कहते हैं।

कभी-कभी माल की सुपुर्दगी के दो-तीन दिन के अन्दर उसका भुगतान करना पड़ता है। इसको माल की सुपुर्दगी के बाद शीघ्र दाम चुकता करना (Prompt Cash) कहते हैं।

कभी-कभी माल बेचने वाला ख़रीदार को थोड़े समय के लिये माल उधार दे देता है, किन्तु शर्त यह रहती है कि उस समय के अन्दर भुगतान करने पर भी बेचने वाला ख़रीदार को कोई बट्टा न देगा। इसको बिना बट्टा दाम चुकताई (Cash, Ready Cash, Net Cash) कहते हैं। इसके विपरीत कभी-कभी

इस तरह से भुगतान दे देने पर कुछ बट्टा दिया जाता है। ऐसी अवस्था में बट्टा सहित दाम चुकताई (Payment Less Cash Discount) कहते हैं। इसमें बट्टे की दर भी दी रहती है। तीन प्रतिशत १५ दिन के अन्दर (3% within 15 days) के अर्थ हैं कि यदि भुगतान १५ दिन के अन्दर हो जायगा तो ३) प्रति सैकड़ा बट्टा काट दिया जायगा। इसके विपरीत १५ दिन के बाद ६ प्रतिशत वार्षिक ब्याज (6% p. a. interest after 15 days) के अर्थ हैं कि यदि भुगतान १५ दिन के बाद होगा तो जितने दिन बाद होगा उतने दिन का ६ प्रतिशत वार्षिक ब्याज लगेगा।

(३) माल ख़रीदने और बेचने वाले के अधिकार और दायित्व

माल ख़रीदने और बेचने वाले के अधिकार और दायित्व या तो उनके बीच मे तै की गई शर्तों के अनुसार होते हैं या माल विक्री विधान (Sale of Goods Act) में दी गई धाराओं के अनुसार होते हैं। माल के ख़रीद-बिक्री के सम्बन्ध की शर्तें या तो आवश्यक (Conditions) अथवा साधारण (Warranties) हो सकती हैं।

माल ख़रीद और बिक्री के सम्बन्ध की किसी आवश्यक शर्त के न पूरा होने पर उस व्यक्ति को जिसके प्रति यह शर्तें पूरी नहीं हुई हैं यह अधिकार प्राप्त है कि वह दूसरे व्यक्ति से अर्थात् जिसने यह शर्तें पूरी नहीं की हैं या तो केवल अपनी क्षति को पूरा करवा ले अथवा साथ ही साथ सौदे को भी भङ्ग कर दे। इसके विपरीत यदि कोई साधारण शर्त पूरी नहीं हुई है तो उसके लिये उसको केवल अपनी क्षति पूरा करवा लेने का ही अधिकार है; सौदा भङ्ग करने का अधिकार नहीं है।

माल के ख़रीद-बिक्री के सम्बन्ध की कुछ शर्तें जैसे उसकी क़िस्म की, अथवा उसके दाम की, अथवा उसके परिमाण की शर्तें साधारणतया आवश्यक शर्तें मानी जाती हैं और कुछ शर्तें जैसे माल को बाँधने की, अथवा माल को सुपुर्द करने की अथवा उसका दाम चुकता करने की शर्तें साधारणतया साधारण शर्तें मानी जाती हैं। किन्तु माल बेचने वाले और ख़रीदने वाले को यह अधिकार है कि वह माल के कन्ट्राक्ट में किसी शर्त को आवश्यक अथवा किसी को साधारण घोषित कर दे। माल के ख़रीद-बिक्री के सम्बन्ध में कुछ शर्तें ऐसी भी हैं कि जिनको न भी तै करने पर विधान उनको तै मानता है। अब इनमें से कुछ शर्तें आवश्यक हैं और कुछ साधारण हैं।

विधान के द्वारा मानी गई आवश्यक शर्तें (Implied Conditions)—विधान निम्न शर्तों को आवश्यक शर्तें मानता है :—

(१) बिक्री करने वाले को माल के बिक्री करने का अधिकार है;

(२) जब माल वर्णन करके बेचा गया है तब वह वर्णन के अनुसार होगा और जब वह वर्णन करके और नमूना दिखा करके बेचा गया है तो वर्णन और नमूने दोनों के अनुसार होगा ;

(३) जब ख़रीदार ने बेचने वाले को यह बता दिया है कि वह माल को किसी विशेष काम के लिये चाहता है और वह उस पर ऐसा माल देने के लिये विश्वास करता है तब माल ऐसा ही होना चाहिये कि वह उस बताये हुये काम के लिये ख़र्च किया जा सके;

(४) जिस माल को वर्णन करके किन्तु बिना देखे हुये ख़रीदा गया है, वह बिक्री के लिये अच्छी क़िस्म का (G. M. Q.) होगा;

(५) जब माल नमूना दिखा कर बेचा गया है वह पूरा नमूने के अनुसार होगा और उसमे ऐसी कोई बुराई न होगी जो नमूने में नहीं दिखाई पड़ती थी।

विधान के द्वारा मानी गई साधारण शर्तें (Implied Warranties)—कुछ शर्तों को विधान साधारण शर्तें मानता है। ये निम्नाङ्कित हैं :—

(१) ख़रीदार माल का उपभोग शान्तिपूर्वक कर सकेगा;

(२) ख़रीदार को माल बेचने वाले के अतिरिक्त अन्य किसी को उस माल के सम्बन्ध में कुछ न देना पड़ेगा।

माल के खरीदार के अधिकार और दायित्व—यहाँ पर हमको माल के ख़रीदार के अन्य अधिकारों और दायित्व को भी समझ लेना चाहिये।

(१) माल के ख़रीदने वाले का अधिकार है कि वह माल के बेचने वाले से ख़रीदे हुये माल की सुपुर्दगी ले ले। यदि उसको माल नहीं मिलता है तो वह उससे हर्जाना ले सकता है। हाँ, ख़रीदे हुये माल के माँगने का दायित्व भी उसी पर है। यदि वह माल नहीं माँगता है तो बेचने वाले के ऊपर उसकी सुपुर्दगी का दायित्व नहीं है।

(२) माल के मिल जाने पर एक उचित अवधि के अन्दर अथवा माल की सुपुर्दगी के पहिले जब माल का ख़रीदने वाला चाहे ख़रीदे हुये माल की जाँच कर सकता है और यदि वह तै किये हुये माल की तरह नहीं है तो वह उसको लौटा भी सकता है अथवा उस पर हर्जाना भी वसूल कर सकता है। किन्तु यदि वह उचित अवधि के अन्दर ऐसा नहीं करता है तो फिर आगे यह नहीं कह सकता कि माल ठीक नहीं था।

(३) कोई आर्डर दिया हुआ माल यदि किसी ख़रीदने वाले

को उसके आर्डर से कम या अधिक भेजा जाता है तो उसे यह अधिकार है कि वह उसे स्वीकार कर ले अथवा अस्वीकार कर दे। कम माल मिलने पर बाकी माल के लिये वह हर्जाना भी माँग सकता है और अधिक माल के लिये उसको शेष कीमत निश्चित दर के हिसाब से देनी पड़ती है। यदि वह चाहे तो जितना माल अधिक है उसको लौटा भी सकता है।

(४) माल के ख़रीदार को यदि माल के बिक्री करने वाले से कोई हर्जाना मिलता है तो वह चाहे तो दाम देते समय उसको काट ले अथवा फिर वसूल कर ले। हाँ, उचित अवधि के अन्दर माल की क़ीमत देने का उसके ऊपर पूरा दायित्व रहता है।

माल बेचने वाले के अधिकार और उसके दायित्व—माल बेचने वाले के भी कुछ अधिकार और दायित्व हैं :—

(१) माल बेचने वाले को यह अधिकार है कि वह माल के ख़रीदने वाले पर इस बात का ज़ोर दे कि वह एक उचित अवधि के अन्दर माल की सुपुर्दगी ले ले और उसका दाम दे दे। यदि माल का ख़रीदने वाला किसी माल को एक उचित अवधि के अन्दर नहीं लेता है और वह माल ख़राब हो सकता है अथवा सड़-गल सकता है तो उसको यह अधिकार है कि वह उसको फ़ौरन बेच दे, और इसमें उसको जो कुछ हानि होती है उसके लिये उसको यह अधिकार है कि वह उसको माल के ख़रीदने वाले से वसूल कर ले। और यदि वह माल ख़राब होने के लायक़ नहीं है तो उसको यह अधिकार है कि वह माल के ख़रीदने वाले को इस बात की सूचना दे दे कि वह उसको एक निश्चित अवधि के अन्दर ले ले अन्यथा वह उसे बेच देगा। अब यदि निश्चित अवधि बीत जाती है और माल को ख़रीदने वाला माल नहीं लेता है तो उसको यह अधिकार है कि वह उसे बेच ले और उस पर उसे जो हानि

होती है उसको वह माल के ख़रीदने वाले से प्राप्त कर ले। इसी तरह से माल के बेचने वाले को यह अधिकार है कि वह माल की कीमत भी माल के ख़रीदने वाले से प्राप्त कर ले। हाँ, यदि माल उधार बेचा गया है तो माल बेचने वाला माल ख़रीदने वाले से उस समय तक उसकी क़ीमत नहीं माँग सकता है जिस समय तक उधार की अवधि नहीं बीत जाती है।

(२) यदि माल बेचने वाले को उचित अवधि के अन्दर माल की क़ीमत नहीं मिलती है और माल की सुपुर्दगी नहीं हुई है तो उसको अधिकार है कि वह उसे रोक ले और माल के ख़रीदने वाले को एक सूचना दे कर उसे किसी अन्य व्यक्ति के हाथ बेच दे और यदि इसमें उसकी कुछ हानि होती है तो वह उस हानि को माल ख़रीदने वाले से वसूल कर सकता है।

(३) यदि माल, माल ले जाने वाले को दे दिया गया है और माल ले जाने वाला माल ख़रीदने वाले का प्रतिनिधि नहीं है तो माल की क़ीमत न मिलने पर माल बेचने वाले को अधिकार है कि वह माल के ले जाने वाले से माल को रोक लेने की हिदायत कर दे और फिर उसको उससे लेकर बाज़ार में बेच दे और अपनी क़ीमत वसूल कर ले। माल के बेचने के पहिले माल बेचने वाले को माल ख़रीदने वाले को इसकी सूचना दे देनी चाहिये।

(४) बीजक तथा अन्य व्यापारिक रुक्के

बीजक (Invoice)—माल बेचने वाला माल ख़रीदने वाले के पास माल की, उसकी क़ीमत की और उसके ऊपर उसके द्वारा किये गये ख़र्चों की एक सूची बना कर या तो माल के भेजने के पहिले अथवा माल के प्रमाण-पत्रों के साथ-साथ भेजता है जिसको व्यापारिक भाषा में बीजक कहते हैं। इस बीजक में ऊपर माल बेचने और ख़रीदने वालों के नाम और पते और तारीख़ दी जाती है। इसके नीचे बेचे हुये माल का नाम, क़िस्म,

परिमाण, दाम और माल भेजने के व्यय इत्यादि दिखाये जाते हैं। बीजक के नीचे माल वेचने वाले का हस्ताक्षर होता है और यह लिख दिया जाता है कि यदि उस बीजक में कोई अशुद्धि रह गई है तो वह बाद में भी सही की जा सकती है। इसके लिये हिन्दुस्तानी में 'भूल-चूक लेनी-देनी' शब्द लिखे जाते हैं।

बीजक से लाभ—बीजक भेजने से ख़रीदार को यह मालूम हो जाता है कि माल भेजने वाले ने उसके पास कौन-कौन से माल भेजे हैं और उसको उस माल के सम्बन्ध में क्या देना है। उसको उससे यह भी मालूम हो जाता है कि प्रत्येक माल की क्या क़िस्म है, कितना परिमाण है, क्या दर है, उस पर कौन-कौन से मद में क्या ख़र्च हुआ है, इत्यादि। बीजक पाने पर ख़रीदार उसको अपने आर्डर से मिला कर यह देख लेता है कि उसको वही माल भेजे गये हैं जिनको उसने मँगाया था, अथवा उसमें कुछ अदल-बदल है। उसको माल की क़िस्म, उसके परिमाण, उसकी दर, इत्यादि की जाँच कर लेनी चाहिये। साथ ही उसको यह भी देख लेना चाहिये कि बीजक में हिसाब लगाने में कोई अशुद्धी तो नहीं है। यदि उसको कोई बात ठीक नहीं मिलती है तो वह उसके सम्बन्ध में वेचने वाले से लिखा-पढ़ी कर सकता है। माल आ जाने पर माल ख़रीदने वाला माल को बीजक से मिला लेता है और यदि इसमें कुछ ग़लती है तो वह उसको माल वेचने वाले को सूचित कर देता है।

बीजक का नमूना

अयोध्याप्रसाद, सीताराम

डाक बक्स नं० ४०	गौराङ्ग केमिकल वर्क्स,
टेलीफ़ोन नं० २२५	इलाहाबाद
तार का पता "गौराङ्ग"	ता० ३ जनवरी, १९४७ ई०
आर्डर नं० ४३२	
बीजक नं० २१२	

नामे ख़रीदार भाई कैलाशचंद,
२५ त्रिमुहानी,
मिर्ज़ापुर

बेचने वाले—अयोध्याप्रसाद सीताराम

मालगाड़ी के द्वारा रेलभाड़ा चुकता इलाहाबाद बैङ्क द्वारा

क्रम संख्या	विवरण माल व ख़र्च	परिमाण	दर	विवरण रक़म	कुल रक़म
१	दन्त सुधा मंजन	२ दर्जन	४।।) दर्जन	६)	
२	कैमिस्टो	४ दर्जन	६) दर्जन	३६)	
३	लवण भास्कर	१ दर्जन	६) दर्जन	६)	
४	भोजन सुधार	४ दर्जन	१३) दर्जन	५२)	
५	उदर शोधक	३ दर्जन	१२) दर्जन	३६)	
					१३६)
	छूट बट्टा २५) सै०				३४।।)
					१०४।)
	पैकिङ्ग			४)	
	फ़ुटकर			१)	
	रेलभाड़ा			२)	
					७
					१११।)

भूल-चूक लेनी-देनी राम गुलाम मुनीम — एक सौ ग्यारह रुपया चार आना — वास्ते अयोध्या प्रसाद सीताराम

सीताराम
मालिक फ़र्म

बीजक का तद्रूप (Pro-forma Invoice)—यह बीजक ही की तरह का होता है। इसमें और बीजक में केवल यही अन्तर है कि जब बीजक माल की बिक्री पर ही भेजा जाता है यह बिना बिक्री के भी भेजा जा सकता है। मान लीजिये कि कोई ख़रीदार यह जानना चाहता है कि यदि वह माल मँगाये तो उसको कुल कितना देना पड़ेगा, अथवा यदि कोई व्यापारी अपना माल आढ़त पर भेजता है और उसकी लागत, इत्यादि का अन्दाज़ा देना चाहता है तो इसको भेज सकता है।

अन्य व्यापारिक रुक्के—कभी-कभी बीजक के बनाने में ग़लती हो जाती है, अथवा माल ख़रीदार माल, इत्यादि के सम्बन्ध में कोई शिकायत करता है, अथवा कुछ माल लौटा देता है। ऐसी अवस्था में माल बेचने वाला नामे लिखाई रुक्का अथवा जमा लिखाई रुक्का भेजता है।

नामे लिखाई रुक्का (Debit Note)—यदि बीजक में कम रक़म दिखाई गई है तो रक़म को ठीक करने के लिये नामे लिखाई रुक्का भेजा जाता है। मान लीजिये कि माल ख़रीदार को १२५) का माल भेजा गया था, किन्तु बीजक कुल ११५) का था। अतः, ग़लती मिलने पर उसके पास १०) का नामे लिखाई रुक्का भेजा जायगा। इसमें भी ऊपर माल बेचने और ख़रीदने वालों के नाम और पते, तारीख़, रुक्के का नं०, आदि लिखे जाते हैं और इनके नीचे वह कारण और वह रक़म लिखी जाती है कि जो माल बेचने वाले को माल ख़रीदने वाले से बीजक की रक़म के अतिरिक्त मिलनी चाहिये। इसके नीचे रुक्का भेजने वाले का हस्ताक्षर होता है।

नामे लिखाई रुक्का का नमूना

श्याम लाल एण्ड सन्स

८२ बुलानाला,

रुक्का नं० १० बनारस

ता० २५ दिसम्बर, १६४६

नामे भाई रामजी दास,

२८ चौक,

इलाहाबाद

के नाम लिखा गया

क्रम सं०	विवरण	रक़म	जोड़ रक़म
१	बीजक नं० १०० ता० २ दिसम्बर, १६४६ के कुल जोड़ में कम जोड़ने की अशुद्धि	१०)	१०)
			१०)

श्याम लाल,
मालिक फ़र्म

जमा लिखाई रुक्का (Credit Note)—यदि किसी बीजक में कोई ऐसी अशुद्धि है कि जिससे ख़रीदार के ऊपर अधिक रक़म लगा ली गई है, अथवा ख़रीदार किसी बात की शिकायत करता है और उसके कारण उसको कुछ छूट दी जाती है अथवा वह कोई माल लौटा लेता है तब उसको एक जमा लिखाई रुक्का भेजा जाता है। इसमें भी ऊपर रुक्का लिखने और पाने वालों का नाम और पता, तारीख़, रुक्के का नं० और बाद में जमा का कारण और उसकी रक़म तथा नीचे हस्ताक्षर रहता है।

जमा लिखाई रुक्का का नमूना

जे० जे० सिंह एण्ड कम्पनी,

२५, ज़ीरो रोड,

रुक्का नं० २१२ इलाहाबाद

ता० २५ नवम्बर, १६४६

नामे भाई गौरी शंकर,

चावड़ी,

दिल्ली

के खाते में जमा किया गया

क्रम सं०	विवरण	रकम	कुल रकम
१	बीजक नं० ५२५ तारीख़ १० नवम्बर, १६४६– १ दर्जन फ़ाउन्टेन पेन वापस	७२)	७२)
	कुल जोड़		७२)

वास्ते जे० जे० सिंह एण्ड कं०

आर० सिंह,

मैनेजर

(५) भुगतान—थोक और खुदरा

वैसे तो भुगतान के विषय में कुछ थोड़ा सा ख़रीद-बिक्री की शर्तों के सम्बन्ध में इसी अध्याय में पहिले भी बताया जा चुका है, किन्तु यहाँ पर हमको इसके विषय में कुछ अधिक विवरण के साथ

अध्ययन करना है। जहाँ तक खुदरा भुगतान का सम्बन्ध है वह भारतवर्ष में तो प्रायः नक़दी ही में किया जाता है। पश्चिमी देशों में अवश्य इसके लिये नक़दी न देकर चेक दी जाती है। यहाँ पर भी चेक का रिवाज बढ़ रहा है। किन्तु अभी वह उतना चालू नहीं हुआ है जितना होना चाहिये। खुदरा भुगतान को हम एक अन्य दृष्टि से भी देख सकते हैं और वह है ख़रीद किराया (Hire Purchase) अथवा क़िस्त (Instalments) की दृष्टि से। इन दोनों में कुछ अन्तर है। ख़रीद किराये में ख़रीदने वाला माल की सुपुर्दगी तो ले लेता है और उसको काम में भी लाता है, किन्तु उसका मालिकाना जब तक कि अन्तिम क़िस्त न दे दी जाय बेचने वाले का ही रहता है। यदि इस बीच में ख़रीदने वाला कोई क़िस्त नहीं दे पाता है तो माल बेचने वाला माल को ज़ब्त कर सकता है और जितनी भी क़िस्तें उसको प्राप्त हो चुकी हैं उनके लिये वह कोई रक़म देने के लिये बाध्य नहीं रहता है। अतः, इस प्रणाली में ख़रीदने वाले के एक भी क़िस्त न दे सकने पर उसको हानि हो सकती है। इसके विपरीत क़िस्त-प्रणाली में पहिली क़िस्त देने के साथ ही माल का मालिकाना ख़रीदार का हो जाता है। हाँ, माल बेचने वाले को इस बात का अधिकार रहता है कि वह किसी क़िस्त न पाने के बाद जितनी क़िस्तें उसको मिल चुकी हैं उनका रुपया काट कर माल का मालिकाना स्वयम् प्राप्त कर ले। इसके विषय मे उसका जो कुछ भी ख़र्च हुआ है उसको भी वह प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह दोनों प्रणालियाँ काफ़ी चालू हैं किन्तु इनमें अच्छाई और बुराई दोनों हैं। अच्छाई तो यह है कि एक मध्यम श्रेणी के व्यक्ति को जो किसी काम में आने वाली वस्तु को जैसे सीने की मशीन, रेडियो, बिजली के पंखे, इत्यादि को एक साथ पूरी क़ीमत देकर नहीं ख़रीद सकता है इस तरह से ख़रीद सकता है। इससे उसको भी लाभ होता है और माल की बिक्री भी

बढ़ जाती है। बुराई यह है कि कभी-कभी कुछ लोग ऐसी चीज़ों को भी भुगतान की सुविधा मिल जाने के कारण ख़रीद लेते हैं जो उनके काम की नहीं होती हैं। कुछ लोग किस्तें नहीं दे पाते हैं और इस तरह से अपना और बेचने वाले दोनों का नुकसान करते हैं। इन दोनों तरीक़ों के अतिरिक्त जो कुछ ही चीज़ों के ख़रीद के सम्बन्ध में चालू हैं, सीधे उधार का भी तरीक़ा सभी प्रकार की चीज़ों की ख़रीद के सम्बन्ध में चालू है। अधिकतर नौकरी पेशे वाले अपनी आवश्यक वस्तुओं को एक या दो दूकानों से मँगाते रहते हैं और महीने के अन्त में पूरा भुगतान कर देते हैं। इससे भुगतान में सुविधा होती है।

थोक भुगतान में नक़दी, इत्यादि न चल कर हुण्डियाँ चलती हैं। मान लीजिये कि किसी शहर के कपड़े का कोई व्यापारी माल ख़रीदने के लिये बम्बई जाता है। अब, यदि बम्बई का व्यापारी उसको नहीं जानता है तो वह उसको माल नहीं उठा सकता है। वैसे तो ख़रीदने वाला व्यापारी अपने साथ माल नहीं लाता है, उसको तो बेचने वाला बण्डल, इत्यादि बना कर रेल द्वारा भेजता है और उसकी बिल्टी किसी बैंक के द्वारा आती है। किन्तु माल बेचने वाला ऐसा भी करने को तैयार नहीं होता है। कौन जानता है कि माल के ख़रीदार के स्थान पर पहुँच जाने के बाद ख़रीदार उसके सम्बन्ध की बिल्टी को बैंक में रुपया देकर न ले और तब बेचने वाले की हानि हो जाय। इसके लिये एक तरीक़ा यह है कि ख़रीदने वाले से आर्डर के साथ-साथ कुल आर्डर का कुछ प्रतिशत जमा करा लिया जाय, किन्तु यह चलन भी आजकल बहुत अधिक नहीं है। बात यह है कि माल ख़रीदने वाले व्यापारी नक़द रुपया देना ही नहीं चाहते हैं। ऐसी अवस्था में बैंक उनकी सहायता करते हैं। कोई व्यापारी जब कहीं माल लेने जाता है अपने बैङ्क का एक साख-पत्र अपने साथ ले जाता है। इस साख-पत्र में यह लिखा रहता है कि यदि इस व्यापारी को एक निश्चित रक़म तक का माल दिया जायगा तो उसकी हुण्डी उस

बैंक पर की जा सकती है और हुण्डी की मियाद पूरी होने पर बैङ्क के ऊपर उसके भुगतान का दायित्व रहेगा। अतः, ऐसी अवस्था में हुण्डियाँ बैंक के ऊपर होती हैं और बैंक मियाद बीतने के पहिले उनका रुपया माल के ख़रीदारों से प्राप्त कर लेता है। हो सकता है कि साख-पत्र देने के पहिले बैंक ख़रीदार से कोई ज़मानत ले ले अथवा यह भी हो सकता है कि माल आने पर बैंक माल को अपने पास रक्खे और जैसे-जैसे व्यापारी रुपया देता जाय वैसे-वैसे वह उसको छोड़ता जाय। यदि व्यापारी की स्वयम् की यथेष्ट साख है तो उसके स्वयम् के ऊपर भी हुण्डी कर दी जाती है और उसको माल मिल जाता है। बाद में हुण्डी की मियाद बीतने पर व्यापारी हुण्डी का भुगतान बैंक के मार्फ़त कर देता है।

---

६. देशान्तर्गत व्यापार

(१) भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार की अवस्था (२) उत्पादन और व्यापार की दृष्टि से यहाँ के मुख्य स्थान (३) व्यापारिक मध्यस्थ और संस्थायें (४) खरीद बिक्री-सम्बन्धी नियम (५) व्यापारिक झगड़ों का निबटारा।

जैसे कि पिछले अध्याय में कहा गया था माल का खरीदना और बेचना देश के अन्दर भी किया जा सकता है और दूसरे देशों से भी। अस्तु, हमें यहाँ पर देश के अन्दर जो माल की खरीद और बिक्री होती है उसी का विशेष रूप से अध्ययन करना है। देश के अन्दर जो माल की ख़रीद और बिक्री होती है उसको हम देशी या देशान्तर्गत व्यापार कहते हैं।

(१) भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार की अवस्था

भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार की अवस्था वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिये। यदि हम संसार के देशो को ध्यान से देखें तो हमको कुछ देश तो ऐसे मिलेंगे जो अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर सकते हैं और कुछ ऐसे देश मिलेंगे जो अपनी सारी आवश्यकताओ को पूरी कर सकते हैं। अतः, पहिली श्रेणी के देशों को हम अपूर्ण देश और दूसरी श्रेणी के देशों को पूर्ण देश कह सकते हैं। इंगलैंड और जापान अपूर्ण देश हैं। इन देशों में न तो उनकी आवश्यकताओ को पूरी करने के लिये खाद्य-सामग्री उत्पन्न होती है और न कच्चा माल ही। वे इनके लिये अन्य देशों के ऊपर निर्भर रहते हैं। यही कारण है कि उनमें साम्राज्यवाद की लिप्सा इतनी बढ़ी हुई है। उनको ऐसे देशों की आवश्यकता है जो उनके लिये

खाद्य-सामग्री और कच्चा माल उत्पन्न करें और उनके बनाये हुये माल को लेकर इन्हें उनको दें। इसके विपरीत संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और भारतवर्ष ऐसे हैं जो पूर्ण देश हैं। इनके यहाँ काफ़ी खाद्य-सामग्री और कच्चा माल उत्पन्न होता है, तथा वह सभी साधन भी हैं जिनसे वह पक्का माल तैयार कर सकते हैं। अब, जो देश अपूर्ण हैं उनके लिये विदेशी व्यापार भी बहुत आवश्यक है, किन्तु जो देश पूर्ण हैं उनके लिये यह उतना आवश्यक नहीं है। इसके यह अर्थ होते हैं कि जब इंगलैंड और जापान ऐसे देशों के लिये विदेशी व्यापार बहुत ही आवश्यक है और उनको इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और भारतवर्ष ऐसे देशों के लिये यह उतना आवश्यक नहीं है और न उन्हें इस पर विशेष ध्यान ही देना चाहिये। लेकिन भारतवर्ष में तो विदेशियों का राज्य था। अतः, उनकी नीति भी ऐसी थी जो उनके लाभ की थी न कि भारतवर्ष के लाभ की। इसका फल यह हुआ कि जबसे अंग्रेज़ लोग यहाँ पर आये उन्होंने यहाँ के विदेशी व्यापार ही को बढ़ाने का प्रयत्न किया। देश के भीतरी व्यापार की उन्नति की ओर तो उनका कभी ध्यान ही नहीं गया। उन्होंने यहाँ पर जो रेलें खोलीं, उनके दो ध्येय थे, एक तो यह कि उनसे देश का माल बाहर ले जाने की और बाहर का माल देश में लाने की सुविधा हो और दूसरे यह कि उनसे समय-समय पर फ़ौजें इधर-इधर भेजी जा सकें। सबसे पहिली रेल को खुले यहाँ पर १०० वर्ष के लगभग हो गये हैं, किन्तु अभी तक सारे देश में केवल ४४,००० मील तक की ही रेलवे लाइनें खुली हैं। अन्य देशों की तुलना में यह कुछ भी नहीं है। फिर इन रेलों की माल का किराया इत्यादि निर्धारित करने की भी नीति ऐसी थी कि उससे देश के अन्दर से बन्दरगाहों तक और बन्दरगाहों से देश के अन्दर तक माल ले जाने और लाने में सस्ता पड़ता है और देश के अन्दर ही माल को ले जाने में मँहगा पड़ता है। यहाँ की

सड़कों की अवस्था भी अच्छी नहीं है। भारतवर्ष में कुल सड़कों की लम्बाई केवल तीन लाख मील के लगभग है जिसमें से पक्की सड़कें कुल ६५,००० मील लम्बी हैं। मोटर, इत्यादि कुल ८५,००० मील लम्बी सड़कों पर चल सकती हैं। अनेकों गाँव ऐसे हैं जिनमें आने-जाने का कोई अच्छा साधन नहीं है। बरसात के दिनों में तो वे अगम्य हो जाते हैं। यहाँ की नहरें अधिकतर सिंचाई ही के लिये हैं। उनको नाव चलने योग्य बनाया ही नहीं गया है। हवाई जहाज़ों के द्वारा माल लाने ले जाने का अभी तक तनिक भी प्रबंध नहीं है। अतः, यहाँ का देशान्तर्गत व्यापार बहुत पिछड़ा हुआ है।

भारतवर्ष के देशान्तर्गत व्यापार के सम्बन्ध के विश्वसनीय अंक भी प्राप्त नहीं हैं। प्रत्येक प्रान्त अथवा स्टेट के अन्दर जो व्यापार होता है उसके कोई अंक हैं ही नहीं। सारे देश को २२ टुकड़ों में विभाजित करके उनके बीच के व्यापार के अंक अवश्य हैं, और उनसे यह पता भी चलता है कि उस व्यापार का कुल मूल्य दो हज़ार करोड़ रुपये वार्षिक का है। कहना न होगा कि यह रकम यहाँ के विदेशी व्यापार के मूल्य की कई गुना है। किन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है। देश की आबादी देखते हुये यह बहुत ही कम है। रेलों और नावों से जो चीज़ें इधर-उधर आती-जाती हैं, उनमें से भी कुछ के अङ्क प्राप्त हैं, किन्तु वह सब चीज़ों के न होने के कारण अधूरे ही हैं। इसके अलावा यहाँ के देशान्तर्गत व्यापार का कुछ अन्दाज़ हमको रेलों के महसूल से और मालगाड़ियों की लदने की संख्या से भी चल सकता है। जो कुछ हो इन संपूर्ण आँकड़ों को प्राप्त करने की अच्छी व्यवस्था शीघ्र की जानी चाहिये।

हाँ, भविष्य में हमारे देशी व्यापार के उन्नति की बहुत आशायें हैं। देश के सामने औद्योगिक उन्नति की नई-नई योजनायें हैं।

अपनी सरकार यहाँ के व्यापार को प्रत्साहन देना चाहती है। पहिले तो भारतवर्ष को अपना विदेशी व्यापार ऐसा रखने की आवश्यकता थी कि उससे उसको कम से कम पचास करोड़ रुपये वार्षिक की बचत हो। बात यह थी कि यह रकम हिन्दुस्तान को इङ्गलैण्ड को उसके क़र्ज़ के ब्याज के सम्बन्ध में तथा उसके जो लोग यहाँ पर काम करते हैं उनके वेतन, इत्यादि के सम्बन्ध में हर वर्ष देनी पड़ती थी। किन्तु अब ऐसी बात नहीं है। हमने इङ्गलैण्ड का क़रीब-क़रीब सब क़र्ज़ चुका दिया है। इसके विपरीत हमारा ही १,७०० करोड़ रुपया उसके ऊपर चाहिए। इसके अतिरिक्त अब इण्डियन सिविल सर्विस भी बन्द हो गई है। अतः, इन सबका व्यय घट गया है। इन सब कारणों से हम ऐसी आशा कर सकते हैं कि भविष्य में हमारा ध्यान यहाँ के देशान्तर्गत व्यापार की उन्नति के ऊपर काफ़ी रहेगा और इससे उसकी उन्नति भी होगी।

(२) उत्पादन और व्यापार की दृष्टि से यहाँ के मुख्य स्थान

अब हमको उत्पादन और व्यापार की दृष्टि से भारतवर्ष के मुख्य स्थानों को देखना चाहिये। इसके लिये सबसे पहिले तो हम खाद्य पदार्थों और अन्य पदार्थों को लेंगे, फिर हाथ से बने हुये माल को और अन्त में मशीनों से बने हुये माल को लेंगे।

खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति के स्थान—यहाँ पर जितना कुल क्षेत्रफल बोया जाता है उसके ८० प्रतिशत में खाद्य-पदार्थ और २० प्रतिशत में अन्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। खाद्य पदार्थ में प्रथम स्थान चावल का है। उसकी उत्पत्ति सबसे अधिक बङ्गाल में होती है और उसके बाद अन्य प्रान्त क्रमशः बिहार और उड़ीसा, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बरार तथा आसाम हैं। भारतवर्ष में

चावल का इतना ख़र्च है कि वह इतना होने पर भी बाहर से आता है। किन्तु यहाँ के चावल की उत्पत्ति बढ़ाई जा सकती है और अनावृष्टि, बाढ़ तथा बीमारियों से इसकी जो क्षति होती है उसको रोका जा सकता है। चावल के बाद दूसरी खाद्य-सामग्री जो यहाँ पर उत्पन्न होती है वह गेहूँ है। गेहूँ की उत्पत्ति के हिसाब से संसार में भारतवर्ष का स्थान चौथा है। ससार में सबसे अधिक गेहूँ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में, और फिर रूस में और तीसरे कनाडा में उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में गेहूँ की उत्पत्ति के विचार से पंजाब सर्वप्रथम है। इसके बाद संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, और बरार, बम्बई और सिंध तथा बिहार और उड़ीसा एक के बाद दूसरे क्रमशः हैं। इधर कुछ दिन पहिले तक भारतवर्ष से गेहूँ का निर्यात (Export) होता था। किन्तु अब ऐसा नहीं है। आजकल तो इसका आयात (Import) हो रहा है। गेहूँ की उत्पत्ति भी इस देश में बढ़ाई जा सकती है। गेहूँ के बाद ज्वार और बजरे का स्थान है। यह मनुष्य और जानवर दोनों के खाद्य-पदार्थ हैं। इनकी उत्पत्ति के स्थान क्रमशः बम्बई और सिन्ध, मद्रास, मध्य प्रान्त और बरार, संयुक्त प्रान्त और पंजाब हैं। भारतवर्ष में अनेकों प्रकार की दालें होती हैं। यह यहाँ के लोगों का मुख्य खाद्य-पदार्थ है। इसकी उत्पत्ति के मुख्य स्थान क्रमशः संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बम्बई और मध्य प्रान्त हैं। दालों में मुख्य चना है। मक्का यहाँ के ग़रीबों का खाद्य-पदार्थ है। यह अधिकतर संयुक्त प्रान्त और पंजाब में होता है। गन्ने की बुआई भारतवर्ष में सबसे बड़े क्षेत्रफल में होती है। इधर कुछ दिनों के अन्दर संरक्षण की नीति के कारण यहाँ की चीनी की उत्पत्ति को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। इसीके साथ-साथ यहाँ पर गन्ने की उपज का क्षेत्रफल २५ लाख एकड़ भूमि के स्थान पर ४० लाख एकड़ भूमि हो गया है। गन्ना क्रमशः संयुक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब और बंगाल में उत्पन्न होता है।

अन्य पदार्थों की उत्पत्ति के स्थान—अन्य पदार्थों में सबसे प्रथम स्थान चाय का है। इसकी उत्पत्ति के मुख्य स्थान क्रमशः आसाम, बङ्गाल, मद्रास, पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त और ट्रावन्कोर हैं। भारतवर्ष में चाय अधिकांश में निर्यात के लिये उत्पन्न की जाती है। किन्तु इसका ख़र्च यहाँ भी बढ़ रहा है। कहवा अब यहाँ पहिले से बहुत कम होता है। इसका स्थान अधिकतर चाय ने ले लिया है। इसकी उत्पत्ति के स्थान क्रमशः मैसूर मद्रास, कुर्ग, कोचीन और ट्रावन्कोर हैं। यहाँ पर तेलहन बहुत पैदा होता है। यह एक काफ़ी बड़ी मात्रा में विदेशों को भेज दिया जाता है। इससे यदि देश में ही तेल निकाल लिया जाय तो बड़ा लाभ हो। इसकी खली यहाँ के खेतों में काम आ जाय और यहाँ के बहुत से लोग कारबार में लग जायँ। देश का रुपया बाहर न जाय। तेलहन यहाँ पर सभी स्थानो में उत्पन्न होता है। रुई की उत्पत्ति के हिसाब से भी भारतवर्ष का एक बड़ा ऊँचा स्थान है। दक्षिण की काली मिट्टी इसके उपज के लिये सर्वोत्तम है। अतः, यह सबसे अधिक बम्बई अहाते में ही उत्पन्न होती है। इसकी उत्पत्ति के अन्य स्थान क्रमशः मध्यप्रान्त और बरार, पञ्जाब तथा मद्रास हैं। रुई भारतवर्ष के निर्यात की एक मुख्य चीज़ है। इसकी उन्नति के लिये भी बहुत प्रयत्न किया गया है। अब इसके सम्बन्ध में जो विशेष आवश्यकता है वह यह है कि पञ्जाब और सिन्ध में लम्बे रेशे की रुई यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न की जाय। बात यह है कि रुई का रेशा जितना लम्बा होता है, उतना ही अच्छा सूत उससे निकलता है। जूट की उत्पत्ति का तो भारतवर्ष को एकाधिकार है और उसमें भी बङ्गाल में उसकी उत्पत्ति का ९० प्रतिशत पैदा किया जाता है। बङ्गाल के अलावा यह बिहार उड़ीसा और आसाम में भी पैदा होता है। जूट भी यहाँ के निर्यात की एक मुख्य वस्तु है। जूट की उत्पत्ति भारतवर्ष के लिये बहुत अच्छी नहीं है। इसने खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति का स्थान ले लिया

है। यह सचमुच बड़े शोक का विषय है। नील की उत्पत्ति अब यहाँ पर पहिले से बहुत कम होती है। बात यह है कि जर्मनी में कृत्रिम रंगों के बन जाने से इसका निर्यात बहुत कम हो गया है। नील क्रमशः मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार, पञ्जाब और बङ्गाल में उत्पन्न होता है। अफ़ीम यहाँ संयुक्त प्रान्त में उत्पन्न होती है। पहिले इसका भी एक बहुत बड़ा निर्यात होता था किन्तु अब यह केवल सरकारी माँग के ही अनुसार भेजी जाती है। अतः, इससे भारतवर्ष को एक बहुत बड़ा त्याग करना पड़ा है। तम्बाकू यहाँ पर क्रमशः मद्रास, बंगाल, उड़ीसा, बम्बई, संयुक्त प्रान्त और पंजाब में उत्पन्न होती है तथा वहीं पर खर्च हो जाती है। जितनी तम्बाकू भारतवर्ष से बाहर जाती है प्रायः उतनी ही बनी हुई तम्बाकू यहाँ पर बाहर से आती है। सिन्कोना भी यहाँ पर दारजिलिंग और नीलगिरि में उत्पन्न होता है। इससे कुनैन बनती है। अतः, इसकी उत्पत्ति बढ़ाने का भी यहाँ पर बहुत प्रयत्न हो रहा है। रबड़ यहाँ पर मद्रास और कुर्ग, मैसूर स्टेट में पैदा होता है। इसकी उत्पत्ति भी बढ़ाने का यहाँ पर प्रयत्न हो रहा है।

उपरोक्त वस्तुओं के अलावा यहाँ पर बहुत सी ऐसी वस्तुयें हैं जो जंगलों और खदानों से उत्पन्न होती हैं। कोयले की उत्पत्ति में भारतवर्ष का स्थान ब्रिटिश साम्राज्य में दूसरा और संसार भर में नवाँ है, किन्तु यहाँ का कोयला बहुत अच्छा नहीं होता। यहाँ पर जो भी कोयला होता है वह अधिकांश में झरिया, रानीगञ्ज, बोकारो, गिरीडीह, करनपुरा, पैंच की घाटी और मध्य प्रांत, पंजाब, हैदराबाद राज्य तथा आसाम की खदानों से मिलता है। हमारे यहाँ कोयला बाहर से भी आता है। बम्बई में अफ्रीका का कोयला यहाँ के कोयले से अधिक सस्ता पड़ता है। पेट्रोल यहाँ पर केवल आसाम से और पंजाब के अटक ज़िले से प्राप्त होता है। सोना सबसे अधिक मैसूर राज्य में कोलार की खदान से निकलता है। मद्रास में अनंतपुर में और

आसाम, उड़ीसा, बिहार और मध्यप्रांत की नदियों की रेत से थोड़ा सोना मिलता है। लोहे की उपज में भी भारतवर्ष का स्थान कोयले की उपज की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर दूसरा और संसार भर में नवाँ है। इसकी खदानें यहाँ पर अधिकांश में सिन्धभूमि, बिहार और क्योझर तथा मयूरभज की रियासतों में हैं। यहाँ पर अभ्रक भी बहुत पैदा होता है किन्तु यह अधिकतर बाहर भेज दिया जाता है। इसकी खानें यहाँ पर अधिकांश में बिहार और मद्रास के नैलोर ज़िले में है। जस्ता यहाँ पर बौडविन मे, ताँबा बिहार के घटसिला में और नमक पञ्जाब में पैदा होता है। यहाँ पर नमक साँभर की झील से और समुद्र से भी निकाला जाता है। यहाँ के जंगलों में भी अनेको प्रकार की लाभदायक वस्तुयें पाई जाती हैं। इनमें से अनेकों प्रकार की लकड़ियाँ—साल, चीड़, देवदार, शीशम सेमल, इत्यादि, ईंधन, बाँस, अनेकों प्रकार की घास; तारपीन, बीडी के लिये पत्ते, कत्था और लाह, इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं।

उपरोक्त वस्तुओं के व्यापार के स्थान—उपरोक्त वस्तुओं के व्यापार के स्थान विशेषतः वहीं हैं जहाँ पर वह उत्पन्न होते हैं। हर प्रान्त में कुछ छोटी और बडी मण्डियाँ हैं। अतः, उनके आसपास जितनी वस्तुयें उत्पन्न होती हैं वह सब उन्हीं में आती हैं। कहने का अर्थ यह है कि एक मण्डी किसी विशेष वस्तु के व्यापार के लिये विशेष महत्व की अवश्य हो सकती है किन्तु वहाँ पर उसके आसपास में उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुयें आती हैं। यहाँ पर प्रत्येक प्रान्त की मुख्य-मुख्य मण्डियो के नाम उनमे आने वाली खास-खास वस्तुओं के साथ दिये जा रहे हैं।

बंगाल—बंगाल की मुख्य मण्डियाँ कलकत्ता, ढाका फ़रीदपुर, मिदनापुर, मेमनसिंह, रंगपुर, माल्दा, मुर्शिदाबाद, नदिया, राजशाही, पबना, जैसोर, दिनाजपुर, खुलना, इत्यादि हैं। इनमे से ढाका,

फ़रीदपुर, और मेमनसिंह चावल, जौ, और गन्ने लिये; मिदनापुर चावल के लिये; रंगपुर और दिनाजपुर गन्ने के लिये; मुर्शिदाबाद नदिया और राजशाही गेहूँ, चना और चावल के लिये; माल्दा गेहूँ और जौ के लिये; जैसोर तेलहन के लिये और खुलना नारियल के लिये प्रसिद्ध हैं।

बम्बई—बम्बई प्रान्त की मुख्य मण्डियाँ बंबई, अहमदाबाद, बीजापुर, सतारा, रत्नागिरी, धारवार, पूना, नासिक, शोलापुर, भड़ौच और कैरा हैं। इनमें से अहमदनगर गेहूँ, चावल, तेलहन, इत्यादि के लिये; सतारा चना और दाल के लिये; रत्नागिरी चावल के लिये; धारवार गेहूँ और दाल के लिये; नासिक गेहूँ के लिये; नासिक और शोलापुर तेलहन के लिये; भड़ौच रुई के लिये और कैरा तम्बाकू के लिये प्रसिद्ध हैं।

सयुक्त प्रान्त—सयुक्त प्रान्त की मुख्य मण्डियाँ लखनऊ, मेरठ, हापुड़, चन्दौसी, हाथरस, इटावा, खुर्जा, आगरा, कानपुर, जौनपुर, इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर और बनारस इत्यादि हैं। इनमें से लगभग सभी गेहूँ, चना, तेलहन और दालों के लिये प्रसिद्ध हैं। मेरठ विशेष-कर गुड के लिये; इटावा और खुर्जा घी के लिये तथा हापुड़ और चन्दौसी गेहूँ के लिये प्रसिद्ध हैं।

पंजाब—पंजाब की मुख्य मण्डियाँ लाहौर, फ़ीरोज़पुर, मुल्तान, लायलपुर, शाहपुर, अटक, गुजरात, मौन्टगोमरी, रोहतक, हिसार, करनाल और कांगड़ा, इत्यादि हैं। इनमें से फ़ीरोज़पुर, शाहपुर, अटक और गुजरात गेहूँ के लिये; मुलतान और लायलपुर गेहूँ और रुई के लिये; मौन्टगोमरी गेहूँ, तेलहन और रुई के लिये; रोहतक और हिसार ज्वार, बाजरा और चना के लिये; करनाल चना के लिये, और कांगड़ा तेलहन के लिये प्रसिद्ध हैं।

मद्रास—मद्रास की मुख्य मण्डियाँ ताञ्जोर, मलाबार, बेलारी, कुरनूल, कोयमबटूर, बैलोर, विज़गापटम और आरकट, इत्यादि हैं।

इनमें से ताञ्जोर में चावल और नारियल; मलाबार में चावल और तेलहन; बेलारी में तेलहन और दाल; कूरनूल में तेलहन; चना, दाल, सुपारी, इत्यादि; कोयमवटूर में तेलहन और मक्का; नैलोर में तेलहन; विज़गापटम में दाल, तेलहन, सुपारी, और तम्बाकू और आरकट में सुपारी का व्यापार होता है।

बिहार—बिहार की मुख्य मण्डियाँ मुज़फ्फ़रपुर, भागलपुर, राँची, शाहाबाद, मुंगेर, गया, पटना, चम्पारन, सारन, पुर्निया और दरभङ्गा हैं। इनमे से मुज़फ्फ़रपुर में चावल, गेहूँ, जौ, मक्का, गन्ना और तम्बाकू; भागलपुर में चावल और तेलहन; राँची में चावल और रुई; शाहाबाद मे गेहूँ, चना, दाल और तेलहन; मुंगेर में गेहूँ, मक्का, चना और दाल; गया और पटना में गन्ना और चावल; चम्पारन और सारन में जौ, मक्का, गन्ना और रुई; पुर्निया में तेलहन, जूट और तम्बाकू तथा दरभङ्गा में तेलहन का व्यापार होता है।

मध्य प्रान्त और बरार—मध्य प्रान्त और बरार में अकोला, अकट, लालपुर, बालापुर, पौनी, आमगाँव, रामकोना, नरसिंहपुर, गाडरवारा और रायपुर, इत्यादि में अच्छी मण्डियाँ हैं। इनमें से अकोला, अकट, लालगाँव और बालापुर इत्यादि तो विशेष तौर पर रुई के लिये और पौनी, आमगाँव, रामकोना, नरसिंहपुर, गाडरवारा और रायपुर, इत्यादि चावल, गेहूँ, चना और दाल इत्यादि के लिये प्रसिद्ध हैं। इन मण्डियों में जगली वस्तुयें भी बहुत आती हैं।

आसाम—आसाम की मुख्य मण्डियाँ कामरूप, सिलहट, सिबसागर, गोआलपारा, लखीमपुर और नौगाँव हैं। इनमें से काम रूप में दाल, तेलहन, गन्ना, जूट और तम्बाकू; सिलहट में चावल, तेलहन और चाय; सिबसागर मे चावल, दाल, तेलहन, गन्ना और

तम्बाकू, और गोआलपारा, लखीमपुर तथा नौ गाँव में चावल, दाल, तेलहन, और चाय इत्यादि का व्यापार होता है।

अन्य प्रान्त और स्टेट—अन्य प्रान्तों और स्टेटों में भी मण्डियाँ हैं। दिल्ली स्वयम् एक बड़ी मंडी है। सिन्ध में हैदराबाद और कराची बड़ी मंडियाँ हैं। उड़ीसा में कटक की मंडी बहुत बड़ी है। स्टेटों की अपनी-अपनी मंडियाँ हैं।

हाथ से बने हुये माल की उत्पत्ति और व्यापार के स्थान—मशीनों के होते हुये भी हाथ की कारीगरी चलती रहती है। इसमें निरीक्षण की बड़ी सुविधा रहती है। बात यह है कि सारा काम मालिक की स्वयम् की आँखों के सामने होता है। अतः, इसमें माल की और मज़दूरी की व्यर्थ में ख़राबी नहीं होती है और न मशीन और औज़ार तनिक भी बुरी तरह से प्रयोग में लाये जा सकते हैं। इसमें आफ़िस, इत्यादि का भी बहुत सा ख़र्च बच जाता है। इसके अतिरिक्त छोटे परिमाण में काम करने वाले कारीगर अपने ग्राहकों की इच्छाओं को भली भाँति पूरी कर सकते हैं। यदि वह किसी चीज़ में तनिक-सा उलट-फेर चाहते हैं तो वह आसानी से किया जा सकता है। फिर अच्छी कारीगरी की चीज़ें तो हाथ से ही बन सकती हैं। इसके अलावा आजकल के समय में जब बमों की लड़ाई में बड़े-बड़े कारख़ाने पल भर में समाप्त हो जाते हैं ये छोटी-छोटी कारीगरियाँ तो बराबर अपना काम करती जाती हैं। वास्तव में हाथ की कारीगरी का जितना महत्व इस युद्ध में महसूस हुआ है, उतना कभी भी नहीं महसूस हुआ था। यदि चीन इतने दिनों तक जापान की बमबाज़ी को सहन करता रहा तो वह केवल इसीलिये कि उसकी छोटी-छोटी कारीगरियाँ थीं जो देश भर में बिखरी हुई होने के कारण बमों से समाप्त नहीं हो सकीं और वहाँ के लोगों की आवश्यकताओं को पूरी करती रहीं। अतः, भारतवर्ष में आज भी इनका अपना स्थान है। इसमें संदेह नहीं कि मशीनों की उत्पत्ति के कारण बहुत-सी कारी-

गरियाँ समाप्त हो गई हैं, किन्तु बहुत-सी ऐसी हैं जो अब भी चल रही हैं।

भारतवर्ष की आज की हाथ की कारीगरियों में कपड़े की कारीगरी का सर्वप्रथम स्थान है। महात्मा गान्धी के चर्खे ने इसको पुनर्जीवन प्रदान कर दिया है। देश में ऐसा कोई भी भाग नहीं है जहाँ कपड़े का काम थोड़ा बहुत हाथ से न होता हो। कपड़ा बुनने के अकेले काम में पचास लाख आदमी लगे हुये हैं। यह संख्या उन लोगों की सख्या के बराबर है जो सब चीज़ों के बड़े-बड़े कारख़ानों में काम कर रहे हैं। सारे भारतवर्ष मे जितना कपड़ा बनता है उसका एक तिहाई हाथ से बनता है अखिल भारतवर्षीय चर्खा सघ से करीब-करीब तीन लाख जुलाहों का सम्बन्ध है। बिहार के एक केन्द्र मे सवा लाख रुपये का माल तैयार होता है। केवल पंजाब, बिहार और उडीसा में मिला कर पाँच करोड़ रुपये का वार्षिक कपड़ा बनता है। बम्बई प्रान्त मे कपडा बुनने के एक हज़ार केन्द्र हैं, और उनमें सवा लाख आदमी अस्सी हज़ार कर्घों पर काम करते हैं। कर्घे का सबसे बड़ा ग्रामीण केन्द्र ढाका ज़िले में है जहाँ पर साठ हज़ार व्यक्ति बीस हज़ार कर्घों पर काम करते हैं। समय-समय पर हमारी पुरानी सरकार भी कपड़े की इस कारीगरी को थोड़ा-बहुत प्रोत्साहन देती रही थी। किन्तु हमारी अपनी सरकार के स्थापित हो जाने से भविष्य में इसको और प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है।

यहाँ के रेशमी कपडे की कारीगरी के मुख्य स्थान काश्मीर, मैसूर और बगाल में स्थित हैं। श्रीनगर, मुर्शिदाबाद, ताञ्जोर, बनारस, सूरत, अमृतसर और मदुरा इसके लिये विशेष तौर पर प्रसिद्ध हैं। किन्तु यहाँ की यह कारीगरी विदेशी रेशम के ऊपर निर्भर है। बात यह है कि भारतवर्ष में जितना रेशम उत्पन्न होता है वह सब बाहर भेज दिया जाता है और फिर वहाँ से उसकी

लच्छियाँ बन कर आती हैं। अतः, यह काम भी यहीं पर पूरा होना चाहिये। इससे अनेकों व्यक्तियों को काम मिल जायगा।

ऊनी कपड़ों का काम भी यहाँ थोड़ा बहुत होता है। काश्मीर के दुशाले सब जगह प्रसिद्ध हैं। मुल्तान, बीकानेर, मिर्ज़ापुर, एलोर और आगरे में कालीनों का काम होता है। कम्बलों का काम भी यहाँ पर कई स्थानो में होता है। इस युद्ध में यहाँ के कम्बलों की विशेष तौर पर माँग थी। अतः, उसका भविष्य बहुत अच्छा है।

हाथ से बने हुये कागज़ों का काम भी यहाँ पर विशेष तौर पर होता है। काश्मीर, संयुक्त प्रान्त, हैदराबाद, मध्य प्रान्त, बम्बई और मद्रास इसके लिये काफ़ी प्रसिद्ध हैं। बगाल, बिहार और उड़ीसा में भी इधर इसका काम बढ़ाने का बड़ा प्रयत्न हो रहा है।

उपरोक्त वस्तुओं के अलावा ऐसी अनेकों वस्तुयें हैं जो क़रीब-क़रीब सभी जगह हाथ से बनाई जाती हैं। जौनपुर, इलाहाबाद और बनारस के कुछ गाँवों में बहुत अच्छी टोकरियाँ बनती हैं। इसी तरह से मलाबार तथा दक्षिणी और पूर्वी बंगाल में मूँज की चटाई इत्यादि बहुत बनती हैं। बदायूँ, मेरठ, मिर्ज़ापुर, इत्यादि (संयुक्त प्रान्त) बोलपुर (बंगाल), सिलहट (आसाम); चेनापटना (मैसूर) और कोंडापल्ली (मद्रास) में खिलौने; अमृतसर, मिर्ज़ापुर और बनारस में दरी और गलीचे; ढाका में शंख की चूड़ियाँ और घोंघे के बटन; चुनार (संयुक्त प्रान्त) और नदिया (बगाल) में मिट्टी के बर्तन, इत्यादि; फ़ीरोज़ाबाद (संयुक्त प्रान्त) में चूड़ियाँ बहुतायत से बनती हैं।

मशीनों से बने हुये माल की उत्पत्ति और व्यापार के स्थान—भारतवर्ष में मशीनों से सबसे पहिले कपड़ा बनना आरम्भ हुआ था। वैसे तो इसकी सर्वप्रथम मिल कलकत्ते में सन् १८१८ में खुली थी, किन्तु इसकी विशेष उन्नति बम्बई में सन् १८५४ के बाद

ही हुई। हाँ, अमेरिका के घरेलू युद्ध के कारण १८६० के बाद कुछ दिनों के लिये इसको थोड़ा-सा धक्का लगा, किन्तु इसके बाद यह बराबर उन्नति करती रही। खास बम्बई के अलावा इसकी मिलें उस प्रान्त मे अहमदाबाद और शोलापुर में भी खुलीं। अन्य प्रान्तों में इसके कारखाने मध्यप्रान्त में नागपुर में; संयुक्त प्रान्त में कानपुर मे; दिल्ली में; मद्रास में; कलकत्ते में और अनेकों जगह हैं। भारतवर्ष की कपड़े की क़रीब-क़रीब पूरी माँग यहाँ की मिलो से हो सकती है। किन्तु अभी इसकी उन्नति की बहुत आवश्यकता है। अन्य मशीनों के साथ-साथ यहाँ पर कपड़े की मशीनो का भी बनना बहुत आवश्यक है। कपड़े के व्यापार की बड़ी-बड़ी मण्डियाँ कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर और दिल्ली, इत्यादि मे हैं।

कपडे की मिलों के अलावा यहाँ पर जूट की भी बहुत-सी मिलें हैं। किन्तु ये अधिकतर कलकत्ते के पास हुगली नदी के किनारे-किनारे स्थित हैं। जूट का अधिकांश माल विदेशों को चला जाता है। शेष यहीं पर ख़र्च होता है।

लोहे और इस्पात के कारख़ानों को स्थापित करने के लिये आरम्भ मे यहाँ पर बहुत से प्रयत्न किये गये। किन्तु वे सभी असफल रहे। अन्त मे आजकल की बंगाल आइरन कम्पनी बराकर आइरन कम्पनी के नाम से १८७५ मे कुलथी मे स्थापित की गई। इसने १९०५ में इस्पात बनाने का भी प्रयत्न किया किन्तु उसमें यह असफल रही। लोहे का सफल कारख़ाना हमारे देश में वास्तव मे सन् १९०७ में जमशेदजी ताता के द्वारा खोला गया। यह कारख़ाना देश का सबसे बड़ा कारख़ाना है। १९०८ मे आसन्सोल के पास हीरापुर मे इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी, १९२२ मे भद्रावती मे मैसूर आइरन वर्क्स और १९३७ मे बंगाल का स्टील कारपोरेशन खुला। गत् युद्ध से भारतवर्ष के लोहे और इस्पात के काम को एक बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

भारतवर्ष में कागज़ बनाने की भी कई मिलें हैं। बाली की रॉयल पेपर मिल १८५७ में खुली थी। इसके बाद अन्य मिलें स्थापित हुईं :—अपर इण्डिया कूपर मिल, लखनऊ १८७६ में, इण्डियन पेपर पल्प कम्पनी १६१८ में, कर्नाटक पेपर मिल्स, राजमहिन्द्री १६२७ में, श्री गोपाल मिल जगाधरी में, इत्यादि, इत्यादि। इस समय कागज़ की सोलह मिलें काम कर रही हैं। इन मिलों का यहाँ पर बहुत अच्छा भविष्य है।

भारतवर्ष में गुड़ और शक्कर तो बहुत दिनो से बनता आ रहा है। किन्तु चीनी का मिलें यहाँ पर अभी हाल ही मे स्थापित हुई हैं। सन् १६३१ में यहाँ के चीनी के कारबार को १५ वर्ष के लिये संरक्षण मिला था। अतः, इस बीच मे इसकी बहुत-सी मिलें खुली हैं। आजकल यहाँ पर इनको संख्या १५० के लगभग है। ये मिलें यहाँ की चीनी को माँग को बहुत अच्छी तरह से पूरी कर सकती हैं। चीनी के कारख़ाने यहाँ पर अधिकांश में बिहार और संयुक्त प्रान्त में स्थित हैं।

वैसे तो चमड़े का काम भारतवर्ष में सभी जगह फैला हुआ है; किन्तु इसको हम दो हिस्सों मे बाँट सकते है। एक तो यहाँ का देशी ढग का कारबार और दूसरा नये वैज्ञानिक तरीके का कारबार। मद्रास और बम्बई मे चमडा कमाने की बहुत-सी मिलें हैं। किन्तु उनका कमाया हुआ चमडा अधिकतर बाहर भेज दिया जाता है। पञ्जाब में भी चमडा कमाने की कुछ मिले हैं। यहाँ के चमार लोग या तो कमाया हुआ चमडा ख़रीद कर अथवा खुद चमड़े को कमा कर जूते, इत्यादि बनाते हैं। वैज्ञानिक ढङ्ग से काम करने वाले कारख़ानो में कानपुर की सरकारी फैक्टरी और एलेन ऐण्ड कूपर की फैक्टरी बहुत प्रसिद्ध हैं। जूतों का व्यापार प्रायः सभी जगह है। मद्रास, कानपुर, आगरा, इत्यादि इसके लिये विशेष तौर पर प्रसिद्ध हैं।

तेलहन तो इस देश मे बहुत पैदा होता है किन्तु इसका एक बहुत बडा भाग यहाँ से विदेशों को भेज दिया जाता है। जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है ऐसा नहीं होना चाहिये। यहाँ की तेलहन की सारी उपज से यहीं पर तेल निकाल लेना चाहिये। जो हो, अब भी बहुत-सा तेल तो कोल्हू से निकाला जाता है और बहुत-सा मशीनों से। यह काम सारे देश मे फैला हुआ है। यहाँ पर लगभग पाँच सौ के बड़ी मशीनें हैं और एक हज़ार के छोटी मशीने हैं।

यहाँ पर शीशे का काम भी देशी ढङ्ग से और वैज्ञानिक ढङ्ग से होता है। शीशे के बड़े-बड़े कारख़ानों मे नैनी का इलाहाबाद ग्लास वर्क्स; बहजोई का यू० पी० ग्लास वर्क्स; बम्बई अहाते के औन्ध स्टेट का ओगाले ग्लास वर्क्स और पूना के पास तालेगाँव का पैसा फण्ड ग्लास वर्क्स हैं।

सीमेंट की उत्पत्ति भी यहाँ की माँग के लिये यथेष्ट है। इस समय यहाँ पर सीमेंट बनाने वाले कारख़ानों के दो ग्रूप है एक असोसिएटेड कम्पनी का और दूसरे डालमियाँ का। दियासलाई बनाने के कारखाने यहाँ पर अभी हाल ही मे स्थापित हुये हैं। सन् १९२२ तक यहाँ पर केवल एक दियासलाई का कारख़ाना था। यह सन् १८९५ मे अहमदाबाद मे गुजरात इस्लाम मैच फैक्टरी के नाम से स्थापित किया गया था। इसके बाद सन् १९२८ तक मे यहाँ पर २७ कारख़ाने हो गये और सन् १९३८ मे इनकी सख्या ८८ हो गई थी।

उपरोक्त वस्तुओं के अलावा यहाँ पर अन्य चीजों के कारख़ाने भी हैं जैसे चाय के, तम्बाकू के, रेशम के, ऊन के, नमक के, साबुन के, इत्यादि, इत्यादि। ये देश के उन भागों मे है जिनमे इनके लिये कच्चा माल उत्पन्न होता है। इनके अलावा यहाँ पर आटे की मिलें, चावल की मिलें, इत्यादि सभी जगह हैं।

(३) व्यापारिक मध्यस्थ और संस्थायें

हमारे किसानों के द्वारा उत्पन्न हुई वस्तुओं के व्यापार में अनेकों मध्यस्थ हैं जिसका फल यह होता है कि हमारे किसान और हम अर्थात् उन वस्तुओं के उपभोक्ता दोनों ही की हानि होती है। एक तरफ़ तो उनकी क़ीमत बढ़ जाने से हमारा नुक़सान होता है और दूसरी तरफ़ किसान को उसकी उत्पन्न की हुई वस्तुओं की पूरी कीमत नहीं मिलती है। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि ये मध्यस्थ कोई काम नहीं करते हैं और मुफ्त का पैसा लेते हैं। नहीं, ये काम करते हैं और अपनी मेहनत का पैसा लेते हैं। किन्तु बात यह है ये जो काम करते हैं उसका अधिकांश किसान स्वयम् कर सकता है। हाँ, इसके लिये सरकार को उसको कुछ सुविधायें देनी पड़ेंगी। अथवा किसान की अपनी सहकारी समितियाँ इस काम को कर सकती हैं। इससे न तो उन वस्तुओं का मूल्य ही इतना बढ़ेगा और न यही होगा कि उनकी कीमत का एक बड़ा भाग मध्यस्थ लोगों के हाथ मे पड़ जाय। फिर ये मध्यस्थ लोग अन्य उत्पत्ति के काम भी कर सकेंगे जिससे देश की उत्पत्ति बढ़ेगी।

किसान जब माल तैयार कर लेता है, अथवा उसके पहिले ही से कुछ मध्यस्थ लोगों की दृष्टि उस पर रहती है। व्यापारिक मण्डियो के अढ़तियें कभी कभी अपने गुमाश्ते गाँवो में भेज देते हैं; अथवा कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अपना रुपया है और माल ढोने के लिये अपने ऊँट, खच्चर तथा बैल हैं, इनको व्यापारी कहते हैं। अस्तु, ये गुमाश्ते और व्यापारी पहिले ही से किसान को रुपया देकर उसकी उपज को स्वयम् ले लेने का उससे वचन ले लेते हैं। यदि कोई किसान पहिले से रुपया नहीं लेता है तो भी माल के तैयार हो जाने पर तो ये लोग उससे माल ख़रीद ही लेते हैं। जो किसान इन गुमाश्तों अथवा व्यापारियों के चंगुल में नहीं फँसते हैं, वे अपने ही गाँव के

बनिये के चगुल में फँसे रहते हैं। वे उसीसे रुपया उधार लेते हैं और माल तैयार होने पर उसीके हाथ वह सब बेच देते हैं। यदि कोई किसान अपने गाँव के बनिये से रुपया उधार नहीं लेता है तो भी वह बनिये ही को अपनी उपज बेच देता है। अधिकतर जमींदार भी ऐसे हैं जो किसान की उपज स्वयम् ख़रीद लेना चाहते हैं। उनको उससे मालगुज़ारी प्राप्त करनी रहती है। कुछ लोग तो उसको रुपया भी उधार दिये रहते हैं। अतः, इनके स्थान पर वह उससे उसकी उपज ले लेते हैं। कुछ गाँवों मे किसानों की अपना सहकारी समितियाँ खुल गई हैं। अतः, कुछ किसान अपनी उपज इन समितियों को दे देते हैं। कहीं-कहीं पर व्यापारियों की अपनी संस्थाये हैं जा गाँवों में जा कर अथवा मण्डियों मे किसानों की उपज ख़रीद लेती हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि किसान अधिकतर अपनी उपज अपने गाँव ही मे बेच लेता है। इसके कई कारण हैं। एक तो उसके ऊपर कर्ज लदा रहता है। अतः, वह महाजनों के बोझ से लदा रहता है। दूसरे उसको रुपये की जल्दी होती है। तीसरे उसके पास मण्डियों तक अपनी उपज लाने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं होता। चौथे गाँवो से मण्डियों की सड़क इत्यादि अच्छी न होने से वह उन तक जाना भी नहीं चाहता। पाँचवें यदि वह मण्डी तक चला भी जाता है ता उसको अपढ़ होने के कारण वहाँ पर अनेको कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। इसके ये अर्थ नहीं हैं कि कोई भी किसान मण्डी तक नहीं जाता है। बहुत से जाते हैं। उनके ऊपर कर्ज नहीं हैं। उन्हें रुपयों को जल्दी नहीं है। उनके पास उनकी उपज का ले जाने के साधन हैं। वे काफ़ी चालाक भी हैं।

जब उपज मण्डियों में आ जाती है उसको उसकी क़िस्म के मुताबिक अलग-अलग करते हैं। यह रिवाज़ पहिले से अब अधिक चालू हो गया है। इससे न केवल चीज़ों मे समानता हो जाती है जिससे

उनका मूल्य बढ़ जाता है, बल्कि किसान को भी उनके बढ़े हुये मूल्य का एक भाग मिल जाता है। इधर बहुत-सी चीज़ों को उनकी किस्मों के अनुसार छाँटने के क़ानून सरकार ने बना दिये हैं, यद्यपि इनमें सुधार की अभी बहुत आवश्यकता है। बम्बई अहाते में जितनी रुई आती है सब रुई ओटने वाले कारख़ानों मे चली जाती है। वहाँ पर उसको उसकी क़िस्म के अनुसार अलग करते हैं, उसको दबाते हैं और तोल-तोल कर उसकी गाँठे बनाते हैं। सन् १६३७ के एक विधान के अनुसार सरकार ने कुछ चीज़ों को जैसे अण्डों की, घी की, तम्बाकू की, चावल की किस्मों को छाँटने के लिये केन्द्र बना रक्खे हैं। इनमें जो चीज़ें छाँटी जाती हैं उन पर एगमार्का (Agmark) डाल दिया जाता है। उत्तरी भारत की मण्डियों में चीजों को उनकी क़िस्म के अनुसार अलग-अलग करने का प्रयत्न हो रहा है।

व्यापार में चीज़ों को कुछ समय के लिये रखने का भी प्रबन्ध होना चाहिये। यह न केवल इसीलिये आवश्यक है कि उनकी उपज और उनके उपभोग के बीच में बहुत अधिक समय का अन्तर रहता है बल्कि इसलिये भी आवश्यक है कि वह सुरक्षित रहें और उनकी क़िस्म बिगड़ने न पावे अथवा और अधिक अच्छी हो जाय। उनका उचित मूल्य मिलने के लिये भी यह आवश्यक है। यदि यह रजिस्ट्री-शुदा गोदामों में रख दी जाती हैं तो इनके स्थान पर जो रसीदें मिलती हैं उनकी ज़मानत पर रुपया उधार मिल जाता है। किन्तु भारतवर्ष में ऐसे गोदाम नहीं के बराबर हैं। अतः, इनकी ज़मानत पर रुपया मिलने की सुविधा नहीं है। जो हो, यहाँ पर लोगों के निजू गोदाम हैं, कुछ कच्ची और पक्की खत्तियाँ भी हैं। इनमें माल विशेषकर कच्ची खत्तियों में ख़राब भी हो जाता है। गोदामों में छीजन होता है। इन गोदामों और खत्तियों में माल रखवाने के लिये कुछ दलाल भी हैं जिनके द्वारा इनका पता लग सकता है और भाड़ा तै हो जाता है।

उपज को मण्डी तक लाने में वहाँ रखने में और फिर अनेकों मध्यस्थों के बीच से ले जा कर उपभोक्ता तक पहुँचाने में बराबर रुपये की आवश्यकता पड़ती है। अतः, आजकल तो यह होता है कि बैङ्क अढ़तियों को रुपया उधार दे देते हैं और अढ़तिया कच्चे अढ़तिये को अथवा व्योपारी को अथवा गाँव के बनिये को स्वयम् अथवा कच्चे अढ़तिये के मार्फ़त रुपया पहुँचा देता है। वास्तव में यह चलन बहुत खराब है। इसमें कई मध्यस्थ आ जाते हैं। साथ ही इस तरह के उधार में साख पत्र (Credit Instruments) नहीं उत्पन्न होते हैं। अतः, इसकी अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि किसान अथवा व्यापारी गोदाम में रक्खे हुये माल की जमानत पर महाजन के ऊपर एक बिल अथवा हुण्डी कर ले और वह बिल अथवा हुण्डी बैंक से डिस्काउन्ट करा ली जाय। इससे महाजनो को यह लाभ होगा कि उनको इनका रुपया जब वह चाहेंगे बैङ्क से मिल जायगा और आजकल की तरह उस समय तक नहीं रुकना पड़ेगा जिस समय तक रुपया वापस नहीं हो जाता है। बैङ्कों को भी यह सुविधा होगी कि उन्हें रिज़र्व बैंक से रुपया प्राप्त हो सकेगा। आजकल जो लोग रुपया देते हैं उनमे से कुछ तो गाँवों मे ही रहते हैं और कुछ छोटी और बड़ी मण्डियों के रहने वाले होते हैं। गाँवों के रहने वालों में मुख्य तो बनिया है। उसके अलावा कुछ अन्य लोग होते हैं जो काम तो कुछ और करते हैं किन्तु किसानों को रुपया भी उधार देते हैं। कुछ गाँवों में ज़मादार अपने कारिन्दों के मार्फ़त रुपया बाँटते हैं। कहीं-कहीं पर व्योपारी लोग रुपया बाँटते हैं। छोटी और बड़ी मण्डियो में अढ़तिये होते हैं। ये अढ़तिये या तो स्वयम् माल ख़रीद लेते हैं अथवा उसको बनियों और व्यापारियों इत्यादि के मार्फ़त ख़रिदवा लेते हैं। इन अढ़तियों को सर्राफ़ों से अथवा बैङ्कों से रुपया उधार मिल जाता है। कुछ गाँवों में सहकारी समितियाँ हैं और कुछ मण्डियों में कुछ व्यापारिक संस्थायें हैं जो अपना बचा हुआ रुपया अढ़तियों को उधार दे देती हैं।

माल को उनके उत्पत्ति के स्थान से मण्डियों तक लाने के लिये एक तो ऊँट, खच्चर और अन्य लद्दू जानवर काम में लाये जाते हैं, दूसरे बैलगाड़ियाँ हैं, तीसरे कहीं-कहीं पर मोटर लारियाँ हैं, चौथे कहीं-कहीं पर विशेषकर बङ्गाल में नावें हैं और अन्तिम बड़ी-बड़ी जगहों में अर्थात् छोटी मण्डियों से बड़ी मंडियो तक ले जाने के लिये रेलें हैं।

माल के अढ़तिया के पास आ जाने के बाद उसको उपभोक्ता के पास पहुँचाने का प्रश्न होता है। इसके लिये थोक और खुदरा व्यापारी हैं। थोक व्यापारी माल को भर लेता है और खुदरा व्यापारी उससे धीरे-धीरे लेकर उसको उपभोक्ताओं के हाथ बेचता है।

कारीगरों के द्वारा बने हुये माल को बेचने के लिये भी कुछ मध्यस्थ होते हैं। अधिकतर तो ये सब माल जहाँ बनते हैं वहीं के कोठी वालों अथवा दूकानदारों के द्वारा ख़रीद लिये जाते हैं। किन्तु इनमें कुछ न कुछ ऐसा काम बाक़ी रहता है जिसे ये कोठीवाल और दूकानदार किसी दूसरे मध्यस्थ से पूरा कराते हैं। उदाहरण के लिये बनारस में जो साड़ियाँ और खिलौने बनते हैं उनमें उनको बनाने वाले स्वयम् पालिश नहीं करते हैं। अतः, जो कोठीवाल इनको ख़रीदते हैं वही इन पर पालिश करने वालो से पालिश करवाते हैं। पालिश हो जाने से इनकी क़ीमतें बहुत बढ़ जाती हैं। अतः, इसका एक बहुत बड़ा लाभ कोठीवाल और दूकानदार उठाते हैं। फिर ये लोग रुपया लगाकर माल रखते हैं। अतः, जब इनके पास थोक अथवा खुदरा व्यापारी आते हैं ये बड़ी क़ीमत लेते हैं। कारीगरों की यदि स्वयम् की सहकारी समितियाँ बन जायें तो यह सारा काम वे स्वयम् कर सकती हैं। अतः, उनसे कारीगरों का बड़ा लाभ हो सकता है।

कारख़ानों में जो माल बनता है, वह भी थोक व्यापारियों के हाथ बेच दिया जाता है। अधिकतर कारख़ाने अपनी सारी उपज एक

व्यापारी के हाथ बेच देते हैं। उससे उनका वार्षिक ठेका सा रहता है। बस यही व्यापारी उस माल को थोक दूकानदारों के हाथ बेचता है और थोक दूकानदार उसको फुटकर दूकानदारों के हाथ बेचते हैं।

जब माल एक व्यापारी के हाथ से दूसरे के हाथ में जाता है तब कहीं-कहीं पर यह काम दलालों के द्वारा होता है। अतः, किसी माल के व्यापार के सम्बन्ध में जितने मध्यस्थ होते हैं उतने ही दलाल भी होते हैं। इन सबकी दलाली होती है।

कुछ व्यापारियों की अपनी संस्थायें हैं, जैसे बम्बई व्यापार मण्डल (Bombay Chamber of Commerce), भारतीय व्यापारी मण्डल (Indian Merchants' Chamber), महाराष्ट्र व्यापार मण्डल (Maharashtra Chamber of Commerce), पूर्वीय भारतीय रुई संघ (East India Cotton Association) बम्बई मिल मालिक संघ (Bombay Mill-owners' Association), गल्ला व्यापारी संघ (Grain Merchants' Association), अहमदाबाद मिल मालिक संघ (Ahmedabad Mill-owners' Association), संयुक्त प्रान्त का व्यापारी संघ (United Provinces Chamber of Commerce) संयुक्त प्रान्त के व्यापारियों का मण्डल (Merchants Chambers of the United Provinces) इत्यादि। ये तो बड़ी-बड़ी संस्थायें हैं। इनको प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने के अधिकार भी हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त हर शहर में उस शहर के व्यापारियों की भी कुछ न कुछ संस्थायें अवश्य हैं। ये संस्थायें व्यापारिक प्रश्नों पर अपनी सम्मति देती हैं और साथ ही साथ अपने सदस्यों के लाभ की अनेकों बातें करती हैं। ये अपने यहाँ के बाज़ारों में ख़रीद-बिक्री के नियम बनाती हैं; और ऐसे ही अनेक काम करती हैं।

(४) खरीद-बिक्री सम्बन्धी नियम

प्रत्येक बाज़ार के और प्रत्येक व्यापार के ख़रीद-बिक्री सम्बन्धी अपने नियम हैं। इनमें से अधिकांश तो उनके चलन के अनुसार हैं। अतः, उनकी कहीं पर लिखा-पढ़ी नहीं है। किन्तु कहीं-कहीं पर जहाँ कुछ व्यापारिक संस्थायें हैं और उन्होंने इसकी आवश्यकता समझी है कुछ लिखित नियम भी बन गये हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार ने भी कुछ व्यापारों के लिये अपने नियम बना दिये हैं। इधर महायुद्ध के कारण तो भारतीय रक्षा-विधान के अन्तर्गत लगभग सभी व्यापारों के लिये अनेकों नियम बनाये गये थे। कुछ समय तक तो हर चीज़ की ख़रीद-बिक्री पर बहुत अधिक नियन्त्रण थे। किन्तु महायुद्ध की समाप्ति पर धीरे-धीरे अब यह भी समाप्त हो रहे हैं। कुछ आवश्यक वस्तुओं के व्यापारों को छोड़ कर शेष सभी व्यापारों पर के ये नियन्त्रण हटा लिये गये हैं और आशा है कि बाक़ी भी जल्दी ही हटा लिये जायँगे। अतः, हम यहाँ पर उन्हीं नियमों का अध्ययन करते हैं जो एक प्रकार से स्थाई हैं।

सन् १८९७ में पहिले-पहिल बरार रुई और गल्ला बाज़ार विधान पास हुआ जिसके अनुसार बरार में रुई और गल्ले के कई नियन्त्रित बाज़ार स्थापित किये गये। इन बाज़ारों का प्रबन्ध ऐसी कमेटियों के हाथ में रहता है जिनमें उसी क्षेत्र के रहने वाले लोगों में से कुछ लोग निर्वाचित कर लिये जाते हैं। इनके अढ़तियों की रजिस्ट्री होती है और बयों (तोलने वालों) और दलालों को लाइसैन्स प्राप्त करना पड़ता है। किसानों को उनके माल की जो क़ीमत मिलती है उसमें से अन्य बाज़ारों में जो बहुत-सी अनियमित कटौती हो जाती है वह इन बाज़ारों में नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर केवल नियत तौल ही काम में लाई जा सकती है। यदि कोई व्यापारी उपरोक्त नियमों में से किसी का उलंघन करता है तो उसको सज़ा मिलती है।

कृषि-सुधार कमीशन ने देश के अन्य प्रान्तों में भी ऐसे बाज़ारों को स्थापित करने की सिफ़ारिश की थी। अतः, बम्बई में इसी तरह का एक रुई बाज़ारों का विधान सन् १६२७ में पास किया गया। इसके बाद वहाँ पर सन् १६३० में बम्बई कृषि उपज बाज़ार विधान पास हुआ। हैदराबाद रियासत में सन् १६३० में, मद्रास प्रान्त में सन् १६३३ में, मध्य प्रान्त मे सन् १६३५ में, मैसूर रियासत में, उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त में और पंजाब में सन् १६३६ मे लगभग ऐसे ही विधान पास किये गये हैं।

कृषि-सुधार कमीशन ने ख़रीद-बिक्री के अनुभवी अफ़सरों की नियुक्ति तथा बाज़ारों की जाँच के लिये भी कुछ सिफ़ारिशें की थीं। किन्तु रुपये की कमी के कारण बहुत दिनों तक ऐसा नहीं हो सका। अन्त में कृषि अन्वेषण की इम्पीरियल काउन्सिल के लिये सन् १६३४ में कृषि की उपज की ख़रीद-बिक्री के एक सलाहकार की नियुक्ति की गई और उस वर्ष के प्रान्तीय आर्थिक सम्मेलन ने भारतीय उपज के विषय में विदेशों में विज्ञापन करने की, खास-खास चीज़ों के उनकी किस्मों के अनुसार छाँटने की, भरने की और इकट्ठा करने की और ऐसी चीजों के लिये विशेष बाज़ारों को स्थापित करने को जो जल्दी ही सड़ गल-जाती है, देश में और विदेश में उपभोक्ताओं को जो चीज़ें पसन्द हैं उनकी सूचना यहाँ के उत्पादकों को देने की, प्रत्येक चीज़ का उत्पादन उसकी माँग के अनुसार करने की, नियन्त्रित बाज़ारों के स्थापना की, सारे देश में एक-सी उन्नति करने के लिये बाज़ारो के जाँच करने की और वायदे के सौदो के, चीजों के सौदों के और नियन्त्रित गोदामों के स्थापना की सिफ़ारिशें कीं। अतः, सन् १६३६ में केन्द्रीय सरकार ने उपरोक्त सिफ़ारिश के अनुसार अपनी नीति निर्धारित की और उसको ख़रीद-बिक्री सम्बन्धी केन्द्रीय और प्रान्तीय कर्मचारियों को पूरा करने का आदेश दिया। केन्द्रीय कर्मचारियों में एक कृषि सम्बंधी ख़रीद-बिक्री का सलाहकार, तीन बड़े ख़रीद-बिक्री अफ़सर,

तीन साधारण अफ़सर, एक निरीक्षक और बारह सहायक अफ़सर हैं तथा प्रान्तों में एक बड़ा ख़रीद-बिक्री अफ़सर और उसके अन्तर्गत कई सहायक ख़रीद-बिक्री अफ़सर हैं।

इस नये संगठन ने काफ़ी काम किया है। यहाँ पर उसका संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है :—

(१) प्रथम तो इसने चावल, गेहूँ, तेलहन, सुपाड़ी, तम्बाकू, कहवा, फलों, दूध, अण्डों, जानवरों, चमड़ा, इत्यादि वस्तुओं के ख़रीद-बिक्री का निरीक्षण करके उसकी रिपोर्टें प्रकाशित करवाई हैं।

(२) उपरोक्त से इस बात का पता लगा कि इनकी ख़रीद-बिक्री में चीज़ों को उनकी क़िस्म के अनुसार ठीक-ठीक अलग-अलग नहीं रक्खा जाता है। अतः, इस कमी को दूर करने के लिये कृषि-सम्बन्धी उपज की किस्मो को ठीक करने के ध्येय से जो विधान पास हुआ है वह जो काम कर रहा है वह हम पहिले ही देख चुके हैं।

(३) गेहूँ, तेलहन, और सुपाड़ी, के सौदों के नियमो को निर्धारित कर दिया गया है जिससे इनकी ख़रीद-बिक्री में सुविधा होने लगी है।

(४) अन्तिम बात यह है कि बाज़ारो के भाव इत्यादि के विज्ञापन का प्रबन्ध कर दिया गया है। दिल्ली का अखिल भारतवर्षीय रेडियो कुछ खास-खास चीज़ो के भाव, स्टाक और ख़रीद-बिक्री के सम्बन्ध की साप्ताहिक रिपोर्टें देता है और कुछ प्रांतीय रेडियो रोज़ाना के अन्तिम भाव भी अपने ग्रामीण प्रोग्राम के साथ देते हैं।

सरकार ने जो नियम बनाये हैं उनके अलावा जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जिन स्थानों में व्यापारिक संगठन है उन स्थानो में वहाँ पर के व्यापारिक संगठनो ने अपने स्वयम् के नियम बना रक्खे हैं। भारतवर्ष के बड़े-बड़े शहरों में सराफ़े बाज़ार हैं, जिनके तैयार और वायदे के सौदो के नियम हैं। इसी तरह से बड़ी-बड़ी मण्डियों

में गल्ले के व्यापारियों की संस्थायें हैं जिनके अपने-अपने नियम हैं। बम्बई के सर्राफ़ा एक्सचेंज, रुई एक्सचेंज, मारवाड़ी एक्सचेंज, इत्यादि के अपने-अपने नियम हैं।

(५) व्यापारिक झगड़ों का निपटारा

व्यापार में झगड़े पड़ते रहते हैं किन्तु अधिकतर व्यापारी लोग स्वयम् ही इनको निपटा लेते हैं। जब दो व्यापारियों के बीच में किसी सौदे के सम्बन्ध में कोई झगड़ा पड़ता है तो वह उसी बाज़ार के एक अथवा कई व्यापारियों के सामने रख कर तै करा लिया जाता है। अधिकतर तो यह निश्चय सभी को मान्य होते हैं किन्तु यदि कोई व्यक्ति इनको नहीं मानता है तो वह अदालत में जा सकता है। अदालतें भी जहाँ तक होता है व्यापारिक झगड़ो का निपटारा बाज़ार के नियमों के अनुसार ही करती हैं। जिन जगहों पर व्यापारिक संस्थाएँ हैं, उनके झगड़े इन्हीं संस्थाओं की कार्य्यकारिणी के द्वारा तै कर लिये जाते हैं। कहीं-कहीं झगड़े तै करने के लिये कुछ विशेष व्यक्ति नियत कर दिये गये हैं। बम्बई सर्राफ़े बाज़ार के सौदों में जब कभी कोई झगड़ा पड़ता है तो वह उसकी कार्य्यकारिणी के सामने रक्खा जाता है और उसका जो निश्चय होता है वह सब लोग मानते हैं। हाँ, कभी-कभी ये झगड़े हाईकोर्ट तक जाते हैं।

जब कभी कोई लम्बा कन्ट्राक्ट लिखा जाता है उसमें झगड़ों के निपटारे के लिये पंचों के नियुक्ति की भी एक शर्त रहती है। अतः, उनके सम्बन्ध में यदि कोई झगड़ा पड़ता है तो यह पंच ही उसको तै कर देते हैं। अदालत भी इन पंचों के फ़ैसलो को मानती है। अतः, प्रत्येक लम्बे कन्ट्राक्ट में इनका होना बहुत आवश्यक है।

अदालत के द्वारा झगड़ों को तै कराने में बड़ा समय और ख़र्च लगता है। अतः, जहाँ तक हो व्यापारिक झगड़ों को पंचों के द्वारा ही तै करा लेना चाहिये। जहाँ पर व्यापारिक संस्थायें हैं वह इस काम को

स्वयम् कर सकती हैं, किन्तु जहाँ पर वह नहीं है वहाँ पर कुछ पंच निर्धारित किये जा सकते हैं। अधिकतर तो बाज़ारों में कुछ ऐसे व्यापारी अवश्य होते हैं जिनकी बात को सब मानते हैं। अतः, वही पंचों का काम कर सकते हैं। लिखित कन्ट्राक्टों में तो झगड़ों की हालत में पंचों की नियुक्ति की शर्त स्पष्ट होनी ही चाहिये। पञ्चों के किये हुये फ़ैसले दोनों पक्षों को मानने पड़ते हैं। यदि उनमें से कोई उसको नहीं मानता है तो वह अदालत में जा सकता है किन्तु अदालत भी प्रायः पंचों के किये गये फ़ैसलों को मानती है।

१०. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

(१) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है ? (२) विभिन्न देशों में दाम सम्बन्धी विषमता (३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ऐतिहासिक कारण (४) प्रतियोगिता में निर्बल के संरक्षण के तरीके (५) भारत और संरक्षण की नीति (६) विदेशियों से हमारे व्यापार सम्बन्धी समझौते और उनका हमारे व्यापार पर प्रभाव (७) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में हमारी भविष्य में क्या नीति होनी चाहिये ? (८) अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान कैसे होता है ?

किसी एक देश का जब दूसरे देशो से व्यापार होता है उसको अतर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं। ऐसा व्यापार लगभग सभी देशों मे बहुत दिनो से होता चला आ रहा है। यदि हम किसी देश के इतिहास को उठा कर देखे तो हमको ज्ञात होगा कि वहाँ की सरकार भी समय-समय पर वहाँ के व्यापारियो को अन्य देशो से व्यापार करने के लिये न केवल प्रोत्साहित करती रही है बल्कि उन लोगो की स्पष्ट रूप से सहायता भी करती रही है। कुछ राष्ट्र तो अपने व्यापार को दूसरे देशो में फैलाने के लिये उनसे लड़ाइयाँ लड़ते रहे हैं और जहाँ पर सम्भव हो सका है उन्होंने उनको जीत कर अपना दास भी बना लिया है। हम लोगों को यह भली भाँति मालूम है कि हमारे देश में व्यापार फैलाने ही के विचार से अंग्रेज़ लोग आये थे और उसीको बढ़ाने के लिये इन्होंने यहाँ पर अनेकों लड़ायाँ लड़ कर अपना राज्य स्थापित किया था। आजकल की लड़ाइयाँ तो विदेशी व्यापार के ही लिये होती हैं। अब प्रश्न यह है कि विदेशी व्यापार किया ही क्यों जाता है।

(१) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है ?

पहिले तो प्रत्येक देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल अपने यहाँ उन चीज़ों को लाने के लिये करता था जो उसके यहाँ नहीं होती थीं अथवा कम होती थीं। भारतवर्ष के लोग जावा, बाली, सुमात्रा से केवल मसाले, इत्यादि प्राप्त करने के लिये ही उनसे व्यापार किया करते थे। रोम, इत्यादि से हमारा व्यापार वहाँ का सोना, इत्यादि लाने के लिये ही किया जाता था। प्लाइनी ने अपने ऐतिहासिक लेखों में इस बात की बड़ी शिकायत की है कि रोम का सारा सोना भारतवर्ष को ढुला जाता है। धीरे-धीरे लोगों के सामने अपने देश की उन चीज़ों को भी निकालने का प्रश्न उत्पन्न हुआ जो उनके यहाँ बहुतायत से पैदा होती थी और जिनका उनके देश मे बहुत खर्च नहीं था। भारतवर्ष से जानवर, खनिज पदार्थ और प्रत्येक प्रकार की बनी हुई चीज़ें बाहर जाती थीं। अंग्रेज़ों ने यहाँ की अफ़ीम ले जा कर चीनियों को अफीमची बनाना आरम्भ किया। जब यहाँ पर चाय उत्पन्न होने लगी वह भी केवल बाहर ही जाती थी। अब अवश्य चाय का खर्च यहाँ भी बहुत बढ़ रहा है। इस समय यहाँ के जूट निकालने का भी प्रश्न है। भारतवर्ष को जूट की उत्पत्ति का एकाधिकार है, अतः, यदि उसकी जगह अन्य कोई चीज़ नही पैदा की जाती तो उसको तो बाहर अवश्य ही भेजना पड़ेगा। फिर इस समय हमारे सामने मशीन, इत्यादि मँगाने का भी प्रश्न है। यदि हम मशीनें बनाना भी चाहते हैं तो हमको आरम्भ में मशीन बनाने वाली मशीनें भी तो लानी पड़ेंगी।

उपरोक्त के अलावा आजकल इस बात का भी प्रश्न उठता है कि कौन चीज़ कहाँ पर सस्ते में उत्पन्न की जा सकती है। स्काटलैण्ड में अंगूर बहुत सस्ते मे उत्पन्न किये जाते हैं, और इसी कारण वहाँ की अंगूरी शराब भी बहुत सस्ती होती है। अतः, वहाँ पर वही उत्पन्न

करके बाहर भेजी जाती है। वह उसीको उत्पन्न करके बाहर से अन्य चीज़ों को मँगा सकता है। हाँ, इधर कुछ देश अवश्य उन्हीं चीज़ों को उत्पन्न कर रहे हैं जिनकी उत्पत्ति उनके यहाँ बहुत मँहगी पड़ती है। जर्मनी बहुत मँहगा कृत्रिम रेशम और पेट्रोल तैयार करता था। किन्तु इसका एक स्पष्ट राजनैतिक कारण था। कभी-कभी दूसरे देशों से उन चीज़ो को भी मँगाने मे लाभ होता है जो वहाँ पर अपने देश से मँहगी पड़ती है। वह इसलिये है कि शायद अपने देश मे कोई अन्य वस्तु ऐसी हो जिसकी उत्पत्ति बहुत ही सस्ते मे होती हो। इसीको दाम सम्बन्धी विषमता कहते हैं। इसका आगे चल कर हम कुछ विस्तार में अध्ययन करेंगे।

विभिन्न देशो में मज़दूरी और ब्याज के विभिन्न निरख हैं। अतः, जहाँ पर मज़दूरी और ब्याज के निरख कम हैं वहाँ पर चीज़े अवश्य सस्ते में पैदा होंगी। किसी देश के एक भाग से दूसरे भाग में ही मज़दूरों और पूँजी का जाना कठिन हो जाता है। अतः, एक देश से दूसरे देशों मे तो इनका जाना बहुत ही कठिन है। पूँजी तो भेजी भी जा सकती है किन्तु मज़दूर ज़रा मुश्किल से जाते हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त भौगोलिक और जलवायु के कारण भी ऐसे हैं जिनके कारण लागत ख़र्च में अन्तर पड़ता है, अथवा कहीं कहीं तो किसी देश को इन्हीं कारणों से कुछ चीज़ो की उत्पत्ति का एकाधिकार है। भारतवर्ष को जूट की उत्पत्ति का, दक्षिण अफ्रीका को हीरों की उत्पत्ति का और पूर्वी द्वीपों को रबड़ की उत्पत्ति का एकाधिपत्य है। यह वहीं उत्पन्न होते हैं। कुछ देशों में कुछ विशेष चीज़ों की खदानें हैं जैसे कोयला, लोहा, ताँबा, मिट्टी का तेल, इत्यादि। जापान मे पश्चिमी देशों की अपेक्षा मज़दूरी सस्ती है। भूमध्य सागर के समीपवर्ती देशों की जलवायु वहाँ पर फलो की उत्पत्ति के लिये बहुत उपयुक्त है। ब्रेजिल की ज़मीन कहवा उत्पन्न करने के लिये, रूस के स्टेप्स गेहूँ उत्पन्न करने के लिए बहुत उपयुक्त हैं, इत्यादि।

(२) विभिन्न देशों में लागत खर्च सम्बन्धी विषमता

ऊपर यह बताया जा चुका है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न देशों में लागत ख़र्च सम्बन्धी विषमता के कारण भी होता है। वास्तव में आजकल के बढ़े हुए व्यापार का यही कारण है। इस सम्बन्ध में हम एक ही चीज़ की उत्पत्ति का लागत ख़र्च की दो देशों के बीच में तुलना न करके दो चीज़ों की उत्पत्ति का लागत ख़र्च के अनुपात की दो देशों के बीच में तुलना करते हैं। उदाहरण के लिये हम यह मान लें कि 'क' और 'ख' दो देश हैं जो गेहूँ और चावल दोनों उत्पन्न करते हैं और उनकी उत्पत्ति की कीमत इन देशों में निम्नाङ्कित है :—

'क' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ८ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।

'ख' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ८ रु० प्रति मन है।

अतः, दोनों देशों में लागत ख़र्च का अनुपात निम्नाङ्कित हुआ :—

'क' ८ : १२ = १ : १$\frac{१}{२}$

'ख' १२ : ८ = १ : $\frac{२}{३}$

इसका यह अर्थ हुआ कि 'क' देश को तो गेहूँ की उत्पत्ति में और 'ख' देश को चावल की उत्पत्ति में लाभ है।

रिकार्डो ने सबसे पहिले, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लागत ख़र्च सम्बन्धी विषमता के इस सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराया था। उसके

बाद अन्य लेखकों ने इस पर और सुधार किये हैं। आधुनिककाल में यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में तीन प्रकार से लागू होता है :—

(१) लागत ख़र्चों में पूर्ण अंतर (Absolute Difference),

(२) लागत ख़र्चों में समान अंतर (Equal Differences),

(३) लागत ख़र्चों में तुलनात्मक अन्तर (Comparative Differences)।

अब पूर्ण अन्तर और तुलनात्मक अन्तर की अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है और समान अन्तर की अवस्था मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है। उदाहरण के लिये :—

(१) पूर्ण अन्तर—इसके लिये ऊपर वाला उदाहरण फिर से लिया जा सकता है :—

'क' में—
- गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ८ रु० प्रति मन है।
- चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।

'ख' मे—
- गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।
- चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ८ रु० प्रति मन है।

अतः, 'क' देश में १ मन गेहूँ $\frac{2}{3}$ मन चावल से और 'ख' देश में १ मन गेहूँ १$\frac{1}{2}$ मन चावल से बदल जायगा। इससे यह स्पष्ट है कि 'क' को गेहूँ की उत्पत्ति में और 'ख' को चावल की उत्पत्ति मे पूर्ण लाभ है। बस 'क' गेहूँ की उत्पत्ति मे और 'ख' चावल की उत्पत्ति मे अपना पूरा ध्यान देंगे और 'क' को 'ख' से व्यापार करने में उस समय तक लाभ होता रहेगा जिस समय तक उसको एक मन गेहूँ के बदले मे उससे $\frac{2}{3}$ मन से अधिक चावल मिलता रहेगा और 'ख' को 'क' से व्यापार करने मे उस समय तक लाभ होता रहेगा जिस समय तक उसको उससे १ मन गेहूँ १$\frac{1}{2}$ मन चावल से कम

के बदले में मिलता रहेगा। बदले की दर एक मन गेहूँ के लिये $\frac{2}{3}$ मन और $1\frac{1}{2}$ मन चावल के बीच में रहेगी। वास्तविक दर 'क' और 'ख' की एक दूसरे की उत्पत्ति की माँग की लोच पर निर्भर रहेगी।

(२) समान अन्तर—जब तुलनात्मक लाभ समान होगा, विदेशी व्यापार नहीं होगा। उदाहरणार्थ मान लीजिये :—

'क' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ८ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।

'ख' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ६ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ६ रु० प्रति मन है।

अतः, 'क' देश में १ मन गेहूँ के लिये $\frac{2}{3}$ मन चावल मिलेगा और 'ख' देश में भी १ मन गेहूँ के लिये $\frac{2}{3}$ मन चावल मिलेगा। ऐसी अवस्था में इन दोनों देशों के बीच में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न होगा क्योंकि यदि 'क' केवल गेहूँ उत्पन्न करता है तो 'ख' उसको $\frac{2}{3}$ मन से अधिक चावल न देगा। यहाँ पर केवल दो ही वस्तुओं की उत्पत्ति के उदाहरण लिये गये हैं। किन्तु यही बात अन्य चीज़ों की उत्पत्ति के लिये भी हो सकती है।

(३) तुलनात्मक अन्तर—ऐसी अवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा। उदाहरणार्थ मान लिया जाय कि :—

'क' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ६ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च १२ रु० प्रति मन है।

'ख' में { गेहूँ की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ४ रु० प्रति मन है।
चावल की उत्पत्ति का सीमान्त लागत ख़र्च ६ रु० प्रति मन है।

इस अवस्था में 'ख' गेहूँ और चावल दोनों 'क' की अपेक्षा कम कीमत में उत्पन्न कर सकता है, किन्तु चावल की उत्पत्ति में उसको तुलनात्मक लाभ अधिक है। इसके बिल्कुल विपरीत 'ख' को दोनों वस्तुओं की उत्पत्ति में हानि है किन्तु यह हानि चावल की तुलना में गेहूँ की उत्पत्ति में कम है। अतः, 'क' गेहूँ और 'ख' चावल उत्पन्न करेंगे और परस्पर एक चीज़ को देकर दूसरी चीज़ लेंगे। यदि 'ख' दोनों चीज़ उत्पन्न करेगा तो उसको किसी ऐसी चीज़ की आवश्यकता रहेगी जिसे लेकर वह गेहूँ और चावल दोनों में से कोई चीज़ दे सके। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि सम्भव है कि 'क' कोई अन्य चीज़ उत्पन्न करता हो किन्तु इस उदाहरण के भी यही अर्थ हैं कि 'क' में 'ख' की अपेक्षा प्रत्येक चीज़ अधिक कीमत पर उत्पन्न होती है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ऐतिहासिक कारण

उपरोक्त से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांतिक कारण स्पष्ट हैं। वास्तव में उससे जो लाभ होते हैं उनको हम यहाँ पर फिर से देख सकते हैं :—

(१) जब प्रत्येक देश वही माल बनाता है जो वह अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सस्ते में उत्पन्न कर सकता है तब तमाम संसार में सभी माल सस्ते बनते हैं अथवा अधिक परिमाण में बनते हैं जिससे सब का लाभ होता है।

(२) उपभोक्ताओं की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से यह लाभ है कि उनको न केवल चीज़ें सस्ती मिलती हैं वरन् यह कि वह बहुत-सी ऐसी चीज़ों का उपभोग कर सकते हैं जो उनके देश में उत्पन्न हो ही नहीं सकती हैं।

(३) अकाल, इत्यादि के अवसर पर अन्य देशों से सहायता प्राप्त हो जाती है। युद्ध के समाप्त हो जाने पर आजकल एशिया और

यूरोप के लगभग सभी देशों में खाद्य पदार्थों की कमी है किन्तु वह अमेरिका से मँगाया जा रहा है।

(४) प्रत्येक देश के उत्पादक अन्य देशों की होड में अपने अपने देशों में भी उत्पत्ति की सीमान्त लागत खर्च को कम रखने का प्रयत्न करते हैं जिससे उपभोक्ताओं का लाभ होता है।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश की बचत अन्य देशों मे काम में आ जाती है।

(६) इसके कारण कृषि-प्रधान देश अन्य देशों से मशीन, इत्यादि मँगा कर अपने देश में कारीगरी बढ़ा सकते हैं और उद्योग-प्रधान देश कृषि-प्रधान देशो से कच्चा माल मँगा कर अपने यहाँ माल तैयार कर सकते हैं।

(७) इससे ससार के सब देशो में परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है। अतः, हमारे ज्ञान का भण्डार बढ़ता है।

किन्तु जहाँ पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के इतने लाभ हैं वहाँ पर इससे कुछ हानियाँ भी हैं, किन्तु यह मनुष्य जाति की दुर्बलता के कारण है। उसको केवल अपना स्वार्थ नहीं देखना चाहिये, बल्कि अन्य लोगों की उन्नति का भी ध्यान रखना चाहिये। यदि ऐसा किया जाय तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जो हानियाँ होती है वह दूर हो जायँ।

हानियाँ—(१) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जो सबसे बड़ी हानि हुई है वह एक देश के दूसरे देश को शोषण करने की नीति से हुई है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है आजकल की लड़ाइयाँ विशेष तौर पर व्यापार फैलाने ही के ध्येय से आरम्भ होती हैं। गुलामी की प्रथा भी इसी कारण है। यूरोप के देश एशिया के देशो को अपना गुलाम इसीलिये बनाये रहना चाहते हैं कि उनका व्यापार उनसे होता रहे।

(२) कभी-कभी किसी देश की ऐसी चीजें भी बाहर भेज दी जाती हैं कि जिनसे उनसे उसकी हानि होती है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष के अभ्रक के बाहर चले जाने से उसका स्टाक यहाँ पर कम हो गया है। अतः, उसके प्रयोग में इसको कठिनाई पड़ेगी। इसी तरह से यहाँ का तेलहन बाहर चला जाता है, जिससे न केवल देश के लोगों को काम ही की कमी नहीं होती वरन् खली इत्यादि भी बाहर चली जाती है। इससे यहाँ के ढोरों को खाना और खेतों को बढ़िया खाद नहीं मिलती है। इसी तरह से इस युद्ध के समय पर जब कि देश के लोग भूखों मरते रहे और नंगे घूमते रहे यहाँ का अनाज और कपड़ा अन्य देशों को जाता रहा।

(३) विदेशी चीज़ों के आने से देश की चीज़ों की उत्पत्ति रुक जाती है। विदेशी कपड़े के आने से भारतवर्ष के कपड़ों की उत्पत्ति बिल्कुल गिर गई थी। अब अवश्य उसको फिर से उठाया जा रहा है।

(४ कभी-कभी विदेशों से ऐसी चीज़ें आ जाती हैं जिससे देश के लोगों की आदतें बिगड़ जाती हैं। चीन के लोग भारतवर्ष की अफ़ीम को खा-खा कर अफ़ीमची बन गये और अपनी वर्तमान अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। भारतवर्ष में भी बाहर के फैशन की चीज़ों के आ जाने से यहाँ के लोगों की आदतें बिगड़ गई हैं। किसी समय में यहाँ पर चाय और तम्बाकू बिल्कुल नहीं प्रयोग मे आती थी। किन्तु वह बाहर से आई और अब यहाँ भी पैदा होने लगी हैं। फिर देश का कितना रुपया विदेशी सिगरेटों में, शराब में और अनेकों चीज़ों में बर्बाद होता है।

(५) जब एक देश कुछ विशेष चीज़ों को बनाने लगता है तब वहाँ के लोगों को अपने काम को ढूँढने में अपना मनमाना काम नहीं मिलता है। इसके अलावा उस देश को अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये अन्य देशों का मुँह ताकना पड़ता है।

(६) युद्ध के अवसर पर ऐसे देशों के जीवन, मरण का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है जो अपनी आवश्यकताओं की सारी चीज़ें नहीं उत्पन्न कर पाते हैं। इस युद्ध में जर्मनी का इरादा अपनी पनडुब्बियों के सहारे अंग्रेज़ों को भूखो मार डालने का था। लड़ाई में अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। अतः, यदि कोई ऐसा देश लड़ाई में फँस जाता है जो अस्त्र-शस्त्र बहार से मँगाता है तो वह उस समय ऐसा न कर सकने के कारण हार जाता है।

(४) प्रतियोगिता में निर्बल के संरक्षण के तरीके

अतः, प्रत्येक देश जहाँ तक सम्भव है अपने यहाँ प्रत्येक आवश्यक वस्तु बनाने का प्रयत्न करता है। किन्तु ऐसा करने के पहिले उसको कुछ बातों को अवश्य देख लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में सबसे पहिली बात तो यह है कि वह आज न सही कुछ दिनों में तो उसको उचित मूल्य पर बना सकेगा अथवा नहीं। यदि कोई देश किसी नई चीज़ को बनाना चाहता है तो पहिले उसकी लागत ख़र्च उन देशों की तुलना में अवश्य अधिक पड़ती है जो उसको बहुत दिनों से बनाते चले आ रहे हैं। भारतवर्ष में बहुत सी चीज़ों के बनाने में इंगलैण्ड की अपेक्षा अधिक लागत ख़र्च पड़ती है। किन्तु देखना यह चाहिये कि जब ऐसी चीज़ें यहाँ पर कुछ दिनों तक बन जायेंगी तब लोगों के उनके बनाने के अनुभव के कारण और उत्पादन में जो उत्तरोत्तर वृद्धि का नियम है उसके लगने के कारण उसके उत्पादन का लागत खर्च कम हो जायगा अथवा नहीं। साधारणतया ऐसी चीज़ों का ही उत्पादन आरम्भ करना चाहिये जिनके उत्पादन का ख़र्च कुछ दिनो में अन्य देशों में उसकी उत्पत्ति के लागत ख़र्च के समान ही पड़ने लगे।

दूसरी बात जो इस सम्बन्ध में ध्यान देने की है वह यह है कि वह चीज़ ऐसी है कि नहीं कि जिसके बिना देश का काम नहीं चल

सकता है। यदि वह चीज़ ऐसी है कि जिसके बिना देश का काम चल ही नहीं सकता है जैसे खाद्य-पदार्थ अथवा और कोई ऐसी आवश्यकता के पदार्थ जिनके बिना प्राण-रक्षा अथवा कार्य करने की निपुणता की शक्ति की रक्षा हो ही नहीं सकती है तो उसका बनाना भी देश के लिये बहुत आवश्यक है चाहे उसके उत्पादन का लागत खर्च अपने देश में अन्य देशों में उसके उत्पादन का जो लागत खर्च पड़ता है उसकी अपेक्षा सदा के लिये अधिक ही क्यों न रहे। इन चीज़ों में मशीन, इत्यादि ऐसी वस्तुयें भी आ जाती हैं जिनके ऊपर अन्य चीज़ों का बनना निर्भर है। फिर आजकल के इस संसार में जब इस बात का बराबर डर लगा रहता है कि न जाने कब महायुद्ध छिड़ जाय युद्ध की आवश्यक सामग्रियों को भी प्रत्येक देश को बनाने का ध्यान रखना चाहिये। तीसरी बात जो इस सम्बन्ध में है वह यह है कि प्रत्येक देश में कुछ चीज़ों का उत्पादन वहाँ के साधनों का भी प्रयोग करने के लिये आवश्यक होता है। मान लीजिये कि एक देश में जन-संख्या अधिक है तो वहाँ पर बहुत-सी चीज़ों को इसलिये भी उत्पन्न करना पड़ता है कि वहाँ के लोग बेकार न रहें। इसी तरह से यदि किसी देश में कच्चा माल अधिक उत्पन्न होता है तो उसका भी कुछ अंशों तक तो वहाँ के उद्योग-धन्धों में प्रयोग होना ही चाहिये। यदि वह सारा बाहर चला जाता है तो उस देश को उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिये।

अतः, उपरोक्त बातों को देखते हुये प्रत्येक देश को कुछ न कुछ ऐसी वस्तुओं को भी बनाना पड़ता है जिनके बनाने में वह अन्य देशों की बराबरी में नहीं ठहर पड़ता है। बस ऐसी अवस्था में संरक्षणों की आवश्यकता पड़ती है। इङ्गलैण्ड के उद्योग-धन्धे प्रारम्भ में अधिकतर संरक्षणों के द्वारा ही सँभाले जा सके थे वरना वह अपनी मौत आप ही मर जाते। भारतवर्ष से जो मलमल, इत्यादि इङ्गलैण्ड जाती थी वह इतनी अच्छी पड़ती थीं कि मिलकी चीज़ें उनके सामने

नहीं टिकती थीं अथवा अनेकों तरकीबें लगा कर उनका वहाँ पर जाना और प्रयोग होना बन्द कर दिया गया जिससे वहाँ के उद्योग-धन्धे पनप सकें। इसके बाद जब इङ्गलैण्ड की अवस्था अच्छी हो गई और वहाँ की वस्तुयें अन्य देशों में जाने लगीं और उन देश वालों ने अपने देश के उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये भी संरक्षण लगाने प्रारम्भ किये तो इङ्गलैण्ड के अर्थशास्त्रियों ने संरक्षणों के विरुद्ध एक ऐसी आवाज़ उठाई जिससे सारी दुनिया उनके (संरक्षणों के) विरुद्ध हो गई। इस समय को हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मुक्त द्वार नीति की प्रधानता का समय कह सकते हैं। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद फिर इङ्गलैण्ड को अपने उद्योग-धन्धों को बाहरी प्रतियोगिता से बचाने के लिये संरक्षण की नीति का सहारा लेना पड़ा। अतः, अब जिन चीज़ों की उत्पत्ति प्रत्येक देश के लिये आवश्यक समझी जाती है उनको यदि संरक्षण की आवश्यकता होती है तो वह भी दिया जाता है। संरक्षण के निम्न तरीके हैं:—

(१) आयात पर प्रतिबन्ध लगाना—यदि किसी देश में उत्पन्न की जाने वाली कोई वस्तु अन्य देशों की उसी वस्तु की प्रतियोगिता में नहीं टिक पाती है तो उस वस्तु के आयात को बिल्कुल रोक दिया जाता है। गत् शताब्दि के आरम्भ में भारतवर्ष के बने हुये कुछ कपड़ों के आयात को इङ्गलैण्ड की सरकार ने बिल्कुल रोक दिया था। अभी हाल में हंगरी ने रूमानिया के तेल के आयात को रोक दिया था। जिस तरह से किसी वस्तु के आयात को रोक दिया जाता है उसी तरह से उसके निर्यात को भी रोक दिया जाता है। भारतवर्ष से तेलहन बहुत बाहर जाता है। यदि उससे देश में ही तेल निकाल लिया जाय तो यहाँ के उद्योग-धन्धों को भी प्रोत्साहन मिल जाय और साथ ही उसकी खली भी यहीं रह जाय। अतः, उसके लिये यहाँ से तेलहन का निर्यात रोका जा सकता है। इससे तेल के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलेगा।

(२) विदेशी मुद्राओं पर नियन्त्रण लगाना—विदेशी मुद्राओं पर नियन्त्रण लगाने के अर्थ हैं उनकी खरीद-बिक्री पर देश की सरकार द्वारा हस्तक्षेप होना। वास्तव में इसके कई तरीके हैं। एक तो यह कि किसी चीज़ के आयात के सम्बन्ध में विदेशी मुद्रा को देने में प्रतिबन्ध लगाना, अर्थात् केवल एक सीमा तक ही देना। दूसरे यह कि किसी देश की मुद्रा को बिल्कुल अथवा कुछ वस्तुओं के आयात के लिये न देना अथवा मँहगी दर पर देना, इत्यादि, इत्यादि।

(३) आयात-कर लगाना—आयात कर लगाने के दो ध्येय होते हैं, एक तो आमदनी का और दूसरे उद्योग-धन्धों के संरक्षण का। यदि आमदनी का ध्येय है तो आयात-कर की दर बहुत कम होती है और यदि संरक्षण का ध्येय है तो वह बहुत अधिक होती है। आयात-कर के दर के बहुत होने से आयात का माल मँहगा पड़ता है अतः, वह देश में नहीं मँगाया जाता, जिससे कर द्वारा आमदनी तो कम होती है किन्तु देश के उद्योग-धन्धे पनपते हैं। जिस तरह से आयात-कर लगाया जाता है, उसी तरह से निर्यात कर भी लगाया जा सकता है। इससे निर्यात रुक जाता है। यदि कोई देश यह चाहता है कि उसके यहाँ के खाद्य पदार्थ बाहर न जायँ तो वह उन पर निर्यात कर लगा सकता है। इसी तरह से किसी कच्चे मालके निर्यात पर कर लगा देने से वह बाहर नहीं जाता अतः, देश के उद्योग-धन्धों को उससे प्रोत्साहन मिलता है।

(४) भेदभाव का व्यवहार करना—इसमें कुछ देशों से आने वाली वस्तुओं पर कम और अन्य देशों से आने वाली वस्तुओं पर अधिक आयात-कर लिया जाता है। इससे संसार के व्यापारिक टुकड़े हो जाते हैं। ओटावा के समझौते के अनुसार भारतवर्ष में ब्रिटिश आयात पर कम आयात-कर लगाया जाता था और ब्रिटेन में साम्राज्य से बाहर वाले देशों से आने वाले माल की अपेक्षा भारतवर्ष से जाने वाले माल पर कम आयात-कर लगाया जाता था।

(५) एक निश्चित परिमाण का आयात—इसके अनुसार या तो एक निश्चित परिमाण के आयात पर कुछ कम और शेष पर अधिक आयात-कर लगाते हैं या सारे आयात का परिमाण ही निश्चित कर देते हैं। यह प्रणाली इधर बहुत कुछ प्रचलित थी।

(६) आयात के लिये अधिकार-पत्र की आवश्यकता—कभी-कभी कुछ चीज़ों के आयात के लिये अधिकार-पत्र प्राप्त करना आवश्यक कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में सरकार उन चीज़ों को मँगाने का अधिकार-पत्र उसी परिमाण तक देती है जिस परिमाण मे उसकी देश को आवश्यकता होती है।

(७) आयात का एकाधिपत्य—कभी-कभी सरकार स्वयम् आयात का एकाधिपत्य ले लेती है, अर्थात् उसको जो कुछ ज़रूरी मालूम पड़ता है वही वह बाहर से मँगाती है। रूस के यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की यही प्रणाली है।

उपरोक्त तरीकों से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बहुत कमी हो जाती है, किन्तु इससे प्रत्येक देश को अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति करने का अवसर मिलता है और वह स्वावलम्बी हो सकता है।

(५) भारत और संरक्षण की नीति

भारतवर्ष में संरक्षण की नीति केवल प्रथम महायुद्ध के बाद से ही कुछ-कुछ प्रयोग में आने लगी है; किन्तु इससे भी साम्राज्यान्तर्गत रियायत और भेद-भाव की नीति के कारण उसका इतना लाभ नहीं हुआ है जितना होना चाहिये था। प्रथम महायुद्ध के पहिले तक इस देश मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में मुक्त द्वार अर्थात् व्यापार में हस्तक्षेप न करने की नीति का पालन होता रहा था जिससे देश की बड़ी हानि हुई। पश्चिमीय देश और पूर्व में जापान जब अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति करते रहे हमारा देश चुपचाप बैठा रहा वरन् यों कहना चाहिये कि मुक्त द्वार नीति का पालन

करके अपने यहाँ की कारीगरी को नष्ट करता रहा। वास्तव में सारे साम्राज्य पर और विशेषकर हमारे ऊपर इस मुक्तद्वार की नीति को ब्रिटेन ने केवल अपने स्वार्थ के लिये ही लाद रक्खा था। कनाडा और आस्ट्रेलिया को तो बहुत दिनों पहिले ही औपनिवेशिक स्वराज्य मिल चुका था, अतः, वह तो लड़-लड़ाकर अपनी मनमानी करने लगे किन्तु हम लोग अभी तक ऐसा नहीं कर पाये हैं। सन् १९२३ तक यहाँ पर जितने अर्थ-सचिव आये वह बराबर मुक्त द्वार नीति को मानते रहे और कहते रहे कि इससे ग़रीबों को सस्ता माल मिलने के कारण उनका बड़ा लाभ होता है। यदि उन्होंने सरकार की आमदनी बढ़ाने के लिये कभी कोई आयात-कर लगाया भी तो उसके लिये इङ्गलैण्ड के व्यापारियों से क्षमा प्रार्थना करते हुये उनके प्रति बड़ी समवेदना प्रगट की। लार्ड कर्ज़न ने सन् १९०८ में लन्दन टाइम्स को एक पत्र में यह लिखा था कि सन् १८७५ से जब इङ्गलैण्ड के अधिकारियों की आज्ञा से यहाँ के आयात-करों को बन्द कर दिया था अब तक जब कभी कोई ऐसा कर आमदनी के लिये लगाया है उसके लिये ब्रिटेन के मिल-मालिकों से परामर्श कर लिया गया है। अतः, यदि किसी आयात-कर के लिये जाने से कभी यहाँ की कोई कारीगरी ज़रा सी भी पनप सकी है तो वह अंग्रेज़ी कारीगरी को प्रोत्साहन देने और उससे आय बढ़ाने के विचार से कम कर दिया गया है। किन्तु सन् १९१४—१८ के युद्ध ने यहाँ की सरकार को आयात-करों को बढ़ाने के लिये बाध्य किया और फिर वह उनको आय के घट जाने के डर से कम न कर सकी। इससे यहाँ के उद्योग-धन्धों को थोड़ा-सा सहारा अवश्य मिला यद्यपि सरकार के लिये यह बड़ी परेशानी का विषय रहा।

सन् १९१६ में यहाँ पर एक औद्योगिक कमीशन की नियुक्ति हुई, और उसने सन् १९१८ में अपनी सिफ़ारिशों में देश को स्वावलम्बी बनाने पर ज़ोर दिया। इसी बीच में अंग्रेज़ों को भारतवर्ष

को कुछ राजनैतिक अधिकार देने की बात भी माननी पड़ी जिसके कारण उसको व्यापार-नीति में भी कुछ स्वतन्त्रता देना आवश्यक हो गया। किन्तु ब्रिटिश पार्लियामेंट ऐसा करने के लिये तैयार न थी। अतः, भारत सरकार के बिल पर विचार करने के लिये जो कमेटी बैठी थी उसने यह राय दी कि इस सम्बन्ध में कोई विधान न पास करके आर्थिक स्वतन्त्रता की बात केवल ऐसे ही मान ली जाय। इसीको हमारी आर्थिक स्वतन्त्रता का कंवैन्शन कहा जाता है। जब सन् १६२१ मे लंकाशायर के मिल-मालिकों ने भारत सरकार द्वारा कपड़े पर आयात-कर लगाने का विरोध किया तब भारत-मन्त्री ने पहिले पहिल इस कंवैन्शन की आड़ लेकर इस सम्बन्ध में कुछ न कर सकने की अपनी असमर्थता उन लोगों के प्रति प्रगट की।

यदि हम कंवैंशन की शर्तों पर ध्यान दें तो यह कह सकते हैं कि वह ऐसी थी कि उनका पूरा होना एक प्रकार से असंभव-सा था। अतः, भारत-मन्त्री को यहाँ की नीति में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार था। इसके अनुसार वह तभी ऐसा नहीं कर सकता था (१) जब किसी मामले में यहाँ की सरकार और व्यवस्थापक सभा में कोई मतभेद न हो और २) जब उस बात से सिर्फ भारत-वर्ष के हानि-लाभ का ही सम्बन्ध हो। किन्तु हमको यह याद रखना चाहिये कि यहाँ की व्यवस्थापक सभा में नामजद लोगों की यथेष्ट संख्या होने के कारण प्रथम तो वहीं से कोई ऐसी बात नहीं पास हो सकती थी जो भारतवर्ष के लाभ की हो और ब्रिटेन के हानि की हो। फिर ऐसी बात से भारत सरकार ही जिसमें अंग्रेज अर्थ सचिव रहता था कैसे सहमत हो सकती थी। इनके अतिरिक्त ऐसी भी कोई बात आजकल के समय में नहीं हो सकती है जिसका प्रभाव केवल भारत-वर्ष ही पर पड़े। प्रत्येक बात का प्रभाव विशेषकर इस समय सारे संसार पर पड़ता है।

उपरोक्त वातावरण में यहाँ की व्यवस्थापक सभा ने साम्राज्यान्तर्गत रियायत के प्रश्न पर विचार करने के लिये सन् १६२० में अपनी एक कमेटी नियुक्ति की और उसने देश की आर्थिक नीति को निर्धारित करने के लिये एक कमीशन की माँग की सिफ़ारिश की। अतः, सन् १६२१ में यहाँ के लिये एक आर्थिक कमीशन बैठा जिसमें हमारे लिये भेदभाव सहित संरक्षण की नीति पर ज़ोर दिया, किन्तु इसके लिये तीन विशेष बातों का होना आवश्यक समझा गया। प्रथम तो यह कि जिस धन्धे के लिये संरक्षण दिया जाय उसकी उन्नति के लिये सब प्राकृतिक साधन जैसे कच्चा माल, सस्ती शक्ति, यथेष्ट कारीगर और अपने घर का ही बाज़ार, इत्यादि यहीं पर मौजूद हों। दूसरे वह ऐसी हो कि जिसकी उन्नति या तो बिना संरक्षण के हो ही न सके अथवा बहुत देर में हो। और अन्तिम यह कि वह कुछ समय बाद अन्य देशों की प्रतियोगिता में बिना संरक्षण के ठहर सके। यह तो विशेष शर्तें थीं, इनके अतिरिक्त कुछ साधारण शर्तें भी थी, जैसे संरक्षण का बहुत अधिक बोझ उपभोक्ताओं के ऊपर न पड़े, इत्यादि, इत्यादि। अब ये शर्तें ऐसी हैं जो पूर्ण हो ही नहीं सकती। यदि किसी धन्धे के लिये उसके सब प्राकृतिक साधन यहीं पर मौजूद हैं तो फिर उसको संरक्षण की आवश्यकता ही क्यो पड़ेगी। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे देश हैं जो अपने धन्धो के लिये विदेशो से कच्चा माल मँगाते हैं, अथवा अपनी चीज़ो को बाहर बेचते हैं। अतः, यहाँ के लिये कच्चे माल का होना और घरेलू बाज़ार के होने की शर्तें क्यो लगाई गई यह समझ में नहीं आता। फिर जब तक कोई काम न आरम्भ किया जाय तब तक यह कैसे मालूम हो कि वह बिना संरक्षण के चलेगा अथवा नहीं और यदि वह बिना संरक्षण के नहीं चलता है तो यह आवश्यक भी नहीं है कि उसको संरक्षण मिल ही जाय। अतः, किसी काम को आरम्भ करने वालो पर एक बड़ा भारी उत्तरदायित्व है जिससे कि बहुत कम लोग उसको आरम्भ करने का साहस कर सकते हैं। फिर यह शर्तें भी

उचित नहीं मालूम पड़ती कि जिस धन्धे को संरक्षण दिया जाय वह विदेशियों की प्रतियोगिता में अवश्य ही ठहरने योग्य हो। बहुत से ऐसे धन्धे हैं कि जिनका होना देश के लिये बहुत ही आवश्यक है। हम उनके लिये दूसरों पर निर्भर रह ही नहीं सकते हैं। अतः, वह चाहे विदेशियों की प्रतियोगिता में ठहरने के योग्य हों, अथवा न हों उनको तो हमें संरक्षण देना ही चाहिये। फिर यह अपने-अपने विचार की बात है, इस पर एक मत कैसे हो सकता है।

भेद भाव सहित संरक्षण नीति का प्रयोग और उसका फल—भेदभाव सहित संरक्षण नीति के प्रयोग का यह फल हुआ है कि जब कि देश के कुछ उद्योग-धन्धे तो संरक्षण मिलने के कारण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो सके हैं, अथवा हो रहे हैं अन्य उद्योग-धन्धे संरक्षण न मिल सकने के कारण बहुत बुरी अवस्था में हैं। जिन धन्धों को संरक्षण दिया गया है उनमें से प्रथम तो लोहे और इस्पात का धन्धा था। इसका आधुनिक ढङ्ग का एकमात्र कारखाना सर्व-प्रथम सन् १९१४-१८ के युद्ध के पहिले जमशेदपुर में टाटा के नाम से स्थापित किया जा चुका था। अतः, उसने उपरोक्त युद्ध के समय बड़ी ही उन्नति दिखलाई, किन्तु युद्ध के बाद उसकी हालत गिरने लगी जिससे उसका मामला सन् १९२३ में टैरिफ बोर्ड के सामने सर्व-प्रथम संरक्षण के लिये लाया गया। इस सम्बन्ध में यह भी बता देना आवश्यक है कि आर्थिक कमीशन की सिफारिश के अनुसार ही उपरोक्त टैरिफ बोर्ड बना था। अतः, इस टैरिफ बोर्ड ने बहुत जाँच के बाद इसको तीन वर्ष के लिये संरक्षण दिया। फिर यह संरक्षण बराबर चलता रहा और इस समय यह कारखाना बड़ी ही उन्नत अवस्था में है। सूती कपड़े के धन्धे की उन्नति के लिये संरक्षण देने का प्रश्न यहाँ पर बराबर चलता रहा, किन्तु उसको वास्तविक संरक्षण केवल सन् १९२६ में ही प्राप्त हुआ। तब से सन् १९३५ तक इसकी उन्नति की बराबर जाँच होती रही

और उनमें बराबर सफलता पाने के कारण इसको उचित संरक्षण मिलता रहा। धीरे-धीरे यहाँ का बना हुआ कपड़ा बाहर जाने लगा है। चीनी के धन्धे को यहाँ पर सन् १६३१ में संरक्षण मिला और तब से यह बराबर उन्नति कर रहा है। इस युद्ध के पहिले देश की चीनी की माँग यहीं की उत्पत्ति से पूरी होने लगी थी। कागज़ के धन्धे को भी संरक्षण देने का प्रश्न यहाँ पर बराबर चलता रहा किन्तु सन् १६२४ में यह लिखने और छपने के कागज़ के लिये दिया गया। फिर सन् १६३५ में बाँस की लुब्दी की उत्पत्ति को संरक्षण मिला। किन्तु कागज़ के धन्धे को अभी और उन्नति करने की आवश्यकता है। देश में कागज़ की माँग बढ़ रही है। अतः, इसके सामने उसको पूरा करने का प्रश्न है। रसायनों की उत्पत्ति के लिये भी दो वर्ष तक तो संरक्षण मिला था किन्तु बाद में वह बन्द कर दिया गया। इस युद्ध मे देश को इसकी-कमी बहुत अखरी है। अतः, अब इसको फिर से संरक्षण देकर प्रोत्साहित करने की आवश्यकता मालूम पड़ रही है। इसके अलावा यहाँ के नमक के, मैगनेसियम क्लोराइड के, प्लाईउड लकड़ी के, चाय के बक्सों के, गोटे, जरी, इत्यादि के धन्धों को भी संरक्षण देकर प्रोत्साहित किया गया है और वे अब बड़ी अच्छी अवस्था में हैं। जिन धन्धों को संरक्षण नहीं मिला है और मिलना चाहिये वह सीमेन्ट, तेल, कोयला और शीशा, इत्यादि के हैं। भेदभाव की नीति के कारण इनको संरक्षण नहीं मिला था, किन्तु अब मिलना चाहिये। इस युद्ध में इनके न होने से बड़ी कठिनाई प्रतीत हुई थी।

(६) विदेशियों से हमारे व्यापार-सम्बन्धी समझौते और उनका हमारे व्यापार पर प्रभाव

विदेशियों से हमारे व्यापार-सम्बन्धी अनेकों समझौते हुये हैं किन्तु उनका प्रभाव हमारे व्यापार पर उतना अच्छा कभी नहीं पड़ा

जितना पड़ना चाहिये था। अतः, भविष्य में हमको इस सम्बन्ध में बहुत सतर्क होने की आवश्यकता है। इससे हमें यहाँ पर भूतकाल में किये गये कुछ समझौतों का एक संक्षिप्त अध्ययन अवश्य कर लेना चाहिये।

साम्राज्यान्तर्गत रियायत—इस समझौते के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के देश एक दूसरे के यहाँ से आने वाले माल पर अन्य देशों से आने वाले माल की अपेक्षा कम आयात-कर लगाते हैं। किन्तु भारतवर्ष का इससे कोई लाभ नहीं हुआ वरन् हानि ही हुई। सर्वप्रथम तो भारतवर्ष से बाहर जाने वाले खाद्य-पदार्थ और कच्चे माल ऐसे है कि जिनकी सभी देशो मे माँग है। उन पर किसी देश का आयात-कर लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ का तैयार माल इस युद्ध के पहिले बहुत कम जाता था। दूसरे यहाँ पर साम्राज्य के अन्दर के देशों से आने वाले माल पर कम आयात-कर लगाने के कारण यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति में बड़ी भारी हानि हुई। तीसरे साम्राज्य के बाहर वाले देशों ने हमारी इस भेदभाव की नीति से चिढ़कर हमको हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया। जापान ने हमारी रुई को खरीदना बन्द कर दिया जिससे हमें उसके साथ समझौता करना पड़ा।

ओटावा का समझौता—ब्रिटेन ने सन् १६३२ में मुक्त द्वार नीति को त्याग कर संरक्षण नीति और साम्राज्यान्तर्गत रियायत की नीति का सहारा लिया। अतः, यदि भारतवर्ष उससे यह समझौता न करता तो वह भारतवर्ष को हानि पहुँचाता। उसका माल साम्राज्य में कहीं भी न लिया जाता। भारतीय व्यवस्थापक सभाओं ने ओटावा के समझौते को सन् १६३२ मे तीन वर्षों के लिये मान लिया। फिर सन् १६३६ मे यह समाप्त कर दिया गया था किन्तु उसी वर्ष फिर यह मान लिया गया और सन् १६३६ तक रहा। सन्

१९३९ में दोनों देशों में फिर एक समझौता हुआ जो अब भी चल रहा है।

ओटावा के समझौते के अनुसार भारतवर्ष ने ब्रिटेन के कुछ माल पर अन्य देशों के माल की अपेक्षा ७½ प्रतिशत और कुछ पर १० प्रतिशत कम आयात-कर लगाने का वचन दिया और इसके स्थान पर ब्रिटेन ने साधारणतया उसके माल पर १० प्रतिशत की आयात-कर की कमी और कुछ को बिना कुछ भी आयात-कर लिये अपने यहाँ आने देने का वचन दिया। कहना न होगा कि इससे दोनों देशों का परस्पर व्यापार तो बढ़ा किन्तु भारतवर्ष का व्यापार अन्य देशों से घट गया।

सन् १९३२ और सन् १९३९ के समझौतों के बीच में भारतवर्ष और ब्रिटेन के बीच में दो समझौते और हुये। एक तो सन् १९३३ में और दूसरा सन् १९३५ मे। प्रथम समझौता मोदी लीस समझौता और दूसरा समझौता भारतवर्ष और ब्रिटेन के बीच के व्यापार के समझौते का न्यूनतापूरक समझौता कहा जाता है। इनमें अन्य बातों के साथ-साथ ब्रिटेन के भारतवर्ष की रुई लेने की बात भी थी।

१९३९ का ब्रिटेन और भारतवर्ष के बीच के व्यापार का समझौता—इस समझौते को भारतीय व्यवस्थापक सभा ने अस्वीकृत कर दिया था किन्तु वह वायसराय द्वारा उसके विशेष अधिकार से फिर से स्वीकृत किया गया था। अतः, यह भारतवर्ष की आर्थिक स्वतन्त्रता के वास्तविक मूल्य का द्योतक था। इसके अनुसार (१) भारतवर्ष ने ब्रिटेन से आने वाले कुछ सामान पर ७½ प्रतिशत और कुछ पर १० प्रतिशत आयात-कर की रियायत की गई, (२) ब्रिटेन ने भारतवर्ष में उसका जितना कपड़ा आवे उसके हिसाब से भारतवर्ष की रुई को अपने यहाँ लेने का बचन दिया, (३) भारतवर्ष और

साम्राज्यान्तर्गत अन्य देशों के बीच में रियायती आयात-कर लगाने का निश्चय हुआ, और (४) ब्रिटेन ने भारतवर्ष के कुछ माल को आयात-कर लिये बिना और कुछ को १० से २० प्रतिशत की रियायत पर लेने का वचन दिया।

सन् १९३४ और १९३७ के जापान और भारतवर्ष के बीच के व्यापारिक समझौते—सन् १९३२ के ओटावा के समझौते के कारण जापान और भारतवर्ष में बड़ा वैमनस्य हो गया था। अतः वह इन दोनों समझौतों से दूर किया गया था। इनके अनुसार इन देशों ने परस्पर एक दूसरे के व्यापार के साथ रियायत करने का निश्चय किया और भारतवर्ष ने जापान के कपड़ो के और जापान ने भारतवर्ष की रुई के आयात पर रियायती कर लगाने का वचन दिया। इससे भारतवर्ष की रुई के खपत का प्रश्न भी सुलझ गया।

सन् १९४१ का भारतवर्ष और बर्मा का व्यापारिक समझौता—जब से बर्मा भारतवर्ष से पृथक् हुआ था इस समझौते की बात-चीत हो रही थी। अतः, इसके हो जाने से दोनों को लाभ होने की आशा है, यद्यपि युद्ध की हालतों के कारण अभी तक ऐसा नहीं हुआ है।

(७) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में हमारी भविष्य में क्या नीति होनी चाहिये ?

इधर अमेरिका इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जहाँ तक सम्भव हो सके मुक्त द्वार नीति का पालन हो। इसी ध्येय से उसने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की है। पहिले तो इंगलैंड उसके साथ सहयोग करने के लिये तैयार नहीं था, किन्तु जब से उसने संरक्षण की नीति को भी थोड़ा बहुत मान लिया है वह भी उसका साथ देने को राजी हो गया है। भारतवर्ष के अस्थाई सरकार के उपसभापति और विदेशी विभाग के

मंत्री पं० जवाहर लाल जी ने तथा व्यापार (Commerce) मन्त्री श्री० भावा ने अपने प्रथम वक्तव्य में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सम्बन्ध में यह कहा था कि भारतवर्ष मिले-जुले राष्ट्रों से हर प्रकार का सहयोग करने के लिये तैयार तो है किन्तु उसकी नीति निर्बल देशों को संरक्षण, इत्यादि देने के पक्ष में है। श्री० भावा के स्थान में जब मुसलिम लीग के सदस्य मि० चन्दीगर आये थे उन्होंने भी इसी बात पर ज़ोर दिया था। जो हो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध मे शीघ्र ही एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होने वाला है। अतः, वह बड़े महत्व का होगा। कहना न होगा कि उसकी जो प्राथमिक बैठक अभी लन्दन में हुई थी उसमे हमारे देश के प्रति-निधिओं ने निर्बल देशों के लाभ के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे संरक्षण इत्यादि के सिद्धान्त को मनवा लिया है। अतः, हमको इसी सिद्धान्त पर काम करना होगा। यह तो हुई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में हमारी प्रधान नीति, किन्तु अब हमको इसको कुछ विस्तार मे भी समझ लेना चाहिये।

इस महायुद्ध के कुछ पहिले तक तो हमारे यहाँ के निर्यात की मुख्य वस्तुये यहाँ की खाद्य-सामग्री और कच्चा माल थीं, तथा आयात की वस्तुयें तैयार चाज़े थीं, किन्तु अब ऐसी बात नहीं है। निर्यात मे तो इस समय सबसे ऊँचा स्थान कपड़े का है। सन् १९३८-३९ के ७ लाख रुपये के मूल्य के स्थान पर यह सन् १९४५-४६ में ६० करोड़ रुपये का था। हमको जहाँ तक हो सके इसको न केवल बनाये रखना बल्कि और उन्नति देना चाहिये। फिर सन् १९३८-३९ की तुलना मे हमारे कच्चे चमड़े का निर्यात सन् १९४५-४६ में ३९,००० टन के स्थान पर १३,००० हो गया था, और इसके विपरीत कमाये हुये और तैयार चमड़े के निर्यात में यथेष्ट वृद्धि हुई थी। यही बात तेलहन के साथ भी थी। जब कि तेलहन और खली का निर्यात घट गया है तेल का निर्यात बढ़ा है। निर्यात पर के नियन्त्रण को हटाते

समय हमको इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि हमारा कच्चा माल बाहर न जाय बल्कि उसका स्थान जहाँ तक सम्भव हो पक्का माल ले लें। आयात में भी हमको सवारी के सामान, ऊनी और रेशमी वस्त्रों तथा मशीनों, इत्यादि के आयात पर ज़ोर डालना चाहिये।

अब उपरोक्त नीति को सफलीभूत बनाने के लिये हमको सभी उचित तरीकों का प्रयोग करना पड़ेगा। यदि आवश्यक हुआ तो हमें उन विदेशी वस्तुओं का आयात रोक देंगे जिनको हम स्वयम् अपने देश मे बनाना चाहते हैं। इसी तरह से हम यहाँ की खाद्य-सामग्री और उन कच्चे माल के निर्यात को रोक देंगे जो यहाँ के उद्योग-धन्धों में काम आ सकते हैं। इसके लिये यदि आवश्यक होगा तो हम आयात और निर्यात कर लगावेंगे, अथवा विनिमय की दर में उचित परिवतन करेंगे, अथवा अन्य जो नीति हमें रुचेगी उसको हम प्रयोग में लावेंगे।

विदेशी व्यापार की वृद्धि से भारत को उसी दशा में लाभ होगा जब हमारे निर्यात की अधिकांश वस्तुएँ बना हुआ माल और आयात की अधिकांश वस्तुएँ भारत में न बन सकने वाली वस्तुएँ और मशीनें इत्यादि होंगी। ऐसी दशा लाने के लिये भारत सरकार और भारत-वासियों को हमेशा प्रयत्न करना चाहिये।

(८) अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान कैसे होता है ?

अब हमको यह देखना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान कैसे होता है। मान लीजिये कि हमको बाहर से कोई चीज़ मँगानी है। अतः, उसके लिये हमको किसी ऐसे बैङ्क से जो विदेशी विनिमय का काम करता है उस देश की मुद्रा प्राप्त करने का प्रयत्न करना पड़ता है जहाँ की वस्तु हमको मँगानी है। इस समय तो हमको माल का आर्डर देने के पहिले इस बात का भी पता लगा लेना चाहिये कि

उस माल को मँगाने में कोई नियन्त्रण तो नहीं है। यदि है तो उसके लिये हमको आयात नियन्त्रण-विभाग से लिखित आज्ञा प्राप्त करनी होगी। इस लिखित आज्ञा के प्राप्त हो जाने के बाद हमको विदेशी मुद्रा को प्राप्त करने की भी आज्ञा लेनी पड़ेगी। यह काम हमारे लिये हमारा बैङ्क ही कर देता है। किन्तु यह सब कठिनाई युद्ध के बाद की परिस्थितियो के ही कारण है नहीं तो विदेशी मुद्राओं के प्राप्त करने में कोई विशेष कठिनता नहीं पड़ती है। अब जिस बैङ्क के द्वारा हमको विदेशी मुद्रा प्राप्त करनी है उससे हम यह कहेंगे कि वह अपने से सम्बन्धित किसी ऐसे बैङ्क को जो माल भेजने वाले के देश में हो इस बात का आदेश दे दे कि वह माल भेजने वाले से माल के सम्बन्ध के अधिकार-पत्र पा लेने पर उसके बिल को यदि वह एक निश्चित रकम तक का हो स्वीकृत कर ले। ऐसा हो जाने पर हम तो इसकी सूचना माल भेजने वाले को दे देंगे और बैङ्क इसकी सूचना अपने से सम्बन्धित उस विदेशी बैङ्क को दे देगा जिसको इस बिल की स्वीकृति करनी है। कहना न होगा कि एक तरफ़ से तो माल भेजने वाले को हमारी सूचना मिलती है, और दूसरी तरफ़ से उसको वही सूचना उस बैङ्क से मिलती है जिसके ऊपर उसको बिल करना है। बस माल भेजने वाला इस सूचना के पाने पर माल भेज देता है और माल के मूल्य का एक बिल उस निश्चित बैङ्क के ऊपर लिख लेता है। यह बैङ्क उससे माल के सम्बन्ध के सारे अधिकार-पत्रो को प्राप्त करके उस बिल पर अपनी स्वीकृति दे देता है, और माल के वह सब अधिकार-पत्र यहाँ उस बैङ्क के पास भेज देता है जिसने उसको ऐसा करने का आदेश दिया था। इस सम्बन्ध में यहाँ पर यह भी बता देना आवश्यक है कि भारतवर्ष में विनिमय का काम करने वाले जितने बैङ्क हैं वह सब विदेशी हैं। अतः, वह यहाँ पर अपने यहाँ के व्यापारियों को यहाँ के व्यापारियों की अपेक्षा अधिक सुविधायें देते हैं।

उदाहरण के लिये उपरोक्त काम करने के लिये जब कि वह भारतीय व्यापारियों से बिल की रकम का १० अथवा १५ प्रतिशत पहिले ही से माँग लेते हैं अपने देश के व्यापारियों से ऐसा नहीं करते हैं।" फिर वह विदेशी व्यापारियों को यहाँ के व्यापारियों का हवाला भी सन्तोषजनक नहीं देते हैं जिससे वह लोग इनको बिल की स्वीकृति पर माल के अधिकार-पत्र न देकर उसके भुगतान पर देते हैं जिससे उनकी व्याज की हानि होती है। तीसरे माल के अधिकार-पत्र, इत्यादि के यहाँ पर आ जाने पर वह उन्हें उनको देखने के लिये अपने दफ्तर मे बुलाते हैं और अपने देश के व्यापारियों के पास वैसे ही भेज देते हैं। वह उनको अपने यहाँ हिसाब-किताब भी रखने को बाध्य करते हैं। जो हो, माल मँगाने वाला व्यापारी विनिमय की एक निश्चित दर से बिल का भुगतान यहाँ की मुद्रा मे करके माल के अधिकार-पत्रों को ले लेता है और माल मँगा लेता है।

भुगतान का जो ढङ्ग यहाँ का माल मँगाने वाला व्यापारी काम में लाता है वही ढङ्ग बाहर वाला व्यापारी भी यहाँ से माल मँगाने के सम्बन्ध मे काम मे लाता है। हाँ, उसके यहाँ के बैङ्कों के उसके सम्बन्ध ठीक हवाला देने के कारण यहाँ से उसके ऊपर ऐसे बिल को, लिखा जाता है जिसकी स्वीकृति पर ही उसको माल के सम्बन्ध के अधिकार-पत्र प्राप्त हो जाते हैं। फिर यहाँ के भारतीय व्यापारियों की तरह वहाँ पर उनको जितने का माल मँगाना है उसका १० या १५ प्रतिशत वहाँ के बैङ्क में भी नहीं जमा करना पड़ता है। इसके अलावा यहाँ के विदेशी बैङ्क यहाँ से माल भेजने के सम्बन्ध के बिलों को तभी स्वीकार करते हैं जब माल विदेशी जहाजों पर भेजा जाता है और उसका बीमा भी विदेशी कम्पनियों से किया जाता है। अन्तिम बात यह है कि यहाँ के आयात और निर्यात दोनों के सम्बन्ध के बिल विदेशी मुद्राओं में और विशेषकर पाउन्ड में होते हैं जिससे वह

विदेशी बाज़ारों और विशेषकर लन्दन में ही भुंजाये जाते हैं। इससे भारतवर्ष में बिलों के बाज़ार की उन्नति नहीं हो पाती है।

माल के आयात के सम्बन्ध में भुगतान भेजने के अन्य कई तरीके भी हैं। एक तो किसी भी बैङ्क से उसका रुपया देकर एक बैङ्क ड्राफ्ट लिया जा सकता है और वह बाहर भेजा जा सकता है। दूसरे यदि पाने वाले को शीघ्र ही रुपया मिलना चाहिये तो वह तार (Telegraphic Transfer) से भी भेजा जा सकता है। तीसरे जिन देशों में स्टर्लिंग मुद्रा चलती है उनमें चालीस पाउण्ड तक मनिआर्डर भी भेजा जा सकता है। चौथे यदि भुगतान की रक़म छै पेंस से इक्कीस शिलिङ्ग तक की है और वह ब्रिटेन को भेजनी है तो यह ब्रिटिश पोस्टल आर्डर से भी भेजी जा सकती है। यह ब्रिटिश पोस्टल आर्डर यहाँ पर सभी डाकघरों में ६ पेंस से लेकर २१ शिलिङ्ग तक की ऐसी भिन्न-भिन्न रक़मों के मिलते हैं जो ६ शिलिङ्ग से भाग की जा सकती हैं। इन पर प्रति पोस्टल आर्डर १ आना कमीशन देना पड़ता है। यदि किसी पोस्टल आर्डर की रक़म से ६ पेंस से नीची रक़म का भुगतान करना है तो उतने का टिकट लेकर पोस्टल आर्डर पर लगा दिया जाता है। बस यह पोस्टल आर्डर ऐसे व्यक्ति के पास भेज दिये जाते हैं जिसको भुगतान करना है।

११. निर्यात

(१) निर्यात का क्रम (Procedure), (२) भारतवर्ष के निर्यात का व्यापार, (३) भारत के मुख्य निर्यात, (४) हमारा निर्यात कहाँ जाता है, (५) हमारे निर्यात में हमारा भाग, (६) युद्ध-काल और हमारा निर्यात, (७) भविष्य में हमारा निर्यात।

पिछले अध्याय में तो हमने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में जानने योग्य कुछ बातों का अध्ययन किया था किन्तु इस अध्याय में हम केवल निर्यात के विषय में कुछ विशेष तौर पर अध्ययन करेंगे। अतः, इस सम्बन्ध में सबसे पहिला प्रश्न यह उठता है कि निर्यात का क्या क्रम है।

(१) निर्यात का क्रम (Procedure)

यदि हमको किसी वस्तु का निर्यात करना है तो आजकल तो इन युद्धकालीन नियन्त्रणों के समय में पहिले तो हमें इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि उस वस्तु का यहाँ से निर्यात हो भी सकता है अथवा नहीं। कुछ वस्तुओं के निर्यात के लिये एक अधिकार-पत्र की भी आवश्यकता पड़ती है। यदि ऐसा है तो पहिले हमको उसको प्राप्त कर लेना चाहिये। फिर हमको जो माल बाहर भेजना है उसको भली-भाँति पैक कर लेना चाहिये। अधिकतर जो आर्डर आते हैं उनमें पैकिङ्ग के विषय में भी कुछ आदेश रहता है। यदि ऐसा है तो पैकिंग उन्हीं आदेशों के अनुसार होनी चाहिये। हाँ, यदि ऐसा कोई आदेश नहीं है तो भी उसको ऐसी होशियारी से करना चाहिये कि रास्ते में माल टूट-फूट अथवा खराब न हो जाय। विदेशों को माल भेजने में देश के अन्दर माल भेजने की अपेक्षा पैकिङ्ग का

बड़ा ध्यान रखना चाहिये। एक तो माल को बहुत दूर जाना पड़ता है, अतः उसकी पैकिङ्ग ठीक न होने से वह ख़राब हो सकता है। दूसरे हर देशों के लोगों का पैकिङ्ग के विषय में कुछ अपना विचार होता है। कोई देश किसी तरह की पैकिङ्ग को पसन्द करता है और कोई किसी तरह की। अतः, पैकिङ्ग ऐसी होनी चाहिये जो क्रेता को पसन्द हो। माल के पैक हो जाने के बाद यदि उसको खरीदने के समय चुङ्गी दी गई थी तो उसकी वापसी लेनी चाहिये। इसके लिये वापसी का काग़ज़ भरना पड़ता है। अतः, वापसी के सम्बन्ध के क्रम को पूरा करके माल को रेलवे स्टेशन पहुँचाना चाहिये। वहाँ से यदि सवारी गाडी पर माल जाना है तो एक फारवार्डिङ्ग नोट (Forwarding Note) और यदि मालगाड़ी से माल जाना है तो एक कन्साइनमैन्ट नोट (Consignment Note) भरना पडता है। कुछ स्थानों मे इनको फर्वरी कहते हैं। कुछ माल रेलवे कम्पनी अपने उत्तरदायित्व पर नहीं ले जाती है। अतः, उनके सम्बन्ध में उपरोक्त के अलावा एक उत्तर-दायित्व का पत्र (Risk Note) भी भरना पड़ता है। इसको भरने के यह अर्थ हैं कि माल भेजने वाले की जोखिम पर जा रहा है। अब, यदि रेलवे के कर्मचारियों से जान कर कोई चूक नहीं होती है और माल रास्ते में टूट-फूट जाता है अथवा खराब हो जाता है तो रेलवे पर उसका उत्तरदायित्व नहीं रहता है।

प्रत्येक बन्दरगाह पर कुछ ऐसे लोग रहते हैं जिनका काम देश के अन्दर से आये हुये माल को छुडाना और फिर उनको विदेशों को भेजना रहता है। अधिकतर यह लोग विदेश से आये हुये माल को भी छुड़ा कर देश के अन्दर भेजते हैं। इन्हें साधारण तौर पर माल लादने वाले और छुड़ाने वाले (Forwarding and Clearing Agents) कहा जाता है। ये लोग यह काम निर्यात करने वाले अथवा आयात करने वाले के जैसा हो प्रतिनिधि के रूप में करते हैं।

अतः, माल के निर्यात करने वाले को पहिले जिस बन्दरगाह से माल बाहर भेजना है उस बन्दरगाह के किसी ऐसे माल लादने वाले प्रतिनिधि से लिखा-पढ़ी कर लेनी चाहिये। जो लोग बराबर अपना माल बाहर भेजते रहते हैं उनके हमेशा के लिये ऐसे व्यक्ति निर्धारित होते हैं। अतः इन्हीं को माल के सम्बन्ध की रेलवे रसीद और बीजक भेज दिया जाता है और यह उसको बन्दरगाह पर छुडा कर बाहर भेजने का प्रबन्ध करते हैं।

माल के लादने वाले की बड़ी जिम्मेदारी होती है। उसको उपरोक्त कागज़ात के मिलते ही जहाज़ों के दलालो से इस बात का पता लगाना चाहिये कि जिस देश को माल जाना है उसको शीघ्र से शीघ्र कौन-सा जहाज़ और कब जायगा। फिर उसको किराये, इत्यादि को भी तै करना चाहिये। इधर तो वह यह करता है उधर वह यह भी देखता रहता है कि माल बन्दरगाह पर आ तो नहीं गया है। निर्यात के माल शहर के रेलवे स्टेशन पर नहीं वरन् बन्दरगाह के स्टेशन पर ही सीधे भेज दिये जाते हैं। यदि इनको ठीक समय पर नहीं छुड़ाया जाता है तो इन पर एक प्रकार का जुर्माना लगता है जिसे अँग्रेज़ी में डेमरेज (Demurrage) कहते हैं।

जिस कम्पनी के जहाज़ से माल भेजना है उसके प्रतिनिधि के पास से माल लादने वाला स्वयम् अथवा दलाल के माफ़र्त माल ले जाने का एक आदेश-पत्र (Shipping Order) प्राप्त कर लेता है। वास्तव में इसी आदेश-पत्र के आधार पर उस जहाज का कप्तान माल को अपने जहाज़ पर लादने की अनुमति देता है।

एक तरफ़ तो माल ले जाने के लिये उपरोक्त आदेश-पत्र प्राप्त किया जाता है और दूसरी ओर चुङ्गी से निपटा जाता है। इसके लिये माल लादने वाले को एक माल लादने का बिल (Shipping Bill) भरना पड़ता है। यह वास्तव में तीन प्रकार का होता है, (१) उन वस्तुओं के लिये जिन पर कोई निर्यात-कर नहीं लगता है,

(२) उनके लिये जिनपर निर्यात-कर लगता है, और (३) उनके लिये जिन पर निर्यात-कर एक निर्धारित मूल्य पर लगता है। अतः, जैसा माल होगा उसीके अनुसार यह बिल भरा जायगा। फिर निर्यात विभाग के एक दफ़्तर में माल भेजने वाले और पाने वाले के नामों की जाँच होती है (यह केवल युद्धकालीन नियन्त्रणों के कारण होता है); और दूसरे दफ़्तर में (यह दफ़्तर भी युद्ध कालीन नियन्त्रणों के कारण स्थापित किया गया है) निर्यात के प्रार्थना-पत्र की अन्तिम बार जाँच होती है और उस पर अन्तिम आदेश मिलता है। इस क्रम के उपरान्त माल लादने का बिल फिर निर्यात-विभाग में वापस आ जाता है जहाँ पर उस पर क्रम संख्या पड़ती है और चुंगी के सहायक कलक्टर के नाम पर उस विभाग का अध्यक्ष उस पर हस्ताक्षर करके माल को लादने की अनुमति देता है। यदि माल पर निर्यात-कर लगना है तो वह कर लगाने वाले विभाग को भेज दिया जाता है, और वहाँ पर कर की रकम निर्धारित की जाती है। और यदि उस पर कर नहीं लगना है तो वह ऐसे ही माल लादने वाले को वापस कर दिया जाता है। जिस माल के निर्यात पर कर लगना है उसके सम्बन्ध के लादने वाले बिल पर जब कर की रकम निर्धारित हो जाती है तब वह वहीं पर चुंगी के सहायक कलक्टर के दफ़्तर में जमा कर दी जाती है। माल लादने वाले बिल से निर्यात के आँकड़े भी तैयार कर लिये जाते हैं। बम्बई में तो इसके लिये निर्यात-विभाग में थोड़ा-सा स्थान वहाँ के व्यापारिक चेम्बर (Bombay Chamber of Commerce) को दे दिया गया है। वह आँकड़े भी तैयार करता है और आगे चल कर बन्दरगाह के ऊपर जो माल के गाँठ, इत्यादि को नापा जाता है उसके लिये शुल्क भी वसूल लेता है।

यहाँ से निपटने के बाद यह माल लादने का बिल उस स्थान के अध्यक्ष के पास ले जाया जाता है जहाँ माल ले जाने वाला

जहाज़ बन्दरगाह पर खड़ा हुआ है। प्रत्येक बन्दरगाह पर ऐसे अनेकों स्थान होते हैं जहाँ जहाज़ खड़े किये जाते हैं। अतः हर जहाज़ को एक ऐसा स्थान दे दिया जाता है और उस पर एक अध्यक्ष नियुक्त रहता है। यह अध्यक्ष माल लादने के बिल की पीठ पर हस्ताक्षर करके माल को उस स्थान पर लाने की अनुमति देता है। अब या तो माल लादने वाला स्वयम् माल वहाँ ले आता है अथवा इसके लिये किसी माल ले जाने वाले ठेकेदार को नियुक्त करता है। जब माल जहाज़ के ठहरने के स्थान पर जाता है उसकी गाँठें अच्छी तरह से गिन ली जाती हैं।

जहाज़ के ठहरने के स्थान पर गाँठो इत्यादि को नापने के लिये एक व्यक्ति रहता है। बम्बई में जैसा पहिले कहा जा चुका है इसके लिये वहाँ के व्यापारिक चेम्बर को यह काम सौंप दिया गया है। गाँठों की नाप माल ले जाने वाले आदेश-पत्र पर लिख दी जाती है जिससे जहाज़ी कम्पनी का प्रतिनिधि जहाज़ का महसूल निर्धारित करता है। यह तो पहिले ही बता दिया गया है कि इस नापने का शुल्क निर्यात-विभाग के दफ़्तर में पहिले ही वसूल कर लिया जाता है। डक पर चुंगी विभाग के जाँच करने वाले भी होते हैं। अतः वह यह देखते हैं कि निर्यात का माल, माल लादने के बिल पर जो लिखा हुआ है उसके अनुसार है अथवा नहीं। यदि वह उसके अनुसार नहीं है तो वह जहाज़ पर नहीं लद सकता है। इस जाँच के बाद माल जहाज़ पर लाद दिया जाता है। जहाज पर उसका कप्तान रहता है। अतः, उसी की देख-रेख में माल जहाज़ पर लदता है। ऐसा हो जाने पर वह एक रसीद देता है जिसको अंग्रेज़ी में मेट्स रसीद (Mate's Receipt) कहते हैं। यदि माल की गाँठें, इत्यादि ठीक तौर पर नहीं बनी हैं तो आपत्तिजनक मेट रसीद (Fowl Mate's Receipt) दी जाती है। और यदि वह ठीक है तो साफ मेट रसीद (Clean Mate's Receipt) दी जाती है।

मेट रसीद पाने के बाद माल लादने वाले को जहाजी कम्पनी के दफ़्तर में फिर आना पड़ता है। वहाँ पर वह बिल आफ़ लैंडिङ्ग के काग़ज़ खरीदता है। इनमें से तीन पर तो स्टाम्प लगे होते हैं और छै से लेकर आठ तक बिना स्टाम्प के काग़ज़ होते है। जहाज़ी कम्पनी के अफ़सर इन सबको भरते हैं और फिर मेट रसीद लेकर स्टाम्प वाले बिल आफ़ लैंडिङ्ग माल लादने वाले को दे देते हैं। इसमें जहाज के महसूल की रक़म भी लिखी होती है।

अब माल लादने वाला अपने खर्चे का बिल और उसके सम्बन्ध की रसीदें तथा बिल आफ लेडिङ्ग, इत्यादि माल भेजने वाले के पास भेज देता है। कभी-कभी माल भेजने वालों का इन माल लादने वालों से सीधा सम्बन्ध नहीं होता है। अतः, वह अपने बैङ्क को रेलवे रसीद दे देते हैं और बैङ्क किसी माल लादने वाले के मार्फ़त माल लदवाता है। ऐसी अवस्था में माल लादने वाला अपने खर्चे का बिल और सब काग़ज़ात बैङ्क को दे देता है और वह उनको माल भेजने वाले के पास भेज देता है। माल भेजने वाला माल लादने वाले के बिल का या तो नगद भुगतान कर देता है या यदि उन दोनो का हिसाब-किताब होता है तो वह उसी में लिख जाता है। यदि यह काम बैङ्क के मार्फ़त होता है तो भुगतान भी उसी के मार्फ़त होता है।

जो माल समुद्री रास्ते से भेजा जाता है उसका बीमा कराना भी आवश्यक होता है। अतः, माल भेजने वाला किसी कम्पनी से उसका बीमा करा लेता है। यह वह स्वयम् अथवा किसी दलाल के मार्फ़त करवा सकता है। बीमा हो जाने पर उसको बीमा पालिसी मिलती है। कुछ व्यापारी तो जब-जब माल बाहर भेजते हैं तब-तब उसका बीमा कराते हैं और कुछ व्यापारी एक निश्चित रकम की एक चालू पालिसी एक बार ले लेते हैं और जैसे-जैसे माल भेजते जाते है बीमा कम्पनी को खबर करते जाते हैं और वह जोखिम जोड़ती जाती है। यह तब तक होता रहता है जब तक या तो चालू पालिसी की

अवधि नहीं समाप्त होती अथवा उसकी रक़म पूरी नहीं हो जाती है। ऐसी पालिसी लेने से बीमे की दर, इत्यादि को बार-बार तै करने की झंझट से बचत हो जाती है और साथ ही प्रीमियम में भी कुछ रियायत हो जाती है। उधर बीमा कम्पनी यह समझती है कि हमको इस माल भेजने वाले का सारा काम मिल गया, यह किसी अन्य कम्पनी के पास नहीं जायगा।

कुछ देशों में कुछ देशों के माल पर रियायती आयात-कर लगाया जाता है। यदि ऐसा है तो एक उद्गम के प्रमाणपत्र (Certificate of Origin) की आवश्यकता पड़ती है जिसको इस देश में बम्बई व्यापार मण्डल (Bombay Chamber of Commerce) देता है। अतः, माल, भेजने वाले को उसका शुल्क देकर उससे यह प्राप्त कर लेना चाहिये। वास्तव मे जिस समय माल के बण्डलों के नाम का शुल्क दिया जाता है उसी समय इसका शुल्क, इत्यादि भी दे दिया जाता है।

कुछ देश अपने यहाँ बहुत से माल का आयात नहीं होने देते हैं। अतः, यदि उनके यहाँ कोई माल भेजा जाता है तो एक ऐसे प्रमाण-पत्र की आवश्यकता पड़ती है जो यह बता दे कि बण्डलों में ऐसा निषेध किया हुआ माल नहीं है। यह प्रमाण-पत्र प्रत्येक देश का कसल एक कसुलर बीजक के रूप मे देता है। कहना न होगा कि हमारे देश मे सब देशों के कसल कलकत्ते अथवा बम्बई में रहते हैं।

माल भेजने वाला बिल आफ़ लेंडिङ्ग, बीमा पालिसी, कसुलर बीजक, उद्गम का प्रमाण-पत्र, इत्यादि पा जाने पर एक बिल और एक बीजक तैयार करता है। बिल मे वह माल खरीदने वाले को माल का रुपया देने का आदेश करता है और बीजक मे वह माल की क़ीमत, उसकी किस्म, उसका परिमाण, और उस पर का खर्च, इत्यादि दिखलाता है।

अब माल का भेजने वाला उस बैङ्क के पास जाता है जो माल मँगाने वाले की तरफ़ से बिल पर स्वीकृति देने को तैयार होता है।

यह तो हम पिछले अध्याय में देख ही चुके हैं कि यदि हम कहीं बाहर से माल मँगाते हैं तो हमको विदेश में किसी ऐसे बैङ्क का प्रबन्ध करना पड़ता है जो हमारे ऊपर किये गये बिल पर स्वीकृति दे दे और यदि कोई बाहर वाला हमसे माल मँगाता है तो उसको भी ऐसा करना पड़ता है। अतः यह बैङ्क माल-सम्बन्धी कागज़ात को लेकर बिल पर स्वीकृति दे देता है। अब यह कहीं भी डिस्काउंट कराया जा सकता है। भारतवर्ष में बिल को उसी बैङ्क से डिस्काउंट भी करा लिया जाता है जो क्रेता की तरफ़ से उस पर स्वीकृति देता है। बिल को डिस्काउंट करने वाला बैङ्क माल भजने वाले से एक बन्धक-पत्र भी लेता है जिससे यदि माल का क्रेता माल के कागजात न ले तो वह स्वयम् माल छुड़वा कर उसको बेच ले और इस तरह से अपना रुपया वसूल कर ले। किन्तु जब माल मँगाने वाला किसी बैङ्क को स्वयम् ही उसके ऊपर किये हुये बिल पर स्वीकृति देने का आदेश दिलवाता है तब ऐसा होने की सम्भावना नहीं रहती है।

इतना सब करने के बाद माल भेजने वाला माल मँगाने वाले के पास माल भेजने की सूचना दे देता है।

(२) भारतवर्ष के निर्यात का व्यापार

भारतवर्ष के निर्यात का व्यापार बहुत पुराने समय से होता चला आ रहा है। मिश्र, अरब, जर्मनी, चीन, जापान, जावा, और सुमात्रा आदि में खुदाई होने पर यहाँ के निर्यात की चीज़ें पाई जाती हैं। मिश्र के मुर्दे यहाँ की मलमल में लिपटे हुये मिलते हैं। डचों के पूर्वी द्वीपों के बन्दरगाहों के नाम भारतीय शहरों के ही तरह के हैं। चीन को यहाँ का निर्यात स्थल के रास्तों से जाता था। डेविड नाम के एक लेखक ने यह लिखा है कि ईसा के जन्म के पहिले यहाँ से रेशमी और सूती कपड़े, ऊनी कम्बल, चाकू, छुरे, अस्त्र, शस्त्र, गोटा, किनारी, पट्टा, जरी, इत्र, हाथीदाँत की वस्तुयें और जवाहिरात, इत्यादि बराबर जाते थे। उस समय भारतवर्ष एक प्रकार से संसार का

कारखाना समझा जाता था। किन्तु यवनो के हमलो के कारण बाद में यह बात न रही। उस समय सबसे बड़ा प्रश्न यहाँ के लोगों के जीवन की रक्षा का हो गया था। अतः, यहाँ से जो चीज़ें बाहर जाती थीं वह यवन व्यपारियों ही के द्वारा जाती थीं। स्पेन और पुर्तगाल वालों ने मुसलमानों को इस व्यापार को करते देखकर स्वयम् पूर्व का रास्ता खोज निकालने का और भारतवर्ष के व्यापार को हथियाने का बड़ा प्रयत्न किया। बाद मे मुग़लों के समय में यहाँ पर डच और फ्रांसीसी आये और अन्त में अंग्रेज़ लोग आये। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालको ने अपने देश का ध्यान न रख कर जिस तरह से भी हो सका यहाँ के व्यापार से अपनी जेबें भरीं। उन्हें उनके यहाँ की सरकार ने भारतवर्ष के व्यापार का एकाधिपत्य दे रक्खा था और इससे उन्होने मनमाना लाभ उठाया। उस समय यहाँ से सूती और रेशमी कपडो का, मसालो, चीनी और नील का, खनिज पदार्थों और औषधियों का निर्यात होता था। बाद में मुग़ल साम्राज्य कमज़ोर पड़ गया, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधियो ने यहाँ के राजाओं को तथा नवाबों को एक दूसरे से लड़ा कर अपने को खूब मजबूत बना लिया। कुछ लोग इनकी चाल को समझ गये थे, किन्तु उन लोगों की कुछ न चली। अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी तोड़ दी गई और उसका भारतीय राज्य सम्राट ने स्वयम् अपने हाथो में ले लिया। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है सम्राट की सरकार भी अपने लोगो को यहाँ के व्यापार में बराबर मदद देती रही। धीरे-धीरे अंग्रेज़ी व्यापारियों का ध्येय यहाँ की कारीगरी को बर्बाद करके यहाँ के खाद्य-पदार्थों और कच्चे माल को अपने देश मे ले जाने का और अपने देश का तैयार माल यहाँ पर लाने का ही रह गया। अतः, प्रथम महायुद्ध के पहिले तक यहाँ के निर्यात का रूप ही पूरी तरह से बदल गया था। सन् १९१३-१४ में यहाँ से ४५ करोड़ रु० के खाद्य पदार्थ, ४१ करोड़ रु० की रुई, ३१ करोड़ रु०

का कच्चा जूट, २८ करोड़ रु० का जूट का तैयार माल, २६ करोड़ रु० का तेलहन, १६ करोड़ रु० का चमड़ा और १५ करोड़ रु० की चाय बाहर गई थी। यदि यहाँ का खाद्य-पदार्थ इंग्लैण्ड न जाता तो वहाँ के लोग कारीगरी की ओर ध्यान दे ही नहीं सकते थे और यदि यहाँ की रुई वहाँ न जाती तो वहाँ की मिलें चल ही न पातीं। किन्तु प्रथम महायुद्ध के समय यहाँ की कारीगरी ने थोडी बहुत उन्नति की और उसके बाद यह उन्नति बराबर होती रही। अतः, सन् १६३६-४० में यहाँ से खाद्य पदार्थ केवल ५ करोड़ रु० के, रुई (तैयार माल भी) ३० करोड़ रु० की, कच्चा जूट २० करोड़ रु० का, जूट का तैयार माल ४६ करोड़ रु० का, तेलहन १२ करोड़ रु० का, चमड़ा ११ करोड़ रु० का, और चाय २६ करोड़ रु० की बाहर गई थी। इससे यह स्पष्ट है कि १६१८ के बाद १६३६ तक में भारतवर्ष से खाद्य-पदार्थों का जाना बहुत कम हो गया था और कच्चा माल भी यहाँ से उतना नहीं जाता था जितना पहिले जाया करता था। साथ ही इस बीच में यहाँ से कुछ तैयार माल भी जाने लगा था। अब इस युद्ध में यह बात उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अतः, सन् १६४५-४६ में यहाँ से कच्चा जूट केवल १६ करोड़ रु० का और जूट का तैयार माल ६० करोड़ रु० का, कच्ची रुई १४ करोड़ रु० की और सूती कपड़ा ६० करोड़ रु० का, चाय ३५ करोड़ की, चमड़ा कच्चा ५ करोड़ रु० का और बना हुआ ६ करोड़ रु० का, तेलहन १ करोड़ रु० का, खली ७१ लाख रु० की और तेल १½ करोड़ रु० का बाहर गया था। जो हो भविष्य के लिये हमको बहुत होशियार हो जाना चाहिये। युद्ध-काल में तो विदेशी बाजारों में हमारी प्रतियोगिता नहीं थी, किन्तु आगे चल कर तो ऐसा होगा। इससे हमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हम उस प्रतियोगिता में ठहर सकें। वैसे तो हमारे लिये अब बहुत अधिक निर्यात की आवश्यकता नहीं रही। इस युद्ध के पहिले तक तो हमको लगभग ५० करोड़ रु० विलायत

को देना पड़ता था। यह हमारे ऊपर किसी कर के रूप में नहीं था। बात यह थी कि बहुत से अंग्रेज़ यहाँ पर काम करते हैं। अतः उनकी पेंशन, इत्यादि हमें देनी पड़ती है। वह जो बचत का रुपया अपने घर भेजते हैं वह भी हमें देना पड़ता है। इसके अलावा अंग्रेज़ लोग हमारा जो माल बाहर ले जाते थे उसका किराया, बीमे का प्रीमियम, बैंकिङ्ग का खर्च, उनकी जो यहाँ पर कम्पनियाँ हैं उनके लाभ, उनका जो रुपया हमारी सरकार ने ले रक्खा था उसका ब्याज, इत्यादि भी हमें देना पडता था। अब, अंग्रेज लोग जा रहे हैं, सिविल सर्विस समाप्त हो रही है, हम अपने स्वयम् के जहाजों पर अपना माल बाहर ले जायँगे हमारी बीमा कम्पनियाँ होंगी, हमारे बैङ्क होंगे, अंग्रेज़ों का कर्ज़ हमने निपटा दिया है, बल्कि हमारा कर्ज़ उनके ऊपर चाहिये, उसका ब्याज हमें मिलेगा, उनकी कम्पनियाँ हम खरीदे ले रहे हैं। अतः उनका लाभ भी बाहर न जायगा। इससे अब हमको कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है कि हम अधिक से अधिक माल बाहर भेज कर कम से कम ५० करोड़ रु० वार्षिक बचायें ही। किन्तु हमको अपने आयात का तो भुगतान करना ही है। हम अपने उपभोग के सामान बाहर से कम से कम मँगायेंगे, किन्तु हमें मशीनें तो मँगानी है, विदेशी कारीगरों को रखना है। अतः, उसके लिये हमारे निर्यात की आवश्यकता है। किन्तु यह निर्यात अब कच्चे माल का नहीं हो सकता। हम स्वयम् अपने यहाँ की कारीगरी को प्रोत्साहन देना चाहते हैं। हम खाद्य-पदार्थ भी बाहर नहीं भेज सकते। हमारे यहाँ के लोग स्वयम् भूखों मर रहे हैं। बस यदि हम कुछ भेज सकते हैं तो तैयार माल भेज सकते हैं। हमारा कपड़ा पूर्वी द्वीपों में, अफ्रीका में, अरब, इत्यादि देशों में जाता है। हम इन्हीं देशों को अपना कपड़ा भेजना चाहते हैं। हाँ, हम चाय और जूट भी भेजेंगे। इनके अतिरिक्त यदि हमारे पास है और दूसरे हमसे लेना चाहते हैं तो हम उन्हें अपने यहाँ का तैयार माल भी देंगे।

(३) भारत के मुख्य निर्यात

अब हम भारत के मुख्य मुख्य निर्यातों का विशेष रूप से सन्क्षेप में विचार करेंगे।

रुई—यह भारत का एक मुख्य निर्यात है जो विशेषत: संयुक्त राज्य तथा जापान को जाती है। यह भारत के कुल निर्यात का १५ प्रतिशत है। बीच में द्वितीय महायुद्ध के समय से भारतीय रुई का निर्यात गिर गया है। इस महायुद्ध के पहिले अनुमानतः ४०० टन रुई जो कि लगभग २५ करोड़ की होती थी, भेजी जाती थीं। धुलेरा, भड़ौच, उमरास, धारवाड़, कुम्पटास, आदि भारतीय रुई की जातियाँ हैं। इनमें से भड़ौच जाति की रुई जो कि पश्चिमी भारत में पैदा होती है बहुत उत्तम होती है। हाल ही में खानदेश में होनेवाली जरीला नाम की रुई भी भड़ौच के मुकाबिले में समान दरजे की साबित हुई है। हींगनघाट में पैदा होने वाली रुई तथा बंगाल में गंगाजी के बेसिन में होनेवाली रुई भी अब कुछ उत्तम साबित हो रही है—मुख्यतः, भारत से जो निर्यात बाहर जाता है उसमें ⅞ इंच वाले छोटे रेशे की रुई की ही प्रधानता रहती है। द्वितीय महायुद्ध के पहिले जापान हमारी रुई का सबसे बड़ा ग्राहक था। इस महायुद्ध के समय हमारी रुई का निर्यात कुछ चीन को भी गया। सन् १६४०-४१ में तो यह लगभग एक लाख पैंतीस हजार टन का था। इस समय जापान की राजनैतिक परिस्थिति महायुद्ध के कारण बिगड़ जाने से भारतीय रुई का एक बड़ा ग्राहक खो गया है। परन्तु हमें आशा है कि निकट भविष्य में चीन, जापान तथा इन्डो-चीन हमारी रुई के अच्छे ग्राहक होंगे।

भारत की वर्तमान परिस्थिति कपड़े की तंगी, श्रमिकों की बेकारी तथा जन संख्या की वृद्धि आदि समस्यायों को ध्यान में रखते हुये हम यह कहेंगे कि भारतीय रुई अधिक से अधिक घरेलू उद्योग-धन्धों में खर्च की जाय तथा देशी पुतली घरों व मिलों के उपयोग में लाई जाय

तथा वही रुई बाहर भेजी जाय जो देश की खपत से शेष रह जाय तथा जहाँ तक सम्भव हो उस शेष रुई का भी कपड़ा तैयार करके एशियाई राष्ट्रों के साथ व्यापार किया जाय।

महायुद्ध के कारण कपड़े की विकट अवस्था हो गई है। अतः इस समय भारतीय मिलें कपड़े का कम से कम निर्यात बाहर भेजें। हाँ, भविष्य में जब भारत में ग्रामीण उद्योग-धन्धों द्वारा स्थानीय खपत के लिये खद्दर प्रचुर परिमाण में बनने लगे तो मिलों द्वारा तैयार कपड़े के निर्यात को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय।

जूट—यह भारत का प्रधान तथा प्रसिद्ध निर्यात है। इसका निर्यात कुल भारतीय निर्यात का ३० प्रतिशत है। जूट का सबसे बड़ा ग्राहक ब्रिटेन है। इस महायुद्ध के पहिले जर्मनी भी जूट का एक बड़ा ग्राहक था। परन्तु इस समय उसकी दशा बिगड़ गई है। बोरा, बोरी, झोला, चटाई आदि बनाने के लिये जूट दुनिया मे सबसे सस्ती रेशेदार वस्तु है। गल्ले, चावल आदि के लिये बोरों की आवश्यकता पड़ती है और इसके लिए जूट के ही बोरे सबसे अधिक सुविधापूर्ण होते हैं। दुनिया में जहाँ तक गल्ले के व्यापार का सम्बन्ध है वहाँ तक जूट के बोरों का भी सम्बन्ध है। अतः, जूट कच्ची दशा में न भेज कर बोरों का ही निर्यात किया जाय। कुल कच्चे जूट का वार्षिक निर्यात लगभग पचास लाख टन के हैं जो कि पन्द्रह करोड़ रुपये से अधिक का होता है। यहाँ पर अभी जूट के बहुत से कारखाने खोले जा सकते हैं।

कच्चे जूट का निर्यात-कर इतना अधिक है कि यह सन्देह किया जाता है कि ऐसा न हो कि भारतीय जूट दुनिया के बाजारों मे स्थान-च्युत हो जाय। अतः भारत सरकार को चाहिये कि इसके निर्यात-कर में संशोधन करे। बेहतर तो यही है कि कचा जूट बहुत कम तादाद में निर्यात किया जाय तथा उसके बदले में बोरों का ही निर्यात अधिक किया जाय। यदि कोशिश की जाय तो इससे चटाई, दरियाँ,

रंग-बिरंगे गलीचे, नकली ऊन तथा उससे बना हुआ नक़ली, ऊनी माल, लोई, गलीचे आदि भी बन सकते हैं तथा इसकी कनवास भी बनाई जा सकती है। भारतीय व्यवसायियों को इस पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

कच्चे जूट के अलावा जो यहाँ से जूट के तैयार माल का निर्यात होता है वह भी कम नहीं है। यह भारत के कुल निर्यात का लगभग २५ प्रतिशत है। अभी तक तो विशेष तौर पर बोरे, बोरी, चट्टी, बाध, रस्सी आदि ही का निर्यात अधिक है। महायुद्धोत्तर इस वर्त्तमान समय में बहुत सम्भव है कि विदेशों में जूट व जूट के तैयार माल की खपत कम हो जाय। भारत इस समय एक ग़रीब देश है। यदि जूट के रेशों में कुछ रुई मिला कर सस्ते मोटे खद्दर तैयार किये जायँ अथवा कोट का कपड़ा तैयार किया जाय तो उससे भारत का बड़ा लाभ हो सकता है।

चाय—यह भी भारतीय निर्यात की एक मुख्य वस्तु है। चाय का निर्यात कुल भारतीय निर्यात का बीस प्रतिशत है जो कि लगभग पचीस करोड़ रुपये की होती है। इसके व्यापार पर अंग्रेज़ों का नियंत्रण है यह लोग भारतीय चाय को विलायत ले जाते हैं और वहीं से दुनिया के और भागों में निर्यात करते हैं। इस महायुद्ध के समय चाय के व्यापार मे अंग्रेजी कम्पनियों को काफ़ी लाभ हुआ है।

योरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया महाद्वीपों में सभ्य कहलाने वाले ईसाई समाज में तो चाय का बहुत व्यवहार होता है। विवाह-उत्सव, मित्रमंडली, तथा होटलों में टी-पार्टी के रूप में इसीके व्यौहार की अधिकता रहती है। उपरोक्त देशों में भारतीय चाय की काफ़ी माँग है। भारत में इसका क्षेत्र पहाड़ी स्थानो पर अभी और बढ़ाया जा सकता है। भविष्य में चाय हमारी एक मुख्य व्यापारिक वस्तु तथा नफ़े की चीज़ होगी तथा इसके निर्यात के बदले ईसाई राष्ट्रों से हम अन्य आवश्यक तथा उपयोगी आयात प्राप्त कर सकेंगे।

चमड़ा, खाल, सींग, हड्डी—यह वस्तुयें विशेषकर के ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज अमेरिका को जाती हैं। इस महायुद्ध के पहिले जर्मनी और जापान भी इसके द्वितीय श्रेणी के ग्राहक थे। लड़ाई के समय पकाये हुये चमड़े की माँग बहुत बढ़ गई थी। अतः, पकाये हुये चमड़े का अधिक निर्यात तथा खपत होने से इसका दाम भी बहुत बढ़ गया था और इस समय कुछ चमड़े का अभाव हो गया है।

भारत एक खेतिहर देश है यहाँ की खेती बिना बैलों के नहीं होती। प्रत्येक खेती करने वाले किसान को बैल पालना पड़ता है। देश में ६० प्रतिशत किसान हैं। अतः ६० प्रतिशत जन-संख्या बैलों को पालती है, तथा बैलों को प्राप्त करने के लिये गायें पालना आवश्यक है। इसलिये भारत को गायों तथा बैलों को पालना खेती की सुविधा के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दुनिया में भारत एक मुख्य चमड़े का उत्पादक है।

चमड़ा एक बड़ा उपयोगी पदार्थ है। जूते, पेटी, बेग, बक्स, गद्दे आदि के अलावा यह बहुत प्रकार की मशीनो व यंत्रों में व्यवहृत होता है तथा इसके द्वारा सरेस आदि अनेकों वस्तुयें बनाई जाती हैं। भेड़ की खाल से बहुत मुलायम सामान, बाजों की धौकनी तथा पहाड़ के लोगों के काम के कुछ कपड़े तैयार किये जाते हैं। भारतीय व्यवसायियों तथा चमड़े के विशेषज्ञों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिये तथा विदेशों को कच्चा चमड़ा भेजने के बजाय पक्का चमड़ा तथा उससे बना हुआ उपयोगी सामान यहीं तैयार कर लेना चाहिये। भारत के चमड़े का एक प्रधान उत्पादक होने पर भी अभी यहाँ के बाशिन्दों में चमड़े के विज्ञान की बहुत कमी है।

हमारे देश के जानवरों की हड्डियाँ भी ब्रिटेन आदि विदेशों को भेज दी जाती हैं। भारत मे इस समय आवश्यकता है कि हड्डियों की पिसाई की कई मिलें खोल दी जायँ तथा उसके चूरे से उपयोगी खाद तैयार की जाय। हड्डियो तथा हड्डियो के क्षार से कई प्रकार की दवा-

इयाँ भी बनाई जाती हैं तथा इससे फास्फोरस नाम का स्वयं-ज्वालक पदार्थ, जिलेटिन, सरेस वारनिश आदि अनेकों वस्तुयें बनती हैं।

गेहूँ—भारत दुनिया में गेहूँ की उपज मे एक प्रमुख देश है। इस द्वितीय महायुद्ध के पहिले यह गेहूँ के निर्यात मे भी प्रमुख देश था। गेहूँ की खेती उत्तरी-पश्चिमी भारत में अधिक होती है परन्तु इसका विशेष भाग देश ही मे खप जाता है। प्रथम महायुद्ध के पहिले यहाँ से बहुत कुछ गेहूँ ब्रिटेन जाया करता था और थोड़ा-सा फ्रान्स और बेल्जियम भी जाता था।

उस समय लगभग सात लाख टन का औसत वार्षिक निर्यात होता था जो प्रथम महायुद्ध के बाद धीरे-धीरे कम हो गया और सन् १६३७-३८ मे लगभग साढ़े चार लाख टन हो गया। इसके बाद द्वितीय महायुद्ध छिड़ा और सन् १६३६ के बाद तीन साल तक लगभग ढाई लाख टन का निर्यात हुआ इस दूसरे महायुद्ध के समय गेहूँ की माँग फौजियो के राशन के लिये अधिक होने के कारण बढ़ गई। सरकार ने देश के बड़े-बड़े शहरों में व्यवसायिओं के गोदामों का सब गेहूँ जबरन् खरीद लिया जिससे देश भर में व्यापक रूप से गेहूँ का अकाल सा हो गया। इस महायुद्ध के समय समुद्री रास्ते खतरे में पड़ गये थे इस कारण से व्यापार में बाधा उपस्थित हो जाने के कारण और निर्यातों के साथ गेहूँ का निर्यात भी बंद था। परन्तु बर्मा, पूर्वी बंगाल व आसाम में जापानियो से युद्ध का मोरचा स्थापित हो जाने के कारण भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देशों—अफ्रिका, कैनाडा, आस्ट्रेलिया आदि से और सयुक्त राज्य अमेरिका से बहुत सी फौजें आई। इस कारण यहाँ सरकार ने जितना गेहूँ एकत्रित कर रक्खा था उसका बहुत बड़ा भाग फौज के राशन में खर्च हो गया। अब सन् १६४५ के बाद जब द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया है और विदेशों से आई हुई फौजें अपने-अपने देशों को लौट गई हैं तब भी भारत में और गल्लों के साथ-साथ गेहूँ का इतना

अभाव हो गया है कि अब इसके निर्यात के बजाय अन्य देशों से इसका आयात हो रहा है। इस समय यदि अमेरिका, कैनाडा और अस्ट्रेलिया से गेहूँ न आवे तो भारत में कितने ही मनुष्य भूखों मर जायँ।

अपने देश की बढ़ी हुई जन-सख्या की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये हम यह चाहते हैं कि भविष्य में हमारे गेहूँ का निर्यात न हो। यदि गेहूँ की पैदावार बढ़ा कर इसकी उपज बढ़ाई भी जाती है तथा वह स्थानीय खपत से बच भी जाता है तो भी भारतीय गेहूँ का व्यापार संसार के बाज़ारों में प्रतियोगिता के कारण न हो सकेगा। इस समय सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइन, कनाडा, रूस आदि देशों में गेहूँ की उपज तथा व्यापार में पर्याप्त उन्नति हो चुकी है। अतः, भारतीय गेहूँ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भविष्य अन्धकारमय दिखाई पड़ता है।

चावल—चावल की पैदावार में भारत का प्रमुख स्थान है। किन्तु यहाँ पर जितना चावल पैदा होता है उसका एक बहुत बड़ा भाग स्थानीय खपत के काम आ जाता है। जो बाहर निर्यात के रूप में भेजा जाता है वह भारत की कुल पैदावार का बहुत कम है। भारत से चावल का निर्यात विशेषतः लंका, डच ईस्ट-इन्डीज़, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो आदि द्वीपों को होता था परन्तु इस द्वितीय महायुद्ध के समय चावल का निर्यात एकदम बन्द हो गया है। इस महायुद्ध के अन्त में इसके परिणाम-स्वरूप गल्ले के कमी के कारण बंगाल तथा बिहार, उड़ीसा में अकाल पड़ा जिसमें लगभग दस लाख आदमी भुखमरी के कारण मर गये। इससे अब ऐसा जान पड़ता है कि अभी कई साल तक भारत चावल का निर्यात न कर सकेगा। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के पहिले तक हमारी स्थानीय खपत के बाद भी कुछ न कुछ चावल शेष बच ही जाया करता था। इससे यह स्पष्ट है कि दो तीन साल में गल्ले की तंगी मिट जाने से हमें कुछ न कुछ चावल का

निर्यात अवश्य ही करना पड़ेगा। इस समय गल्ले के अभाव के दिनों में निर्यात बन्द हो जाने से सम्भव है कि जिन देशों को भारतीय चावल तथा धान जाता था उनके भारतीय चावल के व्यापार पर चावल की उपज करने वाले दूसरे देश कब्ज़ा कर लेवें और फिर भारत के चावल के निर्यात के लिये बाज़ार मिलना मुश्किल हो जाय। अतः, यह आवश्यक है कि भविष्य के इस खतरे से बचने के लिये इस समय चाहे जितना गल्ले का अभाव क्यों न हो फिर भी कुछ न कुछ भारतीय चावल का निर्यात अवश्य जारी रहे।

तम्बाकू—यह एक मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वस्तु है। तम्बाकू के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। दुनिया के कुल तम्बाकू के उत्पादन का २३ प्रतिशत केवल भारत में पैदा होता है। परन्तु जितनी तम्बाकू भारत में पैदा होती है वह करीब-करीब भारत ही में खप जाती है। उसका केवल २ प्रतिशत ही विदेशों को भेजा जाता है। यह कच्चे रूप में बाहर भेजी जाती है तथा इसके सिग्रेट, सिगार आदि भी भेजे जाते हैं। भारत में तो इसका रिवाज अन्तिम मुसलमानी काल से हुआ है। जो सौ वर्ष के लगभग उमर वाले बुड्ढे अभी जीवित हैं उनसे पूछने पर यह पता चलता है कि उनके लड़कपन में इस समय का शतांश भी तम्बाकू का प्रचार नहीं था। आजकल तो एक व्यक्ति पीछे साल में डेढ़ सेर तम्बाकू का खर्च है। डेढ़ सेर तम्बाकू से तीन तोला निकाटिन नाम का ज़हर निकल सकता है जिसके द्वारा आध घन्टे में बीस भेड़ें मारी जा सकती हैं। अतः, देश में जहाँ तक हो सके तम्बाकू का सेवन कम किया जाय। ट्रेड इन इंडिया नामक अंग्रेज़ी पुस्तक में अध्यापक पालेकर ने लिखा है कि एक गरम देश होने के कारण भारत के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह तम्बाकू जैसी गरम तथा ज़हरीली वस्तु का आदी बने। देश में अधिक से अधिक सिग्रेट के कारखाने खुलने चाहियें तथा उनका विदेशों को निर्यात होना चाहिये।

विदेशों में सभ्य समाज में सिग्रेट, सिगार, चुरुट तथा सुँघनी का व्यवहार बहुत बढ़ा हुआ है। भारत को इस समय की परिस्थिति से लाभ उठाना चाहिये तथा भारतीय चाय की तरह भारतीय तम्बाकू का भी विदेशों में प्रचार करना चाहिये।

तेलहन—तेलहन का स्थान पैदावार तथा निर्यात दोनों ही दृष्टि से बहुत ऊँचा है। तेलहन का विशेष भाग ब्रिटेन, आदि विदेशों को भेज दिया जाता है। कुल तेलहन के निर्यात का मूल्य प्रति वर्ष दश करोड़ से बीस करोड़ के अन्दर होता है। भारत के मुख्य तेलहन यह हैं:—मूँगफली, गरी, महुवा की कोइया, बिनौला, राई, रेंडी, तिल्ली, तीसी, करं के बीज। इनमें, महुवा की कोइया, रेडी तथा करं पर हमारा एकाधिकार है। तेलहन का तो इस समय कतई निर्यात बन्द कर देने की आवश्यकता है। हमारे यहाँ का तेलहन तो बाहर भेज दिया जाता है और विलायत से वनस्पति घी के रूप में साँपों और मछलियो की चर्बी जहाजों की बड़ी-बड़ी टंकियों में भर कर आती है जो यहाँ कलकत्ता और बम्बई में ४० पौंड के कनस्तरों में भर कर मार्का लगा दी जाती है। इनके प्रचार और खपत से भारतवासियों का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। आजकल भारतवासी बहुत क्षीणकाय हो रहे हैं और साधारणतः चर्बीविहीन तथा शक्तिहीन हो गये हैं। फिर यहाँ पर घी, दूध का जो अभाव हो गया है वह किसी से छिपा नहीं है। उचित तो यह है कि भारतीय तेलहन भारतीय स्वास्थ्य सुधारने के लिये खर्च किया जाय तथा उससे जो बचे वह पालिश दवाइयाँ तथा मशीनों के उपयोग में खर्च किया जाय। तीसी और तारपीन का तेल खाने के प्रयोग में नहीं आता। इनकी वारनिश तथा पालिश बनती है। इसलिये इनसे यही बनाया जाय।

अन्य निर्यात—वास्तव में भारत एक पूर्ण तथा स्वसन्तुष्ट देश है। जीवन की अत्यन्त आवश्यकता-पूर्त्ति के लिये इसे किसी भी देश का मुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं है। इसकी उत्पत्ति का बहुत

सा भाग तो देश ही में खप जाता है। इसलिये पैदावार का वही भाग बाहर भेजा जाना चाहिये जो घरेलू खपत से बाकी बचे और वह भी पक्का माल बना कर निर्यात किया जाना चाहिये। फिर भी हमें ज़बरदस्ती किसी देश को अपना निर्यात लेने के लिये मजबूर नहीं करना है।

इस सम्बन्ध में एक मुख्य बात यह है कि हमारी जनसंख्या की वृद्धि हो जाने से हमारे व्यक्ति मूलक श्रम का परिमाण भी बढ़ गया है। अतः, आवश्यकता इस बात की है कि देश में राष्ट्रीय, तथा प्रान्तीय कारीगरी के उद्योग-धन्धों का प्रचार करके पक्का माल तैयार कराया जावे। इस समय मशीनों का युग होने पर भी हमारे यहाँ की हाथ की कारीगरी के टक्कर का अभी तक दुनिया के किसी हिस्से में काम नही होता है। कश्मीर के शाल-दुशाले, बनारस का ज़री व रेशम का काम, दिल्ली का हाथी दाँत का काम, आगरे का पत्थर का काम, पञ्जाब के गलीचे, जैपुर की रंगाई आदि दुनिया में अपनी सानी नही रखती हैं। देशी कारीगरियों की उन्नति के लिये भारत सरकार द्वारा प्रोत्साहन तथा संरक्षण मिलना चाहिये जिससे उनकी उत्पत्ति बढ़ कर हमारे यहाँ की पुरानी कारीगरी की मशहूर वस्तुओं का पाश्चात्य देशों को निर्यात बढ़ाया जा सके।

(४) हमारा निर्यात कहाँ जाता है?

आज से लगभग चार सौ वर्ष पहिले जब कि भारत का व्यापार ईरान व तुर्किस्तान के रास्ते से यूनान, रोम तथा पूर्वी यूरोप में फैला हुआ था उस समय डच और पोर्त्तगीज़ लोग अफ्रीका के दक्षिण से जहाज़ द्वारा भारत से व्यापार कर रहे थे। उस समय यहाँ से पक्का माल ही बाहर जाता था। इन लोगों की देखादेखी अंग्रेज व फ्रेंच भी जहाज़ों द्वारा भारत से व्यापार करने के लिये कुछ बाद में आए।

मुग़ल राज्य के पतन तथा भारतवर्ष में गृहयुद्ध के कारण अभाग्यवश अंग्रेजी व्यापारियों की बन आई और वे धीरे-धीरे व्यापारी

के साथ-साथ शासनकर्त्ता भी बन गये। जैसे-जैसे अंग्रेज़ों का बल भारत में बढ़ता गया वैसे-वैसे उन्होंने यहाँ की कारीगरी तथा उद्योग-धन्धों को अपनी कूटनीति द्वारा, प्रतिबन्ध, क़ानून तथा संरक्षण आदि की आड़ लेकर चौपट कर दिया और बजाय पक्के माल के यहाँ का करोड़ों रुपये का कच्चा माल ब्रिटेन को ले जाने लगे और उसीके द्वारा पक्का माल बना कर भारत तथा अन्य देशों से व्यापार करने लगे।

हमारे देश से बाहर जाने वाला निर्यात प्रथम महायुद्ध के पहिले ४१.१ प्रतिशत तो ब्रिटिश साम्राज्य के देशों को जाता था और ५८.९ प्रतिशत अन्य देशों को जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के देशों में २५.१ प्रतिशत निर्यात तो ब्रिटेन को ही जाता था। और बाहरी देशों में जर्मनी को ९.८ प्रतिशत, जापान तथा अमेरिका में से प्रत्येक को ७.५ प्रतिशत, फ्रान्स को ६.६ प्रतिशत, बेल्जियम को ५.३ प्रतिशत और इटली को ३.२ प्रतिशत जाता था।

भारत में अंग्रेज़ी सत्ता स्थापित हो जाने के कारण सन् १९१४ के महायुद्ध के आरम्भ काल तक अंग्रेज़ों के भारतीय निर्यात के व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही, परन्तु प्रथम महायुद्ध के छिड़ जाने के बाद अरब सागर, भू-मध्य सागर तथा अटलांटिक महासागर के खतरे में पड़ जाने से भारत के साथ ब्रिटेन का व्यापार बहुत कुछ बन्द सा हो गया। इस महायुद्ध में अमेरिका ने ब्रिटेन को आर्थिक सहायता दी थी। इसलिए मित्र होने के नाते अमेरिका ने भी भारत के व्यापार में अपना हाथ बटाया।

उस समय यूरोप के सभी देश महायुद्ध में फँसे हुये थे तथा जापान की शक्ति दिनों दिन बढ़ रही थी। यहाँ तक कि प्रथम महायुद्ध का अन्त होते-होते जापान दुनिया की प्रधान शक्तियों में गिना जाने लगा। प्रथम महायुद्ध-काल में अंग्रेज़ों का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध बहुत कम हो गया था। ऐसे सुयोग अवसर को पाकर जापान ने भारत के कुछ निर्यात के कच्चे मालों के व्यापार को जैसे रुई,

जूट, चावल आदि, को थोड़े अंशों मे हथिया लिया और अमेरिका ने भी यहाँ के चमड़ा, हड्डी सींग, लाह, आदि के व्यापार में अपना भाग स्थिर कर लिया। इसकी रोक-थाम के लिये ब्रिटेन ने साम्राज्यान्तर्गत देशों के बीच के व्यापार मे रियायत की नीति के सिद्धान्त का ढोंग रचा और इसमें उसको एक बड़ी सफलता भी मिली जिससे कि प्रथम महायुद्ध के बाद से द्वितीय महायुद्ध के अत तक भारत के व्यापार में ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बढ़ता तथा बाहरी देशों का भाग घटता गया। सन् १६३८-३६ में यह क्रमशः ५३.६ प्रतिशत और ४६.४ प्रतिशत था और सन् १६४४-४५ में यही क्रमशः ६५.४ और ३४.६ हो गया था। युद्ध के समय जो परिवर्तन हुआ उसके विशेषतः दो मुख्य कारण हैं। प्रथम तो यह कि युद्ध की परिस्थितियो के कारण शत्रु राष्ट्रों से व्यापार नहीं हो पाया और दूसरे यह कि हम पिछले अध्याय मे देख चुके हैं कि इधर हमारी नीति ही साम्राज्यान्तर्गत रियायत की रही है।

प्रथम महायुद्ध के बाद जापान और अमेरिका को तरह जर्मनी भी भारत के निर्यात में भाग लेने के लिये बराबर होड करता रहा किन्तु अंग्रेजो की साम्राज्यान्तर्गत रियायत की नीति के कारण उसे कुछ विशेष लाभ नही हुआ।

इस द्वितीय महायुद्ध के समय अटलान्टिक तथा पैसिफिक महासागर के खतरे मे पड़ जाने के कारण रुई व जूट का निर्यात चीन तथा हिन्दचीन को भी होने लगा तथा इस महायुद्ध के अन्त होते-होते अमेरिका को भी बहुत निर्यात होने लगा। अमेरिका को तो हमारा निर्यात बराबर बढ़ रहा है। प्रथम महायुद्ध के पहिले क ७.५ प्रतिशत की तुलना मे १६३८-३६ मे यह ८.४ प्रतिशत और १६४४-४५ मे यह २१.३ प्रतिशत था तथा भविष्य मे इसकी और अधिक उन्नति की आशा है।

इस द्वितीय महायुद्ध के और दीर्घकालीन भारत के राष्ट्रीय

आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप इस समय भारत के निर्यात के व्यापार का नकशा ही बदल गया है। इस समय देश के बड़े-बड़े नेता केन्द्रीय असेम्बली के मंत्रित्व पद पर आरूढ़ हैं और इस समय अंग्रेज़ों का भारतीय निर्यात में विशेष भाग तथा अधिकार कुछ अंशों में कम हो गया है।

अब इस बात के विचार का समय आ गया है कि भारत स्वतंत्रतापूर्वक जिस देश के साथ चाहे उसके साथ व्यापारिक मैत्री, व्यापारिक संधि तथा व्यापारिक समझौता करे तथा अपने सुविधा व लाभ की दृष्टि से जिस देश के हाथ चाहे अपने निर्यात को बेंचे।

किसी देश के हाथ निर्यात बेचने के पहिले इन बातो का विचार करना पड़ता है १—उस देश से हमें अपनी आवश्यकता वाले आयात भी खरीदना है अतः उसके लिये आवश्यक निर्यातो को उसके हाथ बेचना ही पड़ता है जिससे कि वह देश नाराज़ न हो जाय।। २—मैत्री तथा संधि के विचार से भी निर्यात करना पड़ता है। ३—भविष्य में किसी देश में अपने देश के व्यापार को जमाने के लिये भी निर्यात करना पड़ता है।

उपरोक्त बातो को ध्यान में रखते हुये भारत के निर्यात के विषय में यह कहा जा सकता है कि भारत को अपने उद्योग धन्धों की वृद्धि के लिये कल-कारखानों की आवश्यकता होने के कारण इनको बनाने वाले देशों को ही जैसे अमेरिका, रूस, तथा ब्रिटेन को कुछ न कुछ कच्चे मालों का निर्यात करते रहना ही पड़ेगा। फिर भारत एशिया महाद्वीप के मध्य में स्थित है। अतः, इस विचार से भी इसे एशिया के सभी राष्ट्रों से मैत्री रखना चाहिये और अपने यहाँ के पक्के माल तथा सुविधा के अनुसार कच्चे माल का निर्यात भी करना चाहिये। भविष्य में अरब, मिश्र, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, तिब्बत, चीन, हिन्द-चीन आदि देशो को हमारा निर्यात अधिक जा सकता है। एशिया के मध्य में भारत की स्थिति होने के अलावा इसकी समुद्री तट की

स्थिति भी अच्छी है क्योंकि उत्तर को छोड़ कर बाक़ी तीन तरफ़ यह समुद्र से घिरा हुआ है। आस्ट्रेलिया तथा अफ्रिका इसके सबसे अधिक पड़ोसी महाद्वीप हैं तथा इनके साथ व्यापार करने से इसके लिये सबसे सीधा जल-मार्ग भी है। अतः, इन देशो को भी भारत के कच्चे तथा पक्के दोनो तरह के माल के निर्यात होने की भविष्य में बहुत कुछ सम्भावना है।

(५) हमारे निर्यात में हमारा भाग

शोक है कि हमारे निर्यात में भारतवासियो का कोई भी भाग नहीं है। निर्यात में एक तो उत्पत्ति के स्थानों से माल एकत्रित करके बंदरगाहों तक भेजना और दूसरे बंदरगाहो से विदेशो को भेजना सम्मिलित है। जहाँ तक माल का उत्पत्ति के स्थानों से एकत्रित करने और बंदरगाहों तक भेजने का प्रश्न है उसका तो एक बहुत बड़ा भाग हमारे हाथ में है, किंतु जहाँ तक उसका बंदरगाहों से विदेशों में भेजने का प्रश्न है वह एक प्रकार से बिल्कुल हमारे हाथ में नहीं है।

यहाँ पर विदेशी क्रेताओं की या तो अपनी शाखायें हैं अथवा वह अढ़तियों के द्वारा काम करते हैं। ये अढ़तिये भी विदेशी ही हैं। हमारे व्यापार का एक बहुत बड़ा भाग अंग्रेजों के हाथ में है। या तो उनकी शाखायें यहाँ हैं अथवा अंग्रेज अढ़तिये यहाँ हैं। इन लोगों के पास बाहर से आर्डर आते हैं और ये देश के अंदर अपने प्रतिनिधि भेज कर माल इकट्ठा करते हैं। अधिकतर ये खाद्य पदार्थों और कच्चे माल के ही निर्यात में लगे रहते हैं। हाँ, हमारे कुछ व्यापारियों की दूकानें सिंगापुर, बर्मा, सीलोन, साउथ अफ्रीका और अदन में हैं। ये अवश्य यहाँ का तैयार माल वहाँ भेजते हैं। वास्तव में हमारे व्यापारियों का काम उन सभी देशो में होना चाहिये जिनसे हम व्यापार करना चाहते हैं। हमारे व्यापारी वहाँ पर उन चीज़ो का प्रचार करेंगे जो हम यहाँ से विदेशों को भेजना चाहते हैं। साथ ही

वह यह देखेंगे कि हमारे माल की वहाँ पर क्या शिकायत है और वह हमको उन शिकायतों को सूचित करेंगे जिससे हम उनको दूर कर सकेंगे। अंग्रेज़ों ने अपने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये अभी हाल ही में एक बहुत बड़ी संस्था जिसका नाम यू० के० सी० सी० है खोली है। इसके दफ़्तर दुनिया के कोने-कोने में हैं। हमको भी ऐसी ही बड़ी-बड़ी संस्थाओं की आवश्यकता है। हमारा भारतीय व्यापारियों का संघ इसके विषय में कुछ कर सकता है। फिर विदेशियों के प्रतिनिधि बराबर हमारे यहाँ आते हैं। अभी हाल में कुछ व्यापारिक प्रतिनिधि मिश्र से आये थे। भारतवर्ष के व्यापारिक प्रतिनिधियों को विदेशों में जा कर यह देखना चाहिये कि वहाँ पर हमारी कौन-सी वस्तुयें बिक सकती हैं और फिर वहाँ की सरकार से मिल कर हमारे व्यापार के लिये सुविधायें प्राप्त करनी चाहियें।

उपरोक्त बातों के अलावा जैसा कि हमने इसी अध्याय के आरम्भ में देखा था निर्यात के क्रम के संबंध में हमको अनेकों मध्यस्थों की आवश्यकता पड़ती है जैसे माल लादने वाले, जहाज़ों के दलाल, जहाजी कम्पनियाँ, बैङ्क, बीमा कम्पनियाँ, इत्यादि। भारतवासियों को यह सब काम अपने हाथ में लेने चाहियें। माल लादने के लिये प्रत्येक बंदरगाह पर हमारे व्यापारियों की अपनी कम्पनियाँ होनी चाहियें, जहाज़ों के दलाल भी भारतीय होने चाहिये। देश की जहाज़ी कम्पनियाँ, बैङ्क, और बीमा कम्पनियाँ खुलनी चाहिये। अभी तक हमारी सरकार विदेशी व्यापार के इन मध्यस्थों के विदेशी होने पर भी उनके कामों में रुकावट नहीं डालती थी, किंतु अब तो उसको ऐसा करना ही पड़ेगा। अथवा यदि वह यहाँ के लोगों को प्रोत्साहन ही दे तो भी विदेशी मध्यस्थ स्वयम् भाग जायँगे। कुछ देश हमारे व्यापारियों को और बैंकों को अपने यहाँ काम नहीं करने देते हैं। उनके व्यापारियों और बैंकों के साथ हमको भी ऐसा ही करना चाहिये जिससे वह ठीक हो जायँ। हमारे यहाँ जहाजी कम्पनियाँ बराबर खुलती रहीं

किंतु उनको हमारी सरकार ने प्रोत्साहन नहीं दिया। सिंधिया कम्पनी अब भी एक बहुत काम कर सकती है, किन्तु उसको प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। यदि प्रोत्साहन मिले तो भारतीय अपनी जहाज़ी कम्पनियाँ खोल सकते हैं। देश में समुद्री बीमा करने वाली भारतीय कम्पनियाँ नहीं हैं। अतः उनको भी खुलना चाहिये।

(६) युद्ध-काल और हमारा निर्यात

युद्ध-काल में हमारे निर्यात और आयात पर नियन्त्रण बढ़ता गया। इनके लिये अधिकार-पत्रों की आवश्यकता पड़ती थी। देश से केवल वही माल बाहर जा पाता था जिसकी यहाँ पर युद्ध को सहायता देने के लिये आवश्यकता नहीं थी। साथ ही साम्राज्य की आवश्यकता की वस्तुयें केवल साम्राज्य के ही देशों में जा सकती थी। अमेरिका को जो चीज़ें जाती थीं उनके लिये भारत को जो डालर मिलते थे वह उसको साम्राज्य के डालर पूल को दे देने पड़ते थे। शत्रु-देशों से हमारा व्यापार बिल्कुल बन्द हो गया था। युद्ध के पहिले जापान को हमारी रुई जाती थी, जर्मनी, इटली और फ्रांस को भी हमारा तेलहन, जूट और अन्य वस्तुयें जाती थी। किन्तु युद्ध होने से यह सब बन्द हो गया। कुछ ऐसे देशों को भी जो न शत्रु थे और न मित्र थे हमारा निर्यात केवल इस भय से रोक दिया गया था कि कहीं वहाँ से हमारी वस्तुयें शत्रु देशों को न चली जायें और इस तरह से उनको युद्ध में सहायता मिल जाय। वास्तव में हमारे विदेशी व्यापार पर जितने प्रतिबन्ध इस युद्ध मे लगे थे उतने हमारे इतिहास में कभी भी नहीं लगे थे।

उपरोक्त बातो के कारण जैसे-जैसे युद्ध फैलता गया वैसे-वैसे हमारे विदेशी बाज़ार हमारे हाथो से निकलते गये। युद्ध के प्रथम वर्ष में ही हमने फ्रान्स, इटली और रूमानिया, इत्यादि बाजारो को खो दिया था। १९४१ में जापान से भी हमारा आर्थिक सम्बन्ध टूट गया था और १९४२ में तो हमारे हाथ से बेल्जियम, डच, डेनमार्क,

नारवे, स्याम, पूर्वी द्वीप और बर्मा इत्यादि सभी के बाज़ार निकल गये थे।

हमारे निर्यात पर जहाज़ों की कमी के कारण भी धक्का लगा। बात यह थी कि इन पर जगह न होने के कारण केवल वही माल बाहर भेजे जाते थे जिनके बिना बाहर वालों का काम नहीं चल सकता था।

किन्तु युद्ध के अन्तिम काल में हमारा निर्यात फिर बढ़ा। एक तो जिन-जिन देशो को मित्रराष्ट्रों ने शत्रुओ के हाथों से मुक्त किया उनमें हमारी चीज़ों की आवश्यकता पड़ी। दूसरे जर्मन पनडुब्बियों की शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण समुद्री रास्ते भी खुल गये जिनसे हमारा माल मित्रराष्ट्रो को अधिकाधिक जाने लगा। इस समय हमारा निर्यात अमेरिका को खूब बढ़ा। सन् १६४० ही में हमारा एक मिशन अमेरिका भेजा गया था, किन्तु उसने यह बतलाया था कि यूरोपीय बाज़ारों के हमारे हाथ से निकल जाने के कारण जो हमारी रुई, तेलहन तथा अन्य चीजो का निर्यात समाप्त हो गया था वह उस देश को नहीं जा सकता था। बात यह है कि अमेरिका स्वयम् ही कच्चा और पक्का दोनों माल तैयार करता है। अतः उसको हमारे कच्चे माल की आवश्यकता नहीं थी। उसका दक्षिणी अमेरिका से अच्छा सम्बन्ध था अतः तेलहन वह वहीं से मंगाता था। हाँ, उसको हमारे अभ्रक की, रबड़ की, बेलदार चीज़ों की, कम्बल और मूँज के सामान की अवश्य आवश्यकता थी। किन्तु यह वस्तुयें ऐसी नहीं हैं जिनके बिना किसी का काम न चल सके। इससे यह तभी भेजी जा सकती थीं जब जहाज़ों में फ़ालतू जगह रहती थी। फिर हमारा निर्यात टर्की, ईरान, ईराक़, अरब, मिश्र और दक्षिणी अफ्रिका को बढ़ा। इनको खाद्य-पदार्थ और कपड़ों की आवश्यकता थी। कनाडा और आस्ट्रेलिया को भी हमारा कुछ माल जाने लगा।

सरकार ने युद्ध-काल में हमारे निर्यात को बढ़ाने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया। ऊपर जिस मिशन के विषय में कहा गया है उसके अतिरिक्त ब्रिटेन से भी हमारी रुई लेने की बातचीत हुई। इस देश में यहाँ के व्यापार-मंत्री को यहाँ के निर्यात को बढ़ाने के सम्बन्ध में सलाह देने के लिये सन् १६४० में बीस व्यक्तियों की एक काउन्सिल बनी। भिन्न-भिन्न देशों में हमारे व्यापारिक कंसल गये जिन्होंने वहाँ पर हमारे निर्यात को बढ़ाने का प्रयत्न किया। हमारा यह प्रयत्न भविष्य में भी चालू रहना चाहिये।

नई परिस्थिति के अनुसार चलने के लिये देश में भी रुई और जूट की उत्पत्ति को कम करके गेहूँ और चावल की उत्पत्ति बढ़ाने का प्रत्यत्न किया गया। बर्मा के जापान के हाथ में चले जाने से यहाँ पर चावल की बड़ी कमी हो गई थी। अतः, चावल की उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया गया था और किया जा रहा है। हमारे यहाँ गेहूँ का भी खर्च बढ़ गया था और फिर इसकी अन्य देशों में भी माँग थी। अतः, इसकी उत्पत्ति को भी यहाँ पर बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। किन्तु जितना प्रयत्न हुआ उतनी सफलता नहीं मिली। वास्तव में सरकार की नीति पर यहाँ के लोगो को विश्वास नहीं रह गया था। हाँ, अब अवश्य हमारी स्वयम् की सरकार है किन्तु वह भी हिन्दू मुस्लिम झगड़ों के कारण, विदेशी अफ़सरो के असहयोग के कारण और अन्य ऐसी ही बहुत सी बातों के कारण बहुत अधिक सफल नहीं हो रही है।

(७) भविष्य में हमारा निर्यात

प्रथम तो जैसा कि ऊपर कहा गया है भविष्य मे हमारा निर्यात केवल हमारे ही हाथों से होना चाहिये। हमारे ही माल लादने वाले, हमारी ही जहाजी और बीमा कम्पनियाँ, हमारे ही बैंकों तथा हमारे ही व्यापारियों की विदेशों में शाखायें होनी चाहिये। इसके लिये हमारी सरकार को हमें प्रोत्साहन देना पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में जो दूसरी बात है वह यह है कि भविष्य में हमारा निर्यात खाद्य-पदार्थों का और कच्चे माल का न होकर हमारे यहाँ की बचत की चीज़ों का जैसे चाय का; रुई का, जूट का, इत्यादि और तैयार माल का होगा। इस विषय में हम यह कह देना चाहते हैं कि हम अपने निर्यात के लिये किसी को दबाना नहीं चाहते। हम स्वयम् अपना शोषण बन्द करना चाहते हैं और दूसरो का शोषण नहीं करना चाहते हैं। जो चाहे हमसे माल खरीदे और जो चाहे न खरीदे। यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि अब हमें परिस्थितियों के बदल जाने के कारण अपने आयात से अधिक निर्यात को रखने की आवश्यकता है ही नहीं। वास्तव में अन्य देशों को हमारी रुई की आवश्यकता है, उनको हमारे जूट की भी आवश्यकता है, जूट की उत्पत्ति में हमारा एकाधिपत्य है, उनको हमारी चाय भी चाहिये, कुछ देशों को जैसे मध्यपूर्व और सुदूर पूर्व के देशों को, अफ्रिका के देशों को हमारे बने हुये माल की भी आवश्यकता है। अतः बिना किसी दबाव के ये हमारे निर्यात को लेंगे ही। हॉ, अन्य देशों से इनके बाज़ारो मे हमारी प्रतियोगिता अवश्य होगी। उसके लिये हमको तैयार रहना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि भविष्य में हमको अमेरिका के बाज़ारो मे भी अपना कुछ माल भेजना ही पड़ेगा क्योंकि हमारी आवश्यकता की चीजे हमको वही से प्राप्त होंगी। अतः उनके भुगतान के लिये हमको उसके यहॉ अपना निर्यात करना ही पड़ेगा। इधर अमेरिका को हमारा सामान जा भी रहा है। हमारे बेल के काम, ज़री के काम, दुशाले, मूॅज के सामान और अन्य सामान की अमेरिका मे माँग है। ब्रिटेन को भी हमारी चाय और हमारी रुई चाहिये। जापान भी हमारी रुई ले सकता है।

१२. आयात

(१) आयात का क्रम (२) भारतवर्ष के आयात का व्यापार (३) भारतवर्ष के मुख्य आयात (४) हम आयात कहाँ से करते हैं? (५) हमारे आयात में हमारा भाग (६) युद्ध-काल में हमारे आयात (८) विदेशी आयात का प्रभाव।

जिस तरह से निर्यात के सम्बन्ध में हमने पहिले उसके क्रम का और फिर अन्य बातो का अध्ययन किया था उसी तरह से आयात के सम्बन्ध में भी हम पहिले उसके क्रम का और फिर अन्य बातों का अध्ययन करेंगे।

(१) आयात का क्रम (Procedure)

आयात हम विदेशों से सीधे अथवा यहाँ पर उनके जो व्यापारी हैं, उनके मार्फ़त कर सकते हैं। इगलैंड के व्यापारियों की यहाँ पर जो शाखायें हैं वह तो अभी तक हमारे बाजार की विशेषताओं और हमारी पसन्द पर कोई ख़ास ध्यान नहीं देती थीं। वह केवल अपने माल के गुणों पर ही निर्भर रहती थीं। हाँ, इधर अवश्य कुछ अन्य देशो के व्यापारियो की देखा-देखी उन्होंने भी अपना ढङ्ग बदल दिया है और अब विज्ञापन, आदि करने लगी हैं। भारतीय व्यापारियों की उनके प्रति जो सबसे बड़ी शिकायत है वह यह है कि वह अपने माल का दाम अंग्रेजी मुद्रा में बताती हैं। अतः, यहाँ के लोगों को अपनी मुद्रा में उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त वह यहाँ के लोगों को उधार, इत्यादि की भी बहुत सुविधायें नहीं देना चाहती हैं। वास्तव में यहाँ की सरकार पर उनका दबाव रहा है, यहाँ पर उनके बैङ्क हैं उनकी जहाज़ी और बीमा कम्पनियाँ हैं, अतः इन्हीं से उनके व्यापार को बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु

अन्य देशों के जो यहाँ पर व्यापारी हैं उनके व्यापार करने का ढङ्ग बिल्कुल ही दूसरा है। वह विज्ञापन करते हैं, अपने प्रतिनिधियों के द्वारा एक-एक व्यापारियो के पास जाते हैं, उनकी पसन्दगी पर ध्यान देते हैं। भारतीय उपभोक्ता ग़रीब है अतः सस्ती चीज़ें अधिक पसन्द करता है। जर्मन और जापान के व्यापारी सस्ती चीज़ें देते हैं। वह भारतीय मुद्रा में उनके दाम बताते हैं और उधार, इत्यादि की भी सुविधायें देते हैं। वह यहाँ के आयात को अपने हाथ में करने के लिये बडा प्रयत्न करते हैं। किन्तु इधर युद्ध में तो उनका काम बन्द हो गया था। हाँ, भविष्य में जब भी सम्भव हो सकेगा वह फिर ऐसा ही करेंगे।

अतः, हम जब भी किसी विदेश से माल मॅगाना चाहते हैं या तो उसकी यहाँ पर स्थित शाखाओं में से किसी को या उसके प्रतिनिधि को अपना आर्डर दे देते हैं, या स्वयम् सीधा आर्डर वहाँ पर भेज देते हैं। यहाँ पर आर्डर देने में हमको आर्डर के कीमत का कुछ भाग भी उस विदेशी शाखा अथवा प्रतिनिधि के पास जमा करना पड़ता है और सीधे विदेश को आर्डर देने में हमको यहाँ के किसी बैंक के मार्फ़त उस विदेश के किसी बैङ्क को वहाँ के माल भेजने वाले व्यापारी का बिल स्वीकार करने का आदेश देना पड़ता है। जैसा कि १० वें अध्याय में कहा जा चुका है इसके लिये यहाँ के बैङ्क के पास हमको कुछ रुपया जमा करना पड़ता है। जो हो ऐसी अवस्था में हम अपने आर्डर के साथ बैङ्क के बिल की स्वीकृति करने के आदेश की एक प्रतिलिपि भी विदेशी व्यापारी को भेज देते हैं। इसके अलावा उसको उसके यहाँ का वह बैङ्क भी जिसको हमने उसके बिल पर स्वीकृति देने का आदेश दिलवाया है इसकी सूचना दे देता है। अतः, जब वह माल भेज देता है अपने बिल पर उपरोक्त बैङ्क की स्वीकृति लेकर उसके सम्बन्ध के अधिकार-पत्र उसी बैंक को दे देता है और वह बैंक उनको यहाँ के बैंक के पास भेज देता है। इस युद्ध के पहिले तक

बिलों की स्वीकृति चाहे वह किसी भी देश के व्यापारी क्यो न हों अधिकतर लन्दन के ही किसी बैंक के द्वारा होती थी। वास्तव में लन्दन संसार भर के व्यापार के भुगतान का केन्द्र था। वैसे तो प्रथम युद्ध के बाद से ही इस बात मे कुछ परिवर्तन होने लगा था किन्तु भविष्य मे तो न्यूयार्क अवश्य उससे इस बात में उसकी प्रतियोगिता करेगा। लन्दन अब केवल अपने साम्राज्य के व्यापार के भुगतान का ही केन्द्र रह सकता है। अन्य देशों के व्यापार के भुगतान का केन्द्र तो न्यूयार्क ही होगा।

यहाँ के बैंक के पास जब हमारे आयात के सम्बन्ध के अधिकार-पत्र आ जाते हैं वह हमको इस बात की सूचना दे देता है। और हम उसको रुपया देकर उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। यदि यह हमें केवल बिल की स्वीकृति पर ही मिलने हैं तो हम बैंक को बिल की अवधि बीन जाने पर उसके भुगतान करने का केवल एक लिखित प्रण-पत्र ही दे देते हैं। कभी-कभी जब हमारे पास तैयार रुपया नहीं होता है हम इन अधिकार-पत्रों को बैंक के ही नाम हस्तान्तरित कर देते हैं और वही माल को छुडा कर अपने पास बन्धक रख लेता है। और जैसे-जैसे हम उसको रुपया देते हैं वह हमको थोड़ा-थोड़ा माल देता जाता है।

माल के अधिकार-पत्र बैंक से लेकर माल छुडाने वाले (Clearing Agents) के पास भेज दिये जाते हैं। अब माल छुड़ाने वाला एक ओर तो उस जहाज के आने की तारीख का पता लगाता है जिस पर माल आनेवाला है और दूसरी ओर अन्य कार्य करता है।

सर्वप्रथम तो माल छुड़ाने वाला जहाजी कम्पनी के प्रतिनिधि से माल छोड़ने की आज्ञा (Delivery Order) प्राप्त करता है। ऐसा करने के लिये उसको बिल आफ लेडिन्ग पर माल छोड़ने का बेचान (Endorsement for Delivery) करना पड़ता

है और यदि जहाज़ का महसूल नहीं दिया गया है तो उसको चुकाना पड़ता है। इसके बाद उसको चुङ्गी के दफ़्तर (Customs House) में जाना पड़ता है। वहाँ पर उसको माल के प्रविष्ट होने का एक बिल (Bill of Entry) भरना पड़ता है। यदि माल की चुङ्गी देने का उस समय विचार नहीं है तो उसको चुङ्गी के बन्धक घर में (Bonded warehouse) में भी रक्खा जा सकता है। इसके लिये जो माल के प्रविष्ट होने का बिल भरना पड़ता है वह उपरोक्त से भिन्न रहता है। ऐसी परिस्थिति में माल छूट कर उसी बन्धक घर में रखा जाता है और फिर जैसे-जैसे उसको निकालना है वैसे-वैसे उसकी चुङ्गी देनी पड़ती है। माल के प्रविष्ट होने के बिल में जहाज़ का नाम, माल उतरने के बन्दरगाह का नाम, माल मँगानेवाले का नाम और पता, माल की गाँठों पर के निशान और उनकी क्रम संख्या, माल की कीमत और उस पर के आयात-कर की रकम, इत्यादि भरी जाती हैं। जहाज़ी कम्पनियों के प्रतिनिधि भी अपने-अपने जहाज पर आने वाले माल के सम्बन्ध में उपरोक्त विवरण की एक तालिका चुङ्गी घर में भेज देते हैं। अतः, उससे इस माल के प्रविष्ट होने के बिल के लेखों का मिलान कर लिया जाता है। फिर इस पर के आयात-कर की रक़म की जाँच की जाती है और वह जमा कर देनी पड़ती है। इतना होने के बाद यह बिल चुङ्गी के आयात-विभाग के सहायक कलक्टर के हस्ताक्षर सहित माल छुड़ाने वाले को वापस कर दिया जाता है।

युद्ध की परिस्थितियों के कारण आजकल प्रत्येक देश में आयात के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार के बन्धन लगे हुये हैं जिस प्रकार के निर्यात के सम्बन्ध में लगे हुये हैं। अतः, किसी माल के आयात के सम्बन्ध में आर्डर देने के पहिले ही यदि आवश्यकता हो तो हमको उस माल के आयात की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। साथ ही भुगतान के लिये विदेशी मुद्रा की प्राप्ति का प्रबन्ध भी कर लेना

चाहिये। इसमें हमको उसी बैंक की सहायता भी मिल जाती है जिससे हम बिल की स्वीकृति का आदेश किसी विदेशी बैंक को भिजवाते हैं।

माल छुड़ाने वाला व्यक्ति जहाज़ के आ जाने पर माल के प्रविष्ट होने के बिल को और उसके छोड़ने के आदेश को लेकर उस स्थान पर जाता है जहाँ पर वह जहाज़ खड़ा होता है। अब वह वहाँ पर अपनी कुछ गाँठों को खोल कर चुंगी के अफ़सरों को जो वहाँ इसीलिये होते हैं इस बात का प्रमाण देता है कि जो माल आया है वह वही है जिसके विषय में उसने चुंगी दी है। अतः, जब यह हो जाता है तब चुंगी के अफ़सर माल के प्रविष्ट होने के बिल की पीठ पर अपना हस्ताक्षर करके अपनी सन्तुष्टि की स्वीकृति दे देते हैं। इसके बाद यह बिल और माल छोड़ने का आदेश दोनों बन्दरगाह के प्रबन्धक और जहाज़ी कम्पनी के प्रतिनिधि को दे दिये जाते हैं। वह माल छोड़ने के प्रमाण के स्वरूप में ऐसा करने के आदेश पर माल छुड़ाने वाले व्यक्ति का हस्ताक्षर प्राप्त कर लेते हैं। यदि माल रास्ते में खराब हो गया है और बीमा कम्पनी से उसकी क्षति पूरी करने की सम्भावना है तो वहीं पर उनके जाँच करने वालों (Marine Surveyers) से उसकी जाँच कराके इस सम्बन्ध का एक प्रमाण-पत्र भी प्राप्त कर लेना चाहिये। इसके बाद माल बन्दरगाह के बाहर लाकर रेल के द्वारा माल मँगाने वाले के पास भेज दिया जाता है और इसकी उसको सूचना दे दी जाती है। इस सूचना के साथ माल छुड़ाने वाला माल की बिल्टी, उसके सम्बन्ध के अन्य कागज़ात तथा अपने खर्चों, इत्यादि का बिल भी उसके पास भेज देता है।

माल मँगाने वाला उपरोक्त सूचना पाने के बाद अपने शहर की चुंगी को और रेलवे कम्पनी के महसूल को देकर माल छुड़ा लेता है। बस आयात का यही क्रम है।

(२) भारतवर्ष के आयात का व्यापार

जिस प्रकार भारतवर्ष के निर्यात का व्यापार ईसा के जन्म के

पहिले से होता चला आ रहा है उसी तरह से उसके आयात का व्यापार भी उसी समय से होता चला आ रहा है। बहुत पुराने समय में यहाँ पर विदेशो से खनिज पदार्थ, शराब, फल, गेहूँ, मसाले, और सोना, इत्यादि वस्तुयें आती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में भी यहाँ पर चाँदी, सोना, ताँबा, प्रभृति खनिज पदार्थ और ऊनी कपड़े, इत्यादि का आयात होता था। फिर इङ्गलैण्ड की मिलों के खुल जाने से यहाँ पर लोहे और इस्पात के सामान, कपड़े तथा अन्य बहुत सी आवश्यक तथा विलासिता की वस्तुयें आने लगीं।

सन् १९१३-१४ में हमने विदेशों से ६६ करोड़ रुपये का सूती कपड़ा, १½ करोड़ रुपये का कागज़, इत्यादि, ८ करोड़ रुपये की मशीनें, ४ करोड रुपये के धातु के बर्तन, १६ करोड़ रुपये का लोहा और इस्पात, १½ करोड़ रुपये की मोटर गाड़ियाँ और ४ करोड़ रुपये का तेल मँगवाया था। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय हम केवल तैयार माल का ही आयात करते थे और उसमें भी सूती कपड़े का भाग बहुत अधिक था। किन्तु युद्ध के समय में और उसके बाद इसमें परिवर्तन हुआ। हमारे यहाँ स्वयम् बहुत-सी चीज़ें बनने लगीं। कपड़े के मामले में तो हमारी राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस ने विदेशी कपड़े के बहिष्कार के आन्दोलन को पूरी तरह से सफल करके दिखा दिया। इसका फल यह हुआ कि सन् १९३९-४० में हमने सूती कपड़ा केवल १४ करोड़ रुपये का, कृत्रिम रेशम ४½ करोड़ रुपये का, कागज़, इत्यादि ३½ करोड़ रुपये का, मशीनें १४½ करोड़ रुपये की, धातु के बर्तन २¼ करोड़ रुपये के, लोहा और इस्पात ६ करोड़ रुपये का, मोटर गाड़ियाँ ५ करोड़ रुपये की, और तेल १७ करोड़ रुपये का मँगवाया। इससे कपड़े के, धातु के बर्तन के, और लोहा तथा इस्पात के आयात की कमी और कागज़, इत्यादि के, मशीनों के, मोटर गाड़ियों के और तेल के आयात की बढ़ती साफ़ स्पष्ट है। इसमें कपड़े के आयात की कमी और मशीनों के आयात की बढ़ती विशेष महत्व की है।

द्वितीय महायुद्ध के समय में कुछ ऐसा ही परिवर्तन होता रहा। अतः, सन् १६४५-४६ में हमने २२½ करोड़ रुपयों की मशीनें, १२½ करोड़ रुपये की धातुओं, ६ करोड़ रुपये की मोटर गाड़ियो, ६ ही करोड रुपये के रसायनों, १० करोड़ रुपये के रंग और चमडा कमाने के सामान, ३ करोड रुपये का ऊन और ऊनी माल, ३ ही करोड़ रुपये का कच्चा रेशम और २½ करोड़ रुपये के धातु के बर्तनो का आयात किया।

(३) भारत के मुख्य आयात

अब हम भारत के मुख्य-मुख्य आयातों पर अलग-अलग रूप से सक्षेप में विचार करते हैं। भारत के एक पूर्ण देश होते हुये भी अंग्रेज़ व्यापारियो की कूटनीति द्वारा अब तक यहाँ पर बहुत तरह का आयात ज़बरदस्ती लादा जाता रहा तथा इन आयातों को यहाँ पर खपाने के लिये अनेकों तरह की राजनैतिक चालें भी काम में लाई जाती रहीं। इन आयातों में मुख्य विलायती कपड़ा था।

कपड़ा—कुल भारतीय आयात का १५ से २० प्रतिशत तो विलायती कपड़ा ही आता था। इस समय भारत में कपड़े की बहुत सी मिलें खुल गई हैं परन्तु अमीरो का फ़ैशन तथा देश की जन-संख्या बढ़ जाने के कारण वे पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। आवश्यक तो यह है कि देश भर में चरखे और करघे का उद्योग फैलाया जाय। जब तक इसमे पूर्ण सफलता न प्राप्त हो जाय तब तक विदेशों से कटपीस तथा सस्ते कपड़े खरीदे जायँ। इस द्वितीय महायुद्ध के पहिले इंगलैंड और जापान से तो कपड़ा आता ही था पिछले बीस वर्षों में अमेरिका से कटपीस भी बहुत सा आया। इस समय भी यदि अमेरिका से पीस गुड्स खरीदे जायँ तो अवश्य सस्ते पड़ेंगे।

कले व मिल के सामान—प्रथम तो भारत एक ग़रीब तथा ग़ुलाम देश है। इस कारण बहुत दिनो तक तो यहाँ पर मशीनें और कल-पुर्ज़े तैयार करने का कोई कारखाना खोला ही नहीं गया। फिर बड़ी कठिनाई से ताता स्टील का कारखाना खुला जो प्रारम्भ में प्रथम

महायुद्ध के और सन् १६२० के पहिले तक विदेशी व्यापारियों की प्रतियोगिता के कारण नुक़सान तथा मुनाफ़े की बचत के बिना चलता रहा। सन् १६२० के लगभग इसे सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ जिससे इसकी उन्नति हुई। बीच में दो बार महायुद्धों के कारण समुद्री रास्तो के खतरे में पड़ जाने के कारण विदेशी व्यापार लगभग बन्द-सा हो गया तथा लड़ाई के सामान और रेलवे आदि की अधिक माँग होने के कारण इसकी और भी अधिक उन्नति हुई। दूसरी बात यह है कि आजकल हमारे विश्वविद्यालयों में विदेशियों के द्वारा लादी हुई पढ़ाई पढ़ाई जाती है जिसमें विज्ञान की कोई ठोस पढ़ाई नहीं होती। विद्यार्थियों को मशीनें और कल-पुर्ज़े बनाना, स्टील की ढलाई, औज़ारो का तैयार करना, आदि अभी तक नहीं सिखाया जाता। अभी यदि इसकी शिक्षा प्रारम्भ भी की जाय तो इसकी शिक्षा देने में कई वर्ष लगेंगे तथा कई वर्ष फिर इसे उन्नत करने में लगेगा।

अतः, यह आवश्यक है कि वर्त्तमान परिस्थिति को देखते हुये अभी कारख़ाने का सामान, मिलें, कल-पुरजे, मशीनरी, औज़ार, आदि बाहर से मँगाये जायँ। इस समय अमेरिका हमें और देशो से सस्ते भाव में और अच्छी मशीनरी दे सकेगा। अतः, ये सब वहीं से खरीदी जानी चाहिये।

नक़ली रेशम—इस महायुद्ध के पहिले जापान इंगलैंड तथा इटली से बहुत-सा नक़ली रेशम आता था। इस महायुद्ध के कारण इसका आयात बंद हो गया है। यदि इस समय भी पहिले की तरह ये सस्ते भाव में मिलने लगे तो इसे हम अवश्य खरीदेंगे। परंतु अपने देश में भी जूट, पाट; सन, सुतली, अलसी की छाल, रामबास तथा मदार की रुई आदि से इसको बनाने की कोशिश करनी चाहिये।

ऊनी माल—कुल भारतीय आयात के मूल्य का ३ प्रतिशत कच्चा तथा तैयार ऊनी माल विदेशों से आता है। इसमें कटपीस, सरजें, शाल, लोइयाँ, गंजी, बनियान, तथा घरों में बुनाई के काम

आने वाला तागा आता है। कच्चा ऊन तैयार माल के आधे दाम से अधिक का आता है। कच्चा ऊन विशेषतया न्यूज़ीलैंड से आता है तथा ब्रिटेन से बुनाई का तागा आता है। महायुद्ध के पहिले सबसे अधिक ऊनी माल की कटपीस जापान भेजता था। जापान के अलावा ब्रिटेन, जर्मनी, नेदरलैंड, बेल्जियम, फ्रांस तथा इटैली भी ये सामान भेजा करते थे। परंतु यह सब मिला कर जापानी आयात के आधे के बराबर भी नहीं होता था। सन् १९४०-४१ में ऊनी कटपीस का कुल जापानी आयात लगभग ४१ करोड़ रुपये का था।

आजकल की देशी भेड़ों का ऊन बहुत कुछ ब्रिटेन भेज दिया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हीं को मसालों और यंत्रों की सहायता से इतना मुलायम बनाया जाय कि उससे बना हुआ देशी बुनाई का तागा विलायती के मुकाबिले का हो।

दवाइयाँ—चिकित्सा विज्ञान का आविर्भाव सबसे पहले भारतवर्ष में हुआ था। जितनी चिकित्सा-पद्धति संसार में फैली हुई हैं उन सब का मूल भारत का आयुर्वेद शास्त्र है। आयुर्वेद से अधिक पुराना इतिहास और किसी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का नहीं है। यूनानी पद्धति आयुर्वेद से ही निकली है। अर्बी भाषा में अरस्तू के लिखे हुये ग्रंथों में इसका जिकर आया है। जहाँ तक अँग्रेजी पद्धति का प्रश्न है वह यूनानी पद्धति से निकली है। इतना होते हुये भी इस समय भारत में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति मृतप्रायः हो रही है। अपना देश हर प्रकार की जड़ी-बूटियों का भंडार होते हुये भी कुल भारतीय आयात का १½ प्रतिशत केवल विलायती औषधियाँ आती हैं। इनमें से विशेष आयात पेटेंट दवाइयों का होता है। इसके अलावा कुनैन सल्फर, मैगनेशिया, फेरी सल्फर, हाईड्रोजेन प्रोकसाइड, आईडिन, आदि दवाइयाँ आती हैं। सन् १९४१-४२ में कुल पौने तीन करोड़ की विलायती दवाइयाँ आई थीं।

भारत जड़ी-बूटियों का भंडार है। आवश्यकता इस बात की है

कि जड़ी-बूटियों की खोज के लिये प्रयोगशालायें तथा अन्य संस्थायें खोली जायें तथा अमृत तुल्य जड़ी-बूटियो द्वारा अच्छे-अच्छे योग तैयार कराये जायें। विदेशों से केवल वही औषधियाँ मँगाई जायँ जिनकी बड़ी आवश्यकता है।

देशी औषधियों द्वारा पेटेंट दवाइयाँ तैयार करने का काम कलकत्ते की बंगाल केमिकल कम्पनी, ढाका शक्ति औषधालय, कएडू फर्मास्युटिकल वर्क्स कर रहे हैं तथा एम० भट्टाचार्य एंड को ने तुलसी, वेल, पित्तपापड़ा, आदि से होम्योपैथिक दवाइयाँ भी तैयार करना प्रारम्भ किया है। परतु इतने ही से देश में दवाइयों की खपत पूरी नहीं होती। अतः, इसके लिये विशेष उद्योग किया जाना चाहिये।

अभी तक गुलामी के कारण चिकित्सा के विषय में उतनी नवीन खोज नहीं हो सकी थी जितनी रूस, इंगलैंड तथा अमेरिका के डाक्टरों ने की है। रूस और अमेरिका ने इस द्वितीय महायुद्ध में बहुत सी अद्भुत औषधियो का आविष्कार किया है। रूस में लड़ाई के घायल सिपाही दो ही तीन दिन में कोई न कोई काम करने के लायक बना दिये जाते थे। अतः, ऐसी लाभकारी औषधियों को हमें अवश्य लेना चाहिये तथा जब तक हम अपनी चिकित्सा पद्धति का पर्याप्त अध्ययन करके उन्नत न बना लें तब तक हमें ऊँचे दर्जे की आविष्कृत औषधियाँ तथा इंजेकशन आदि बाहर से अवश्य मँगाने चाहिये।

लोहे, चीनी और तामचीनी के सामान—यह सब वस्तुयें कुल भारतीय आयात की १½ प्रतिशत के लगभग आती हैं। विशेषता से, कृषि के यंत्र, इमारती फ़र्श, दीवार, तथा छाजन में काम आने वाली पालिश की हुई ईंटें और खपरे आदि, घरेलू काम की चायदानी, तस्तरी, प्याले, अमृतवान, आदि तथा सिनेटरी के काम के पायखाना, पेशाबखाना, तामचीनी की बाल्टियाँ, तस्तरी आदि की आवश्यकता भारत को अधिक पैमाने पर है। इसके लिए बहुत से देशी कारखाने

भी खुल गये हैं परंतु कृषि आदि के विशेष प्रकार के यंत्र तो अभी विदेशों से मँगाने ही पड़ेंगे।

रेशमी माल—रेशमी सामान का आयात कुल भारतीय आयात का १ प्रतिशत है। द्वितीय महायुद्ध के पहिले रेशमी सामान चीन, जापान, इंगलैंड और फ्रांस से आता था। परंतु अब इनका आयात घट रहा है क्योंकि अब भारत में रेशमी माल की उत्पत्ति के कई केन्द्र, मैसूर, बंगलौर, कोलार और तमकुर में और कश्मीर में बड़ी उन्नति पर हैं तथा बंगाल, आसाम और बिहार तथा बनारस में भी इसका पुराने समय से काम हो रहा है। भारत में इसके लिये बहुत बड़ी गुंजाइश है। रेशम के कीड़े पालने और रेशमी सूत तैयार करने के काम भारत के गाँवों में घरेलू उद्योग-धंधों की तरह प्रचार किये जाने चाहियें और करघों पर इसकी बुनाई कराई जानी चाहिये। इससे रेशमी सामान का आयात कम किया जा सकता है।

रबड़ के माल—रबड़ के माल का आयात कुल भारतीय आयात का लगभग १ प्रतिशत के है। सन् १९४० में एक करोड़ ४८ लाख तथा सन् १९४१ में एक करोड़ ५६ लाख का रबड़ का माल विदेशों से आया था। रबड़ के माल में विशेषता से साइकिल और मोटर के टायर और ट्यूब, ताँगे की रबड़ आदि हैं और इसमें विशेषता से कुल रबड़ के माल के निर्यात का ७० प्रतिशत मोटर का टायर होता है।

अब इस समय भारत में द्वितीय महायुद्ध के अन्त के परिणाम-स्वरूप मोटर, मोटर-साइकिल, हवाई जहाज़, ट्रकलारी, आदि की अधिक से अधिक वृद्धि हो गई है। भारत अपने देश की खपत के अनुपात से अभी इतनी कच्ची रबड उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः, बाहरी देशों से भारत को कच्चे-पक्के दोने तरह के माल को मँगाना पड़ेगा। अभी तक रबड़ के माल ब्रिटेन व अमेरिका देते थे। महायुद्ध के पहिले जापान व जर्मनी भी अधिकता के साथ रबड़ का माल भेज रहे थे। परन्तु इस महायुद्ध के अन्त होने के साथ-साथ उनके व्यापार

का भी अन्त हो गया है। यदि इस समय भारत, बर्मा, जावा, हिन्द-चीन, सुमात्रा, बोर्नियों आदि से कच्ची रबड़ खरीदने का व्यापारिक समझौता कर ले तो वहाँ से जो कच्ची रबड़ यहाँ आयेगी उससे यहाँ के बहुत से रबड़ के कारखाने भविष्य में सफलतापूर्वक चलाए जा सकेंगे।

रेलवे, तार तथा टेलीफोन का सामान—सन् १८५७ के ग़दर के पहिले रेलवे और तार के सामान भारत में इसलिये आते थे कि इनके द्वारा भारत के विभिन्न प्रांतों को जोड़ दिया जाय जिससे भारत में अंग्रेज़ो का व्यापार तथा अंग्रेज़ों का शासन दृढ़ हो जायँ। इस लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये रेलवे तथा तार का सामान प्रथम महायुद्ध के पहिले सन् १९१४ ई० तक सरकारी मॉग के अनुसार तथा रेलवे बोर्ड की मॉग के अनुसार आता रहा। भारत की रेलें अंग्रेज़ व्यापारियों की थीं जिनको अंग्रेज़ी सरकार ने एक निश्चित समय तक मुनाफ़ा, भाड़ा, आदि प्राप्त करने का ठेका दे रक्खा था। मियाद पूरी होने पर अब अवश्य ये सरकारी हो गई हैं।

कुछ देशी राज्यों ने भी अपने राज्य में रेलवे निकलवाई हैं। परन्तु उनमें भी भारतीय हिस्सों के साथ अंग्रेज़ी कम्पनियो के हिस्से हैं। इनमें मुख्य राज्य ये हैं:—ग्वालियर, इन्दौर, निज़ाम, बड़ौदा तथा जोधपुर। यहाँ की देशी रेलवे कम्पनियाँ भी अपनी खपत का सामान ब्रिटेन से ही मॅगाती रही हैं। रेल की पटरियों के नीचे पहिले लकड़ी के स्लीपर बिछाये जाते थे जो बर्मा तथा आस्ट्रेलिया से आते थे। बाद में मैले तथा कच्चे लोहे के लम्बे छड़ जो कई प्रकार के होते हैं पटरियों के नीचे बिछाने के लिये ब्रिटेन से आने लगे और स्लीपरों का बिछाना कम हो गया। रेल के डिब्बे बनाने की लकड़ी आस्ट्रेलिया तथा बर्मा से आती रही तथा मालगाड़ी के डिब्बों के अलग-अलग भाग भी ब्रिटेन से आते थे जिनको यहाँ जोड़ कर डिब्बा तैयार कर लिया जाता था।

प्रथम महायुद्ध के समय जब कि लड़ाई के कारण ब्रिटेन से माल आना बंद हो गया था बहुत-सा माल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया से भी आया। उस समय से अब तक थोड़ा-बहुत माल इन देशों से बराबर आता रहा है परन्तु यह तीनो देश मिल कर भी ब्रिटेन के कुल रेलवे आयात के तीन प्रतिशत से अधिक का आयात नहीं भेजते थे। हाँ, सन् १६३६ के बाद जब द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो अमेरिका तथा कैनाडा से काफ़ी रेलवे का सामान आया। सन् १६४५ से १६४७ तक इंजन, मालगाड़ी, तथा पैसेन्जर गाड़ी के अलग-अलग जो भाग आये हैं वे वास्तव में बहुत उत्कृष्ट प्रकार के हैं। अमेरिका से मालगाड़ी के बहुत से लकड़ी के डिब्बे आये हैं जो बहुत मजबूत और काम लायक सिद्ध हुये हैं।

तार का सामान तो एकमात्र ब्रिटेन ही से आता था। कुछ थोड़ा-सा माल अमेरिका, इटैली और जापान से भी आया करता था। परन्तु अब इस द्वितीय महायुद्ध के समय यह बहुत अधिक परिमाण में अमेरिका से आया है।

रेलगाड़ी का बहुत-सा सामान और इन्जन के पुरजे, पटरियाँ, पहिये, मालगाड़ी के डिब्बों आदि का बनना इस महायुद्ध के समय से टाटा स्टील कम्पनी तथा बंगाल आयरन वर्क्स में भी प्रारम्भ हो गया है। अतः, भविष्य में इनके और अधिक मात्रा में भारत मे बनने की सम्भावना है। इस समय इनके आयात हमे अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन तथा रूस से प्राप्त हो सकते हैं।

मोटर और साइकिलें—मोटरो का आयात अभी भारत मे बहुत पुराना नहीं है। यहाँ पर इनका प्रचार हुये लगभग पचास-साठ वर्ष से अधिक नहीं हुये हैं। पहिले-पहिल इनका आयात विशेषतः से ब्रिटेन ही से आता था। बाद मे अमेरिका की कुछ कम्पनियो ने इसके व्यापार मे काफ़ी उन्नति की और मोटर तथा मोटर के पुर्ज़ों का आयात विशेषतः से अमेरिका से अब तक चला आ रहा है।

साइकिलें ब्रिटेन ही से आती थी। प्रथम महायुद्ध के अन्त के बाद और द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ काल तक इनका आयात जर्मनी और जापान से बहुत बड़ी चुंगी देकर भी बहुत बड़े परिमाण में होता रहा जिसके कारण ब्रिटेन इनकी प्रतियोगिता में न ठहर सका तथा उसको अपने यहाँ के माल का दाम बहुत गिराना पड़ा। अब तो भारत में भी साइकिलें बनने लगी हैं तथा निकट भविष्य में बड़ौदा रियासत में एक मोटर का भी कारखाना खुलने वाला है जिसके खुल जाने से भारत को लाभ ही होगा।

बिसातखाना—इसकी वस्तुयें पहिले ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, नारवे, डेनमार्क, पुर्त्तगाल, इटैली, ज़ेकोस्लोवैकिया, आदि देशों से आती थीं। परन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी तथा जापान से भी इनका इतना आयात हुआ कि बहुत-सा माल भारत के प्रत्येक बड़े-छोटे सभी बाज़ारों में भर गया। यह वस्तुयें हद दर्जे तक सस्ती भी थीं। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ से जर्मनी व जापान से आयात बन्द हो जाने के कारण, बिसातखाने की वस्तुयें बहुत मँहगी हो गई हैं और अब तक बराबर मँहगी हैं। लड़ाई बन्द होने के बाद से इधर कुछ बिसातखाने की वस्तुयें अमेरिका तथा चीन और ब्रिटेन से भी आ रही हैं जिससे अब बाजारों में बिसातखाने की कुछ,वस्तुयें प्राप्त होने लगी हैं।

इस समय बिसातखाने की बहुत-सी वस्तुयें भारत में भी बनने लगी हैं। परन्तु अभी इसकी आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा विचार किया जाता है कि भूतकाल में सस्ते बिसातखाने के आयात में जो जापान का दरजा था वही अब चीन तथा हिन्द-चीन का हो जायगा और भविष्य में हमें इन्हीं देशों से सस्ता बिसातखाना प्राप्त हो सकेगा।

मिट्टी का तेल—इसका आयात बर्मा तथा अमेरिका से होता है। द्वितीय महायुद्ध के समय इनका आयात बन्द हो गया था परन्तु युद्ध के अन्त के बाद से अब यह ईराक से बराबर आ रहा है।

हवाई जहाज—इस महायुद्ध के समय में तो इनका बहुत बड़ा आयात संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से हुआ है। परन्तु अभी तक यह लड़ाई के और सरकारी काम के लिये आये हैं। सम्भव है कि निकट भविष्य में यह जनता के यातायात के लिये रेलगाड़ी की तरह सुलभ हो जायँ। अतः, उस समय इनकी और अधिक आवश्यकता पड़ेगी। भविष्य में विशेषतया अमेरिका तथा कुछ रूस से भी इनके आयात होने की सम्भावना है।

गेहूँ, चावल आदि—इस महायुद्ध के प्रारम्भ तक तो विशेषतः इनका निर्यात ही होता था। परन्तु इस युद्धकाल में भारत का संचित गल्ला फौजियों के खर्च में आ जाने से इस समय भारत में बड़ा अन्न-संकट छा गया है और अब गेहूँ कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया, आदि देशों से तथा चावल बर्मा, जावा, सुमात्रा आदि देशों से आ रहा है। परन्तु भविष्य में दो-तीन साल के अन्दर भारत में यदि कृषि की दशा अच्छी रही तो अन्न का अभाव दूर हो जावेगा। अतः, इस समय का यह गल्ले का आयात अस्थायी है। तीन-चार साल के बाद शायद इसकी आवश्यकता न रहेगी।

ऊपर लिखे हुये भारत के मुख्य मुख्य आयात हैं। इनके अलावा और भी बहुत-सी वस्तुयें जैसे तेजाब, ह्विस्की, वाइन, पेट्रोल, अलम्युनियम, किताबें, काग़ज़, घड़ियाँ, पक्के चमड़े का सामान, बन्दूकें, काँच का सामान, रंग, सोना, चाँदी, बिस्कुट, दुग्ध, चूर्ण, सीमेंट, बैटरी, सूखी मछली, वैसलीन, वार्निश, फोटोग्राफ़ी का सामान, लोहे के औजार, सिनेमा मशीन, स्प्रिट, साबुन, आदि-आदि वस्तुओं का भी न्यूनाधिक मात्रा में विदेशों से आयात होता है। इसमें से मशीनों के, रसायनों के, रंग और चमड़ा कमाने के आयात की कमी हमारे यहाँ की कारीगरी की उन्नति का द्योतक है।

(४) हम आयात कहाँ से करते हैं ?

सन् १९१३-१४ में हमारे कुल आयात का ६२·८ प्रतिशत भाग

ब्रिटेन से, ६'४ प्रतिशत भाग जावा, बोर्नियो से और इतना ही जर्मनी से, ३.१ प्रतिशत भाग अमेरिका से, और २ ५ प्रतिशत भाग जापान से हुआ था। इसके विपरीत सन् १६३८-३६ में यह ब्रिटेन से ३०'५ प्रतिशत, वर्मा से १६ प्रतिशत, जापान से १०'१ प्रतिशत, जर्मनी से ८ ५ प्रतिशत, और अमेरिका से ६'४ प्रतिशत हो गया था। इससे ब्रिटेन से हमारे आयात की कमी और अन्य देशों से बढ़ती बिल्कुल स्पष्ट है। द्वितीय महायुद्ध के समय मे जापान और जर्मनी से तो हमारा आयात बिल्कुल बन्द हो गया और ब्रिटेन से काफ़ी घट गया तथा अमेरिका और मध्य पूर्व के देशो से बढ़ गया है। सन् १६४४-४५ में यह ब्रिटेन से १६'६ प्रतिशत, ईरान से २४'३ प्रतिशत, मिश्र से ८.४ प्रतिशत और अमेरिका से २५ प्रतिशत था। भविष्य में स्थिति के सुधरने के बाद जापान और जर्मनी से हमारा आयात फिर बढ़ जायगा। ब्रिटेन से हमारे आयात के बढ़ने की कोई आशा नहीं है क्योंकि वह हमारी माँगो को पूरा नही कर सकेगा। हमको तो अपनी कारीगरी की उन्नति करने के लिये मशीनो, इत्यादि की आवश्यकता है जो हमे अमेरिका ही दे सकता है।

(५) हमारे आयात में हमारा भाग

प्रायः भारत मे जो आयात विदेशों से होते हैं उसमे अधिकतर हमारा हाथ नहीं है क्योंकि भारत में आयात मँगाने वाली लगभग सभी कम्पनियाँ अंग्रेज़ो की हैं। विदेशी व्यापारियों की यहाँ पर जो शाखाएँ हैं अथवा उनके जो प्रतिनिधि हैं वे ही लोग हमसे आर्डर लेकर अपनी तरफ़ से माल मँगा कर हमको दे देते हैं। इस तरह विदेशी व्यापारियो से हमारा सीधा सम्बन्ध न रहने से हमको अंग्रेज़ों का परमुखापेक्षी होना पड़ता है। मिल का सामान, मोटरें, मशीनें बिसातखाना, रबड के सामान, आदि जो भारत में बाहर से आते हैं उनमें यहाँ पर रहने वाले विदेशी अढ़तियों को भी नफ़े का एक बड़ा भाग मिल जाता है जिससे बाहर से आए हुये आयात साधारणतया

मँहगे पड जाते हैं। भारत जैसे ग़रीब देश की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि भारतीय व्यापारी अपने मार्फ़त विदेशों से सीधे माल का आयात पा सकें तो अवश्य ही अपेक्षाकृत ये वस्तुयें सस्ते में बिकें।

हमारे आयात का माल विदेशों से विदेशी कम्पनियों के जहाज़ों पर आता है और विदेशी बीमा कम्पनियों से ही उनका बीमा होता है। बैंक भी विदेशी ही हैं। अतः हमारे आयात में हमारा उतना भाग नहीं है जितना कि विदेशियो का है। हमारा भाग तो तभी कुछ होता है जब कि हमारे देशी व्यापारी उसे देश के भीतरी शहरों में थोक और फुटकर व्यापारियों के हाथ वितरण करते हैं। इस तरह से हमारे देशी व्यापारी अंग्रेज़ अढ़तियों के बाद ही कुछ नफ़े का भाग पाते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि अब हम विदेशो से आयात भेजने वालो से सीधा सम्बन्ध जोड़ें तथा उनसे हर प्रकार का व्यापारिक समझौता स्वयं कर लें और बिना किसी विदेशी आढ़तिये की सहायता के हम अपने आयात अपनी मार्फ़त सीधे मँगायें।

हमको अपनी जहाज़ों और अपनी बीमा कम्पनियों तथा अपने ही बैंकों की भी आवश्यकता है।

भविष्य में हम आशा करते हैं कि हमारे देश के व्यापारी अपने ही जहाजों को ले जाकर विदेशों से अपनी आँखों से देखकर सस्ता, अच्छा तथा उपयोगी आयात स्वयं ख़रीद लाया करेंगे। तभी हमको उपयोगी तथा सस्ते आयात प्राप्त हो सकेंगे।

इसके लिये भारतीय व्यापारियों को संगठित होना पड़ेगा। साथ ही उनको एक विशाल कम्पनी के रूप में विशाल पूँजी एकत्रित करनी पड़ेगी तथा उस विशाल पूँजी के द्वारा, व्यापारी जहाजों का निर्माण करना और विदेशों में अपनी आढ़तें खोलनी पड़ेंगी इससे वे लोग अपनी इच्छानुसार माल हासिल कर सकेंगे।

अब भारत स्वतंत्र हो गया है। अतः, उसे अब प्रत्येक बात में स्वावलम्बी तथा मजबूत बनना है। अभी स्वरक्षा के लिये लड़ाई, आदि के नवीन वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों को तब तक तो विदेशों से अवश्य खरीदना है जब तक आवश्यकता की पूर्ति के अनुसार यह वस्तुयें देश में ही न तैयार होने लग जायँ।

भारत के सबसे अच्छे मित्र राष्ट्र बरमा, हिंद-चीन, सुमात्रा, बोरनियो, जावा, आदि द्वीप तथा चीन हैं। वैज्ञानिक यंत्र तथा मशीनों को छोड़ कर 'भारत अपनी सभी तरह की आवश्यकतायें इन देशों से पूरी कर सकता है।'

रह गई मशीनों की बात। सो इस समय रूस और अमेरिका ही सबसे बड़े बलवान राष्ट्र तथा आधुनिक से आधुनिक प्रकार की मशीनें बनाने वाले हैं। परंतु इन दोनों राष्ट्रों के दो विभिन्न एक दूसरे के प्रतिकूल के दृष्टिकोण हैं। एक राष्ट्र मज़दूरों का तथा साम्यवाद का प्रचार चाहता है और दूसरा अपना व्यापार फैलाना चाहता है। भारत के श्रमजीवी किसानों का देश होने से रूस इसकी ओर अवश्य ही विशेष सहानुभूति रख सकता है। इससे भविष्य में रूस और भारत की मित्रता बनी रहने में कोई संदेह नहीं है और इस तरह से रूस के साथ इसका अच्छा व्यापारिक समझौता हो सकता है। रूस भारत को उधार तथा सस्ते दाम पर अपने यहाँ की सभी प्रकार की मशीनें दे सकता है। यदि रूस की चीनी तुर्किस्तान में आने वाली ट्रांस-साइबेरियन रेलवे की शाखा से अफ़गानिस्तान में रेलवे निकाल कर खैबर रेलवे से मिला दी जाय जिसका कि भविष्य में होना कुछ असम्भव नहीं है तो रूस के साथ हमारा सीधा व्यापारिक संबंध हो जाय। अमेरिका भारत का कच्चा माल, चमड़ा, खाल, काफ़ी, जूट, चाय, आदि पाने के लोभ से अपने यहाँ की बनी हुई मशीनें सुविधा के साथ अवश्य देगा। फिर वह तो अपने व्यापार का प्रसार चाहता ही है। इस महायुद्ध के समय बहुत से अमेरिकन

सैनिक रूप में भारतवर्ष में आए थे और यहाँ की प्रत्येक प्रांत की दशा, आर्थिक स्थिति, ग़रीबी तथा श्रमजीवियों की अधिकता आदि अपनी आँख से देख गए हैं। इस तरह अमेरिकनों द्वारा भारत की स्थिति का साक्षात् निरीक्षण होने से अमेरिका इस समय भारत की रत्ती-रत्ती परिस्थिति जानता है और वह भारत में घरेलू उद्योग-धंधों में काम आने वाली बड़ी सुन्दर और सस्ती मशीनें बना भी रहा है। भारत के कुछ व्यवसायी जो अमेरिका गये थे वहाँ से बहुत सी मशीनें खरीद भी लाये हैं। वे मशीनें यहाँ भारत में बहुत उपयोगी साबित हो रही हैं। इससे मालूम हो रहा है कि अमेरिका भारत की रुचि को भली भाँति समझता है और भविष्य में वह बहुत से उपयोगी आयात भारत में भेजेगा।

(६) युद्ध-काल में हमारे आयात

युद्ध-काल में हमारे आयात पर हमारे निर्यात से भी अधिक नियन्त्रण था। शत्रु देशों से तो हम व्यापार कर ही नहीं सकते थे। इसके अलावा साम्राज्य के बाहर के अन्य देशों से भी हम बहुत कम माल मँगा सकते थे। बात यह थी कि हमें उनको जो कीमतें देनी पड़ती थीं उन्हे हम देना नहीं चाहते थे। फिर यह भी बात थी कि संसार के सभी देश लड़ाई में ऐसे फँसे हुये थे कि उनसे हमें कोई चीज़ मिल ही नहीं सकती थी। यदि ऐसी बात किसी के साथ नहीं थी तो वह अमेरिका ही था। किन्तु हमें उसकी जो मुद्रा उसे माल देने से प्राप्त होती थी वह हम साम्राज्य के डालर के कोष में दे देते थे और उसमें से किसी को डालर तभी मिलते थे जब वह इस बात का प्रमाण दे देता था कि उसके लिये उन डालरों का मिलना युद्ध को चलाने के लिये आवश्यक था। इसके अलावा हमारे आयात में कमी होने का एक यह भी कारण था कि हमको माल लाने के लिये जहाज़ नहीं मिल पाते थे। उनको लड़ाई से ही समय नहीं बचता था। यदि वह माल लाते तो कैसे लाते? इतने पर भी हमारे आयात का मूल्य बहुत

कम नहीं हो पाया था। बात यह थी कि वस्तुओं के दाम तो बढ़ ही रहे थे। सन् १९३८-३९ में हमारे कुल आयात का मूल्य लगभग १५२ करोड़ रुपये का था। सन् १९४३-४४ में यही लगभग ११८ करोड़ रुपये के हो गया था। फिर सन् १९४४-४५ और १९४५-४६ में यही क्रमशः २०३ करोड़ और २४० करोड़ रुपये के लगभग हो गया था। इन अन्तिम वर्षों में जर्मनी की पनडुब्बियों के परास्त हो जाने के कारण समुद्री रास्तो के खुल जाने से भी व्यापार की कुछ उन्नति हो गई थी। इन अन्तिम दो वर्षों में हमारे यहाँ मोटर गाड़ियो का, ऊन और ऊनी माल का, रेशमी माल का, धातु के बर्तनो का और मशीनों का आयात बढ़ गया था।

(७) भविष्य में हमारे आयात

निकट भविष्य में तो हमारे आयात बढ़ेंगे ही। बात यह है कि इस समय हमको अपने उपभोग और उन्नति दोनो के लिये ही माल चाहिये। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है युद्ध के समय में निर्यात की अपेक्षा इस देश मे आयात पर अधिक नियन्त्रण थे। फिर अधिकतर देश लड़ाई में फँसे रहने अथवा लड़ाई के सामान बनाने के कारण हमारे यहाँ भेजने के लिये माल बना ही नहीं रहे थे। इसके विपरीत हमारे यहाँ मुद्रा के प्रसार के बढ़ने के कारण लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ ही गई है और देश में उनकी माँगो को पूरी करने के लिये उद्योग-धन्धे काफ़ी मात्रा में नहीं हैं। अतः, हमको विदेशों से माल मँगाना ही पड़ेगा। यह बात दूसरी है कि अभी यकायक वे लोग हमको माल नहीं भेज सकते हैं। प्रथम तो उनको युद्ध की परिस्थितियों को दूर करके शान्ति की परिस्थितियों में आने में समय लग रहा है। दूसरे उनके यहाँ सभी देशों की माँगे हैं, जिससे वह हमारी माँगें धीरे-धीरे ही पूरी कर पावेंगे। किन्तु अन्त में तो वे पूरी होंगी ही और इसमें कोई विशेष हानि भी नहीं है। जो चीज़ हमारे यहाँ बन ही नहीं रही है, यदि उसे हम विदेशों से मँगा लेते

हैं तो क्या हर्ज है ? किन्तु साथ ही इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उनसे हमारे यहाँ के उद्योग-धन्धों को तनिक-सा भी धक्का न लगने पावे। इसके लिये हमको आयात-सम्बन्धी आदेश-पत्रों को लेने की प्रथा को भविष्य में भी चालू रखना पड़ेगा।

अब रह गया उत्पत्ति सम्बन्धी माल के आयात का प्रश्न। इनकी तो सचमुच ही हमें बड़ी आवश्यकता है। हमारे यहाँ मशीनो की बड़ी कमी है। प्रत्येक धन्धे के लिये मशीनें चाहिये। हमारी कपड़ों की मिलें भी खराब हो गई हैं, उनको हमें बदलना है। फिर हाथ के धन्धो के लिये भी हमको नये ढङ्ग के औज़ार चाहिये जो हमें विदेशों में ही मिल सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सब मशीनें और औज़ार हमारे यहाँ भी बन सकते हैं। किन्तु इसमें समय लगेगा और फिर उनको बनाने के लिये भी तो मशीनें चाहिये। मशीनों और औज़ारो के अलावा हमें कुछ कच्चा माल भी चाहिये।

उपरोक्त के अलावा हमको अपने यातायात के साधनों को बढ़ाने के लिये समुद्री पोतों, वायुयानों, मोटर गाड़ियों, लारियो, रेलो, और इंजनों की भी आवश्यकता है। जब तक ये चीज़ें हमारे यहाँ अधिक मात्रा में नहीं बनने लगती हैं तब तक हम उनके लिये अपनी उन्नति में रुकावट नहीं डाल सकते हैं। उनको भी हमें अभी विदेशो से मँगाना ही है।

हमारे देश की कृषि की उन्नति के लिये भी हमको अनेको चीज़ें विदेशों से मँगानी हैं। मशीनो और औजारों के अतिरिक्त हमें कृत्रिम खाद की भी आवश्यकता है। अतः, इन सबको भी अभी हमें आयात करना ही पड़ेगा।

अब हमें ये सब चीज़ें अधिकतर अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया से मिल सकेंगी। जहाँ तक कनाडा और आस्ट्रेलिया के भुगतान का प्रश्न है वह तो हम अपने स्टर्लिंग के कोष से कर सकते हैं। किन्तु अमेरिका के भुगतान के लिये हमें डालर चाहिये। इसके

लिये एक तो इंगलैण्ड को हमारे कुछ स्टर्लिंग के स्थान पर डालर दे देने चाहियें। दूसरे साम्राज्य के डालर का एक उचित भाग हमको मिलना चाहिये। तीसरे हम जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष और बैंक के सदस्य बन गये हैं उससे हमको कुछ डालर उधार भी मिल सकते हैं जिनको हम शीघ्र ही अपने निर्यात के शेष से पूरा कर देंगे। चौथे और अन्तिम, हम अमेरिका से एक ऋण भी प्राप्त कर सकते हैं।

(८) विदेशी आयात का प्रभाव

विदेशों से जो आयात अब तक आए उसका भारत की आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है तथा भारतीयों की विचारधारा में भी काफ़ी परिवर्त्तन हुआ है।

तीन सौ बरस पहिले जब अंग्रेज़ आए तो अपने यहाँ अपनी कोठियों पर पहरेदारों के लिये इंगलैंड की बनी तोड़ेदार व कारतूसी बन्दूकें लाए जो यहाँ की बनी हुई बन्दूकों से अच्छी थीं और इस तरह से अपना राज्य तथा व्यापार बढ़ाने के लिये उत्कृष्ट बारूद, कारतूस और बन्दूकें तथा हलकी तोपें फ़ौज की वर्दियाँ आदि लाते और मँगाते रहे। भारतीय राजे-महराजे इनके लड़ाई के सामान की उत्कृष्टता देख कर विशेष रूप से इनकी ओर आकृष्ट हुये और अंग्रेज़ों से लड़ाई का सामान खरीदने लगे।

इंगलैंड एक खेतिहर देश नहीं है। उसे केवल अपने देश की कारीगरी की उन्नति करके दुनिया में अपना महत्त्व स्थापित करना था। इसी उद्देश्य को लेकर समूचे ब्रिटेन की कारीगरी की उन्नति के लिये करोड़ों रुपये की पूँजी की एक ईस्ट इंडिया कंपनी नाम की संस्था स्थापित उस समय के शासक की आज्ञानुसार की गई। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में योरोप के देशों विशेषतः से इंगलैंड में बड़े-बड़े आविष्कार हुये। ब्रिटेन कारीगरी का इतना अच्छा केन्द्र हो गया कि वहाँ से बढ़िया से बढ़िया और चमक-दमक

वाले सामान भारत में बराबर आने लगे। आयात का एक बड़ा भाग फ़ौजी और लोहे के सामान का भी होता था। इनकी उत्कृष्टता देख कर भारतवासी इनके और दूसरे आयातों पर भी आकृष्ट होने लगे।

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल में मैनचेस्टर में कपड़े की मिलें खुलीं तथा लिवरपूल तक रेलवे बन गई जिससे ब्रिटेन के व्यापारी कपड़े का बहुत बड़ा निर्यात करने लगे।

उस समय भारतीय कपड़े से विलायती कपड़ा टक्कर नहीं ले सकता था। तथापि अंग्रेज़ों का राज्य भारत के एक बहुत बड़े हिस्से में स्थापित हो चुका था। मुग़ल राज्य के पतन के समय आए दिन यहाँ के सभी भागो में मारकाट तथा लूटमार मची रहती थी जिससे देश की ग़ुलामी के आगमन के साथ-साथ यहाँ की कारीगरी भी चौपट हो गई।

ढाका, मुरशिदाबाद, कटक, आदि में बहुत अच्छा कपड़ा बुना जाता था। परन्तु अंग्रेज़ो ने इन सबको ज़बरन् बंद कर दिया। ढाका के अच्छे-अच्छे तनजेब बिनने वाले जुलाहों के अँगूठे कटवा लिये गये। हाँ, भारत से प्राप्त होने वाली बढ़िया से बढ़िया रुई का निर्यात तो अवश्य इन्होने अपने देश को करना प्रारम्भ कर दिया और साथ ही उनके स्थान पर और यहाँ के बाज़ारों में अपना माल भर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में भारत में बहुत-सी मशीनें, रेलवे, तार, मिल आदि के सामान भी आये। ईस्ट इन्डिया और ग्रेट इन्डियन पेन्शुलर रेलवे कम्पनियाँ स्थापित हुई। कहना न होगा कि रेल, तार, मिल, इंजन, आदि को देखकर भारतीय इन वस्तुओं की तरफ़ अधिक खिंचे और अंग्रेज़ों को बड़ा चतुर, बुद्धिमान और बड़ी आदर की दृष्टि से देखने लगे।

सन् १८५७ में सिपाही-विद्रोह हुआ और ऐसा प्रतीत होता था कि अब अंग्रेज लोग यहाँ से सदा के लिये चले जायँगे। परन्तु अंग्रेजों ने अपनी विभेद नीति से भारत की राजनैतिक शक्तियो को ऐसा

छिन्न-भिन्न कर दिया कि ग़दर के बाद फिर यहाँ पर उनका प्रबल अधिकार हो गया।

इसके बाद देश में जल्दी-जल्दी रेलों का विस्तार हुआ जिनके द्वारा विलायती आयातों की भरमार हो गई। भारतीय व्यापारी इन्हें फैलाने में सहायक हुये और इनके जहाज़ों पर आए हुये आयात की आढ़त तथा दलाली करने लगे। इस काम से वे लखपती बनने लगे। इन व्यापारियों ने कलकत्ता, बम्बई, कराची, मदरास, आदि अंग्रेजो के बन्दरगाहो पर जाकर अड्डा जमाया और दिन दूनी-रात चौगुनी उन्नति करने लगे। इनमें विशेषतः मारवाड़ी जाति के भारतीय थे।

मारवाड़ी अपने जाति भाइयों की बढ़ती की कहानी सुन-सुन कर अपने मरुस्थल से लोटा-डोर ले-ले कर निकले और कलकत्ता, बम्बई, कराची, मदरास, रंगून, आदि बन्दरगाहों में जाकर बस गये और विदेशी आयात का व्यापार करने लगे। इसके अलावा भारत के अन्तर्गत जितने बड़े-बड़े भीतरी व्यवसायिक केन्द्र थे वहाँ भी प्रत्येक स्थान में जाकर ये लोग बस गये• और वहाँ पहुँच कर आयात के थोक वालो से उधार माल लेकर कारबार करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही समय में ही अच्छे पूँजीपति हो गये।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में विलायती आयात का यह प्रभाव पड़ा कि पुराने भारतीय उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। रेलों के बन जाने से बनजारों का रोज़गार मारा गया। ब्रिटेन को अपना आयात धड़ल्ले के साथ फैलाना था। इसलिये वहाँ के निवासियों ने मारवाड़ी तथा अन्य व्यापारियों को उधार अथवा बैंक तथा सरकारी ज़िम्मेदारी पर माल देना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही छोटे दूकानदारों को भी कुछ नकद तथा कुछ उधार लेकर माल मिलने 'लगा। इन सबके फल-स्वरूप कुछ व्यक्ति तो साधारण पूँजीपति हो गये और बाक़ी साधारण जनता, उद्योग-धन्धों की हानि

से तथा कृषि तथा चाकरी से जीवन बिताने वाली होने के कारण ग़रीब और दिनों-दिनों अधिक ग़रीब होने लगी।

कलकत्ता, बम्बई के अंग्रेज व्यापारियो के सम्बन्ध से उठे हुये व्यापारियों ने अंग्रेजों की थोडी बहुत नकल भी की। उनके साथ संगठित होकर उन्होंने इगलैंड से मिल का भी सामान मँगाया। इस तरह से यहाँ पर कपड़े, आटे, तेल तथा जूट की मिलें स्थापित हुईं और उनमें अंग्रेज़ तथा हिन्दुस्तानी दोनों मुनाफ़ा खाने लगे। देश की ग़रीब जनता खिमिट कर मज़दूरो के रूप में इन कारख़ानो मे भरती हो गई। इन मिल-मालिको को सफल होते देख कर कानपुर, दिल्ली, अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर, आदि शहरों में भी विलायत से मिल का सामान मँगाकर मिलों का खुलना आरम्भ होगया और धनिको की तादाद जल्दी-जल्दी बढ़ने लगी।

धनीवर्ग ने अपने मालिक तथा व्यापार-गुरु अंग्रेज़ों का अनुकरण किया, बँगले बनवाये, मोटरें रक्खीं—अंग्रेज़ी सूट-बूट की वेष-भूषा को अपनाया जिससे भारत में मोटरे, फ़ैशन तथा सजावट के सामान, क्रीम, साबुन, सिग्रेट, वाइन, ह्विस्की, ब्रान्डी, आदि शराबें, अंग्रेज़ी दवाइयाँ तथा अंग्रेज़ी साहित्य आदि की आवश्यकता पैदा हो गई। माँग बढ़ जाने के कारण इनका काफ़ी आयात होने लगा। फिर भारत में विदेशी सरकार होने के कारण इन आयातों को प्रोत्साहन भी खूब मिला।

इन सब आयातो का यह प्रभाव पड़ा कि एक तरफ तो धनीवर्ग अंग्रेजियत के रंग मे डूबे हुये अंग्रेज़ो की तरह बहुत अधिक खर्चीले हो गये। मोटर, फैशन, सिग्रेट, आदि मे तथा कीमती शराबो में उनका सैकड़ो तथा हजारों रुपया प्रतिमास व्यय होने लगा। इन्होंने अंग्रेजियत के रंग मे रंगे रहने के कारण, अपने भारत की प्राचीन तथा परम्परा वाली सादे जीवन वाली सभ्यता को एकदम भुला दिया और स्वदेशी वस्तुओ तथा स्वदेशी वेष-भूषा, रहन-सहन आदि को हेय

दृष्टि से देखने लगे। साथ ही दूसरी तरफ़ साधारण जनता की ग़रीबी की वृद्धि भी बहुत अधिक हुई। साधारण जनता, अन्न कष्ट तथा कर्ज़े के भारी बोझ, और बेकारी से बिलबिला उठी। ग़रीबों के बच्चे आधा पेट भोजन कर के बिना कपड़े के नंगी दशा में चिथड़ो से गुज़र करने लगे। इस तरह जहाँ इसके द्वारा सादा जीवन नष्ट हो गया वहाँ दूसरी ओर भारत की ग़रीबी की भी अत्यन्त वृद्धि हुई।

देश के बड़े-बड़े नेता महात्मा गाधी, पं० मोतीलाल, लाला लाजपत राय आदि ने आन्दोलन कर बिलायती कपड़े का आयात कम कराया तथा खद्दर का प्रचार किया जिससे पढ़े-लिखे लोग और रईस लोग भी खद्दर पहिनने लगे। अब फिर कुछ सादे जीवन की ओर धनिकों का रुख़ हो गया है। किन्तु अब भी यहाँ की ग़रीब प्रजा की तथा जन साधारण की कमाई का पैसा राजा, नवाबो तथा पूँजी-पतियों के द्वारा एकत्रित होकर ह्विस्की, ब्राण्डी, वाइन तथा रम, आदि शराबो की कीमत के रूप में प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों की तादाद में विलायत जा रहा है। और तरह से इस विशाल राष्ट्र की आर्थिक स्थिति चौपट हो रही है। जो हो, निरतर चालीस वर्षों से स्वदेशी तथा राष्ट्रीय भावना का आन्दोलन छिडे रहने से इधर भारतीयों में अवश्य कुछ जग्रति हो गई है। इस समय हमारे नेताओ का यह कर्तव्य है कि जितने आर्थिक, सामाजिक तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर आयात आ रहे हैं उन्हें जल्दी से जल्दो बन्द कर दें।

एक बात यह भी है कि विलायती तड़क-भड़क वाले आयातों पर विज्ञापनबाज़ी में लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं तथा वे सुनहले-रुपहले लेबिल तथा सुन्दर रंगीन चमकते हुए कार्डबोर्डों और बटर पेपर आदि की कवरिंग से सजाये रहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि वास्तव में जितने का माल नहीं होता उससे अधिक विज्ञापन, कवरिंग तथा लेबिल आदि में खर्च हो जाता है। भारतीय कारखाने वालो ने भी यह सब सीख लिया है और वे भी बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लम्बी विज्ञापन-

बाज़ी करते हैं और अपने माल को ऐसा लेबिल तथा सिलोलाइड पेपर से सजाते हैं कि यह सब बाहिरी खर्चा मिला कर असली माल की कीमत से अधिक पड़ता है। कहना न होगा कि भारत की ग़रीब खरीदने वाली जनता पर ही अंततः इसका बोझ पड़ता है। जनता को तो असली वस्तु से मतलब है। इसलिये मामूली सादे काग़ज़ के लेबिल तथा सादे साधारण छोटे अक्षरों में छपे हुये विज्ञापन से भी काम चल सकता है। इसके लिये भारतीय कारखाने वालों को संशोधन करना चाहिये और व्यर्थ दिखावट में रुपया बर्बाद करके जनता के श्रम तथा धन के दुरुपयोग को रोकना चाहिये।

१३. विनिमय की दर

(१) विनिमय के बिल (२) विनिमय के बैङ्क (३) विनिमय की दर (४) टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर का सिद्धांत (५) व्यापारिक विषमता का सिद्धांत (६) लेनी-देनी की विषमता का सिद्धांत (७) व्यापारिक विषमता और लेनी-देनी के सिद्धांतों का मुख्य दोष (८) क्रय-शक्ति की समानता का सिद्धांत (९) विनिमय की दर का कृत्रिम तरीक़ों पर निर्धारित रखना (१०) विनिमय की दर को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ (११) किसी देश का निर्यात सदा के लिये उसके आयात की अपेक्षाकृत अधिक नहीं रह सकता है (१२) विनिमय की दर के परिवर्तन का भिन्न-भिन्न लोगों पर प्रभाव (१३) विनिमय की कौन सी दर आदर्श दर है (१४) विनिमय की दर का नियन्त्रण (१५) भारतीय मुद्रा के विनिमय की दर।

विदेशी विनिमय का व्यावहारिक अर्थ है एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में बदलना, जैसे भारतवर्ष की मुद्रा रुपये, आने, पाई को इङ्गलैण्ड की मुद्रा, पौंड, शिलिङ्ग, पेंस में अथवा इङ्गलैण्ड की मुद्रा पौंड, शिलिङ्ग, पेंस को अमेरिका की मुद्रा डालर, सेंट में बदलना। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ बहुत व्यापक है। ई० व्रिट० का कहना है कि विदेशी विनिमय वह प्रणाली है जिससे व्यापारिक राष्ट्र अपने पारस्परिक ऋणों का भुगतान करते हैं। अतः, इसमें (१) विनिमय के उन बिलों का जो विदेशी भुगतान के सम्बन्ध में प्रयोग में आते हैं, (२) विनिमय की उन दरों का जिनके अनुसार एक देश की मुद्रा दूसरे देशों की मुद्रा के साथ बदली जाती है, और (३) उन संस्थाओं का, बैंकों और स्टाक एक्सचेंजों का, जिनके द्वारा यह अदल-बदल होती है अध्ययन सम्मिलित है।

आधुनिक काल में विनिमय के नियन्त्रण के सम्बन्ध में जो अनेकों बातें खड़ी हो गई हैं वह भी इसमें सम्मिलित हैं। एच० विदर्स ने इसको अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के पारस्परिक परिवर्तन की कला और विज्ञान बतलाया है। कला की दृष्टि से हम इसमें विनिमय के बिलों का, बैङ्कों और स्टाक एक्सचेन्जों का और विनिमय समता कोषों तथा खातो का; और विज्ञान की दृष्टि से हम इसमें विनिमय की दरों और उनके नियन्त्रण के ढङ्गों का अध्ययन करते हैं।

(१) विनिमय के बिल

विनिमय के बिल राष्ट्रो के पारस्परिक ऋणों के जो उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण अथवा अन्य सम्बन्धों के कारण उत्पन्न हो जाते हैं, भुगतान में एक बहुत बड़ा भाग लेते हैं। इसमें अनेकों ऐसे पत्र जैसे चेक, डाकखानों के आदेश (पोस्टल आर्डर), बैंक ड्राफ्ट, हुण्डियाँ, प्रण-पत्र, साख-पत्र, इत्यादि सम्मिलित हैं। ये विनिमय के बिल देशान्तर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों के भुगतान के सम्बन्ध में प्रयोग में आते हैं। हाँ, विदेशी बिल देशी बिलों से शाब्दिक रचना मे भिन्न होते हैं।

विनिमय का बिल एक ऐसा आज्ञा-पत्र है जिसमें इसको लिखने वाला जिसके ऊपर यह लिखा गया है उसको यह आज्ञा देता है कि वह इसमें लिखे हुये व्यक्ति को अथवा उस व्यक्ति के आदेशानुसार अन्य किसी व्यक्ति अथवा संस्था को उसके माँगने पर अथवा उस पर लिखी हुई तारीख़ से अथवा जब वह उसको दिखाया जाय तब से उसमें लिखी हुई अवधि के उपरान्त उसमें लिखी हुई रक़म दे दे। यह दर्शनी अथवा मुद्दती होते हैं। दर्शनी बिल का भुगतान बिल के दर्शन मात्र पर और मुद्दती बिल का भुगतान उसमें दी हुई अवधि के बीत जाने पर करना पड़ता है। मुद्दती बिल के भुगतान के लिये तीन रियायती दिन भी मिलते हैं।

विनिमय के बिलों में तीन पार्टियाँ हो सकती हैं, (१) बिल का लिखने वाला, (२) जिसके ऊपर वह लिखा जाय, और (३) जिसके पक्ष में वह लिखा जाय। जिसके ऊपर बिल लिखा जाता है उसको उसके ऊपर अपना हस्ताक्षर करके उस पर की आज्ञा को पालन करने की स्वीकृति देनी पड़ती है, अतः, उसको स्वीकृतिकर्ता भी कहते हैं। बिल हस्तान्तरित भी किये जाते हैं। जब एक व्यक्ति अपने पक्ष में लिखे गये किसी बिल को उस पर बेचान करके किसी अन्य व्यक्ति को दे देता है तब उसकी रक़म उसी पाने वाले व्यक्ति को मिलती है। इस तरह से कोई बिल बार बार हस्तान्तरित किया जा सकता है। बिल किसी बैङ्क से डिस्काउन्ट भी कराया जा सकता है। किसी बिल को डिस्काउन्ट कराने का अर्थ उसमें दी हुई अवधि बीतने के पहिले ही बिना बीती हुई अवधि का ब्याज काट कर उसकी रक़म प्राप्त कर लेना है। विदेशी बिल एक देश में लिखे जाते हैं और दूसरे में उनका भुगतान होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों के भुगतान के सम्बन्ध में ये बिल ईसा के जन्म के पहिले से प्रयोग में आते रहे हैं। हमको यहाँ पर यह देखना है कि यह वास्तव में किस प्रकार प्रयोग मे आते हैं। मान लीजिये इंगलैड निवासी 'अ' भारत निवासी 'द' को १०० पौंड का माल भेजता है और भारत निवासी 'स' इतने ही का माल इंगलैड निवासी 'ब' के पास भेजता है। अब 'अ' 'द' के ऊपर विनिमय का एक बिल लिखेगा और उसे 'ब' ख़रीद कर 'स' के पास भेज देगा जो 'द' से उसकी रक़म ले लेगा। इस तरह से सब की लेनी-देनी पूरी हो जायगी; 'अ' 'ब' से १०० पौंड पा जायगा और 'स' 'द' से इसके बराबरी का रुपया भारतीय मुद्रा में ले लेगा।
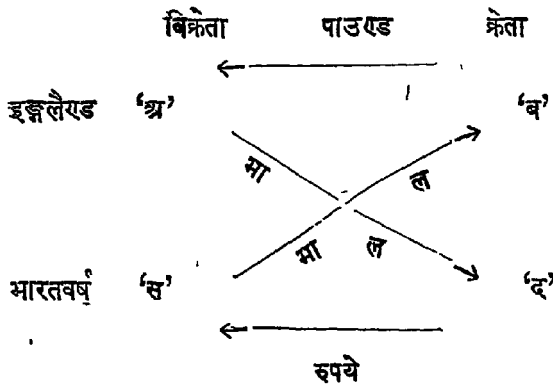
किन्तु वास्तव में (१) प्रत्येक देश में बहुत से क्रेता और बहुत से बिक्रेता होते हैं, (२) किन्हीं दो ख़रीद-बिक्री की रक़में बराबर नहीं होती हैं, और (३) एक ही देश के क्रेता और बिक्रेता एक दूसरे को नहीं जानते, अतः, बिलों को भी परस्पर नहीं ख़रीद और बेच सकते। इस कारण परस्पर की लेनी-देनी को निपटाने के लिये कुछ विशेष संस्थाओं की जैसे विनिमय के बैङ्कों की आवश्यकता पड़ती है।

(२) विनिमय के बैङ्क

विनिमय के बैङ्क ऐसी संस्थायें हैं जिनका एक मात्र काम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आर्थिक सहायता करना और अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों को निपटाना है। अतः, संसार के सब देशों में विशेषतया व्यापारिक देशों में या तो इनकी स्वयम् की शाखायें होती हैं अथवा ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं जिनसे शाखाओं के काम निकल सकते हैं। ये बिक्रेताओं के विनिमय के बिलों को ख़रीद लेते हैं और उनकी रक़म को क्रेताओं के हाथ बेच देते हैं। यदि यह बिल मियादी होते हैं तो अपनी वर्तमान क़ीमत पर ख़रीद लिये जाते हैं अर्थात् उन पर छूट मिलती है। इनके भुगतान अवधि पर होते हैं और वह या तो अपनी शाखाओं के द्वारा अथवा अन्य किसी बैङ्क के द्वारा वसूल कर

करते हैं और जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती है उनको बेचते जाते हैं। यदि किसी एक बैङ्क की लेनी-देनी में अन्तर होता है तो वह दूसरे बैङ्क की लेनी-देनी के अन्तर से बराबर कर लिया जाता है और यदि ऐसा नहीं हो पाता है तो कुछ दिन पहिले तक तो उसके लिये सोना भेज दिया अथवा प्राप्त कर लिया जाता था किन्तु अब वह जैसी आवश्यकता हो उसीके अनुसार विनिमय समता कोष के हाथ बेच दिया जाता है अथवा उससे ख़रीद लिया जाता है।

विनिमय के बिलो के प्रयोग से बहुमूल्य धातुओं के प्रयोग में बचत होती है। यदि हम पिछले उदाहरण ही को ले और यह मान लें कि क्रेताओं और विक्रेताओं को विनिमय के बिलों का कोई ज्ञान नहीं है तो 'द' 'अ' को और 'ब' 'स' को सौ-सौ पौंड की बहुमूल्य धातु भेजेंगे। अतः, ऐसी अवस्था में कितने ही दिनों तक यह बहुमूल्य धातु जहाज़ों में पड़ी रहेगी। फिर उसको ले जाने का और बीमे का भी ख़र्च पड़ेगा और यदि दोनों देशो में सोने के सिक्के चलते है तो उनको प्रत्येक देश में गलाने और फिर दूसरे देश में उस देश के सिक्के बनाने में भी बहुत व्यय होगा। स्पष्ट है कि यह सब अनावश्यक ही है।

(३) विनिमय की दर

विनिमय के बिलों के प्रयोग वाले उदाहरण में ऊपर यह कहा गया था कि 'स' 'द' से १०० पौंड की बराबरी के भारतीय सिक्के अर्थात् रुपये ले लेगा। अब प्रश्न यह है कि १०० पौंड की बराबरी के यह भारतीय सिक्के कैसे निर्धारित किये जायेंगे। यदि इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष दोनों में स्वर्णमान अथवा रजतमान है तब तो यह बहुत आसान है। बस इसके लिये हमको दोनों देशों की मुद्राओ के खरे आन्तरिक स्वर्ण अथवा रजत का जैसा हो अनुपात निकाल लेना पड़ेगा। उदाहरणार्थ सन् १९२७ में रुपये का और पौंड का

लिये जाते हैं। इस तरह से ये अपने पास विदेशी मुद्रा को इकट्ठा स्वर्णमान क्रमशः ८·४७५ और ११३ रत्ती खरा निर्धारित था। अतः, रुपये और पौंड के विनिमय की दर $\frac{८\cdot४७५\times२४०}{११३}$ पें० = १८ पें० थी। एक पौंड २४० पें० के बराबर होता है। बैंकिङ्ग के शब्दों में इसको टकसाली दर कहते हैं। बात यह है कि सिक्के तो टकसाल ही में ढलते हैं और उनकी आन्तरिक तौल वहीं के विधान के द्वारा निर्धारित रहती है।

किन्तु एक देश की मुद्रा का विनिमय दूसरे देश की मुद्रा से उसके टकसाली दर के अनुसार तभी हो सकता है जब दोनों देशों की पारस्परिक लेनी-देनी बराबर हों और सच तो यह है कि व्यवहार रूप में यह हो ही नहीं सकता। अतः, अब दूसरा प्रश्न यह है कि व्यवहार रूप में दो देशो की मुद्राओं के बीच में विनिमय की दर किस प्रकार से निर्धारित होती है। इसके लिये भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न भिन्न सिद्धांत बतलाये हैं। अतः, अब हम उनमें से प्रत्येक को बारी-बारी से समझने का प्रयत्न करेंगे।

(४) टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार दो मुद्राओं के विनिमय की टकसाली दर तो उनके खरे आन्तरिक स्वर्ण के अनुपात के अनुसार होगी किन्तु उनकी व्यावहारिक दर विनिमय के बाज़ार में विनिमय के बिलों की भर्ती और माँग पर निर्भर रहेगी। यदि इनकी भर्ती ज़्यादा है तो देशी मुद्रा के विनिमय में विदेशी मुद्रा टकसाली दर से अधिक और यदि इनकी माँग ज़्यादा है तो देशी मुद्रा के विनिमय में विदेशी मुद्रा टकसाली दर से कम प्राप्त होगी। किंतु जिन सीमाओं तक यह टकसाली दर से अधिक अथवा कम हो सकती हैं यह भी स्वर्ण आयात-निर्यात बिंदुओं तक ही परिमित हैं। स्वर्ण आयात बिंदु तो टकसाली दर में स्वर्ण के आयात के व्यय को जोड़ कर और

स्वर्ण निर्यात बिन्दु उसमें से स्वर्ण के निर्यात के व्यय को घटा कर मालूम कर लिये जाते हैं। भारत और इङ्गलैण्ड के बीच के ये बिंदु सन् १९२० के पहिले क्रमशः १ शि० ४$\frac{३}{८}$ पैं० और १ शि० ३$\frac{१५}{१६}$ पैं० तथा सन् १९२६ के बाद क्रमशः १ शि० ६$\frac{१}{४}$ पैं० और १ शि० ५$\frac{११}{१६}$ पैं० थे। विनिमय की बाज़ारू दर विनिमय के बिलों की पूर्ती और माँग के अनुसार निर्धारित होती है। अब यदि यह स्वर्ण आयात बिंदु से ऊपर हो तो विदेशी क्रेता अधिक न देकर स्वर्ण भेज देंगे और यदि यह स्वर्ण निर्यात बिंदु से कम हो तो भारतीय क्रेता कम न लेकर स्वर्ण का निर्यात कर देंगे। साधारण परिस्थितियों में तो यह इन स्वर्ण आयात और निर्यात दरों के बाहर जा ही नहीं सकती है। हाँ, यदि किसी देश से युद्ध की शीघ्र सम्भावना हो तो उस परिस्थिति में यह इनके बाहर भी चली जाती है क्योंकि उस समय व्यापारियों को सबसे बड़ी चिंता यह रहती है कि जिस देश से युद्ध छिड़ने वाला है उस देश के निवासियों पर किये हुये बिलों के बदले उनको शीघ्र ही किसी प्रकार धन मिल जाय। इसलिये वे ऐसे बिलों को बाज़ार में जिस किसी क़ीमत पर ही बेच डालते हैं।

दो देशों की मुद्राओं के टकसाली दर और स्वर्ण आयात-निर्यात दरों में उस समय तक तो परिवर्तन नहीं हो सकता है जब तक उनके टकसाल सम्बन्धी क़ानूनों में और स्वर्ण आयात-निर्यात के ख़र्चों में कोई परिवर्तन न हो जाय। किन्तु टकसाली और स्वर्ण आयात निर्यात दर का सिद्धान्त उन्हीं देशों की मुद्राओं के विनिमय के संबंध में लागू होता है जिनमें स्वर्ण-मान है। यदि किसी एक देश में भी अथवा दोनों में स्वर्ण-मान टूट जाता है तो यह सिद्धांत भी लागू नहीं रहता है। अतः, दो ऐसे देशों की मुद्राओं के विनिमय को निर्धारित करने के सम्बन्ध में जिनमें से एक में तो स्वर्ण-मान है और दूसरे में रजतमान है अथवा कागजीमान है अथवा जिनमें से किसी में भी स्वर्णमान नहीं है, हमको किसी दूसरे सिद्धान्त को ढूँढ़ना

पड़ेगा। यहाँ पर यह कह देना भी आवश्यक है कि यदि कोई देश अपने यहाँ से सोने के निर्यात पर कोई बन्धन लगा देता है तो उसके यहाँ के स्वर्णमान को भी टूटा ही समझना चाहिये। अब रह गई एक बात और जो यह है कि टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात के सिद्धांत के कुछ समर्थक यह कहते हैं कि यह सिद्धान्त ऐसे देशों की मुद्राओं के विनिमय को भी निर्धारित करने में लागू हो सकता है जिनमें स्वर्णमान टूट गया है। उनका कहना है कि इसके लिये हमको प्रत्येक देश की मुद्रा के मूल्य में जो कमी हो गई है उसके अनुपात को लेना चाहिये। जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे मुद्राओं के मूल्य में कमी और बढ़ती के अनुसार उनके बीच के विनिमय पर जो प्रभाव पड़ता है उसका हम क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धान्त पर निर्भर मानते हैं। अतः, यह वही सिद्धांत है। इससे टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर के सिद्धांत को हमको केवल उन्हीं देशों की मुद्राओं के विनिमय के सम्बन्ध में लागू मानना चाहिये जिनमें पूर्णतया स्वर्ण-मान है। यहाँ पर यह भी बता देना आवश्यक है कि आजकल संसार में कहीं भी वास्तविक स्वर्णमान नहीं है। अतः, किन्हीं दो देशों की मुद्राओं के विनिमय के सम्बन्ध में यह टकसाली और स्वर्ण आयात दर का सिद्धात आजकल लागू नहीं है।

(५) व्यापारिक विषमता का सिद्धांत

हम ऊपर यह देख चुके हैं कि टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर के सिद्धांत में भी विनिमय की बाज़ारू दर बिलों की भर्ती और माँग पर निर्भर रहती है। अब, क्योंकि बिलों की भर्ती और माँग व्यापारिक विषमता के ऊपर निर्भर रहती है कुछ लोगों का मत है कि यही क्यों न कहा जाय कि विनिमय की दर व्यापारिक विषमता के सिद्धात पर निर्धारित होती है। वास्तव में यह बहुत अंशों तक सच भी है, किन्तु बिलों की भर्ती और माँग केवल व्यापारिक विषमता पर ही नहीं वरन्

लेनी-देनी की विषमता पर निर्भर रहती है। अतः, यहाँ पर हमें यह देखना चाहिये कि लेनी-देनी की विषमता किन बातों पर निर्भर रहती है।

(६) लेनी-देनी की विषमता का सिद्धांत

मिल और गाशन ने भी विनिमय की दर को निर्धारित करने के सम्बन्ध में लेनी-देनी की विषमता के सिद्धांत की ओर संकेत किया था। किन्तु उन्होंने इसका संकेत टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर के ही सम्बन्ध में किया था। इसमें संदेह नहीं कि मिल ने यह भी कहा था कि यदि किसी देश की मुद्रा की कीमत गिर जाती है तो स्वर्ण की कीमत उसी अनुपात से बढ़ जाती है जिस अनुपात से उस मुद्रा की क्रय शक्ति घट जाती है। किन्तु यदि स्वर्ण निर्यात पर बन्धन लगा दिया जाता है तो विनिमय की दर निर्धारित करने क लिये कोई सिद्धांत रह ही नहीं जाता है। ऐसी परिस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के मूल्य सैद्धान्तिक दृष्टि से तो पूर्णतया बिलों की भर्ती और माँग के अनुसार निर्धारित होंगे किन्तु क्रियात्मक दृष्टि से यदि बिलों की माँग उनकी भर्ती से अधिक होगी तो उनके मूल्य के बढ़ाव की कोई सीमा न रहेगी। इसके यह अर्थ हैं कि मिल ने कागजी मुद्राओं के विनिमय के सम्बन्ध में कोई सिद्धांत नहीं बतलाया था। गाशन ने तो इसकी ओर संकेत भी नहीं किया था। अब प्रश्न यह उठता है कि लेनी-देनी की विषमता किन बातों पर निर्भर रहती है।

लेनी-देनी की विषमता किन बातों पर निर्भर रहती है—लेनी-देनी की विषमता निम्न बातों पर निर्भर रहती है :—

(१) देश के आयात-निर्यात पर—विदेशी व्यापार के कारण एक देश में कुछ चीजें दूसरे देशों से आती हैं और कुछ चीजें उससे दूसरे देशों को जाती हैं। जितना माल दूसरे देशों से आता है उसके लिये वह देश अन्य देशों का देनदार और जितना माल दूसरे

देशों को जाता है उसके लिये वह देश अन्य देशों से लेनदार हो जाता है।

(२) जहाज़ों का भाड़ा—कुछ देश के जहाज़ अन्य देशों के माल को लाते और ले जाते हैं। अतः, जिस देश के जहाज़ ऐसा करते हैं वह देश अन्य देशों से लेनदार और जिन देशों का माल लाया और ले जाया जाता है, वह देश उस देश के देनदार हो जाते हैं। इंगलैंड इस कारण अन्य देशों से लेनदार रहता है और भारतवर्ष देनदार रहता है।

(३) जहाज के कप्तानों की विदेशों में उधारी—जिन देशों के जहाज़ के कप्तान दूसरे देशों में व्यय करते हैं, वह देश देनदार और जिन देशों में व्यय होता है वह देश लेनदार हो जाते हैं।

(४) देशी अथवा विदेशी ऋण-पत्र, हिस्सों और बिलों की खरीदी-बेची—जब एक देश अन्य देशों में अपने या उनके ऋण-पत्र, हिस्से और बिल ख़रीदता है तो वह उनका देनदार और जब बेचता है तो वह उनसे लेनदार हो जाता है।

(५) विदेशियों की किसी देश के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सेवायें—यदि किसी देश के लोग अन्य देशों की सेवायें करते हैं जैसे इंगलैण्ड के बैङ्क अथवा वहाँ की बीमा कम्पनियाँ अन्य देशों की सेवायें करती हैं तो जिस देश के लोग ऐसी सेवायें करते हैं वह देश तो लेनदार और जिन देशों के प्रति यह सेवायें की जाती हैं वह देश उनके देनदार हो जाते हैं। इसी तरह से कुछ अंग्रेज़ इंगलैण्ड में रह कर भारतवर्ष की सरकार की सेवायें करते हैं, अतः, इंगलैंड लेनदार और भारतवर्ष देनदार हो जाता है।

(६) दूसरे देशों को दिया हुआ अथवा उनसे लिया हुआ कर्ज़—जब कोई देश किस अन्य देश को ऋण देता है तो ऋण देने वाला देश उस समय देनदार और ऋण लेने वाला देश उस समय

लेनदार हो जाता है। किन्तु जब यही ऋण वापस आता है तो उप-रोक्त का उल्टा होता है। इसके अतिरिक्त ऋण लेने वाला देश प्रति-वर्ष ब्याज देता है। अतः, वह हर साल उसके लिये देनदार और ब्याज पाने वाला देश उसके लिये लेनदार हो जाता है।

(७) विदेशियों की बचत और मुनाफा तथा विदेशों में अपनी बचत और अपना मुनाफा—यदि किसी देश के वासी अन्य देशों में काम करते हैं तो वह वहाँ पर वेतन पाते हैं। अतः, उसमें से वह कुछ बचा कर अपने घर भेजते हैं। इसी तरह से विदेशो की जो पूँजी किसी देश में लगी रहती है उसका मुनाफा जिन देशों की पूँजी है उनको मिलता और जिनमें वह लगी हुई है उनको देना पड़ता है। जिन देशों के लोग किसी देश में रह कर बचत करते हैं अथवा जिन देशों को लाभ मिलता है वह देश लेनदार और जिनको यह बचत अथवा मुनाफा देना पड़ता हैं वह देश देनदार हो जाते हैं।

(८) देशवासियो का अन्य देशों का सफ़र और वहाँ रहने का व्यय तथा अन्य देशवासियों का अपने देश में सफ़र और व्यय—जब किसी देश के रहने वाले अन्य देशों में सफ़र करने जाते हैं और व्यय करते हैं तब वह देश जिनके रहने वाले ऐसा करते हैं देनदार और वह देश जिनमें ऐसा होता है लेनदार हो जाते हैं।

(९) अन्य देशों को कर देना अथवा उनसे पाना—जब कोई देश किसी अन्य देश को कर देता है देने वाला देश देनदार और लेने वाला देश लेनदार हो जाता है।

(१०) देश की सरकार का अन्य देशों में व्यय और अन्य देशों की सरकार का उस देश में व्यय—जब किसी देश की सरकार अन्य देशों में व्यय करती है तो जिस देश की सरकार व्यय करती है

वह देश देनदार और जिस देश में वह व्यय होता है वह देश लेनदार हो जाता है।

(११) धर्मार्थ आने और जाने वाली रक़म—जो देश अन्य देशों में धर्म के लिये रक़म भेजता है वह स्वयम् देनदार और जो देश पाता है वह लेनदार हो जाता है।

(७) व्यापारिक विषमता और लेनी-देनी की विषमता के सिद्धांतों के मुख्य दोष

व्यापारिक विषमता और लेनी-देनी की विषमता के सिद्धातों का मुख्य दोष यह है कि हम उनमें मुद्रा सम्बन्धी परिस्थितियो को विनिमय की दर निर्धारित में बिल्कुल भूल जाते हैं। वास्तव में दो मुद्राओ के निनिमय की दर दो बातों पर निर्भर रहती है, एक तो बिलों की भर्ती और माँग पर और दूसरे उन मुद्राओं की अपनी-अपनी क़ीमतो पर। टकसाली और स्वर्ण आयात-निर्यात दर के सिद्धांत में जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं इन दोनों बातों को ध्यान मे रक्खा जाता है। मुद्राओं की आन्तरिक कीमतें तो उनके विनिमय की टकसाली दर को और बिलो की भर्ती और माँग उनके बाज़ारू विनिमय को निर्धारित करते हैं। यही बात जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धात में भी है।

(८) क्रय-शक्ति की समानता का सिद्धान्त

विनिमय की दर को निर्धारित करने में क्रय-शक्ति की समानता का सिद्धांत कहाँ तक लागू है इस बात को सर्व-प्रथम स्वीडेन के एक अर्थशास्त्री ने जिसका नाम गस्टव कासिल है बतलाया था। यद्यपि उसका कहना है कि उसने इस सिद्धात का आविष्कार सन् १९०४ ही में कर लिया था, किन्तु सर्व-साधारण के सामने यह केवल सन् १९१८ ही में आया। इस सिद्धांत के अनुसार दो मुद्राओं के बीच का विनिमय

उनकी अपने-अपने देश में जो क्रय-शक्ति है उसके भागफल के अनुपात में होता है।

वह कहता है कि किसी देश की मुद्रा के माँग का क्या मुख्य कारण है और उसकी आन्तरिक क़ीमत के बदल जाने का उसकी माँग पर क्या प्रभाव पड़ता है? अब इसका उत्तर यह है कि हम किसी देश की मुद्रा के लिये अपने देश की मुद्रा केवल इसीलिये देते हैं कि उस मुद्रा के पास उस देश में क्रय करने की शक्ति है। इसके विपरीत हम अपने देश की जो मुद्रा देते हैं उसकी हमारे देश में कुछ क्रय शक्ति है। वास्तव में हम अपने देश के माल पर की अपनी क्रय शक्ति को देते हैं। अतः, किसी विदेशी मुद्रा का मूल्य हमारी मुद्रा में उन दोनों मुद्राओं की अपने-अपने देश में तुलनात्मक क्रय शक्ति पर निर्भर होता है। किन्तु वह कहता है कि विनिमय के दर को निर्धारित करने के प्रश्न का यह हल एक प्रकार से आंशिक ही है। दूसरे शब्दों में यह दर सैद्धांतिक दर है। बाजारू दर को निर्धारित करने के लिये हमको बिलों की भर्ती और माँग को देखना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त विनिमय की यह सैद्धांतिक दर भी किसी मुद्रा के प्रसार और संकुचन से परिवर्तित हो सकती है। ऐसी परिस्थिति के लिये उसने एक नियम बतलाया है और वह यह है कि जब दो देशों की मुद्राओं का प्रसार हो तो उनके विनिमय की सैद्धांतिक दर पुराने सैद्धान्तिक दर और दोनों मुद्राओं के प्रसार के भाग-फल के गुणनफल के बराबर होती है। यही नियम मुद्राओं के संकुचन के लिये भी लागू है। फिर दो मुद्राओं के बीच की विनिमय की दर उनकी क्रय-शक्ति की समानता के अनुपात से निम्न परिस्थितियों में भी इधर-उधर हो सकती है :—

(१) मुद्रा के प्रसार अथवा संकुचन का अनुमान—यदि सर्वसाधारण का यह अनुमान है कि किसी देश की मुद्रा का भविष्य में सार अथवा संकुचन होगा और उससे उसका मूल्य क्रमशः गिर

अथवा बढ़ जायगा तो लोग पहिले से उस मुद्रा के विनिमय की दर जैसा होगा उसीके अनुसार घटा अथवा बढ़ा देते हैं। मान लीजिये कि यह अनुमान किया जाता है कि 'अ' देश की मुद्रा के भविष्य में अधिक बढ़ जाने से उसका मूल्य गिर जायगा तो लोग 'अ' देश की मुद्रा अभी से न लेकर उसके लेने को जहाँ तक होगा टालते जायँगे। अतः, जब उसकी माँग कम होगी उसके विनिमय की दर घट जायगी।

(२) विनिमय की दरों में सट्टेबाज़ी—जिस तरह से चीज़ों की दरें उनमें सट्टेबाज़ी होने के कारण परिवर्तित हो जाती हैं उसी तरह से मुद्राओं के विनिमय की दरें उनमे सट्टेबाजी होने के कारण परिवर्तित हो जाती हैं।

(३) विदेशों में पूँजी लगाने अथवा एकत्रित करने के विचार से अपनी मुद्रा को किसी भी भाव में बेचना अथवा ख़रीदना—इसका सबसे अच्छा उदाहरण प्रथम महायुद्ध के बाद के जर्मनी से मिलता है। उस समय विदेशी सामान मँगाने के लिये जर्मनी के लोग अपनी मुद्राओं को किसी भी भाव मे देकर विदेशी मुद्रायें प्राप्त करना चाहते थे। उनको विदेशों में विदेशी मुद्रायें चाहिये थीं। अतः, उसके लिये वह अपनी मुद्रायें किसी भी हद तक देने के लिये तैयार थे।

(४) आयात और निर्यात की वस्तुओं की क़ीमतों का सर्व-साधारण क़ीमतों की अपेक्षा किसी अन्य अनुपात में बदलना—मान लीजिये कि किसी देश में साधारण तौर पर क़ीमतें तिगुनी हो गई हैं, किन्तु आयात निर्यात की वस्तुओं की क़ीमतें केवल दुगुनी ही हुई हैं। तब उसके मुद्रा की अन्य देशों की मुद्राओं से विनिमय की दर उनकी साधारण क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धांत के अनुसार न निर्धारित होकर केवल आयात निर्यात की वस्तुओं मे उनकी क्रिय-शक्ति की समानता के अनुसार निर्धारित होगी।

किन्तु उपरोक्त परिस्थितियों के कारण दो मुद्राओं के विनिमय की दरों मे उनकी क्रय-शक्ति की समानता से जो भिन्नता होगी वह केवल कुछ ही दिनों के लिये होगी। अन्त में आर्थिक परिस्थितियों का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि यह भिन्नता दूर हो जायगी और विनिमय की दर क्रय-शक्ति की समानता के अनुसार ही होगी। हाँ, व्यापारिक बन्धनों के प्रभाव के कारण क्रय-शक्ति की समानता से जो विनिमय की दर कुछ इधर-उधर हो जाती है वह अधिक दिनों तक रहती है।

क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धांत के सम्बन्ध मे कुछ ध्यान देने योग्य बातें—क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धांत के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहियें :—

(१) प्रथम तो यह कि क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धांत से निर्धारित होने वाली विनिमय की दर क्रय-शक्ति के बार-बार बदलने से बार-बार बदलती रहती है। लेकिन यदि उन दोनों देशो में जिनकी मुद्राओ के बीच की विनिमय की दर निर्धारित करनी है मुद्राओ की क्रय-शक्ति एक ही अनुपात से घटी-बढ़ी है तो विनिमय की दर पर इस घट-बढ़ का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(२) दूसरी यह कि इस सिद्धांत के यह अर्थ नहीं हैं कि दोनो देशों में वस्तुओ के मूल्य एक से होंगे। वास्तव में ऐसा कभी नहीं होता। बात यह है कि भिन्न-भिन्न देशों में राष्ट्रीय आय, रहन-सहन का दर्जा, मजदूरों और पूँजी की स्थान परिवर्त्तन की शक्ति, इत्यादि भिन्न भिन्न होती हैं।

(३) तीसरी और अन्तिम यह कि किसी मुद्रा के विनिमय की साधारण दर उस बिंदु का दिग्दर्शन कराती है जिस पर उसकी अपने देश में और अन्य देशों में की क्रय-शक्ति में कोई भिन्नता नही होती। यदि कोई भिन्नता है तो विनिमय की वह दर साधारण दर नहीं है; अतः, वह समानता का भी दिग्दर्शन नहीं कराती। ऐसी परिस्थिति में आर्थिक परिस्थितियाँ स्वयम् ही उस दर को ठीक कर लेती हैं।

क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धान्त की समालोचना— अब हम क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धान्त की समालोचना कर सकते हैं।

(१) प्रथम तो इसके मानने वाले यह कहते हैं कि विनिमय के सभी सिद्धान्त इसी सिद्धान्त पर निर्भर हैं। यदि विनिमय की दोनों मुद्रायें स्वर्णमान पर अवलम्बित हैं तो भी उनके विनिमय की दर उनकी क्रय-शक्ति की समानता के अनुसार ही होती है। वास्तव में ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक मुद्रा की क्रय-शक्ति को इस प्रकार ठीक रखना पड़ता है कि वह स्वर्ण की विनिमय शक्ति के बराबर ही रहें और ऐसा होने से क्रय-शक्ति को समानता दोनों मुद्राओं की आन्तरिक स्वर्ण समानता के अनुसार ही होती है। किसी मुद्रा की क्रय-शक्ति को जब इस प्रकार ठीक रक्खा जाता है तभी उसके विनिमय की दर भी स्वर्णमान पर निर्भर मुद्राओं की समानता में रह सकती है। यदि ऐसा नहीं है तो मुद्रा के लिये चाहे जितना सोना सुरक्षित रक्खा जाय उसके विनिमय की समानता के लिये कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती है। जब मुद्रायें स्थिर रहती हैं और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की परिस्थितियो में भी कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है तो विनिमय की दर क्रय-शक्ति की समानता से बहुत दिनों तक इधर-उधर नहीं रक्खी जा सकती हैं। हाँ, बिलों की भर्ती और माँग में परिवर्तन होने के कारण उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन तो हो सकता है। यदि किसी मुद्रा के विनिमय की दर उसकी क्रय-शक्ति की समानता से बहुत इधर-उधर हो जाती है तो एक देश में तो निर्यात को प्रोत्साहन और आयात को धक्का और दूसरे देश में आयात को प्रोत्साहन और निर्यात को धक्का लगता है जिससे बिलों की भर्ती और माँग में परिवर्तन हो जाता है और साथ ही विनिमय की दर भी ठीक हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि कागज़ी मुद्रा के चलन में भी यही बात लागू रहती है।

(२) दूसरे इसके विरोधी यह कहते हैं कि भिन्न-भिन्न देशों में साधारण क़ीमतों को मालूम करना बड़ा कठिन है। कीमतों की सूचियाँ (Index numbers) जैसा कि हम जानते हैं बिल्कुल विश्वासनीय नहीं होतीं। विशेष तौर पर भिन्न-भिन्न देशों में क़ीमतों की सूचियों के बनाने के जो भिन्न-भिन्न तरीके हैं उसके कारण दो देशों की क़ीमतों का सूचियों के द्वारा निर्धारित क्रय-शक्ति की समानता के अनुसार जो विनिमय की दर आती है उसको हम वास्तविक दर नहीं मान सकते हैं।

(३) तीसरे दो मुद्राओं के बीच की विनिमय की दर उनमें व्यापारिक बन्धनों के होने के कारण उनकी क्रय-शक्ति की समानता से बहुत अधिक इधर-उधर रह सकती है जैसा कि स्वीडेन में सन् १६१४ और १६१८ के बीच में वहाँ की मुद्रा की विनिमय दर रही है। हमारे ही देश में इस युद्ध के समय में हमारा मुद्रा की विनिमय की दर उसकी यहाँ की क्रय-शक्ति और किसी अन्य मुद्रा की उसके यहाँ की क्रय-शक्ति की समानता के अनुसार नहीं रही है। वास्तव में इसका कारण तो मुद्रा के विनिमय में एक मात्र राज्य का अधिपत्य होना ही है।

(९) विनिमय की दर का कृत्रिम तरीकों पर निर्धारित रखना

वास्तव में आजकल सभी देशों मे विनिमय की दरों को कृत्रिम तरीकों पर निर्धारित रक्खा जाता है। हमारी सरकार बहुत दिनों से हमारी मुद्रा के विनिमय की दर को कृत्रिम तरीको से निर्धारित रखती चली आ रही है। इसके लिये उसके पास स्टर्लिंग और रुपयों का एक बड़ा भारी कोष है। साथ ही उसके पास विनिमय का भी एकाधिपत्य अधिकार है। यही बात ब्रिटेन में भी अथवा यों कहिये कि सभी देशों में है।

(१०) विनिमय की दर को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि विनिमय की दर मुद्रा सम्बन्धी परिस्थितियों और बिलों की भर्तों तथा माँग से निर्धारित होती है। किन्तु इन मुख्य परिस्थितियों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसी छोटी-मोटी परिस्थितियाँ हैं जिनका विनिमय की दर के निर्धारित करने में अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता रहता है। जहाँ तक मुद्रा सम्बन्धी परिस्थितियाँ हैं उनको हम यहाँ पर फिर दुहरा लें तो अच्छा है। यदि दोनों मुद्रा स्वर्णमान पर निर्भर हैं तो उनके विनिमय की साधारण दर उनकी टकसाली दर की समानता के अनुसार निर्धारित होती है। यदि एक मुद्रा स्वर्णमान पर और दूसरी रजतमान पर निर्भर है तो उनके विनिमय की साधारण दर प्रत्येक मुद्रा का जो धात्विक मूल्य है उसकी समानता के अनुसार निर्धारित होती है। और यदि एक मुद्रा स्वर्णमान अथवा रजतमान पर निर्भर है और दूसरी विशुद्ध काग़ज़ी है, अथवा यदि दोनों मुद्रायें विशुद्ध काग़ज़ी हैं तो उनके विनिमय की साधारण दर उनकी क्रय-शक्ति की समानता के अनुसार निर्धारित होती है। जहाँ तक बिलों की भर्ती और माँग का प्रश्न है वह जिन बातों पर निर्भर हैं उनका अध्ययन तो हम लेनी-देनी की विषमता के सिद्धान्त के अन्तर्गत कर ही चुके हैं। जो छोटी-मोटी परिस्थितियाँ हैं वे निम्नाङ्कित हैं:—

(१) बैङ्किग की उन्नति—जिन बातों का विनिमय की दर पर प्रभाव पड़ता है वह बातें बैंकिङ्ग की उन्नति के अनुसार अपना प्रभाव कुछ कम अथवा अधिक डाल सकती हैं।

(२) बैङ्क की दर—किसी देश के मुख्य बैङ्क के ब्याज की दर का भी एक बहुत बड़ा प्रभाव उसकी मुद्रा के विनिमय की दर पर पड़ता है। मान लीजिये कि उसके ब्याज की दर अन्य देशों के मुख्य बैङ्कों

के ब्याज की दर के अपेक्षाकृत अधिक है तो उसके यहाँ बाहर से रकम आवेगी। अतः, उसकी मुद्रा के विनिमय की दर ऊँची हो जायगी, इसके विपरीत यदि उसके ब्याज की दर कम है तो इसका उल्टा होगा।

(३) राष्ट्रीय आय-व्यय का चिट्ठा—यदि किसी देश के आय-व्यय के चिट्ठे में बचत है तो उस देश में लोगों का विश्वास बढ़ जाता है। अतः, वहाँ अन्य देशों से पूँजी आने लगती है जिससे उसकी मुद्रा के विनिमय की दर बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि उसके आय-व्यय के चिट्ठे में घटती है तो इसका उल्टा प्रभाव पड़ता है।

(४) राजनैतिक परिस्थिति—यदि किसी देश की राजनैतिक परिस्थिति अच्छी मालूम पड़ती है तो उसके यहाँ अन्य देशों से पूँजी आती है जिससे उसकी मुद्रा के विनिमय की दर बढ़ जाती है और यदि उसकी राजनैतिक परिस्थिति अच्छी नहीं है तो इसका उल्टा होता है।

(५) औद्योगिक परिस्थिति—किसी देश की औद्योगिक परिस्थिति का भी उसकी मुद्रा के विनिमय की दर पर वही प्रभाव पड़ता है जो उसके यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति का पड़ता है।

(६) आयात-निर्यात कर, विनिमय का नियन्त्रण और आयात-निर्यात का एक निश्चित परिमाण में आना और जाना—इन बातों का भी प्रभाव किसी देश की मुद्रा के विनिमय की दर पर पड़ता है।

(११) किसी देश का निर्यात सदा के लिये उसके आयात की अपेक्षाकृत अधिक नहीं रह सकता है

कुछ देश ऐसा चाहते हैं कि उनके यहाँ का निर्यात सदा के लिये उनके यहाँ के आयात की अपेक्षाकृत अधिक रहे। वास्तव में ऐसा

नहीं हो सकता है और विशेषकर तब जब सभी देश ऐसा चाहते हैं। जब संसार के अधिकतर देशों में स्वर्णमान था उस समय यदि किसी देश का निर्यात उसके आयात की अपेक्षाकृत अधिक रहता था तो वह देश सोना पाता था, जिससे उसके यहाँ मुद्रा का प्रसार होता था, अतः, मूल्य बढ़ते थे, अतः, उसका निर्यात घट जाता था और उसका आयात बढ़ जाता था। इसी के स्वर्णमान का नियम कहते हैं। किन्तु जब प्रथम् महायुद्ध के बाद अमेरिका ने अपने यहाँ पहुँचे हुये सोने की मुद्रा प्रसार करने की शक्ति को समाप्त कर दिया, तब स्वर्ण-मान के नियम के टूट जाने से उसके यहाँ का निर्यात कम नहीं हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि उसके यहाँ सोना इकठा हो गया और अन्य देशों को उसकी कमी होने के कारण स्वर्णमान का त्याग कर देना पड़ा।

आधुनिक समय में यदि किसी देश का निर्यात उसके आयात की अपेक्षाकृत अधिक होता है तो प्रश्न यह उठता है कि उसका भुगतान कैसे किया जाय। कोई देश अपने यहाँ का स्वर्ण भेजने को तैयार नही है। अतः, उस देश को अन्य देशों से आयात करना ही पड़ता है, अन्यथा उसके लेनी-देनी की विषमता का भुगतान नहीं होता और रक़म बट्टे खाते लिखनी पड़ती है।

(१२) विनिमय की दर के परिवर्तन का भिन्न-भिन्न लोगों पर प्रभाव

विनिमय की दर के परिवर्तन का भिन्न-भिन्न लोगों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। अतः, यहाँ पर हमको उसको भली-भाँति समझ लेना चाहिये।

किसी देश की मुद्रा के विनिमय की दर के अन्य देशों की मुद्राओं में बढ़ जाने का प्रभाव—(१) आयात करने वालों को लाभ होता है। बात यह है कि उनको विदेशी मुद्राओं के विनिमय

में अपनी मुद्रा कम देनी पड़ती है। अतः, वह जो माल मँगाते हैं उन पर उन्हें कम मूल्य देना पड़ता है।

(२) निर्यात करने वालों की हानि होती है। बात यह है कि उनका माल विदेशों में मँहगा पड़ने के कारण कम बिकता है और यदि वह उनका दाम कम कर दें तो उनको लाभ कम होता है। हाँ, यदि निर्यात की वस्तुयें आवश्यक हैं अतः, उनमें निर्यात करने वालों का एकाधिकार है तो शायद ऐसा न हो।

(३) उत्पादक लोग हानि उठाते हैं। विदेशी माल के सस्ता आने के कारण या तो उनकी बिक्री नहीं होती अथवा उनको लाभ नहीं मिलता। उनके माल का निर्यात भी कम होता है, अथवा उनका कम मूल्य मिलता है। हाँ, यदि उनके उत्पादन की वस्तुयें आवश्यक हैं अथवा उनको उनके उत्पादन का एकाधिकार है तो शायद ऐसा न हो।

(४) उत्पादन में हानि के कारण मज़दूरी गिर जाती है और बेकारी फैल जाती है।

(५) उत्पादकों के मज़दूरी गिराने और मज़दूरों की संख्या को कम करने से उनमें और मज़दूरों में कलह पैदा होती है। अतः, देश में अशान्ति होती है।

(६) लेनदार का लाभ होता है और देनदार की हानि होती है। बात यह है कि लेनदार जो मुद्रायें पाता है उनकी विनिमय की दर पहिले से बढ़ी हुई होती है। इसी तरह से देनदार जो देता है उसकी क़ीमत बढ़े होने के कारण उसका हानि होती है।

(७) जिन लोगों की स्थाई आय है वह चीज़ों में मूल्य के घट जाने के कारण लाभ उठाते हैं।

(८) यदि देश की सरकार को किसी विदेश में ख़र्च करना रहता है तो उसको लाभ होता है। वास्तव में उसको पहिले जितनी विदेश

मुद्राओ को प्राप्त करने के लिये अपने यहाँ की मुद्राओं को पहिले की अपेक्षाकृत कम देना पड़ता है। किन्तु देश के उद्योग धन्धो और व्यापार को धक्का लगने से उसकी आय भी कम हो जाती है।

(९) उस देश में रहने वाले विदेशियों का यह लाभ होता है कि वह उस देश की उतनी ही मुद्रायें भेजने पर जितनी पहिले भेजते थे अपने देश में पहिले की अपेक्षाकृत अधिक मुद्राये पा जाते हैं।

(१०) उपभोक्ताओं को चीज़ो के भाव गिर जाने से लाभ होता है।

यदि विनिमय की दर घट जाती है तो उपरोक्त का उल्टा प्रभाव पड़ता है। किन्तु दोनों परिस्थितियो में जो प्रभाव पड़ते हैं वह अस्थाई होते हैं। थोड़े दिनों में आर्थिक परिस्थितियाँ नवीन परिस्थितियों के अनुकूल हो जाती हैं। फिर यदि कोई व्यक्ति एक हैसियत से लाभ उठाता है तो वह दूसरी हैसियत से हानि भी उठाता है। हम जानते हैं कि एक उत्पादक उत्पादक तो है ही किन्तु उपभोक्ता भी है। यही बात लेनदार के भी साथ है, इत्यादि, इत्यादि।

(१३) विनिमय की कौन-सी दर आदर्श दर है

विनिमय की यदि एक दर किसी एक प्रकार के लोगों के लिये अच्छी है तो वह दूसरों के लिये अच्छी नहीं है। अतः, प्रश्न यह है कि विनिमय की कौन-सी दर आदर्श दर है। व्यापारिक सिद्धात के मानने वालों का यह कहना था कि विनिमय की वह दर आदर्श दर है जिस पर किसी देश में स्वर्ण बराबर आता रहे अर्थात् वह टकसाली दर से ऊपर हो। दूसरी राय राजनैतिक अर्थशास्त्रियों की है जो यह कहते हैं कि विनिमय की वह दर आदर्श दर है जिससे देश के उद्योग-धन्धों और व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। अतः, उनके अनुसार इसको टकसाली दर से नीचे होने चाहिये। टकसाली दर के स्थान पर हम क्रय-शक्ति की समानता की दर भी कह सकते हैं।

किन्तु कोई दर जैसा कि हम पहिले देख चुके हैं सदा के लिये न तो टकसाली दर अथवा क्रय-शक्ति की समानता की दर से ऊपर और न नीचे रह सकती है।

(१४) विनिमय की दर का नियन्त्रण

आजकल सारे संसार में काग़ज़ी मुद्रा है और किसी भी मुद्रा के विनिमय की दर किसी भी वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नही निर्धारित होती है। वास्तव मे वह कृत्रिम रूप से निर्धारित कर दी गई हैं और प्रत्येक देश की सरकार उन पर नियंत्रण रख कर उन्हें ठीक रखती है। जब तक ससार की लगभग सभी मुद्रायें स्वर्णमान पर अवलम्बित थीं तब तक वह कम से कम परस्पर स्थाई थीं। किन्तु जब से स्वर्णमान भङ्ग हो गया है उनको नियंत्रण में रखना आवश्यक हो गया है। वैसे तो स्वर्णमान के समय में भी उनको एक निश्चित दर पर रखने के लिये कुछ उपायों का अवलम्बन करना पडता था किन्तु अब ऐसा अत्याधिक करना पडता है।

विनिमय दर के नियत्रण के तरीके—विनिमय की दर-नियत्रण के निम्न तरीके हैं :—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नियन्त्रण—इसके अन्तर्गत ऐसी चीज़ें आ जाती हैं जैसे आयात-निर्यात-कर, अथवा आयात-निर्यात के परिमाण का निश्चय रखना, अथवा आयात-निर्यात के लिये अधिकार-पत्र देना, इत्यादि। औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ से लगभग १०० वर्षों तक आयात-निर्यात कर का नियंत्रण करके उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने की नीति बराबर बरती जाती थी। फिर लोगों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ और मुक्त द्वार नीति का अवलम्बन किया गया। किन्तु प्रथम युद्ध के बाद फिर पहिले वाली नीति ही बरती जाने लगी। अब अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष और बैङ्क खोल कर फिर मुक्त द्वार की नीति अपनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। किन्तु इसमें संरक्षण की नीति

का पालन करके पिछड़े हुये देशों के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के सिद्धांत को भी मान लिया गया है। प्रथम युद्ध के बाद से आयात-निर्यात के परिमाण को भी निश्चय रखने और उसके लिये अधिकार-पत्र लेने की प्रणालियाँ भी अधिकाधिक प्रयोग में आ रही हैं। इनसे सबसे विनिमय की दर को एक ध्येय के अनुसार रक्खा जा सकता है।

(२) विदेशी मुद्राओं के क्रीत और विक्रीत पर नियन्त्रण—विदेशी मुद्राओं के क्रीत और विक्रीत पर नियन्त्रण रख कर भी विनिमय की दर पर नियन्त्रण रक्खा जाता है। हमारे देश में ही नियंत्रण की यह प्रणाली बहुत दिनों से काम में लाई जा रही है। इसके लिये पहिले तो भारत-मन्त्री काउन्सिल बिल और भारतीय-सरकार उल्टे काउन्सिल बिल बेचती थी। अब रिज़र्व बैङ्क विदेशी मुद्राओं को ख़रीदता और बेचता है।

(३) विनिमय की दर की समानता अथवा स्थिरता के लिये उनके कोष—ब्रिटेन ने सबसे पहिले सन् १९३२ में १५ करोड़ पौंड से एक उपरोक्त कोष स्थापित किया था। धीरे-धीरे यह कोष बढ़ता गया। इसके बाद बहुत से अन्य देशों ने भी ऐसे ही कोष स्थापित किये हैं। इनकी सहायता से विनिमय की दरों को स्थिर रक्खा जाता है।

(४) बैङ्क की दर—बैङ्क की दर का नियंत्रण करके विनिमय की दरों के नियंत्रण करने की रीति तो सभी देशों में विशेषकर इंगलैंड में बहुत दिनों से चली आ रही है। हाँ, इधर इस रीति का प्रयोग कम किया जाता है।

(५) विदेशियों के हिसाब पर बन्धन लगा देना—विदेशियों के ऊपर उनके हिसाब को साफ़ करने अथवा मनमानी तौर पर प्रयोग करने पर बन्धन लगा कर भी विनिमय की दरों को स्थिर रखने का

प्रयत्न किया जाता है। सन् १९३१ में संसार के सभी राष्ट्रों ने जर्मनी के हिसाब पर इसी तरह से प्रतिबंध लगा दिये थे।

(६) हिसाब को खड़ा रखने का समझौता कर लेना—विदेशियों से बजाय इसके कि उनके हिसाब पर किसी प्रकार का बन्धन लगाया जाय कभी-कभी इस बात का समझौता कर लिया जाता है कि वह स्वयम् अपने हिसाब को एक निश्चित अवधि तक खड़ा रख कर देश की विनिमय की दरों को ठीक रखने में सहायता प्रदान करें।

(७) हिसाब निपटाने के सम्बन्ध के समझौते—कुछ देशों से उनके हिसाब को निपटाने के लिये ऐसे समझौते कर लिये जाते हैं कि जिनसे विनिमय की दर पर कोई अनुचित प्रभाव न पड़े। ऐसे बहुत से समझौते इधर अनेकों देशों के बीच में हुये हैं।

(१५) भारतीय मुद्रा के विनिमय की दर

सन् १८९३ तक भारतीय मुद्रा रजतमान के ऊपर अवलम्बित थी। अतः; उस समय तक रजतमान पर अवलम्बित मुद्राओं और इसके बीच की विनिमय की दर टकसाली दर के अनुसार रहने से बराबर स्थिर रहती थी। किन्तु इसके और उन मुद्राओं के बीच की विनिमय की दरें जो स्वर्णमान पर अवलम्बित थीं विशेषकर सन् १८७२ से सन् १८९३ तक सोने और चाँदी के मूल्य में घट बढ़ होने के कारण बराबर परिवर्तित होती रहती थी। इससे भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न लोगों पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा था। अतः, सन् १८९३ से भारतीय टकसालों को जनता की मुद्राओं को ढालने के लिये बन्द करके उसके विनिमय की दर को ठीक रखने के लिये कृत्रिम ढंगों का सहारा लिया जाने लगा। उस समय रुपये और पौंड के बीच के विनिमय की दर १ रुपया = १ शि० ४ पे० रक्खी गई। भारत-सरकार इसके लिये आवश्यकतानुसार काउंसिल बिल और उल्टे

काउंसिल बिलों का प्रयोग करके सन् १६१७ तक इसको बनाये रखने में समर्थ रही। सन् १६०० के बाद यह १ शि० ४$\frac{1}{8}$ पें० से अधिक नहीं बढ़ी और १ शि० ३$\frac{15}{16}$ पें० से नीचे नहीं गिरी। परन्तु सन् १६१७ से यह दर क़ायम न रह सकी। इस वर्ष के अगस्त महीने से जो यह बढ़ने लगी तो सन् १६२० तक बढ़ती ही रही। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि रुपये के विनिमय की दर के बढ़ने का प्रधान कारण उस समय की चाँदी की कीमत का बढ़ना था। सच पूछा जाय तो चाँदी की कीमत सन् १६१७ से पहिले ही बढ़ना आरम्भ हो गई थी। किन्तु उसका प्रभाव रुपये के विनिमय की दर पर उस समय तक नहीं पड़ा जब तक कि रुपया प्रमाणिक सिक्का नहीं हो गया अर्थात् उसका धात्विक मूल्य उसके बाहरी मूल्य के बराबर नहीं हो गया। इसके बाद जैसे-जैसे चाँदी का मूल्य बढ़ता रहा वैसे-वैसे भारत-सचिव को पौंड में रुपये की विनिमय की दर को भी बढ़ाना पड़ा। यदि वह ऐसा न करता तो यहाँ पर चाँदी के सिक्के हानि उठा कर ढालने पड़ते और उनको जनता बराबर गलाती रहती। इसलिये पहिले तो भारत-सचिव ने रुपये और पौंड की विनिमय के दर को १ शि० ५ पें० कर दिया और फिर जैसे-जैसे चाँदी का मूल्य बढ़ा उसने सन् १६१८ में इसको १ शि० ६ पें० तक कर दिया। सन् १६१८-१६ मे इसमें कोई विशेष घट-बढ़ नहीं हुई, परन्तु सन् १६१६ के मई और अगस्त मे फिर उसको इसे १ शि० ८ पे० और १ शि० १० पें० तक कर देना पड़ा। चाँदी की क़ीमत फिर भी बढ़ती गई। अतः, सरकार ने विवश होकर एक कमेटी नियुक्त की, जिसको करेंसी और विनिमय सबंधी नीति निर्धारित करने का काम सौंपा गया। कमेटी का सिर्फ एक ही सदस्य भारतीय था। उसकी सब बैठकें इगलैड में हुई। कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के पहिले भारत-सचिव को विनिमय की दर सितम्बर १६१६ मे २ शि०, नवम्बर में २ शि० २ पें० तथा दिसम्बर में २ शि० ४ पें० कर देनी पड़ी। सन् १६२० के फ़रवरी महीने के प्रथम सप्ताह

में इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। कमेटी ने यह सिफ़ारिश की कि भारतीय विनिमय की क़ानूनन दर बढ़ा कर १ रुपया = स्वर्ण के २ शि० के कर दी जाय। उस समय इंगलैंड में काग़ज़ी मुद्रा का प्रसार होने के कारण उसके काग़ज़ी पौंड की क़ीमत बहुत गिरी हुई थी। अतः, करेंसी कमेटी की सिफ़ारिश के अनुसार यह दर उस समय के काग़ज़ी पौंड में लगभग २ शि० ११ पें० होती। बाज़ारू दर उस समय २ शि० ५ पें० थी। करेंसी कमेटी ने विनिमय की दर के इतने अधिक बढ़ाये जाने के कई कारण बतलाये थे, किन्तु उनमें से दो मुख्य हैं :—

(१) कमेटी की यह धारणा थी कि चाँदी की क़ीमत भविष्य में काफी समय तक कम न होगी। अतः; उसने ऐसी दर नियुक्त करने की सिफ़ारिश की जिससे फिर चाँदी की कीमत बढ़ने के कारण उसको बढ़ने की आवश्यकता न पडे।

(२) भारत में वस्तुओं की क़ीमत बढ़ रही थी। कमेटी ने ऐसी दर नियुक्त करना उचित समझा जो वस्तुओं की क़ीमत कम कराने में सहायक हो। हम जानते हैं कि विनिमय की दर बढ़ने से विदेशी वस्तुयें सस्ती पड़ती हैं, फिर अपने देश की वस्तुयें भी बाहर नहीं जा सकती हैं। अतः, वह भी सस्ती पड़ती हैं।

कमेटी के एकमात्र भारतीय सदस्य श्रीयुत दलाल ने अपनी रिपोर्ट में दर बढ़ाये जाने का जोरों से विरोध किया और पुरानी दर को क़ायम रखने की सिफ़ारिश की। आपने यह भी लिखा कि भारत सरकार इस बढ़ी हुई दर के बनाये रखने में समर्थ न होगी।

किन्तु भारत-सचिव ने श्रीयुत दलाल की सिफ़ारिशों की अवहेलना कर, कमेटी के अधिकांश सदस्यों की ही सिफ़ारिशें स्वीकार कर लीं। जिस समय यह रिपोर्ट प्रकाशित हुई और भारत-सचिव ने अपना मन्तव्य प्रकाशित किया उस समय विनिमय की बाज़ारू दर

कमेटी द्वारा निर्धारित दर से लगभग ४ पें० कम थी। उल्टे काउंसिल बिलों की माँग पहिले ही से आरम्भ हो गई थी और भारत सरकार ६० लाख रुपयों के बिल बेच चुकी थी। ५ फ़रवरी, सन् १६२० को २ करोड़ रुपयों के उल्टे काउंसिल बिल २ शि० ८$\frac{५}{१६}$ पें० की दर से और १२ फ़रवरी को ४ करोड़ रुपयों के उल्टे काउंसिल बिल २ शि० १०$\frac{२७}{३२}$ पें० की दर से बेचे गये। यह दर बाज़ारू दर से ३-४ पें० अधिक थी। वास्तव में ऐसा केवल विनिमय की दर को बढ़ाने के लिये ही किया गया था, किन्तु यह बहुत अनुचित था। जिन सज्जनो ने यह बिल पाये और उनमें विदेशी लोग अधिक थे उनको बाज़ारू भाव से प्रायः १० प्रति सैकड़ा की बचत हुई। सरकार इन उल्टे काउंसिल बिलों को बेच कर बाज़ारू दर को २ शि० ७$\frac{१}{२}$ पें० तक बढ़ाने में समर्थ हुई, किन्तु यह वृद्धि थोड़े ही समय के लिये थी। कुछ ही दिन बाद विनिमय की दर घटनी आरम्भ हुई और वह अप्रैल सन् १६२० तक २ शि० ३$\frac{३}{४}$ पें० तक गिर गई परंतु भारत सरकार २२ अप्रैल तक प्रति सप्ताह २ करोड़ रुपयो के उल्टे काउंसिल बिल बाज़ारू दर से चढ़ती दर पर बेचती ही रही। फिर उसके अगले सप्ताह से केवल १ करोड़ रुपयों के उल्टे काउंसिल बिल प्रति सप्ताह बिकने लगे और २० जून को इनकी दर १ शि० ११$\frac{१}{३२}$ पें० नियत कर दी गई। भारत-सरकार ने विनिमय की दर के बढ़ाने के लिये एक और साधन का भी आश्रय लिया था। वह था सितम्बर सन् १६१६ से प्रति सप्ताह पन्द्रहवें दिन लाखों तोला सोना घाटे से बेचना। इन सब प्रयत्नों के किये जाने पर भी विनिमय की दर गिरती ही गई और सितम्बर, सन् १६२० के अन्त तक वह गिरते-गिरते १ शि० १०$\frac{१}{२}$ पें० तक आ गई। सरकार अपने प्रयत्नों में सर्वथा असफल रही और विवश होकर उसी महीने से उसने उल्टे काउंसिल बिलों और सोने का बेचना बन्द कर दिया।

सरकार की उपरोक्त नीति से भारतवर्ष की बड़ी हानि हुई। उल्टे

काउंसिल बिलों के बेचने के कारण उनको ख़रीदने वालों को जो व्यर्थ ही १० प्रति सैकड़े की रियायत मिली उसका भार ग़रीब भारत-वर्ष पर पड़ा। महायुद्ध के समय भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से जो कई करोड़ रुपये भारत में ख़र्च किये थे उसकी रक़म ब्रिटिश सरकार ने १ पौं० = १५ रु० की दर से चुकाई थी और वह इगलैण्ड में वहीं के ऋण-पत्रों में लगा दी गई थी। इसी तरह से भारत-सचिव ने जो काउंसिल बिल बेचे थे उनकी रक़म भी वहाँ पर लगी हुई थी। अतः, जब भारत-सरकार ने सन् १९२० में उल्टे काउंसिल बिल बेचे तब उन्हे भारत सचिव ने ब्रिटिश ऋण-पत्रों को बेच कर चुकाया। इस तरह भारत-सरकार को जो भारत में इन बिलों के प्रति पौंड १० रु० या उससे भी कम रक़म मिली उसके बदले में भारत सचिव को १५ रु० में प्रति पौंड देने पड़े। इस प्रकार ग़रीब भारत को ३२½ करोड़ रुपयों की हानि हुई। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने जो सोना घाटे से बेचा उसमें भी उसे लगभग ७½ करोड़ रुपयों की हानि हुई। फिर विनिमय की दर के बढ़ जाने से आयात को यहाँ पर जो प्रोत्साहन मिला और उससे यहाँ के उद्योग-धन्धों को जो धक्का लगा उससे भी भारत की एक बड़ी हानि हुई।

कई करोड़ रुपयों की हानि उठाने के बाद सितम्बर, सन् १९२० से भारत सरकार ने विनिमय सम्बन्धी बातों में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्बन किया, किन्तु वह भी थोड़े ही दिनों तक रही। जब कुछ वर्षों बाद विनिमय की दर कुछ दिनों तक १ शि० ६ पे० रह कर उसके नीचे गिरनी आरम्भ हुई तब उसने फिर यहाँ पर मुद्राओं का सकुचन करके उसको १ शि० ६ पे० पर रखने का प्रयत्न किया। अन्त में सन् १९२६ में शाही करेंसी कमीशन ने इसी दर को सदा के लिये मानने की सिफ़ारिश कर दी। इस समय भी उसका बड़ा विरोध हुआ। यहाँ के लोग विनिमय की दर को युद्ध

के पहिले की दर अर्थात् १ शि० ४ पें० पर ही रखना चाहते हैं। शाही करेंसी कमीशन में भी इसके पूर्व के कमीशन की तरह एक भारतीय सदस्य सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास थे। उन्होंने भी १ शि० ६ पें० की दर के विरुद्ध और १ शि० ४ पें० की दर के पक्ष में अपनी रिपोर्ट दी थी। वास्तव में प्रथम युद्ध के बाद इंगलैण्ड को छोड़ कर कोई भी देश ऐसा नहीं था जिसने अपनी मुद्रा की विनिमय की दर को युद्ध के पहिले की दर से कम न रक्खा हो। इंगलैण्ड ने अवश्य इसको पहिले ही की दर की तरह रक्खा। कहा जाता है कि इंगलैण्ड को इससे बड़ी हानि हुई और अन्त में सन् १६३१ में उसको स्वर्णमान छोड़ देना पड़ा। अब यह आसानी से समझा जा सकता है कि जब इंगलैण्ड ऐसे अमीर और उन्नत देश को पहिले की विनिमय की दर को अपनाने के कारण इतनी हानि उठानी पड़ी, तब भारत ऐसे ग़रीब और पिछड़े हुये देश को पहिले से भी ऊँची विनिमय की दर को अपनाने के कारण कितनी हानि हुई होगी।

शाही कमीशन की सिफ़ारिशों को भारत सरकार के अपनाने के बाद से आज तक रुपये की विनिमय की दर का झगड़ा चला आ रहा है। इस युद्ध के पहिले कांग्रेस ने अपने रामगढ़ के सम्मेलन में इसको १ शि० ४ पें० कर देने का प्रस्ताव पास किया था और वाइसराय ने उसीके कुछ दिन बाद इसको क़ायम रखने की घोषणा की थी। युद्ध के समय में भी भारतवासियों की हार्दिक इच्छा इसको घटाने की थी, किन्तु उसके अन्तिम वर्षों में यह प्रश्न तो मुद्रा प्रसार के प्रश्न के सामने कुछ अधिक महत्त्व का नहीं रह गया था। किन्तु इधर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के स्थापित हो जाने के कारण और भारतवर्ष को भी उसको भविष्य में अपनी मुद्रा की विनिमय की दर को बताने के कारण इस प्रश्न ने फिर तूल पकड़ लिया था। वास्तव में क्रय-शक्ति की समानता के सिद्धान्त पर तो भारतीय मुद्रा के विनिमय की दर इस समय बहुत कम होनी चाहिये। लेकिन इस सम्बन्ध में कई

बातें ध्यान देने की हैं। प्रथम तो भारतवर्ष में रुपये की जो क्रय-शक्ति आज है शायद भविष्य मे वह कुछ अधिक हो जायगी और अन्य देशों में उनके मुद्रा की जो क्रय-शक्ति है वह शायद भविष्य में कम हो जायगी। अन्य देशो मे यहाँ पर विशेषकर इंगलैण्ड और अमेरिका की तरफ़ सकेत है। कुछ देश भारतवर्ष की ही तरह ऐसे हैं जिनमें उनकी मुद्रा की क्रय-शक्ति या तो भारतवर्ष में रुपये की क्रय-शक्ति की ही तरह या उससे भी कम है, अतः, वह भविष्य मे बढेगी। दूसरे आजकल विनिमय की दर का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर उतना प्रभाव नहीं पडता है जितना पहिले पडता था। इस समय यदि भारतवर्ष चाहे कि वह विनिमय की दर को बढ़ाकर बाहर से चीज़ें प्राप्त कर ले तो नहीं कर सकता है। इसके लिये उसको अन्य देशों से समझौता करना पड़ेगा। उनके पास इतना माल है ही नही कि वह किसी से प्रतियोगिता करें। उनके पास तो जितना माल है उसको वह उन्हीं को देना चाहते है जो समझौता करके उसमे से थोड़ा-थोड़ा प्राप्त करना चाहते हैं। इसी तरह से विनिमय की दर को घटाने से हमारे निर्यात को भी कोई लाभ नहीं होगा। विदेशों में तो हमारे माल की वैसे ही माँग है। हमीं उनको नहीं देना चाहते। हमारे यहाँ खाद्य पदार्थों की कमी है, हम उनका निर्यात नहीं करना चाहते। हम अपने कच्चे माल को भी बाहर नहीं भेजना चाहते। हाँ, हम कुछ चीज़ों का अवश्य निर्यात कर रहे हैं और करना चाहते हैं, किन्तु उनके लिये विनिमय की दर को घटा कर प्रोत्साहन देने की कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती है। वास्तव मे हमको भविष्य में जैसा आवश्यक होगा अपने विनिमय की दर को घटाना अथवा बढ़ाना पड़ेगा, किन्तु अभी से हम उसके लिये कुछ नहीं कह सकते हैं। अतः, हमारी स्वतन्त्र सरकार ने इस समय तो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को यही सूचना दे दी है कि वह वर्तमान दर को ही अभी फ़िलहाल क़ायम रक्खेगी। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के नियमों के अनुसार प्रत्येक देश

को अपने विनिमय की दर को १० प्रतिशत से तो कभी भी अपनी इच्छानुसार और १० प्रतिशत से फिर कोष को सम्मति से इधर-उधर करने का अधिकार है। अतः, भारतवर्ष के लिये यही काफी होगा। जब जैसी आवश्यकता होगी हम वैसा कर लेंगे।

१४. चालान और बीमा

(१) रेलों के द्वारा माल का चालान (२) जहाज़ के द्वारा माल का चालान (३) माल का बीमा (४) आग की जोखिम का बीमा (५) समुद्री-यात्रा की जोखिमों का बीमा (६) भारतवर्ष में बीमें का काम।

माल के चालान और बीमें के सम्बन्ध की बातों की जानकारी तो देशांतर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के व्यापारों में पड़ती है। देशातर्गत व्यापार में तो माल का चालान आजकल अधिकतर रेलों से ही होता है। जहाँ रेलें नहीं हैं वहाँ भारतवर्ष में तो यह बैल-गाड़ियों तथा ऊँटों और खच्चरों की मार्फ़त होता है। अब धीरे-धीरे अन्य देशों की तरह यहाँ पर भी मोटर ट्रकों का प्रयोग बढ़ रहा है। कहीं कहीं पर विशेष तौर पर बङ्गाल में इस काम के लिये नावें भी बहुत प्रयोग में लाई जाती हैं। पुराने समय में तो जब यहाँ रेलें नहीं थीं यहाँ का अधिकतर व्यापार नावों के ही द्वारा हुआ करता था। अब भी पश्चिमीय देशों में नावों और रेलों में इसके लिये बड़ी प्रतियोगिता है, किन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। यहाँ पर जलमार्ग की उन्नति करने की चेष्टा नहीं की गई है। समुद्र के किनारे-किनारे जो शहर हैं उनका व्यापार जहाज़ों के द्वारा भी होता है। रह गया अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार। सो वह तो भारतवर्ष में तो जहाज़ों के ही द्वारा होता है। वैसे तो भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम और पूर्व में ऐसे भी देश हैं जिनसे इसका व्यापार स्थल के रास्तों से हो सकता है अथवा यों कहिये कि होता भी है। किन्तु यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यहाँ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तो एक बहुत बड़े हिस्से में जहाज़ों के द्वारा ही होता है। भविष्य में देशांतर्गत और

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों ही के लिये हवाई जहाजों के भी अधिकाधिक प्रयोग में आने की सम्भावना है। माल के चालान के साथ ही उसके बीमे का भी प्रश्न आता है। भारतवर्ष में तो आजकल देशांतर्गत व्यापार के सम्बन्ध में बीमे का बहुत रिवाज नहीं है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में तो यह है ही। हाँ, जब यहाँ पर नावों के द्वारा देशांतर्गत व्यापार होता था उस समय बीमे का बड़ा रिवाज था। यहाँ कुछ ऐसे कोठीवाल थे जो अपनी नाव भी रखते थे अर्थात् माल को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने का भी काम करते थे। साथ ही वह उस माल का बीमा भी करते थे और उसके सम्बन्ध में आर्थिक सहायता भी देते थे। जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे यहाँ की जोखमी हुण्डी इन तीनो कामो को पूरा करने के लिये प्रयोग मे लाई जाती थी। आजकल अवश्य ऐसा नहीं होता। जो माल रेल से जाता है उसमे उतनी जोखिम भी नहीं रहती है। हाँ, समुद्र से जाने वाले माल पर बड़ी जोखिम होती है। अतः, उस पर बीमा भी अवश्य होता है।

(१) रेलों के द्वारा माल का चालान

रेल के द्वारा माल का चालान करने में हमको जिस क्रम को पूरा करना पड़ता है उसका थोड़ा-सा संकेत तो इसी पुस्तक में ११वें अध्याय मे निर्यात का क्रम शीर्षक में किया जा चुका है। हाँ, उसके सम्बन्ध की कुछ विशेष बातो का विवरण देना अभी बाकी रह गया है। अतः, उसको हम यहाँ पर देते हैं।

माल को रेलवे कम्पनी के पदाधिकारियो को सौंपने पर वह उनको एक रेलवे रसीद देते हैं जिसको हम बिल्टी भी कहते हैं। बिल्टियाँ कई प्रकार की होती हैं, एक तो पारसल से माल ले जाने की और दूसरी मालगाडी से माल ले जाने की। इनके अतिरिक्त रेल का महसूल दे देने पर एक भिन्न प्रकार की और न देने पर एक

भिन्न प्रकार की बिल्टी मिलती है। कुछ रेलों में इनके रंग भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

बिल्टी में एक ओर तो भेजे हुये माल, भेजने वाले, पाने वाले, भेजने वाले स्टेशन, पहुँचने वाले स्टेशन, भाड़ा रेल, आदि का विवरण दिया होता है और दूसरी ओर वे सब शर्तें दी होती हैं कि जिन पर रेलवे कम्पनी ने उस माल को ले जाने की ज़िम्मेदारी ली है। माल भेजने वाला इस पर माल पाने वाले के नाम और पते की जगह पर माल के ख़रीदार का नाम, या इस जगह पर भी अपना ही नाम लिखवा दे सकता है। रेलवे कम्पनी किसी रेलवे रसीद का माल उसी व्यक्ति को देती है कि जिसका नाम उस रसीद में माल पाने वाले की जगह पर लिखा हुआ है। अतः, यदि रसीद में माल पाने वाले की जगह पर माल भेजने वाले का स्वयम् नाम लिखा है तो माल ख़रीदने वाला रेलवे स्टेशन से माल पहुँचने पर उसे छुड़ा सके, इसके लिये माल भेजने वाले को उसकी पीठ पर माल ख़रीदने वाले का नाम लिखकर और अपना हस्ताक्षर करके उसका बेचान करना पड़ता है। यदि वह ऐसा करना भूल जाता है तो माल ख़रीदने वाले को माल नहीं मिल सकता है। अब माल ख़रीदने वाला या तो स्वयम् स्टेशन पर जाकर माल ले आवें अथवा बिल्टी पर बेचान करके अपने किसी कर्मचारी को उसको लाने के लिये भेज देवे। स्टेशन से किसी माल को छुड़ाने के लिये बिल्टी देनी पड़ती है और रेलवे के एक रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। यदि माल आने में ख़राब हो गया है तो रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते समय यह बात उसमें लिख देनी चाहिये जिससे उस पर क्षति प्राप्त करने के लिये एक प्रमाण हो जावे।

यदि कोई रेलवे रसीद खो गई है तो उसके माल छुड़ाने वाले को एक इक़रारनामा इस बात का देना पड़ता है कि यदि आगे कभी

वह रेलवे रसीद मिल गई और उसके आधार पर किसी व्यक्ति ने रेलवे कम्पनी से अपनी क्षति वसूल की तो वह व्यक्ति रेलवे कम्पनी के प्रति ज़िम्मेदार होगा। रेलवे से आये हुये माल को एक नियत समय के भीतर ही छुड़ा लेना चाहिये, अन्यथा माल छुड़ाने वाले को प्रतिदिन देरी के लिये जुर्माना देना पड़ता है जिसको डैमरेज कहते हैं।

(२) जहाज़ के द्वारा माल का चालान

जहाज़ के द्वारा माल का चालान करने के लिये जो बातें करनी पड़ती हैं उनका संकेत भी इसी पुस्तक में ११ वे अध्याय में 'निर्यात का क्रम' शीर्षक ही में किया जा चुका है। अब जो बातें शेष हैं वे यहाँ पर दी जाती हैं।

माल के जहाज़ से ले जाने का जो कंट्राक्ट होता है वह या तो जहाज़ी अधिकार-पत्र (Charter Party) में या जहाज़ी बिल्टी (Bill of Landing) में दिया रहता है। इस कंट्राक्ट को हम जहाज़ी भाड़े का कंट्राक्ट (Contracts of Affreightment) कहते हैं। माल को ले जाने की एवजी में जहाज़ी भाड़ा दिया जाता है। जब माल जहाज़ के द्वारा ले जाना होता है तब या तो एक पूरे जहाज़ को या उसके कुछ अंश को हम किराये पर ले सकते हैं अथवा उसको हम एक साधारण माल ले जाने वाले जहाज़ के मालिक को सौंप सकते हैं। पहिली अवस्था में जो कंट्राक्ट होता है वह जहाज़ी अधिकार-पत्र का कंट्राक्ट और दूसरी अवस्था में जो कंट्राक्ट होता है वह जहाज़ी बिल्टी का कंट्राक्ट कहलाता है। जहाज़ी अधिकार-पत्र का कंट्राक्ट या तो एक पूरी समुद्र-यात्रा के लिये या एक निश्चित अवधि के लिये हो सकता है। इस तरह के कंट्राक्ट में जहाज़ का मालिक अधिकतर तो जहाज़ को जहाज़ी अफ़सर, मल्लाह और उसको चलाने के लिये कोयले, इत्यादि जिन-जिन चीज़ों की

आवश्यकता पड़ती है उन समेत देता है और उसका पूरा व्यय अपने ऊपर लेता है किन्तु यदि जो व्यापारी जहाज़ को भाड़े पर लेता है-वह चाहे तो अपने आप जहाज़ी अफ़सर और मल्लाहों इत्यादि का प्रबन्ध कर ले और इस बात को जहाज़ी अधिकार पत्र पर लिखवा ले।

जब माल जहाज़ पर लद जाता है तब चाहे वह जहाज़ी अधिकार-पत्र के कंट्राक्ट के सम्बन्ध का और चाहे जहाज़ी बिल्टी के कट्राक्ट के सम्बन्ध का हो दोनों अवस्थाओ में जहाज़ का मालिक माल भेजने वाले को एक जहाज़ी बिल्टी देता है। हाँ, पहिली अवस्था में यह बिल्टी एक साधारण प्रमाण-पत्र के रूप में होती है जिसमें केवल माल के पाने की रसीद होती है और माल के ले जाने की शर्तों के लिये उस जहाज़ी अधिकार-पत्र का सकेत रहता है जिसके सम्बन्ध में यह माल ले जाया जाता है और जिसमे माल ले जाने की सब शर्तें दी होती हैं। दूसरी अवस्था मे जो जहाज़ी बिल्टी होती है उसमें माल ले जाने की सब शर्तें भी दी रहती हैं। उस अवस्था में जहाज़ी अधिकार-पत्र नहीं बनता। बात यह है कि उस अवस्था में जहाज़ की समुद्री यात्रा उसके मालिक की ज़िम्मेदारी पर होती है और उस पर अनेकों व्यापारियों के माल उन सब स्थानो पर ले जाने के लिये रक्खे जाते हैं जिनमें होकर वह जहाज़ अपनी यात्रा करेगा। ऐसी अवस्था में जहाज़ का मालिक एक साधारण भड़ैत (Common Carrier) होता है। अतः, इस अवस्था में जहाज़ी बिल्टी न केवल माल पाने की रसीद ही वरन् कंट्राक्ट की शर्तों की एक प्रमाण-पत्रिका भी होती है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि जहाज़ी अधिकार-पत्र की उपस्थिति में तो उसकी पूरक और जहाज़ी अधिकार-पत्र की अनुपस्थिति में माल पाने की रसीद और माल ले जाने की शर्तों की एक प्रमाण-पत्रिका होती है। इसकी एक विशेषता यह है यह माल के अधिकार

की द्योतक है और यदि माल इसको दिखलाने वाले को अथवा किसी विशेष व्यक्ति को अथवा उसके आदेश के अनुसार मिलने को है तो इसका प्रारम्भिक अधिकारी जिसको वह चाहे इसको हस्तान्तरित कर सकता है और इसी तरह से यह जिसको हस्तान्तरित की जाती है वह भी इसको किसी दूसरे को हस्तान्तरित कर सकता है। यह हस्तान्तर यदि यह देखनहार है तो इसको केवल किसी दूसरे को देने से और यदि यह फरमानजोग है तो इस पर बेचान करने से होता है। जिसको यह हस्तान्तरित की जाती है उसको इससे सम्बन्धित जो माल है उस पर वही अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और उत्तरदायित्व पड़ जाते हैं जो हस्तान्तरित करने वाले के होते हैं।

एक जहाज़ी बिल्टी यद्यपि वह वास्तव में बेचने के योग्य (Negotiable) नहीं है बहुधा बेचने के योग्य ही मानी जाती है। बात यह है कि इसके और एक बेचने के योग्य अधिकार-पत्र के बीच में समानता की बहुत-सी बातें हैं जैसे प्रथम तो यह कि यह किसी को केवल देकर अथवा इस पर बेचान करके इस पर जो उत्तरदायी है उसको इसकी सूचना दिये बिना ही हस्तान्तरित की जा सकती है और दूसरे यह कि यह जिसको हस्तान्तरित कर दी जाती है वह इस पर जो उत्तरदायी है उससे अदालत के द्वारा भी माल प्राप्त कर सकता है और उसको छुटकारा दे सकता है। किन्तु यह बेचने के योग्य अधिकार-पत्रों से इस बात में भिन्न हैं कि जब उनमें तो उनको हस्तान्तरित करने वाला जिसको वह हस्तान्तरित करता है उन पर अपने से अच्छा अधिकार दे सकता है इसमें ऐसी बात नहीं है। एक जहाज़ी बिल्टी को हस्तान्तरित करने वाला व्यक्ति जिसको वह उसे हस्तान्तरित करता है उस पर उसी प्रकार का अधिकार दे सकता है जिस प्रकार का अधिकार उसको स्वयम् को उस पर है। अतः, कुछ लोग इसको अर्ध बेचने के योग्य अधिकार-पत्र कहते हैं।

(३) माल का बीमा

माल का बीमा उसको अनेकों प्रकार की जोखिमों से बचाने के लिये हो सकता है, किन्तु मुख्य जोखिमें केवल दो ही हैं, (१) आग की और (२) समुद्री यात्रा की। आग की जोखिम तो माल के मालगोदाम में रहने पर और चालान की अवधि दोनों में हो सकती है किन्तु समुद्री यात्रा की जोखिमें तो केवल माल की समुद्री यात्रा की अवधि में ही हो सकती हैं। अतः, इनसे बचने के लिये माल का बीमा भी करा लेना चाहिये। हमारे देश में पुराने समय में जब माल नदियों के रास्ते से आता-जाता था उसकी जोखिम से बचने के लिये उसका बीमा होता था। बीमे के सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये यह केवल क्षति-पूर्ति के लिये ही है। यदि कोई व्यक्ति इससे लाभ उठाना चाहता है तो वह ऐसा नहीं कर सकता है। मान लीजिये 'अ' का १००० रु० का माल है और 'ब' उसका आग का बीमा कराता है। अब यदि यह माल जल जाता है तो 'ब इसके लिये रुपया पाने का अधिकारी नहीं होगा। उसने तो इस माल के जल जाने से कोई क्षति उठाई ही नहीं। अतः, यदि उसे बीमे का रुपया मिल जाता है तो वह उससे लाभ उठाता है और बीमे में यह अवैधानिक है। इससे उसको रुपया नहीं मिलेगा, और इस अवस्था में न 'अ' को ही रुपया मिलेगा क्योंकि उसने तो बीमा कराया नहीं था। इससे यह स्पष्ट है कि जिस चीज़ पर बीमा कराया जाय उसकी रक्षा में बीमा कराने वाले की आर्थिक दिलचस्पी होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो बीमा अवैधानिक है। आग के बीमे में तो बीमा कराने वाले की यह दिलचस्पी बीमा कराने और क्षति होने दोनों के समय में होनी चाहिये और समुद्री यात्रा के बीमे में यह केवल क्षति होने के समय में ही हो सकती है। बीमे के कन्ट्राक्ट की एक और विशेषता है और वह यह है कि बीमा कराने वाले को बीमा कराते समय बीमा करने वाले को बीमे के सम्बन्ध

को पूरी जोखिम चाहे वह पूछे अथवा न पूछे स्वयम् बता देनी चाहिये। मान लीजिये कि किसी दूकान के माल का बीमा कराना है और उसके बग़ल में ही एक लकड़ी की टाल है। अब चाहे बीमा करने वाला इस बात को पूछे अथवा न पूछे बीमा कराने वाले को उसे स्वयम् ही यह बता देना चाहिये कि दूकान के बग़ल में लकड़ी की एक टाल है। इससे बीमा करने वाले को उस जोखिम का पूरा पता पड़ जायगा जिसको वह अपने ऊपर ले रहा है। जब उसको उस लकड़ी की टाल का पता चल जायगा वह यह समझ लेगा कि माल में आग लगने की ज़्यादा सम्भावना है। अतः, वह समझ-बूझकर बीमा करेगा।

किसी माल की क्षति हो जाने पर जब बीमा करने वाला उसके मालिक की क्षति पूरी कर देता है तब उसको उस माल के सम्बन्ध के वह सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो उसके मालिक के थे। इसको दूसरे के स्थान मे आने का सिद्धान्त (Doctrine of Subrogation) कहते हैं। मान लीजिये (१) 'अ' ने 'ब' से माल का बीमा कराया और 'स' ने उस पर आग लगा दी। अब जब 'ब' 'अ' की क्षति पूरी कर देता है उसको 'स' के प्रति अदालत करने का वही अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसा 'अ' का था। (२) एक जहाज़ के डूब जाने की सूचना मिलती है। अतः, बीमा करने वाला उसके मालिक को क्षति पूरी कर देता है। अब यदि जहाज़ नहीं डूबा था और आ जाता है तो उस पर बीमा करने वाले का अधिकार हो जाता है।

यदि किसी माल का बीमा उसकी वास्तविक क़ीमत से कम का करवाया गया है तो बीमा कराने वाला उसका दुबारा बीमा करा कर उसकी क़ीमत को पूरा कर सकता है। किन्तु बीमे की पूरी रक़म माल की वास्तविक कीमत से अधिक नहीं होनी चाहिये। मान लीजिये कि माल १००० रु० का है और एक कम्पनी से ८०० रु० का बीमा

हुआ है और दूसरी कम्पनी से ४०० रु० का बीमा हुआ है तो उस माल का पूरा नुकसान हो जाने पर उसका मालिक केवल १००० रु० ही पा सकता है और यदि उसने १२०० रु० प्राप्त कर लिया है तो वह २०० रु० को बीमा कम्पनियों को वापिस करने के लिये उत्तरदायी होगा।

किन्तु किसी माल का बीमा करने वाला उस माल का बीमा फिर से किसी अन्य बीमा करने वाले से करा सकता है। मान लीजिये कि 'अ' ने 'ब' से किसी माल का १००० रु० का बीमा कराया है। अब यदि 'ब' चाहे तो इसका बीमा १००० रु० तक का फिर से किसी अन्य बीमा करने वाले से करा सकता है। माल की क्षति हो जाने पर 'अ' को 'ब' से रुपया मिल जायगा और 'ब' को उस अन्य व्यक्ति से मिल जायगा जिससे उसने इसका बीमा कराया था।

(४) आग की जोखिम का बीमा

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है हर बीमे के लिये बीमा करान वाले की जिस वस्तु पर वह बीमा करता है स्वयम् की आर्थिक दिलचस्पी होनी चाहिये। अतः, आग की जोखिम के बीमे के सम्बन्ध में किसी माल के मालिक की अथवा मालिक के प्रतिनिधि की उस माल पर अथवा धरोहरी की उसकी धरोहर पर, अथवा भड़ैत की उस माल पर जिसको वह भाड़े पर ले जाता है, अथवा एक बीमा करने वाले की उस माल पर जिसका उसने बीमा किया है और एक ऋणदाता की उसके पास जो माल रेहन है उस पर आर्थिक दिलचस्पी मानी जाती है जिससे यह सब लोग उन पर बीमा करा सकते हैं।

बीमा कराने के लिये बीमा कराने वाले को सबसे पहिले तो एक आवेदन-पत्र भरना पड़ता है। इसमें उसे उन सब बातों को बता देना चाहिये जिनको कि वह समझता है जानने से बीमा करने-वाले को बीमे की जोखिम का पूरा-पूरा अन्दाज़ लग जायगा। बीमे की

रक़म को भरते समय उसको इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि यह माल की क़ीमत से कम है तो उसको पूरी क्षति होने पर उसको केवल बीमे की रकम मिलने से उसकी हानि होगी। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि आग से सारे माल की क्षति होने की कम सम्भावना रहती है। अतः, यदि माल को पूरी क़ीमत का बीमा न कराया जाय तो कोई हानि नहीं होगी। जितने की हानि होगी वह बीमे की रक़म से कम ही होगा। अतः, हानि को रक़म पूरी मिल जायगी। किन्तु इस बात को रोकने के लिये बीमा करने वालों ने बीमे में औसत की धारा लगाने की प्रथा को चालू कर दिया है। यदि कोई माल १००० रु० का है, और यह आशा की जाती है कि उसमें आग लगने पर उस सब की हानि तो होगी ही नहीं कुछ तो बच ही जायगा तो बीमा कराने वाला यदि ८०० रु० का बीमा कराता है तो बीमा करने वाले को ८०० रु० के हिसाब से ही बीमा का प्रीमियम मिलता है। अतः, इसको रोकने के लिये वह यह कहता है कि यदि बीमे के माल की आंशिक हानि होती है तो वह भी उस आंशिक हानि का वह भाग देगा जो उसका और माल की पूरी क़ीमत का है। उपरोक्त उदाहरण में ८०० रु० १००० रु० का $\frac{4}{5}$ है, अब यदि बीमे के $\frac{4}{5}$ माल की हानि होती है तो औसत धारा के अनुसार बीमा करने वाला ८०० रु० का $\frac{4}{5}$ अर्थात् केवल ६४० रु० ही देगा। इससे बीमे की रक़म बीमे के वास्तविक मूल्य से कम न होनी चाहिये। साथ ही वह अधिक भी न होनी चाहिये, क्योंकि ऐसा होने से प्रीमियम तो अधिक देना पड़ता है किन्तु हानि होने पर केवल हानि ही की रक़म मिलती है।

बीमा करने वाले के पास जब बीमा कराने का आवेदन-पत्र पहुँच जाता है तब वह उस पर विचार करता है। वास्तव में बीमा कम्पनियाँ टैरिफ और टैरिफ से बाहर दो तरह की हैं। टैरिफ कम्पनियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की जोखिम के लिये भिन्न-भिन्न प्रीमियम निश्चित

कर रक्खे हैं। अतः, प्रत्येक आवेदन-पत्र से बीमे की जोखिम का पता लगा कर ये कम्पनियाँ अपना प्रीमियम लिख भेजती हैं। टैरिफ से बाहर की कम्पनियाँ बहुत कम हैं। उनके प्रीमियम भी कम हैं, किन्तु वह बहुत सफल नहीं है।

बीमा कराने वाला जब बीमा करने वाले की माँग के अनुसार उसको प्रीमियम भेज देता है तब बीमा हो जाता है। किन्तु बीमा-पत्र बनने में कुछ समय लगता है। अतः, बीमा करने वाला इस बीच में जोखिम ओढ़ने की एक सूचना बीमा कराने वाले के पास भेज देता है। इसमें वह तारीख़ दी रहती है, जिससे बीमा करने वाला बीमे के माल का जोखिम अपने ऊपर लेता है। बीमा-पत्र में बीमा कम्पनी के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं, और सरकारी स्टाम्प लगता है। इसमें बीमा कराने वाले का नाम और पता, बीमा के माल का पूरा विवरण, बीमे की रकम और उसका प्रीमियम दिया रहता है। साथ ही उसके पीछे बीमा कम्पनी की बीमा की शर्तें दी रहती हैं। यदि बीमा कराने वाले को कोई शर्त मान्य नहीं है तो उसको पहिले से ही उस शर्त को बदलवा लेना चहिये। आग के बीमे की मुख्य शर्तें बहुधा निम्नाङ्कित ही होती हैं :—

(१) यदि माल का विवरण ठीक से नहीं दिया गया है, अथवा ग़लत दिया गया है। अथवा उसमें कोई बात शेष रह गई है तो बीमा-विधान के अनुसार ठीक नहीं समझा जाता है।

(२) यदि जोखिम में कोई परिवर्तन होता है तो उस परिवर्तन की सूचना बीमा कम्पनी को दे देनी चाहिये और उससे उसको बीमा पत्र पर लिखवा लेना चाहिये।

(३) जो माल धरोहर के तौर पर होता है उसकी जोखिम बीमा करने वाले के ऊपर उस समय तक नहीं होती जिस समय तक उसको स्पष्ट तौर पर ऐसा नहीं बता दिया जाता है। चीनी मिट्टी की चीज़ों,

काँच की चीज़ों, जवाहिरात और पाण्डु लिपि, इत्यादि, अधिकार-पत्र, ऋण-पत्र, हुण्डी, रुपया-पैसा, इत्यादि विस्फोटक पदार्थ और विस्फोटक से हुई क्षति, अपने आप गर्मी पैदा हो जाने से जो क्षति होती है, भूकम्प, विदेशी शत्रु और दंगे इत्यादि से हुई क्षति इन सब की जोखिम भी बीमा कम्पनी के ऊपर तभी होती है जब ऐसा स्पष्ट तौर पर तै हो जाता है।

(४) यदि बीमे का माल बिक गया है तो जब तक बीमा कम्पनी इसको स्वीकार न कर ले उस बिके हुये माल की जोखिम बीमा कम्पनी पर नहीं पड़ती है।

(५) क्षति होने के १५ दिन के अन्दर ही बीमा कम्पनी के पास उसकी सूचना और अपना दावा लिख कर भेज देना चाहिये।

(६) यदि दावा जाली है तो बीमे का पूरा अधिकार समाप्त हो जाता है।

(७) बीमा कम्पनी को इस बात का अधिकार है कि वह बीमे की रक़म देने के स्थान पर जिस माल की क्षति हुई है वैसा ही माल फिर से बनवा दे अथवा मँगवा दे।

(८) जहाँ पर क्षति हुई है उस स्थान पर कम्पनी के अधिकारियों का प्रवेश का और क्षति होने वाले माल को अपने अधिकार में रखने का अधिकार है।

(९) यदि किसी माल का दोहरा बीमा हुआ है तो कम्पनी बीमे की रक़म को अनुपात के हिसाब से चुकता कर सकती है।

(१०) यदि उसी माल के किसी दूसरे बीमे-पत्र में औसत की धारा दी हुई है तो वह धारा उस माल के सब बीमा-पत्रों में लागू समझी जायगी।

(११) दावे के झगड़े पंचायत से तै कराये जा सकते हैं।

(१२) यदि बीमा अवैधानिक हो जाता है तो जितने प्रीमियम दिये जा चुके हैं उनकी वापसी न होगी।

(१३) कम्पनी की छपी हुई रसीद ही प्रमाणित रसीद मानी जायगी।

(१४) बीमा कराने वाले को बीमे के माल के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों पर जो अधिकार हैं उनको वह बीमा करने वाले को हस्तान्तरित कर देगा और उनके पूरा कराने में उसकी सहायता करेगा।

(१५) बीमा कराने वाला यदि बीमे की किसी साधारण शर्त को भी तोड़ देता है जैसे यह कि उसको बीमे की माल की वैसी ही रक्षा करनी चाहिये जैसी वह बीमा न कराने पर करता, इत्यादि तो बीमे के सम्बन्ध का दावा करने का उसका अधिकार समाप्त हो जाता है।

जब बीमे की अवधि समाप्त हो जाय बीमा कराने वाले को यदि वह ऐसा चाहता है उसका फिर से बीमा करा लेना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक बीमा कम्पनी कुछ रियायती दिन देती है। इन रियायती दिनों के अन्दर बीमा कम्पनी बीमा के माल पर को जोखिम की उसी प्रकार ज़िम्मेदार रहती है जिस प्रकार बीमे की वास्तविक अवधि में रहती है।

बीमा-पत्र कई प्रकार के होते हैं।

(१) वर्णित माल के बीमे के—इनमें जिन वस्तुओं का वर्णन कर दिया जाता है उन्हीं वस्तुओं में किसी प्रकार की क्षति होने पर बीमा करने वाला उत्तरदायी होता है।

(२) चालू बीमा-पत्र—इसमें माल की प्रकृति दी रहती है। अतः, उस प्रकृति का कोई भी माल बीमे की रक़म तक का हो सकता है। यह स्पष्ट है कि वर्णित-माल का बीमा तभी हो सकता है जब वह माल बराबर वहीं पर रहे। अतः यह दूकानदारी के माल का नहीं हो सकता है। इसके विपरीत चालू बीमा-पत्र दूकानदारी के माल के

लिये बहुत उपयुक्त है। बात यह है कि दूकानदार के यहाँ एक माल हमेशा नहीं रहता है। वह बिकता है और उसके स्थान पर फिर दूसरा माल ख़रीदा जाता है।

मालियतदार बीमा-पत्र—उपरोक्त के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी बीमा-पत्र होता है जिसको मालियतदार बीमा-पत्र कहते हैं। इसमें बीमे की वस्तु की जो मालियत निर्धारित कर दी जाती है वही उस वस्तु की पूर्ण क्षति होने पर मिल जाती है। किसी घर में जो उपभोग की वस्तुयें होती हैं उनकी मालियत का पता लगाने मे कठिनाई पड़ती है। अत, उनके सम्बन्ध में ही यह बीमा-पत्र बहुत ठीक होता है। किन्तु इस बीमे में क्षति से अधिक रकम मिलने की सम्भावना होने के कारण इसमे बीमे का जो क्षतिपूरक होने का सिद्धान्त है उसके टूट जाने की सम्भावना रहती है।

आग का बीमा तो साधारण तौर पर इमारतों, उपभोग और व्यापार की वस्तुओं, मिलों और कारख़ानों के स्टोरों के सम्बन्ध में करवाया जाता है, किन्तु कभी-कभी भाड़े का और माल के ले जाने के समय की जोखिम का भी बीमा होता है। मान लीजिये कि एक मकान जल जाता है तो जब तक वह फिर से नहीं बन जाता है उसके भाड़े का नुक़सान होता है। अतः, उस जोखिम का भी बीमा करवाया जा सकता है। फिर किसी माल को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने के बीच मे भी उसमे आग लग जाने का डर रहता है। अतः, उसका भी बीमा करवाया जा सकता है।

जिस चीज़ की बिक्री हो जाती है उसके सम्बन्ध का बीमा-पत्र केवल बीमा करने वाले की सम्मति से ही हस्तान्तरित किया जा सकता है। मान लीजिये कि 'अ' ने अपने मकान का बीमा करवाया है और फिर वह उसको 'ब' को बेच देता है। अब यदि 'ब' यह चाहता है कि मकान मे आग लगने की जोखिम का जो उत्तरदायित्व बीमा

करने वाले के ऊपर है वह चालू रहे तो उसको बीमा-पत्र को अपने पक्ष में हस्तान्तरित करवा लेना चाहिये। किन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब बीमा करने वाला भी इसके लिये अपनी स्वीकृति दे दे।

(५) समुद्री यात्रा की जोखिमों का बीमा

माल को चाहे डाक से भेजा जाय, चाहे रेल से और चाहे जहाज़ से सब की जोखिमों का बीमा करवाया जा सकता है। किन्तु डाक से और रेल से माल भेजने मे अधिक जोखिम नहीं होती। अतः, व्यापारी लोग उनका बीमा बहुत कम कराते हैं। हाँ, समुद्र से माल भेजने में बहुत जोखिम होती है, अतः, उसका बीमा अवश्य करवाया जाता है। जहाज़ी बिल्टी में कुछ ऐसी जोखिमें दी रहती हैं जिनके लिये जहाज़ी कम्पनी उत्तरदायी नहीं होती हैं। उनमें निम्न जोखिमें सम्मिलित हैं :—ईश्वरेच्छा से क्षति, बादशाह के शत्रुओं के द्वारा की गई क्षति, बादशाह और रियाया के द्वारा पकड़-धकड़ और रोका राकी से क्षति, मल्लाहों और कप्तान के द्वारा की गई क्रान्ति से क्षति, यात्रा में जहाज़ के ज़मीन पकड़ लेने अथवा ऐसे ही अन्य कारणों से उत्पन्न हुई क्षति, इत्यादि। अतः, इन क्षतियों के विरुद्ध बीमा कराना आवश्यक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस विन्दु पर जहाज़ी कम्पनी का दायित्व समाप्त होता है उस विन्दु पर बीमा कम्पनी का दायित्व प्रारम्भ होता है। वास्तव में जहाँ तक जोखिम का प्रश्न है जहाज़ी बिल्टी और बीमा-पत्र परस्पर पूरक (Mutually-Complementary) हैं। एक में जो जोखिमें नहीं सम्मिलित हैं दूसरे में वह सम्मिलित हैं।

समुद्री जोखिमों का बीमा जहाज़ का, उसके महसूल का और उस पर लदे हुये माल का करवाया जाता है। जहाज़ कई किस्म के होते हैं। जो जहाज़ भारी होते हैं उन पर कम प्रीमियम लगता है जो और हल्के होते हैं उन पर अधिक प्रीमियम लगता है।

यह तो पहिले ही बताया जा चुका है कि समुद्री यात्रा की जोखिमों के विरुद्ध बीमा कराने के लिये बीमा कराने वाले की बीमा की वस्तु पर उसकी क्षति होने के समय आर्थिक दिलचस्पी होना आवश्यक है। अतः, इसके लिये निम्न व्यक्तियों की आर्थिक दिलचस्पी मानी जाती है :—(१) जहाज़ के मालिक और उस पर लदे हुये माल के मालिक की, (२) जिसके पास जहाज़ अथवा जहाज़ पर लदा हुआ माल रेहन किया गया है उसकी आर्थिक दिलचस्पी उसके ऋण के रकम तक होती है; (३) एक बीमा करने वाले की आर्थिक दिलचस्पी उसने जिस जहाज़ और माल का बीमा किया है उस पर बीमे की रक़म तक की होती है, (४) भड़ैत की आर्थिक दिलचस्पी उसके भाड़े की रक़म तक की होती है, (५) जहाज़ के कप्तान और मल्लाहों की आर्थिक दिलचस्पी उनके वेतन और मज़दूरी तक की होती है, और (६) एक धरोहरी की उसकी धरोहर पर, इत्यादि।

लायड्स से बीमा कराना—इंगलैण्ड में समुद्री यात्रा की जोखिमों का बीमा कराना सबसे पहिले उन लोगों ने प्रारम्भ किया था जो इटली से भागकर लन्दन में उस जगह पर आकर बस गये थे जो उनके नाम से आज भी लौम्बर्डी स्ट्रीट कहलाती है। यद्यपि ये लोग तो कुछ दिनों बाद लन्दन से निकाल कर बाहर कर दिये गये, किन्तु इनकी देखा देखी वहाँ पर जो बीमे का काम शुरू हो गया था वह बराबर चलता रहा। सत्रहवीं शताब्दि तक इंगलैण्ड में कहवे का यथेष्ट प्रचार हो गया था। अतः, वहाँ पर उस समय कहवा-पान के लिये अनेकों कहवा-घर खुल गये थे। इन कहवा घरों में से एक लायड्स का कहवा-घर टावर स्ट्रीट में था जिसमें उसके ऐसे स्थान पर होने के कारण जहाँ से जहाज़ी बन्दर बहुत समीप पड़ता था बहुत से जहाज़ के मालिक, कप्तान और अनेकों ऐसे व्यापारी कहवा पीने के लिये रोज़ आते थे जो जहाज़ी कामों में दिलचस्पी रखते थे।

धीरे-धीरे उसमे ऐसे लोग भी आने लगे जो अपने जहाज़ का अथवा जहाज़ों पर जाने वाले माल का समुद्री यात्रा की जोखिमों के विरुद्ध बीमा करवाना चाहते थे। बात यह थी कि इन लोगों को वहाँ पर बीमा करने वाले लोगों से भेंट हो जाने का पूरा विश्वास रहता था और ऐसा होता भी था। सन् १६६१ में यह कहवा-घर लौम्वर्ड स्ट्रीट चला गया और सन् १६६६ में इसके प्रयत्नशील मालिक श्रीयुत एडवर्ड लायड ने इसकी ओर से लायड्स सूचना नाम का एक पत्र प्रारम्भ कर दिया जिसमें समुद्री यात्रा सम्बन्धी ख़बरें विशेष तौर पर और व्यापारिक खबरें साधारण तौर पर रहने लगीं। कुछ ही समय में लायड्स का यह कहवा-घर समुद्रो यात्रा की जोखिमों के बीमे का इंगलिस्तान भर में एक सबसे प्रधान स्थान बन गया।

जैसे-जैसे लायड्स में समुद्री यात्रा की जोखिमो के बीमे का काम बढ़ा वैसे-वैसे वास्तविक बीमा करने वालों के साथ-साथ वहाँ पर कुछ जुआड़ियों को भी सख्या बढ़ी। अतः, इन जुआड़ियो के सम्मिलित हो जाने से लायड्स के बीमा करने वालो की अप्रसिद्धि न हो जाय इस ध्येय से उन लोगों ने अपनी एक संस्था बना ली। सन् १७७४ में यह रायल एक्सचेन्ज़ की अपनी ख़ुद की इमारत में चली गई और सन् १८७१ में पार्लियामैन्ट ने लायड्स कारपोरेशन के नाम से इसकी मंज़ूरी कर दी।

लायड्स के सदस्य एक प्रवेश-शुल्क और एक वार्षिक शुल्क देते हैं। ये दो तरह के होते हैं, एक तो बीमा करने वाले और दूसरे मध्यस्थ दलाल। कुछ लोग दोनों काम करते हैं। लायड्स के प्रतिनिधि तमाम संसार में फैले हुये हैं जो उनको जहाज़ों के छूटने, पहुँचने और टकराने, नष्ट होने तथा अनेकों आकस्मिक घटनाओं की बराबर सूचना देते रहते हैं। ये सूचनाये वहाँ पर पत्रों में निकाल दी जाती हैं। और इनको सब सदस्य रोज़ देखते रहते हैं। इंगलैण्ड में समुद्र यात्रा की जोखिमों के बीमे अधिकतर लायड्स में होते हैं।

बाहरी कम्पनियाँ होने को तो कई हैं किन्तु लायड्स की दर अधिक अच्छी होने के कारण उनको बहुत कम काम मिल पाता है। ये लोग खर्चों की अधिकता के कारण ऊँची दर लेते हैं और लायड्स वाले खर्चों की कमी के कारण नीची दर लेते हैं।

लायड्स में बीमा कराने वालों को एक दलाल के मार्फ़त बीमा कराना पड़ता है। यह दलाल उनके आदेशों को बीमा करने वालों को बतलाता है जो वहाँ पर एक हाल में बैठे रहते हैं। बीमा हो जाने पर दलाल एक स्लिप तैयार करता है जिसमें वह जहाज़ का नाम, बीमे की तारीख़, जोखिम का विवरण, बीमे की रक़म और प्रीमियम की दर लिख देता है। जो-जो बीमा करने वाले जितने-जितने का बीमा करते हैं वह उस स्लिप पर अपने हस्ताक्षर के साथ लिख देते हैं। यह स्लिप उस समय तक एक बीमा करने वाले के पास से दूसरे के पास जाती रहती है जब तक कि पूरी रक़म का बीमा नहीं हो जाता है। वैसे तो क़ानून इस स्लिप को नहीं मानता है, किन्तु लायड्स के सदस्य सदा से इसका उत्तरदायित्व मानते आये हैं। अन्त मे इसी स्लिप से बीमा-पत्र तैयार किया जाता है।

बीमा कम्पनियो से बीमा कराना—यदि बीमा कम्पनियो से बीमा कराया जाता है तो पहिले तो वे एक जोखिम ओड़ने की सूचना और बीमा-पत्र तैयार करती हैं। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है इन कम्पनियो के ख़र्च अधिक होने के कारण इनकी प्रीमियम की दर भी बहुत ऊँची होती है।

बीमा-पत्र की क़िस्में—बीमा-पत्र कई क़िस्म के होते हैं :—(१) यात्रा के बीमा-पत्र—इनमें एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक जाने में जो जोख़िमें होती हैं उनका बीमा होता है। ऐसे बीमे माल के होते हैं। (२) एक निश्चित अवधि का बीमा-पत्र—इसमें विशेषकर जहाज़ों का बीमा अधिक से अधिक एक वर्ष तक का होता है। (३) मिश्रित बीमा-पत्र—इसमें यात्रा और अवधि दोनों

का संकेत रहता है। (४) निश्चित मालियत का बीमा-पत्र--इसमें जोखिम की रक़म निश्चित हो जाती है और पूरी हानि होने पर वही मिल जाती है और आंशिक हानि होने पर उसीके अनुपात से जोखिम की रक़म मिलती है। (५) बिना मालियत का बीमा-पत्र—इसमें बीमे की एक रक़म तो निश्चित हो जाती है, किन्तु वह रक़म जोखिम की नहीं होती, अर्थात् हानि होने पर हानि की रक़म का पता लगाकर क्षति पूर्ति की जाती है। हाँ, क्षति-पूर्ति की रक़म बीमे की रक़म से अधिक नहीं हो सकती है। (६) चालू बीमा-पत्र—यह बीमा-पत्र एक अन्दाज़िया रक़म का ले लिया जाता है, किन्तु जैसे-जैसे माल बाहर भेजा जाता है वैसे-वैसे बीमा करने वाले को उसकी सूचना दे दी जाती है, और इस तरह से बीमा-पत्र में दी हुई रक़म तक की क़ीमत का माल बाहर भेजा जा सकता है और उसका बीमा अपने आप केवल सूचना देने पर होता जाता है। इसका यह लाभ है कि बीमा कराने वाले को प्रत्येक चालान के बीमे के सम्बन्ध में नया कन्ट्राक्ट नहीं करना पड़ता। एक ही कन्ट्राक्ट से बहुत से चालानों का बीमा हो जाता है। बीमा करने वाले का भी यह लाभ है कि उसको एक बीमा कराने वाले के सब चालानों का बीमा मिल जाता है। (७) जुए का बीमा-पत्र—वैसे तो बीमे का मुख्य सिद्धांत यही है कि बीमा कराने वाला उसी वस्तु का बीमा करा सकता है जिसमें उसकी आर्थिक दिलचस्पी हो। किन्तु यदि बीमे करने वाला चाहे तो ऐसी वस्तु का भी बीमा कर सकता है जिसमें बीमा कराने वाले की आर्थिक दिलचस्पी न हो। यद्यपि ऐसे बीमे का रुपया दिलवाने में अदालत की सहायता नहीं प्राप्त हो सकती है, किन्तु बीमा करने वाले इसका भुगतान कर देते हैं। ऐसा बीमा वास्तव में बीमा नहीं है वरन् एक प्रकार का जुआ है।

बीमा-पत्र की मुख्य-मुख्य बातें—किसी बीमा-पत्र की मुख्य-मुख्य बातें ये हैं :—

(१) बीमा कराने वाले का नाम—इसमें बीमा-पत्र को हस्तांतरित करने की गुञ्जाइश भी रहती है।

(२) माल की क्षति हुई अथवा नहीं (Lost or Not Lost)—कभी-कभी उस जहाज़ के बन्दरगाह से चले जाने के बाद बीमा करवाया जाता है जिसमें माल लदा रहता है। अतः, ऐसी अवस्था में यह भी सम्भव है कि माल की कोई क्षति हो चुकी हो जो बीमा करने वाले और कराने वाले दोनों में से किसी को भी न मालूम हो। यदि ऐसा है तो बाद में बीमा करने वाला यह न कह दे कि माल की पहिले ही क्षति हो जाने के कारण वह उसका उत्तरदायी नहीं है। इस बात को रोकने के लिये उपरोक्त शर्त बीमा-पत्र में लिख दी जाती है।

(३) यात्रा का विवरण—जहाँ से यात्रा प्रारम्भ होगी उस जगह और वहाँ से (At and From)—उपरोक्त शर्त के रहने से यदि माल जहाज़ पर लद गया है, किन्तु वह वहीं पर खड़ा है और तो भी माल की क्षति हो जाती है तब भी बीमा करने वाला उसके लिये उत्तरदायी होता है।

(४) जहाज़ का नाम—प्रत्येक बीमा-पत्र में जहाज़ का नाम दिया रहता है।

(५) जोखिम के प्रारम्भ होने और समाप्त होने का समय—प्रत्येक जोखिम में जोखिम के प्रारम्भ होने और समाप्त होने का समय दिया रहता है। यदि माल के लदने के समय से माल के सुरक्षित दशा मे उतर आने के समय तक की जोखिम बीमा करने वाले के ऊपर होती है तो यह बात बीमा-पत्र पर अवश्य लिखी रहनी चाहिये।

(६) जहाज़ किन-किन बन्दरगाहों पर होकर जायगा और कहाँ-कहाँ पर ठहरेगा—इससे यात्रा का पूरा विवरण मिल जाता

है। जहाज़ का जो रास्ता है उससे उसको इधर-उधर होने का अधिकार केवल निम्न परिस्थितियों में ही है :—

(अ) यदि ऐसा बीमा-पत्र मे लिख दिया गया है।

(ब) यदि जहाज़ अपने कप्तान और मल्लाहो के क़ाबू से बाहर हो जाय।

(स) यदि किसी साधारण शर्त को पालन करने के लिये ऐसा करना आवश्यक हो गया है। मान लीजिये कि जहाज़ मे मरम्मत की आवश्यकता है अथवा उसमें कोयला, इत्यादि चुक गया है जिससे उसको अपने रास्ते से हट कर थोड़ा बहुत इधर-उधर जाना पड़ता है।

(द) यदि जहाज़ की अथवा उस पर के माल की रक्षा करने के लिये यह ज़रुरी हो गया है।

(ध) यदि किसी मनुष्य की जान बचाने के लिये अथवा कोई डाक्टरी सहायता लेने के लिये ऐसा करना आवश्यक है।

(७) बीमे की मालियत—यदि बीमे की मालियत तै हो चुकी है तो उसकी क्षति होने पर उसका फिर से बीमा कराना आवश्यक नहीं है।

(८) किन-किन जोखिमों के विरुद्ध बीमा करवाया जाता है—जिन-जिन जोखिमों के विरुद्ध बीमा करवाया जाता है वह साधारणतया निम्नाङ्कित हैं :—(१) समुद्र की जोखिमें—इनमें समुद्र के पानी से, तूफ़ान से, टक्कर खाने से, ज़मीन पर लग जाने से जितने नुक़सान हैं वह सब सम्मिलित हैं; (२) आग की जोखिम; (३) समुद्री लुटेरो की जोखिम; (४) चोरो से जोखिम; (५) जहाज़ को हल्का करने के लिये माल फेंकने की जोखिम; (६) राष्ट्रो और रिआया के द्वारा पकड़-धकड़ और रोका-टोकी की जोखिम; और (७) जहाज़ के कप्तान और मल्लाहो की बग़ावत की जोखिम, इत्यादि।

युद्ध की परिस्थितियों में अथवा अन्य किसी परिस्थिति मे यदि बीमा करने वाला कोई जोखिम अपने ऊपर नहीं लेना चाहता तो उसको ऐसा स्पष्ट रूप में कह देना चाहिये।

(९) माल का रक्षा करने का अधिकार (Sue and Labour)—इसके अनुसार बीमा कराने वाले को बीमा के माल की रक्षा कराने का अधिकार और उस पर उसका जो व्यय होता है उसको बीमा करने वाले से लेने का अधिकार होता है।

(१०) दावा छोड़ने की शर्त (Waiver)—इस शर्त के अनुसार बीमा करने वाला अथवा कराने वाला यदि माल की रक्षा के लिये कुछ खर्च करता है तो बीमा-पत्र के अनुसार उसके जो अधिकार होते हैं उनमें उसके इस खर्च करने से किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ता।

(११) बीमे की किश्त—बीमा-पत्र में बीमे की किश्त के प्राप्त हो जाने की बात भी लिखी रहती है।

(१२) स्मरण-पत्र (Memorandum)—लायड्स के बीमा-पत्र में एक नोट रहता है, जिसको स्मरण-पत्र कहते हैं। बात यह है कि बहुत-सी ऐसी वस्तुये होती हैं जिनकी कुछ न कुछ क्षति बीमे की जोखिमों के कारणों मे से किसी के कारण भी अवश्य हो ही जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ चीज़े अपने आप ख़राब हो जाने वाली हैं। अतः, इन सब में आंशिक क्षति होने से बीमा करने वाले के ऊपर लगभग सभी बीमो के सम्बन्ध में कुछ न कुछ जोखिम पड़नी स्वाभाविक ही है। इसलिये ऐसी आंशिक हानियों से बचने के लिये यह स्मरण-पत्र होता है। वास्तव में यह बीमा कराने वाले को इस बात का स्मरण दिलाता है कि बीमा करने वाले पर आंशिक हानि का कोई दायित्व नहीं है। इसके अनुसार (१) कुछ चीज़ों पर जैसे गल्ला, आटा, फल, नमक, मछली, इत्यादि की आंशिक हानि के लिये तो

चाहे वह कितनी अधिक क्यों न हो बीमा करने वाले का तनिक भी दायित्व नहीं रहता, (२) कुछ चीज़ों पर जैसे तम्बाकू, चीनी, चमड़ा, इत्यादि की आंशिक हानि पर यदि वह ५ प्रतिशत से कम मूल्य की है बीमा करने वाला उसके लिये उत्तरदायी नहीं रहता है, और (३) अन्य किसी चीज़ पर भी यदि आशिक हानि कुल मूल्य के ३ प्रतिशत से कम है तो बीमा करने वाला उसके लिये उत्तरदायी नहीं रहता। किंतु यदि यह आंशिक हानि जहाज़ के ज़मीन पर लग जाने से, अथवा जल जाने से अथवा डूब जाने से अथवा सबकी हानि बचाने के लिये किसी एक की हानि जान-बूझ के करने (General Average) के कारण हुई है तो बीमा करने वाला उसके लिये उत्तरदायी रहता है।

उपरोक्त बातों के अलावा कुछ अन्य बातें भी कुछ विशेष बीमा-पत्रों में हो सकती हैं, जैसे निम्नाङ्कित हैं :—

(१) बीमा किये गये माल की खास आशिक हानि की जोखिम (Particular Average) से विशेषकर जब वह सबके माल बचाने के विचार से किसी विशेष माल को जान-बूझ कर नष्ट करने (General Average) के कारण नहीं हुई है बीमा करने वाले की ज़िम्मेदारी से मुक्ति। इसका सङ्क्षिप्त रूप एफ़० पी० ए० (F. P. A.) होता है।

(२) पकड़-धकड़ से हुई हानि से मुक्ति। अधिक बीमा की किश्त देने से युद्ध के समय में यह शर्त हट भी सकती है। इसका संक्षिप्त रूप एफ़० सी० एस० (F. C. S.) है।

(३) बीमा किये गये माल की ख़ास आंशिक हानि के समेत— इसके अर्थ ये हैं कि बीमा करने वाला आशिक हानि का भी उत्तर-दायी है। इसका संक्षिप्त रूप डब्लू० पी० ए० (W. P. A.) है।

(४) सब जोखिमों से पूर्ण (A. A. R.)—इसके अर्थ हैं

कि बीमा करने वाला उन सभी जोखिमों के लिये उत्तरदायी है जिनके विरुद्ध बीमा कराया जाता है।

(५) सब आंशिक हानियों से मुक्त (F. A. A.)—इसके अर्थ हैं कि बीमा करने वाला किसी भी आंशिक हानि के लिये उत्तरदायी नहीं है।

(६) सब का माल बचाने के लिये कुछ माल ख़राब करने (General Average) के कारण जो आंशिक हानि होती है उसका विदेशी क़ानून के हिसाब से निर्धारित होना (Foreign General Average)—इसके ये अर्थ हैं कि ऐसी हानि जहाँ पर होगी वह उसी जगह के क़ानून के हिसाब से निर्धारित की जायगी।

(७) टक्कर देने से हानि (Running Down Clause)—यदि दो जहाज़ों के परस्पर टक्कर खा जाने पर कोई अदालत किसी एक जहाज़ को इसका दोषी ठहरा कर उसके मालिक के ऊपर जुर्माना करती है तो इस शर्त के रहने पर बीमा करने वाला इस रकम का भुगतान करता है। यह शर्त जहाज़ो के बीमा के सम्बन्ध में होती है।

(८) चालू रहने की शर्त—यदि किसी जहाज़ का बीमा किसी विशेष अवधि के लिये हुआ है और उस अवधि के बीत जाने पर भी वह जहाज़ अपनी यात्रा नहीं समाप्त कर पाया है तो साधारणतया उस अवधि के बाद होने वाली किसी भी जोखिम का दायित्व बीमा करने वाले के ऊपर नहीं होता। किन्तु बीमा-पत्र मे यदि उपरोक्त शर्त दी हुई है तो बीमा कराने वाला यदि वह चाहे तो बीमें की अवधि बीत जाने पर बीमा करने वाले को इस बात की सूचना देकर कि जहाज़ की यात्रा समाप्त नहीं हुई है और वह बीमे को यात्रा के समाप्त होने तक चालू रखना चाहता है बीमे को चालू रख सकता है। हाँ, इसके लिये उससे मुनासिब क़िश्त ले ली जाती है।

(६) फिर से बीमा कराने की शर्त—यदि कोई बीमा करने वाला किसी बीमे की पूरी जोखिम अपने ऊपर नहीं लेना चाहता है तो वह उसका फिर से बीमा करा सकता है। यह बीमा यदि वह चाहे तो पूरी रकम का अथवा उसके किसी अंश का हो सकता है। ऐसी अवस्था में बीमा-पत्र में उपरोक्त शर्त लिख दी जाती है।

साधारण शर्तें—अन्य ठेको में तो साधारण शर्तों के उल्लंघन से ठेका नहीं टूटता है वरन् जिस व्यक्ति के प्रति ऐसा होता है उसको उसकी हानि पूरी करनी पड़ती है। किन्तु बीमे के ठेके में ऐसा होने से वह ठेका ही टूट जाता है। अब यह साधारण शर्तें दो प्रकार की होती हैं, (१) स्पष्ट और (२) अस्पष्ट।

स्पष्ट साधारण शर्तें—स्पष्ट साधारण शर्तें बीमा-पत्र में स्वयम् दी हुई होती हैं जैसे (अ) एक निश्चित तारीख़ को अथवा उसके पहिले यात्रा प्रारम्भ कर देना, (ब) किसी सीमा के अन्दर यात्रा करने का निषेध, (स) स्मरण-पत्र में दी हुई शर्त, और (द) पकड़-धकड़ से हुई हानि से मुक्ति।

अस्पष्ट शर्तें—अस्पष्ट शर्तें बीमा-पत्र में नहीं दी रहती हैं, किन्तु वह प्रत्येक बीमा-पत्र में लागू समझी जाती हैं। इनके उदाहरण निम्नाङ्कित हैं :—(अ) जहाज़ के समुद्र-यात्रा के योग्य होने की शर्त—इस शर्त के अनुसार प्रत्येक जहाज़ को अपनी यात्रा प्रारम्भ करने के पहिले यात्रा के योग्य होना चाहिये, अर्थात् वह टूटा-फूटा न हो और उसमें यात्रा का पूरा सामान हो; (ब) जहाज़ का अपने नियत रास्ते पर से न हटने की शर्त; और (स) यात्रा का वैधानिक होना।

बीमा-पत्र का बेचान—समुद्रीयात्रा की जोखिमों के विरुद्ध जो बीमा होता है उसके बीमा-पत्र का बेचान भी किया जा सकता है। हाँ, यदि बीमा-पत्र में इसका निषेध हो तो दूसरी बात है।

समुद्री यात्रा में होने वाली कुछ विशेष जोखिमें—समुद्र

यात्रा में होने वाली कुछ विशेष जोखिमें होती हैं। इनके उदाहरण निम्नाङ्कित हैं :—

(१) समीपवर्ती कारण (Causa Proxima)—कभी-कभी ऐसा होता है कि माल किसी ऐसे कारण से ख़राब हो जाता है कि जिसके विरुद्ध बीमा किया गया है किन्तु वह कारण स्वयम् किसी ऐसे कारण से घटित होता है जिसके विरुद्ध बीमा नहीं किया गया है तब बीमा करने वाला यह नही कह सकता कि जिस कारण से क्षति हुई है उस कारण के स्वयम् ऐसे कारण से घटित होने से जिसके विरुद्ध बीमा नहीं किया गया है, उसके ऊपर इस क्षति को पूर्ण करने का दायित्व नहीं है। समुद्री यात्रा की जोखिमों में सदा से यह सिद्धांत माना जाता रहा है कि यदि क्षति होने की सबसे समीपवर्ती जोखिम के विरुद्ध बीमा किया गया है तो चाहे अन्य जोखिमों के विरुद्ध बीमा किया गया हो अथवा नहीं बीमा करने वाला क्षति के लिये उत्तरदायी है। मान लीजिये कि किसी जहाज़ में समुद्री पानी के आ जाने से उस पर का माल ख़राब हो गया है और इस जोखिम के विरुद्ध बीमा किया गया है; किन्तु पानी स्वयम् जहाज़ के पेंदे को चूहों के काटने के कारण आया है और इस जोखिम के विरुद्ध बीमा नहीं करवाया गया है। ऐसी अवस्था मे भी बीमा करने वाला क्षति को पूर्ण करेगा क्योंकि क्षति होने का जो सबसे समीपवर्ती कारण है उसके विरुद्ध बीमा था।

(२) पूर्ण-क्षति—समुद्री जोखिमो से दो प्रकार की पूर्ण क्षति हो सकती है (१) वास्तविक पूर्ण क्षति, (२) ऐसी क्षति जो पूर्ण तो नहीं कही जा सकती है किन्तु है वास्तव में पूर्ण ही। मान लीजिये कि माल डूब गया है, अथवा उसकी शकल ऐसी बदल गई है कि अब वह उस काम का नहीं है जिसका पहिले था, अथवा वह लुटेरों, इत्यादि के हाथ मे पड जाने से अब नहीं मिल सकता है। यह सब पूर्ण क्षति के उदाहरण हैं। किन्तु यदि माल ऐसा अवस्थी में

उसको प्राप्त करने में अथवा उसकी मरम्मत करवाने में उतना ही अथवा उससे भी अधिक ख़र्च हो जाता है जितनी कि उसकी क़ीमत है। अतः इस माल की पूर्ण क्षति तो नहीं हुई है किन्तु ऐसी क्षति अवश्य हो गई जो पूर्ण कही जा सकती है। मान लीजिये कि कोई जहाज़ किसी चट्टान से टकरा गया है और उसे किनारे तक लाने में उतना ही अथवा उससे अधिक व्यय पड़ जायगा जितना कि उस जहाज़ का मूल्य है। अब यह क्षति पूर्ण तो नहीं है किन्तु वास्तव में पूर्ण कही जा सकती है। अथवा यदि कोई माल इतना टूट-फूट गया है कि उसकी मरम्मत में उस माल के क़ीमत के बराबर रुपया ख़र्च हो जाता है तब भी वह क्षति पूर्ण न होने पर भी वास्तव में पूर्ण ही कही जा सकती है। अंग्रेज़ी में इसको कसट्रक्टिव टोटल लास (Constructive Total Loss) कहते हैं और पहिले को वास्तविक पूर्ण क्षति (Actual Total Loss) कहते हैं।

(२) आंशिक क्षति—अंग्रेज़ी में आंशिक क्षति को अवरेज लास (Average Loss) कहते हैं। यह अवरेज लास भी दो तरह का होता है, (१) साधारण (General) और (२) विशेष (Particular)। (१) साधारण आंशिक क्षति (General Average)—जब सबकी क्षति रोकने के लिये किसी एक की क्षति जान-बूझ कर कर दी जाती है तब उस क्षति को सब लोग मिल कर पूरा करते हैं। मान लीजिये कि जहाज़ बोझीला होने के कारण डूब रहा है और ऐसा निश्चित होता है कि कुछ लोगों का माल समुद्र में फेंक कर उसको हल्का कर लिया जाय। अब यदि जहाज़, जहाज़ पर के माल और किराया मिला कर १ करोड़ रुपये का है, और १० लाख रुपये का माल फेंका गया है तो १० प्रति सैकड़ा आंशिक हानि हुई। अतः, जहाज़ के मालिक को, माल के मालिकों को, जिसको जहाज़ का किराया मिलना है अपने-अपने बचत का (जहाज़ के मालिक को जहाज़ के मूल्य का, माल वालों को माल के मूल्य का, भाड़ा पाने

वाले को भाड़े का) १० प्रतिशत देना पड़ेगा। जिसका माल फेंका गया था उसके ऊपर भी १० प्रतिशत की हानि पड़ेगी। सब लोग अपनी-अपनी आंशिक हानि बीमा करने वालों से प्राप्त करेंगे। इसके लिये निम्न बातें आवश्यक हैं :—

(१) सब लोगों की क्षति की सम्भावना हो, (२) कुछ क्षति करना आवश्यक हो, (३) क्षति जान-बूझ कर सबकी क्षति बचाने के लिये की जाय, (४) कम से कम क्षति की जाय, (५) यह क्षति असाधारण हो और इसका ध्येय जहाज़ को और उस पर के माल को बचाने का हो, (६) इससे जहाज़ और उस पर का कुछ माल अवश्य बच जाय और (७) जिसकी क्षति की गई है उसके किसी क़सूर की वजह से वह जोखिम न आ पड़ी हो जिसको बचाने के लिये उसके माल की हानि की गई है। जिस क्षति के कारण इस प्रकार की साधारण आंशिक क्षति होती है वह दो प्रकार से हो सकती है—(१) माल को फेंक देने अथवा जला देने से, (२) कुछ ऐसा व्यय करने से जिसका करना सबके हित में है। (२) विशेष आंशिक क्षति (Particular Average)—यह आंशिक क्षति किसी ऐसी जोखिम के कारण होती है जिसके विरुद्ध बीमा करवाया गया है। इस सम्बन्ध में स्मरण-पत्र, विशेष आंशिक क्षति से मुक्त, और सब आंशिक क्षतियों से मुक्त शर्तों को हम पहिले ही देख चुके हैं।

डूबते हुये जहाज़ या माल का बचाने का प्रतिफल—इसको अंग्रेज़ी में सालवेज कहते हैं। किन्तु जो माल बच जाता है उसको भी सालवेज कहते हैं। सालवेज करने वाले का अपना प्रतिफल पाने के लिये सालवेज पर पूरा अधिकार रहता है।

पेंदे का रेहन (Bottomry)—पुराने समयमें जब तार, इत्यादि नहीं थे कभी-कभी जहाज़ के कप्तान को अपनी यात्रा के बीच में किसी मुसीबत के पड़ जाने पर जब कुछ धन की आवश्यकता पड़ती थी वह

जहाज़ की ज़मानत पर धन ले सकता था। इस रेहन के लिये यह आवश्यक होता था कि (१) धन की प्राप्ति के बिना यात्रा चालू न रक्खी जा सके, (२) जहाज़ की ज़मानत के बिना अन्य किसी प्रकार से धन न प्राप्त हो सके, और (३) जो धन प्राप्त किया जाय वह जितना आवश्यक हो उतना ही हो। यदि किसी यात्रा के बीच में उपरोक्त रेहन किया जाता था, किन्तु यात्रा पूरी होने के पहिले फिर ऐसे ही रेहन की दुवारा अथवा तिवारा आवश्यकता पड़ती थी, तो पहिले अन्तिम रेहन का और फिर उसके बाद के रेहन का और इस तरह से सबसे पहिले रेहन का धन सबसे बाद में चुकता किया जाता था। बात यह थी कि यदि अन्त का रेहन न किया जाता तो यात्रा पूरी न होती और पहिले वाले रेहन का धन न मिल सकता, क्योंकि इस रेहन में यह शर्त होती थी कि रेहन का धन केवल उसी अवस्था में वापस किया जायगा जब जहाज़ अपनी मञ्ज़िल पर पहुँच जायगा।

माल की ज़मानत पर ऋण प्राप्ति (Respondentia)—यदि ऋण केवल माल की ज़मानत पर ही प्राप्त किया है तो उसको अंग्रेज़ी में रेसपॉंडेन्शिया कहते थे। ऐसा तभी किया जा सकता था जब जहाज की ज़मानत पर ऋण मिलना सम्भव नहीं होता था। ऐसी अवस्था में यदि सम्भव होता था तो माल के मालिकों की भी आज्ञा प्राप्त कर लेनी आवश्यक थी। माल की ज़मानत देने से यदि माल के मालिकों की कोई क्षति होती थी तो जहाज़ के मालिक को उसको पूरा करना पड़ता था।

उपरोक्त प्रकार से ऋण प्राप्त करने की आजकल कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः, इनका केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है।

बीमा-पत्र ही आर्थिक दिलचस्पी का प्रमाण है—वैसे तो बीमे के लिये यह होना आवश्यक है कि उसको कराने वाले की उसके माल में कोई आर्थिक दिलचस्पी हो। किन्तु लायडस में कुछ ऐसे

बीमे भी होते हैं जिनमें आर्थिक दिलचस्पी हो, अथवा न हो। वैसे तो ये बीमे अवैधानिक होते हैं, किन्तु बीमा करने वाले इन पर की जोखिम के दायित्व को मानते हैं। इनको अंग्रेज़ी में (Policies Proof of Interest) कहते हैं।

(६) भारतवर्ष में बीमे का काम

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है भारतवर्ष में बीमे का काम अंग्रेज़ों के आने के पहिले भी होता था, किन्तु अब तो इसका ढङ्ग ही बदल गया है। अतः, अब एक मालिक का कारबार इसको नहीं चला सकता है। किन्तु भारतवर्ष में ऐसा करने के लिये अभी तक कोई भारतीय कम्पनियाँ नहीं खुली हैं। जान-बीमे की तो बहुत-सी भारतीय कम्पनियाँ इस देश में हैं किन्तु आग के बीमे की अथवा समुद्री-यात्रा के बीमे की भारतीय कम्पनियाँ यहाँ नहीं हैं। अतः, यहाँ का यह काम विदेशी कम्पनियों के हाथ में है जिससे हमारा बहुत-सा धन बीमा की किश्तों के रूप में विदेशों में चला जाता है। इसको रोकने के लिये हमारी कम्पनियाँ होनी चाहियें। किन्तु हमारी ये कम्पनियाँ अभी विदेशी कम्पनियों की प्रतियोगिता में नहीं ठहर पाती हैं। अतः, हमारी सरकार को इस प्रतियोगिता को रोकना चाहिये। इसके लिये उसको देशी कम्पनियों को प्रोत्साहन और विदेशी कम्पनियों पर रुकावटें लगानी पड़ेंगी। जो बात बीमे के संबंध में है वही बात जहाज़ों के सम्बन्ध में भी है। देशी जहाज़ी कम्पनियों को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

१५. कस्टम्स

(१) कस्टम्स का आर्थिक महत्व (२) वापसी, छूट और आर्थिक सहायता (३) मौलिक तथा आवश्यक धन्धे (४) भारतवर्ष और कस्टम्स (५) कस्टम्स के द्वारा भारतीय धन्धों की सहायता (६) कस्टम्स के विषय में भविष्य में हमारी नीति

सरकार की आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा माल पर कर लगा कर वसूल किया जाता है। अब यह कर या तो उसकी उत्पत्ति पर अथवा उसकी बिक्री पर अथवा उसके आयात-निर्यात पर लगाया जा सकता है। उसकी उत्पत्ति पर जो कर लगाया जाता है उसको उत्पत्ति का कर (Excise), उसकी बिक्री पर जो कर लगाया जाता है उसको बिक्री का कर (Sales Tax), और उसके आयात-निर्यात पर जो कर लगाया जाता है उसको सामुद्रिक कर अथवा आयात-निर्यात कर या ज़कात (Customs) कहते हैं। याद रखना चाहिये कि कस्टम्स शब्द आयात और निर्यात दोनों पर के कर के सम्बन्ध में प्रयोग में लाया जाता है। भारतवर्ष में कस्टम्स का आय केन्द्रीय सरकार लेती है।

(१) कस्टम्स का आर्थिक महत्व

कस्टम्स का आर्थिक महत्व एक तो सरकार की आय की दृष्टि से और दूसरे देश के उद्योग-धन्धों को संरक्षण देने और प्रोत्साहित करने की दृष्टि से है। किन्तु इस विषय में यह बात याद रखनी चाहिये कि यदि इसका ध्येय सरकारी आय है तो इससे उद्योग-धन्धों को न तो संरक्षण ही मिल सकता है और न उनको प्रोत्साहित ही किया जा सकता है और यदि इसका ध्येय उनको संरक्षण देना और प्रोत्साहित करना है तो इससे सरकार की आय नहीं हो सकती है। बात यह है

कि यदि इसका ध्येय आय है तो इसकी दर इतनी कम होती है कि उससे माल के आयात-निर्यात पर कोई रुकावट नहीं होती और इस कारण माल का बराबर आयात और निर्यात होता रहता है और यदि इसका ध्येय संरक्षण देना और प्रोत्साहित करना है तो इसकी दर इतनी अधिक होती है कि जिसके कारण पक्के माल का आयात और कच्चे माल का निर्यात नहीं हो सकता। पक्के माल का आयात न हो सकने के कारण देश के उद्योग-धन्धों को संरक्षण और कच्चे माल का निर्यात न होने के कारण उनको प्रोत्साहन मिलता रहता है। किन्तु सरकार की आय नहीं होती। और यदि सरकार अपनी आय चाहती है, अर्थात् आयात-कर की दर कम होने से पक्के माल का आयात अधिक होता है और निर्यात-कर की दर कम होने से कच्चे माल का निर्यात अधिक होता है तो उद्योग-धन्धों को सरक्षण और प्रोत्साहन नहीं मिलता है। हाँ, उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये पक्के माल पर निर्यात-कर कम और कच्चे माल पर आयात-कर कम लगाया जाना आवश्यक होता है। इससे उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलने के साथ-साथ सरकार की आय भी होती है। अथवा यदि उद्योग-धन्धों को बहुत ही प्रोत्साहन देना है तो पक्के माल के निर्यात तथा कच्चे माल के आयात पर बिल्कुल भी कस्टम्स नहीं लगाना चाहिये किन्तु तब सरकार की आय नहीं होती है।

यो तो ऊपरी दृष्टि से देखने पर यही मालूम पड़ता है कि कस्टम्स का कर केवल देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारियों को ही देना पड़ता है अतः, इसका प्रभाव भी उन्हीं के ऊपर पड़ता है परन्तु बात ऐसी नहीं है। कस्टम्स का प्रभाव समूचे देश पर पड़ता है। धनी, ग़रीब, किसान, मज़दूर, पढ़े-लिखे और बिना पढ़े सभी इससे क्षति अथवा लाभ उठाते हैं। मान लीजिये कि एक भिखमगा है। अब यदि सरकार ने गल्ले के ऊपर निर्यात-कर लगा दिया है तो देश के अन्दर का गल्ला दूसरे देशों को बहुत कम जायगा। इस कारण वह खूब सस्ता होगा

और ऐसी हालत में वह भिखमंगा भीख भी खूब पाएगा। इस तरह से गल्लों के निर्यात पर लगाए हुये कस्टम्स का लाभ एक भिखमंगा भी उठाता है।

भिखमंगो के सिवाय इसका प्रभाव किसानों पर यह पड़ता है कि वे गल्ले के देश में काफ़ी मौजूद रहने के कारण खेती से उदासीन हो जाते हैं। मज़दूरो की मज़दूरी सस्ती हो जाती है। हज़ारो बीघा ज़मीन परती पड़ जाती है। लोगों का ध्यान उद्योग-धन्धो की तरफ़ भी जाता है। शिक्षा और तन्दुरुस्ती की भी वृद्धि होती है। खेती के सिवाय और सैकड़ों प्रकार के कारबार की उन्नति होती है।

इसी तरह यदि कपड़े के आयात पर आयात कर लगा दिया जाय तो कपड़े का आयात कम हो जाता है जिससे देशी कपड़ो का दाम चढ़ जाता है और वह खूब बिकता है। इससे उद्योग-धन्धों की भी वृद्धि होती है। गाँव में चर्खे और कर्घे का प्रचार होता है।

आयात और निर्यात-कर वास्तव में सरकार के ऐसे अस्त्र है जिनके द्वारा देश की व्यापारिक गति-विधि बदली जा सकती है। उद्योग-धन्धो की वृद्धि की जा सकती है और हर प्रकार से देश का व्यापार बढ़ाया जा सकता है, तथा आर्थिक उन्नति हो सकती है। अथवा इसके द्वारा व्यापार चौपट किया जा सकता है और देश कङ्गाल बनाया जा सकता है। देश में अकाल, भुखमरी आदि भी हो सकती है।

साधारण जनता का अवश्य ही इन आयात और निर्यात-करों से सम्पर्क न रहने के कारण वह भले ही इनसे अनभिज्ञ रहें, परन्तु इनका असर तो उन पर पड़ता ही है। अतः, उनको इसका ज्ञान तो अवश्य ही होना चाहिये।

देश के स्वार्थ की रक्षा के लिये देश की सरकार का यह धर्म है कि आयात-कर लगाते समय यह भी विचार कर लेवे कि देश में

किन-किन उत्पत्तियों पर उत्पत्ति-कर लगाया गया है और जिन-जिन उत्पत्तियो पर उत्पत्ति-कर लगाया गया है उनके आयात पर आयात-कर अवश्य लगावे और वह आयात-कर उत्पत्ति-कर के समान अथवा अधिक हों परन्तु कम किसी दशा में न हों। यदि कोई सरकार भूल से ऐसा नहीं करती है तो उसका प्रभाव यह होता है कि बहुत से पदार्थों के कारखाने टूट जाते हैं और देश में अकाल तथा अर्थ-संकट उपस्थित हो जाता है। आयात-कर एक प्रकार की महाशक्ति है। इस शक्ति को किसी विदेशीय जाति के हाथ में देना ठीक नहीं है। अमेरिका, रूस, इङ्गलैण्ड, आदि देशों ने तो आयात-कर-नीति को पूर्णतः अपने आधीन रक्खा है।

इसी तरह निर्यात-करों का भी विचार करना चाहिये। जिन वस्तुओं का उपयोग देश के सर्वसाधारण करते हों और खपत अधिक हो उन पर निर्यात-कर अवश्य लगा देना चाहिये तथा जिन पदार्थों की देश मे खपत न हो और अधिक मात्रा में पैदा होते हो उन पर निर्यात-कर न लगाना चाहिये।

बाहरी देशों की माँग और खपत के अनुसार निर्यात-कर घटाया-बढ़ाया जा सकता है। जैसे यदि अपने देश की किसी उत्पत्ति की विदेशों मे माँग अधिक है तो उस पर अधिक निर्यात-कर लगाया जा सकता है और यदि माँग और खपत कम है तो इतना कम निर्यात-कर लगाया जावे कि व्यापार में अड़चन न पड़े या निर्यात-कर बिल्कुल न लगाया जावे।

(२) वापसी, छूट और आर्थिक सहायता

आयात-कर जब इस दृष्टि से लगाया जाता है कि उसका बोझ देश में रहने वाले उपभोक्ताओ पर पड़ता है तब यदि वह चीज़ पहिले आयात होकर फिर निर्यात होकर देश के बाहर जाती है तो उस पर कर की वापसी (Drawback) मिलती है। बन्दरगाहो में जो माल आता

है उस पर जो आयात कर लगता है उसकी वापसी भी उस माल के वहाँ पर न ख़र्च होकर निर्यात होकर बाहर जाने के समय मिलती है। यदि ऐसा न हो तो बाहर से जो माल आयात होकर आता है उसके फ़िर से निर्यात होकर बाहर जाने पर वह बहुत मँहगा पड़ता है। अतः, उसमें व्यापार हो ही नहीं सकता है। इससे आयात-कर की वापसी होना बहुत आवश्यक है।

कुछ सरकारें अपने यहाँ की चीज़ों के निर्यात को बढ़ाने के लिये उन पर कुछ छूट (Bounty) देती हैं। यह वे या तो उनकी कारीगरी को अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बनाने के लिये अथवा उनको विदेशी बाज़ारो में यहाँ की अथवा अन्य देशों की कारीगरी की प्रतियोगिता में ठहरा सकने के लिये करती हैं। कभी-कभी किसी देश में जब कोई नई कारीगरी खुलती है तब बाहरी लोग उसको न पनपने देने के विचार से अपने माल को वहाँ पर इतने कम मूल्य पर बेचते हैं कि वह नई कारीगरी उनकी प्रतियोगिता में न ठहर सकने के कारण बन्द हो जाय। किन्तु ऐसा वह तभी कर सकते हैं जब उनकी सरकार उनकी कुछ सहायता करे और वह यह सहायता उनके निर्यात पर कुछ प्रतिशत छूट देकर करती है। मान लीजिये कि भारतवर्ष की चीनी बर्मा में जाकर १ रु० सेर पड़ती है और बर्मा की चीनी वहाँ पर १४ आने सेर पड़ती है। ऐसी अवस्था में यदि भारत की सरकार यह चाहती है कि बर्मा की यह कारीगरी न पनप सके तो वह यहाँ के चीनी के निर्यात पर २५ प्रतिशत छूट दे सकती है। इससे भारत की चीनी वहाँ पर १२ आ० सेर बिक सकेगी और वहाँ की चीनी की मिलें बन्द हो जायँगी। जब किसी देश की कारीगरी को इस प्रकार बन्द कर दिया जाता है तब उस देश में फिर अपना सामान ऊँचे दर पर बेचा जा सकता है, और उस समय सरकार भी निर्यात-कर लगाकर अपनी पहिले की घटी को पूरा कर सकती है। किन्तु यह नीति बहुत अच्छी नहीं है। जब संसार के लोग इसको समझ जाते हैं वह

इसकी निन्दा करने लगते हैं और इसका प्रतिशोध भी लेते हैं। हाँ, यदि अपने देश के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के विचार से ऐसा किया जाता है तो इसमें कोई अधिक बुराई नहीं है। यह हो सकता है कि कुछ दिनों में अनुभव हो जाने के कारण अथवा उस धन्धे में उत्तरोत्तर वृद्धि के क्रम के सिद्धान्त के लागू हो जाने के कारण उसके उत्पादन का मूल्य स्वयम् ही घट जाय और वह अपने पैरो पर खड़ा हो जाय। ऐसी अवस्था में यह छूट बन्द कर दी जाती है, और यदि सम्भव होता है तो उस धन्धे पर उत्पत्ति-कर लगाकर पहिले की घटी को पूरा कर लिया जाता है। वास्तव में यह छूट किसी पिछड़े हुये देश के धन्धों को प्रोत्साहित करने के लिये बड़ी ही हितकर है और जिस देश में ऐसा माल जाता है उस देश को भी यदि उसके यहाँ इसका धन्धा नहीं होता है तो इससे लाभ ही होता है। हाँ, अन्य देशो को जो उस विदेशी बाज़ार मे इस छूट देने वाले देश के माल की प्रतियोगिता में नही ठहर सकते हैं अवश्य हानि होती है। किन्तु इससे उनको बुरा नहीं मानना चाहिये। यदि कोई देश इस प्रकार से अपने यहाँ के धन्धो को बढ़ा कर उनकी बराबरी करता है तो उनको इसका अवसर देना चाहिये। इसके पहिले वह विदेशी बाज़ारों से लाभ उठाते रहे होंगे, अब यदि कोई और उठाना चाहता है तो उसको उठाने देना चाहिये। हाँ, उसके माल को अपने यहाँ न आने देना चाहिये। वास्तव मे छूट देने वाली सरकार को यह देखना चाहिये कि जिस देश को उसके यहाँ का माल जाता है उस देश की कारीगरी का तो नुक़सान नहीं होता है और साथ ही यह छूट भी इतनी होनी चाहिये कि जितनी आशा की जाती है कि भविष्य में अनुभव होने के कारण अथवा उत्तरोत्तर वृद्धि के क्रम के सिद्धान्त के लागू हो जाने के कारण उत्पादन के मूल्य मे कमी हो जायगी। उससे अधिक छूट देना क्रेताओं को धोखे में डालना है। जो माल किसी देश में कुछ दिनो तक एक मूल्य पर बेचा जाता है उसको बाद में वहाँ पर केवल

बाज़ार के अपने हाथ में आ जाने के कारण अधिक मूल्य पर बेचना मनुष्यता के परे है। अतः, ऐसा नहीं होना चाहिये।

(३) मौलिक (Key) तथा आवश्यक (Essential) धन्धे

जिन चीज़ों के ऊपर अन्य चीज़ों की उत्पत्ति निर्भर है उनके धन्धों को मौलिक धन्धे कहते हैं जैसे लोहे और इस्पात का धन्धा और जो चीज़ें लोगों के जीवन और देश की रक्षा के लिये आवश्यक हैं उनके धन्धों को आवश्यक धन्धे कहते हैं, जैसे खाद्य-सामग्री के धन्धे अथवा लड़ाई के सामान, इत्यादि बनाने के धन्धे। युद्ध के समय में जब ये सामान बाहर से नहीं आ पाते हैं तब देश में इनकी उत्पत्ति न होने से देश के लोगों के भूखों मरने अथवा अरक्षित रहने की आशंका रहती है। अतः, आधुनिक काल में प्रत्येक देश की सरकारें अपने यहाँ के उपरोक्त धन्धों को आयात-कर लगा कर और छूट तथा आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करती हैं। इस युद्ध में भारतवर्ष के लोगों को मशीनों, इत्यादि और दैनिक व्यवहार में आने वाली चीज़ों के अभाव मे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा है। अतः, भविष्य में, जब तक कि भारत में मशीनें आदि बनने न लगें तब तक इन पर आयात कर न लगा कर और जब पर्याप्त मात्रा में मशीनें आदि बनने लगें तो इन पर आयात-कर लगा कर इनके धन्धों को अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

(४) भारतवर्ष और कस्टम्स

जैसे कि पहिले भी बताया जा चुका है सन् १८५७ के पहिले भारतवर्ष में आयात-कर केवल ५ प्रतिशत था। किन्तु इस वर्ष यह १० प्रतिशत कर दिया गया। अतः, विलायत के मिल-मालिकों ने इसके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन मचाया और सारे संसार को मुक्त द्वार नीति के पक्ष मे कर लिया। इसमें उनको यहाँ तक सफलता मिली

कि सन् १८७५ में यहाँ पर यह आयात-कर घटा कर ५ प्रतिशत और सन् १८८२ में बिल्कुल बन्द कर दिया गया। लेकिन विनिमय की गड़बड़ी के कारण भारत सरकार की आर्थिक दशा के फिर ख़राब हो जाने से सन् १८९४ में यह फिर ५ प्रतिशत की दर से लगा दिया गया। इससे फिर विलायत के लोगों में एक बड़ी खलबली मच गई। अतः, वहाँ के कपड़े के व्यापारियों को संतुष्ट करने के लिये पहिले तो भारत में २० काउन्ट के और उससे ऊपर के काउन्ट के सूत की उत्पत्ति पर ५ प्रतिशत कर लगाया गया और जब इससे भी उनको संतोष न हुआ तब एक तरफ़ तो कपडे के आयात पर ३½ प्रतिशत कर कर दिया गया और दूसरी तरफ़ इसके प्रभाव को बिल्कुल मिटाने के लिये कपड़े के उत्पादन पर भी ३½ प्रतिशत उत्पादन-कर लगा दिया गया। इसके बाद भी आयात कर तो बराबर सरकार की आर्थिक अवस्था के अनुसार घटता-बढ़ता रहा किन्तु यह उत्पादन-कर इसी तरह से बना रहा। अन्त में सन् १९२६ में भारतीय व्यवस्थापक सभा की सिफ़ारिश के अनुसार बड़ी मुश्किल से यह बन्द किया गया।

प्रथम महायुद्ध के समय में यहाँ के आयात-करों की फिर से जाँच की गई और सन् १९२४ से वे संरक्षण की नीति के अनुसार रक्खे जाने लगे। वास्तव में भारतीय सरकार को जब-जब अपनी आय बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी है तब-तब उसने कस्टम्स ही का सहारा लिया है। सन् १९४२-४३ में नमक, कच्ची रुई और पेट्रोल को छोड़ कर सभी वस्तुओं पर २० प्रतिशत का अधिक आयात-कर लगाया गया था। जब सन् १९३८-३९ में हमारी सरकार की कस्टम्स से ४० ५१ करोड़ रुपये की आय थी, यही सन् १९४६-४७ के लिये लगभग ६५ करोड़ रुपये के कूती गई थी।

यहाँ पर निर्यात-कर केवल चमड़े और जूट पर लगाया गया है।

(५) कस्टम्स के द्वारा भारतीय धन्धों को सहायता

वास्तव में कस्टम्स के द्वारा भारतीय-धन्धों की सहायता करने का सिद्धांत हमारी सरकार ने सन् १९२४ से ही प्रयोग में लाना आरम्भ किया है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है इस सम्बन्ध में जिस धन्धे ने सबसे पहिले उसका ध्यान आकर्षित किया था वह लोहे और इस्पात का धन्धा है। प्रथम महायुद्ध के समय में ही देश को इसकी पिछड़ी हुई अवस्था से बहुत हानि उठानी पड़ी थी। टाटा की नई फैक्टरी ने उस समय ही यह प्रदर्शित कर दिया था कि यदि उसको सहायता दी जाय तो वह एक बहुत बड़ा काम कर सकती है। अतः, सन् १९२४ में यहाँ पर विदेशों से आने वाले इस्पात और टाटा के बने हुये इस्पात के मूल्य की विषमता को मिटाने के लिये ३० रुपये से ४५ रुपये प्रति टन तक के हिसाब से उसके आयात पर तीन वर्ष के लिये कर लगा दिया। इसके बाद इसकी बराबर जाँच होती रही और सन् १९३३ में इसको सात वर्ष के लिये एक साथ संरक्षण दिया गया। इस महायुद्ध में इसको और भी प्रोत्साहन मिला और इसने अद्वितीय काम कर दिखाया। इस समय टाटा का कारखाना ब्रिटिश साम्राज्य में तो अव्वल दर्जे का और सारे संसार में दोयम दर्जे का है। इतना अवश्य है कि अभी देश में बड़ी-बड़ी मशीनों को नहीं बनाया जा सकता है, किन्तु प्रयत्न करने पर यह भी शीघ्र ही बन सकती हैं। यहाँ पर कुछ तो मशीन बनाने के कारखाने खुल रहे हैं, किन्तु अभी तक न तो उनका काम और न उनकी संख्या ही संतोषजनक है। उनके लिये लोहे और इस्पात, इत्यादि के अलावा बड़े-बड़े इंजीनियरों की भी जरुरत है। सच पूछा जाय तो इस समय इन्हीं की कमी है।

सूती कपड़े के धन्धे को भी हमारी सरकार ने सन् १९२६ से कुछ प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया है और इस समय वह हमारे यहाँ की माँग पूरी कर लेता है। इसके अतिरिक्त कुछ सूती कपड़ा बाहर भी

जाता है। प्रथम महायुद्ध के बाद भारत के सूती कपड़े के धन्धे का जापान से आने वाले सूती कपड़ों की प्रतियोगिता में ठहर सकना बहुत मुश्किल मालूम पड़ने लगा था। अतः, सन् १६२६ से १६३५ तक बराबर उसको इससे बचाने का प्रयत्न होता रहा और इसके लिये जापानी कपड़ों के आयात पर विशेष कर लगता रहा। सन् १६४२ से यहाँ पर कपड़े की कमी के कारण विदेशों को जो कपड़ा जाता है उसके सम्बन्ध में प्रत्येक देश का भाग निश्चित किया जाने लगा है। हमारी मिलों को जिस क़ीमत पर वहाँ कपड़ा भेजना है वह भी एक प्रकार से निर्धारित है। इससे उनको वहाँ पर बहुत अधिक लाभ कमाने की गुञ्जाइश नहीं रह जाती है। यह केवल इसलिये किया गया है कि एक तो उन बाज़ारो में बहुत ज़्यादा लाभ कमाने से हमारी मिलें बदनाम न हो जायँ और दूसरे देश में निर्धारित दामों पर देश के लोगों को भी कपड़ा मिलता रहे। भारतीय मिल वालों को यदि विदेशी बाज़ारों में मनमाना दाम लेने की आज्ञा दे दी जाय तो वहाँ पर अधिक लाभ होने के कारण वह लोग देश में काफ़ी माल न देंगे। किन्तु इधर ऐसा देखा गया है कि कुछ विदेशी बाज़ारों में हमारा कपड़ा बहुत ऊँचे दामों पर बिक रहा है और यहाँ के मिल वालों को क़ीमतों पर नियन्त्रण होने के कारण उसका लाभ नहीं मिल रहा है। अतः, उस लाभ को विदेशियों के हाथ में पड़ने से रोकने के लिये मिल वालो को ऐसे बाज़ारों में उनका जो कपड़ा जाता है उस पर मनमानी क़ीमत लेने की आज्ञा दे दी गई है। किन्तु इससे वह लोग सारा माल उन्हीं बाज़ारों को भेजना चाहते हैं, और वहाँ की क़ीमतों का यहाँ की क़ीमतों से मुक़ाबला करके यहाँ की क़ीमतों को बढ़वाना चाहते हैं। यह काम उनकी स्वार्थपरता का द्योतक है। वास्तव में उनको कुछ बाज़ारों में जो मनमानी क़ीमत लेने का अधिकार दे दिया गया है वही उचित नहीं है। इसके लिये सरकार को उनके उन देशों को निर्यात होने पर निर्यात-कर लगा देना चाहिये

था। इससे सरकार की भी आय बढ़ जाती और लाभ का विदेशियों के हाथ में जाना भी रुक जाता। कस्टम्स का कितना प्रभाव पड़ता है यह इस उदाहरण से आसानी से समझ में आ जाता है।

यहाँ के चीनी के धन्धे को प्रोत्साहन देने के लिये सन् १९३१ में चीनी के आयात पर भी ७ रु० ४ आ० प्रति टन का आयात-कर लगाया गया था। फिर उसी वर्ष यह २५ प्रतिशत और बढ़ा दिया गया था। इससे देश में चीनी का दाम बहुत बढ़ गया, यहाँ तक कि उत्पत्ति के बहुत अधिक बढ़ जाने से क़ीमतें बहुत घट गई थीं। अतः, चीनी पर उत्पत्ति-कर लगा कर और बहुत सी ऐसी ही बातें करके उसकी उत्पत्ति को रोकने का प्रयत्न करना आवश्यक पड़ गया। सन् १९३७ में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार यहाँ से चीनी का निर्यात भी बन्द कर दिया गया था। इधर युद्ध की परिस्थितियों के कारण देश में चीनी का ख़र्च तो बढ़ गया है और उत्पत्ति कम हो गई है। इससे उसकी उत्पत्ति को बढ़ाना आवश्यक हो गया है। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की अवधि समाप्त हो जाने के कारण अब हम लोग चीनी का निर्यात भी कर सकते हैं। भविष्य में हमारे चीनी के धन्धे को एक बहुत ही अच्छे ढङ्ग पर संगठित होने की आवश्यकता है। इस समय मिलों की संख्या बहुत अधिक है और उनमें से कुछ इतनी निकम्मी हैं कि उनकी उत्पत्ति का मूल्य बहुत अधिक है।

काग़ज़ और काग़ज़ बनाने की लुब्दी को सहायता पहुँचाने के विचार से सन् १९२४ में लिखने और छपने के काग़ज़ पर १ आ० प्रति पौंड आयात-कर लगाया गया था। फिर सन् १९३५ में काग़ज़ की लुब्दी के आयात पर ४५ रु० प्रति टन कर लगा दिया गया था। सन् १९३९ से यह ३० रु० प्रति टन कर दिया गया है। इससे बाँस की लुब्दी बनाने के धन्धे को बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

दियासलाई के आयात पर यहाँ पर सन् १६२२ में पहिले-पहिल १ रु० ८ आ० प्रति ग्रुस का जो १०० प्रतिशत होता है कर लगाया गया। कुछ समय तक तो इसका ध्येय आय करना था किन्तु फिर इसने संरक्षण का काम किया। धीरे-धीरे यहाँ पर बहुत से दियासलाई के कारख़ाने खुल गये। अन्त में स्वेदिश कम्पनी ने जो संसार भर की दियासलाई की ७० प्रतिशत माँग को पूरा करती है यहाँ पर अपना कारखाना खोल लिया और धीरे-धीरे बहुत से देशी कारख़ानों को अपने में मिला लिया। इस तरह से इस विदेशी कम्पनी ने जो आयात-कर लग जाने के कारण यहाँ के कारख़ानों की प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकती थी उनकी प्रतियोगिता करने के लिये एक प्रकार से चोर दरवाज़े से आकर अपना आधिपत्य-सा जमा लिया है। सम्भव है कि भविष्य में यह कम्पनी यहाँ की देशी कम्पनियों के लिये हानिकारक प्रमाणित हो। अतः, हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह अब अन्य कारख़ानों को अपने में न मिला सके और साथ ही उनको प्रतियोगिता करके नुकसान भी न पहुँचा सके। वास्तव में आयात-कर से बचने के लिये विदेशियों की अपने कारख़ानों को यहाँ पर खोलने की नीति को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिये।

रसायनों, इत्यादि के धन्धे को प्रोत्साहन देने के लिये इनके आयात पर भी कर लगा दिया गया है और फास्फोरस पर १८ रु० प्रति टन की छूट मिलती है। इसी तरह से अन्य बहुत सी चीज़ों के आयात पर कर लगाकर उनके धन्धों को भी यहाँ पर संरक्षण देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

(६) कस्टम्स के विषय में भविष्य में हमारी नीति

कस्टम्स के विषय में भविष्य में हमारी नीति ऐसी होनी चाहिये जिससे कि हमारे उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन और सहायता मिले। हमारे देश में वह सब वस्तुयें उत्पन्न होने लगें जिनकी हमको शान्ति और युद्ध के समय में आवश्यकता पड़ती है। उपभोग की सभी आव-

श्यक वस्तुयें हमको प्राप्त हो सकें, मादक तथा विलासिता की वस्तुओं का उपभोग कम हो और वह इतनी मँहगी पड़ने लगें कि साधारण लोग उनका व्यवहार न कर सकें। जहाँ तक हमारे उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने का प्रश्न है यह सबसे मुख्य है। हमारे बहुत से आदमी बेकार रहते हैं, अनेकों को पूरा काम नहीं मिलता है और देश की औसत आय तो बहुत ही कम है। वास्तव में हमारी उन्नति की चाहे जो योजना हो उसमें हमारे उद्योग-धन्धों को बढ़ाने की तो बहुत ही आवश्यकता है। हमारे बड़े-बड़े व्यापारियों ने देश के लोगों के रहन-सहन के दर्जे की उन्नति करने के लिये जो अपनी १५ वर्षीय योजना बनाई है उसमें उन्होंने उद्योग-धन्धों से वर्तमान में जो आय है उसको १५ वर्ष के अन्दर-अन्दर ही उसकी पँचगुनी कर देने का निश्चय किया है। यही नहीं बल्कि इस युद्ध में हमारे उद्योग-धन्धों को जो प्रोत्साहन मिला है उसको बनाये रखने की भी हमको एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। ऐसा न हो कि वह विदेशी वस्तुओं के आयात की प्रतियोगिता में न ठहर सकें। हमको इनके लिये न केवल अपने देशी बाज़ार को बल्कि उन समीपवर्ती बाज़ारों को भी सुरक्षित रखना है जिनमें अब हमारा माल जाने लगा है। इसके लिये हमको मशीनों के आयात को और कुछ कच्चे माल के आयात को आयात-करों से मुक्त रखना पड़ेगा। साथ ही हमारे यहाँ रसायनों की उत्पत्ति भी अभी बहुत कम है, अतः, उसके आयात को भी प्रोत्साहित करना है। किन्तु इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये कि हम सदा के लिये इनके आयात के लिये अन्य देशों पर निर्भर न रहें। हमको अपने देश में शीघ्र ही इनकी उत्पत्ति को भी बढ़ाना है। इसके लिये यदि इनके धन्धों को हमें आर्थिक सहायता भी देनी पड़े तो वह भी अवश्य देनी चाहिये।

हमारा कपड़े का धन्धा भी अभी काफ़ी मज़बूत नहीं हो पाया है। हमको उसकी उत्पत्ति बहुत बढ़ानी है। देश में भी कपड़े की माँग है

और विदेशों में भी जहाँ-जहाँ हमारा कपड़ा जाता है वहाँ-वहाँ उसकी माँग है। हम नहीं चाहते कि इनमें से कोई भी बाज़ार हमारे हाथ से निकल जाय। हमारी मिलों की मशीनें बहुत पुरानी हो गई हैं, उन मशीनों को बदलना है, नये कारख़ाने खोलने हैं, मज़दूरों की काम करने की शक्ति को बढ़ाना है और अन्य ऐसे कार्य करने हैं जिनसे हमारे कपड़ों की लागत कम हो जाय। अतः, जब तक ऐसा नहीं होता है तब तक बाहरी कपड़े के आयात पर कर लगा कर उसके मूल्य को हमें इतना बढ़ा देना है कि वह हमारे यहाँ के कपड़ों की लागत से अधिक पड़े। हमारा कुछ सूत भी बाहर जाता है। यदि आवश्यकता हो तो उसको आर्थिक सहायता देकर उस समय तक प्रोत्साहन देना चाहिये जब तक कि उसकी लागत कम न हो जाय। बारीक कपड़े के लिये लम्बे रेशे की रुई चाहिये, अतः, जब तक वह यहाँ पर काफ़ी तादाद में न उत्पन्न हो तब तक उसके आयात पर कोई कर नहीं लगना चाहिये।

हमारा चीनी का धन्धा भी अभी संगठित नहीं है, अतः, उसको हमें संगठित करना है। वैसे तो यहाँ पर अब विदेशी चीनी के आने की सम्भावना नहीं है, किन्तु यदि ऐसा हो तो हमको उस पर कर लगा कर उसे रोकना होगा। इसके अतिरिक्त हमारे कुछ समीपवर्ती देश ऐसे हैं जिनमें हमारी चीनी जा सकती है। अतः, वहाँ पर चीनी जाने के लिये हमें आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़े तो हमारी सरकार को वह भी देनी चाहिये।

हमारे इस्पात और लोहे के धन्धों को और कागज़ के धन्धों को इनके आयात पर कर लगा कर संरक्षण दिया जा रहा है। अतः, जब तक यह काफ़ी मज़बूत न हो जायँ तब तक इनके लिये यह संरक्षण चालू रहना चाहिये। किन्तु चाहे कोई भी धन्धा क्यों न हो उसकी बराबर जाँच होती रहनी चाहिये कि वह उन्नति करके अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बन रहा है अथवा नहीं। कहीं ऐसा न हो कि

यह सदा के लिये संरक्षण पर ही निर्भर रहे और अपने को उन्नत अवस्था में पहुँचाने का प्रयत्न न करे।

अभी तक हमारे मिट्टी के तेल के धन्धों और कोयले के धन्धों को संरक्षण नहीं दिया गया है। इनके आयात पर कर लगा कर हमें इनको भी संरक्षण देना है। फिर हमें अपने व्यावसायिक जहाज़ों के बेडे की, बैङ्कों की, बीमा कम्पनियों की भी उन्नति करना है। अतः, इनको भी संरक्षण मिलने की आवश्यकता है।

हमारे यहाँ से चमड़ा, तेलहन, खली, इत्यादि जो कच्चा माल बाहर जाता है और जो यहीं पर बनाया जा सकता है उसके निर्यात पर कर लगा देना चाहिये। इसी प्रकार से हमारे यहाँ की खाद्य-सामग्री के निर्यात पर भी कर लगा देना चाहिये। जब देश के लोग भूखों मर रहे हैं हम उनको किसी भी मूल्य पर बाहर नहीं जाने देना चाहते।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में इधर बहुत से सम्मेलन बुलाये जा चुके हैं। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका इन सभी में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मुक्त द्वार नीति को मनवाने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा है। बात यह है कि उसके धन्धे इस समय ऐसी अवस्था को पहुँच गये हैं कि उनको अब संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः, उसका स्वार्थ तो संसार के सभी देशों के व्यापार को मुक्त द्वार नीति को अपनाने में है। किन्तु संतोष इस बात का है कि भारतवर्ष के प्रतिनिधियों के ज़ोर देने पर लन्दन के सम्मेलन में यह मान लिया गया है कि जिन देशों की औद्योगिक अवस्था पिछड़ी हुई है और जो बिना संरक्षण के अपना काम नहीं चला सकते हैं उनको संरक्षण लगाने की स्वतन्त्रता दे दी जायगी। हम लोग तो वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की ऐसी किसी योजना को मान ही नहीं सकते हैं जो हमारे उद्योग-धन्धों को संरक्षण देने के और मध्य पूर्वीय देशों में

हमारे जो नये बज़ार उत्पन्न हो गये हैं उनको हमारे लिये खुला रखने के प्रतिकूल हो। किन्तु किसी धन्धे को संरक्षण देते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) या तो वह धन्धा ऐसा है जिसमें उत्पत्ति की वृद्धि के साथ-साथ लागत का मूल्य भी कम हो जान की सम्भावना है अर्थात् उसमें क्रमानुसार उत्तरोत्तर वृद्धि का सिद्धान्त लागू होने की आशा है।

(२) या वह धन्धा ऐसा है जो मौलिक अथवा आवश्यक है। मौलिक धन्धों की उन्नति के बिना अन्य धन्धों की या तो उन्नति हो ही नहीं सकती है अथवा वह विदेशों के ऊपर निर्भर रहेगे। हमारे देश के कपड़े के धन्धे अथवा अन्य धन्धे भी अभी मशीनो के लिये दूसरे देशो पर ही निर्भर हैं। अतः, मशीनों का धन्धा एक मौलिक धन्धा है। इसके अतिरिक्त कोयले का धन्धा, लोहे और इस्पात का धन्धा, रसायनों का धन्धा, इत्यादि भी मौलिक धन्धे हैं। इसी तरह से आवश्यक धन्धों के उदाहरण के लिये हवाई जहाज़ बनाने का धन्धा, बम बनाने का धन्धा तथा लड़ाई के अन्य सामान बनाने के धन्धे और खाद्य सामग्रियों को उत्पन्न करने के धन्धे हैं।

(३) या वह धन्धा ऐसा है कि जिससे उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का आयात केवल इसलिये हो रहा है कि कुछ देश अपने यहाँ उन पर छूट, इत्यादि दे कर उनको एक प्रचुर मात्रा में भेज रहे हैं।

यदि उपरोक्त में से कोई बात नहीं है तो सरक्षण देना व्यर्थ है। भारतवर्ष ऐसा देश है कि जिसमें उसकी आवश्यकता की सभी चीज़ें कुछ समय बाद अवश्य ही उचित लागत पर तैयार हो सकती हैं। यदि वर्तमान में ऐसा नहीं है तो वह केवल इसीलिये नहीं है कि उसने अभी तक इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था।

१६. भुगतान के तरीके

(१) मुद्राओं में भुगतान करने का तरीका (२) बैंकों से भुगतान करना (३) बीमे से रुपया भेजना (४) मनिआर्डर से भुगतान करना (५) पोस्टल आर्डर द्वारा रुपया भेजना (६) स्टाम्पों से भुगतान करना (७) सरकारी खज़ानों के बिलों से रुपया भेजना (८) बैंक ड्राफ्ट से भुगतान करना (९) हुण्डियों से भुगतान करना (१०) विनिमय के बिलों का भुगतान में प्रयोग (११) कैश वारन्ट और टी० टी०, इत्यादि का प्रयोग (१२) भुगतान करने का दायित्व।

भुगतान के बहुत से तरीके हैं, किन्तु प्रत्येक की अपनी-अपनी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं। फिर हर तरीका हर समय और परिस्थिति के लिये उपयुक्त भी नहीं है। हम जानते हैं कि किसी देश की मुद्रा केवल उसी देश में ही चलती है दूसरे देशों में नहीं चलती है। अतः, यदि एक देश को दूसरे देश में भुगतान देना है तो वह अपने यहाँ की मुद्रायें उसको नहीं भेज सकता है। पुराने समय में जब प्रामाणिक मुद्रायें होती थीं ऐसा हो भी सकता था किन्तु आजकल तो जब मुद्रायें प्रामाणिक नहीं है, अर्थात्, उनका आन्तरिक मूल्य या तो नहीं के बराबर है जैसे नोटों मे या उनके ऊपरी मूल्य से कम है जैसे भारतीय रुपयों में तब तो ऐसा हो ही नहीं सकता है। प्रामाणिक मुद्राओं का भी एक देश से दूसरे देश में भेजना आर्थिक दृष्टि से बड़ा ही हानिकारक है। एक तो उनकी ढुलाई का और बीमे का खर्च पड़ता है, दूसरे जिस देश में वह मुद्रायें जाती हैं उनमें उनको गला कर फिर से ढलाई करने का खर्च पड़ता है। अतः, अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में तो मुद्राओं के द्वारा भुगतान का तरीका क्रियात्मक हो ही नहीं सकता है। रह गया देशान्तर्गत भुगतान में सो उसमें भी मुद्राओं में भुगतान करने

में बहुत दिक्कतें पड़ती हैं। एक तो उनको एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने में दिक्कत और जोखिम, दूसरे उनके गिनने में गलती कर जाने का डर और तीसरे भुगतान के प्रमाण की आवश्यकता—यह सब दिक्कतें ही तो हैं। अतः, जहाँ तक सम्भव होता है देशान्तर्गत भुगतान में भी ऐसा नहीं किया जाता है। किन्तु कुछ देश ऐसे हैं जिनमें अब भी मुद्राओं का बहुत चलन है। अतः, उनमें भुगतान अधिकांश में, विशेषकर खुदरा भुगतान, मुद्राओं ही में होता है। यह उनके बैंकिंग की पिछड़ी हुई अवस्था का द्योतक है। भुगतान के जो अन्य तरीके हैं वह भी विशेष-विशेष परिस्थितियों के लिये उपयुक्त हैं। अतः, हमें भुगतान के सब तरीकों का यहाँ पर एक विस्तृत अध्ययन करना है।

(१) मुद्राओं में भुगतान करने का तरीका

प्रारम्भ में भुगतान मुद्राओं ही में किया जाता था। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के लिये यदि मुद्रायें नहीं भेजी जाती थी तो उनके स्थान पर सोना-चाँदी भेज दिया जाता था। उस समय मुद्राओं की ढलाई पर प्रायः कोई प्रतिबन्ध नहीं था। चाहे जो व्यक्ति एक निश्चित परिमाण का सोना अथवा चाँदी देकर टकसालों से सिक्के बनवा सकता था। भारतवर्ष में यहाँ के अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के सम्बन्ध में गत शताब्दि तक बराबर सोना और चाँदी आता था और उनके सिक्के बनते थे। सन् १८७२ और १८९३ के बीच में इस देश में बहुत-सी चाँदी आई और उसके सिक्के बने। अतः, उस समय की गिरती हुई कीमत की चाँदी के मुद्रा प्रसार को रोकने के लिये सन् १८९३ में टकसालों में सर्वसाधारण की माँग पर सिक्के बनाने पर पहिले-पहिल प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिससे सोने-चाँदी का आना तो बन्द हो गया किन्तु अंग्रेज़ी सावरन तब भी आती रही। यहाँ पर यह अंग्रेज़ी सावरन उसी तरह से चालू थी जिस तरह से वह ब्रिटेन में थी। अतः, प्रथम महायुद्ध के पहिले तक कुछ न कुछ अंशों में यह आती

रही। उसके बाद इसका बनना इंगलैण्ड ही में बन्द हो गया, जिससे भारतवर्ष में इसके आने का प्रश्न ही नहीं रहा। सन् १८६३ से लेकर प्रथम महायुद्ध के पहिले तक भी जितनी सावरन यहाँ आनी चाहियें थीं वह नहीं आईं। इसका एक-मात्र कारण यह था कि इंगलैण्ड में जिन लोगों को यहाँ का भुगतान करना रहता था उनसे भारत-मन्त्री स्वयम् भुगतान लेकर उनको भारत सरकार के ऊपर की हुण्डियाँ दे देता था। पहिले तो वह ऐसी हुण्डियाँ केवल उतनी रक़म तक की ही निकालता था जितनी की उसको भारत सरकार के हिसाब मे वहाँ खर्च करने की आवश्यकता पड़ती थी, किन्तु बाद में वह इनको माँग के अनुसार बराबर देने लगा था। अतः, इससे सावरनें यहाँ न आकर वहीं पर इकट्ठी होती रहती थी, और उनके स्थान पर यहाँ पर नोट, इत्यादि बना कर भुगतान कर दिया जाता था। धीरे-धीरे इगलैण्ड में इन सावरनों को पूरी मात्रा में न रख कर इनमें से कुछ के लिये वहाँ की सरकार के प्रण-पत्र रक्खे जाने लगे। भारतवर्ष से पहिले तो जब अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान की आवश्यकता पड़ती थी, यद्यपि ऐसा बहुत कम होता था बराबर सोना जाता था, किन्तु सन् १९०७ से उसके स्थान पर यहाँ की सरकार भारत-मंत्री के नाम हुण्डियाँ कर दिया करती थी और उनका इंगलैण्ड में जो कोष जमा रहता था उससे भुगतान कर दिया जाता था। इससे भारतवर्ष से अन्य देशो को और अन्य देशों से भारतवर्ष को भुगतान के सम्बन्ध मे सोने, चाँदी, अथवा सिक्को का जाना-आना बिल्कुल बन्द हो गया था। किन्तु संसार के अन्य देशों के बीच मे यह सन् १९३१ तक कुछ कम अथवा अधिक चलता रहा। लेकिन इस सन् से यह प्रायः बन्द-सा हो गया। अब, तो जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक देश अपने भुगतान के लिये दूसरे देशों से समझौता करके कुछ समय ले लेता है और फिर उसको अपना माल अधिक बेच कर चुकता कर देता है। जो देश ऐसा नहीं कर पाते हैं अर्थात् लेनदार जिनके माल नहीं

लेते हैं वे अपना भुगतान भी नहीं देते हैं और एक प्रकार से दिवालिया बन जाते हैं। हाँ, जब एक देश किसी दूसरे देश को बिना सोना लिये सामान देता ही नहीं है और वह सामान आवश्यक होता है तब अवश्य सोना देना ही पड़ता है। इस महायुद्ध में जब तक अंग्रेजों, इत्यादि के पास सोना रहा अमेरिका उनको केवल सोना लेकर ही माल देता रहा। किन्तु जब उनके पास सोना नहीं रहा तब लाचारी उसे उन्हें उधार सामान देना पड़ा। अतः, इस समय हम यह कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के सम्बन्ध में अब सोने, चाँदी, अथवा मुद्रा का बिल्कुल प्रयोग नहीं होता है। किन्तु जहाँ तक देशान्तर्गत भुगतान का सम्बन्ध है उसके लिये ऐसा नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक देश में आज भी कोई न कोई मुद्रा है। अधिकतर तो बड़े-बड़े भुगतानों के लिये यह मुद्रा कागजी है और छोटे-छोटे भुगतानों के लिये यह धातु की है। हमारे देश में यदि हमको बहुत बड़े भुगतान करने हैं तो हम नोटों को प्रयोग में लाते हैं और यदि छोटे भुगतान करने हैं तो धातु की मुद्रायें काम मे लाई जाती हैं। किन्तु जहाँ तक सम्भव है इस प्रकार का भुगतान कम किया जाता है। इङ्गलैण्ड, इत्यादि देशों में तो अधिकांश भुगतान में मुद्राओं का प्रयोग न होकर चेकों का प्रयोग होता है। भारतवर्ष में भी भविष्य में धीरे-धीरे ऐसा ही होने की सम्भावना है। हम जानते हैं कि हाल ही में चेकों का प्रयोग कितना बढ़ गया है।

(२) चेकों से भुगतान करना

देशान्तर्गत भुगतान के सम्बन्ध में अब चेकों का प्रयोग बहुत बढ़ रहा है। वास्तव में यह बड़ा लाभप्रद है। चेक से भुगतान करने में एक तो रुपयों को अपने पास रखने की झंझट और जोखिम दूर हो जाती है, दूसरे गलती से अधिक भुगतान कर जाने का डर नहीं रहता है, तीसरे दूर के भुगतान में मुद्राओं को भेजने की दिक्कतों और जोखिम से बचत होती है, और चौथे तथा सर्वोपरि यह कि इसमें बैङ्क

भुगतान की साक्षी का काम करता है। इससे भुगतान पाने वाले को भी सुविधा रहती है। उसको मुद्राओं को गिनने और उनको रखने की झंझट तथा जोखिम से छुट्टी मिल जाती है। वह चेकों को बैङ्क में जमा करने के लिये भेज देता है, और जब आवश्यकता पड़ती है उनके स्थान पर नये चेकों को काट कर भुगतान कर देता है।

चेक लिफ़ाफ़ों में रख कर डेढ़ आने के ख़र्च में एक शहर से दूसरे शहर को भी बड़ी आसानी से भेजे जा सकते हैं। यदि इनके दूसरों के हाथ में पड़ जाने का डर है तो इनको जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे क्रास करके अर्थात् इन पर दो समानान्तर रेखायें खींच कर काफ़ी सुरक्षित भी बनाया जा सकता है। किन्तु बाहरी भुगतान के लिये यह बहुत उपयुक्त नहीं है। इसका एकमात्र कारण यह है कि जब अपने शहर पर की चेक का रुपया वसूल करने के लिये बैङ्क कोई ख़र्च नहीं लेते हैं अन्य शहरों की चेकों का रुपया वसूल करने के लिये वे कुछ ख़र्च लेते हैं। मान लीजिये राम और श्याम दोनों इलाहाबाद ही के रहने वाले हैं और राम को श्याम का १०० रु० देना है। अब, क्योंकि राम इलाहाबाद में रहता है, अतः, उसका हिसाब भी इलाहाबाद ही के किसी बैङ्क में होगा। इससे श्याम को वह जो चेक देगा वह इलाहाबाद के ही किसी बैङ्क पर होगी। और क्योंकि श्याम भी इलाहाबाद का ही रहने वाला है इससे उसका हिसाब भी इलाहाबाद के ही किसी बैङ्क में होगा। अस्तु श्याम अपने इलाहाबाद के बैङ्क को ही राम की इस चेक का रुपया वसूल करके उसके हिसाब में जमा करने के लिये देगा। ऐसी अवस्था में वह बैङ्क इसका रुपया अपने ही शहर में पा जाने की वजह से इसकी वसूल कराई के लिये श्याम से कुछ न लेगा। किन्तु यदि राम इलाहाबाद में है और श्याम दिल्ली में है तो श्याम को इलाहाबाद के किसी बैङ्क के ऊपर की चेक मिलेगी और वह उसको दिल्ली के अपने किसी बैङ्क को वसूल करने के लिये देगा जो ऐसा करने के

लिये उससे कुछ कमीशन लेगा। वैसे तो यह ख़र्च प्रायः उतना नहीं पड़ता है जितना मुद्राओं को भेजने में पड़ता है, किन्तु एक तो यह पाने वाले के ऊपर पड़ता है और दूसरे इसके अतिरिक्त भुगतान के अन्य कई तरीके ऐसे हैं जिनमें यह भेजने वाले के ऊपर पड़ने के साथ-साथ कुछ कम भी पड़ता है, अतः, अधिकतर भुगतान के वही तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं। साथ ही बाहर की चेक की वसूली में काफ़ी समय भी लगता है।

अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के सम्बन्ध में चेकें नहीं चलतीं। यदि भारतवर्ष का एक व्यापारी लन्दन के दूसरे व्यापारी को भारतवर्ष की एक चेक भेजे तो उसको इसके वसूल करने में बड़ा समय लगेगा। साथ ही यह चेक भारतीय मुद्रा में होगी, और भुगतान लन्दन की मुद्रा में होना चाहिये। अतः, अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के सम्बन्ध में यह प्रयोग में नहीं आती है।

(३) बीमे से रुपया भेजना

देशान्तर्गत भुगतान के लिये बीमे से भी रुपया भेजा जा सकता है। इसके लिये नोटों का एक डाक पारसल बना कर उसकी पोस्ट आफ़िस से रजिस्ट्री और बीमा करवा ली जाती है। रजिस्ट्री ख़र्च २ आना पड़ता है और बीमा ख़र्च बीमे की रक़म के ऊपर निर्भर रहता है। वास्तव में भुगतान का यह तरीक़ा केवल उसी समय प्रयोग में अधिक लाया जाता है जब रुपया किसी ऐसे स्थान को भेजना है जहाँ बैङ्क इत्यादि नहीं हैं। इस तरह से ख़र्च भी काफ़ी पड़ता है। फिर डाक विभाग एक परिमित रक़म तक के बीमे का ही पारसल लेता है। अतः, यह बहुत अधिक प्रयोग में नहीं आ सकता है। भुगतान का यह तरीक़ा भी पुराने ढङ्ग का है।

(४) मनीआर्डर से भुगतान करना

प्रत्येक डाकख़ाने से एक मनीआर्डर फ़ार्म मिलता है जिसको भर

कर देश के एक स्थान से दूसरे स्थान को ६०० रुपये तक किसी समय भी भेजे जा सकते हैं किन्तु इसमें भी १ रु० ४ आ० प्रति सैंकड़े के हिसाब से ख़र्च पड़ता है। अतः, यह बहुत अधिक है। मनीआर्डर से रुपया भेजने के लिये रुपया और मनीआर्डर फ़ार्म डाक घर में जमा कर दिये जाते हैं, और फिर वहाँ से यह मनीआर्डर फ़ार्म जिस शहर में रुपया जाता है उसके डाक घर को भेज दिये जाते हैं और वहाँ से डाकिये रुपया लेकर रुपया पाने वाले के यहाँ जा कर दे आते हैं। इससे रुपया मिलने में बड़ी सुविधा होती है। हमारे देश के हर कोने-कोने में ऐसे मनिआर्डर भेजे जा सकते हैं। देश के बाहर भी जहाँ पर पौंड, शिलिंग, पेंस चलते हैं ४० पौंड तक के स्टार्लिङ्ग मनिआर्डर भेजे जा सकते हैं। ये मनिआर्डर तार से भी भेजे जाते हैं। इसके लिये तार का ख़र्च और अधिक पड़ता है।

(५) पोस्टल आर्डर द्वारा रुपया भेजना

डाकख़ानों से ब्रिटिश और इण्डिन पोस्टल आर्डर के द्वारा भी रुपया भेजा जा सकता है। ब्रिटिश पोस्टल आर्डर के द्वारा तो हम ब्रिटेन में कहीं भी ६ पेंस से लेकर २१ शि० तक की कोई भी ऐसी रकम भेज सकते हैं जो ६ पेंस से पूरी-पूरी विभाजित हो जाती है, और इण्डियन पोस्टल आर्डर के द्वारा भारतवर्ष में कहीं भी ८ आ०, १ रु०, २ रु०, ५ रु०, और १० रु० एक साथ भेजा जा सकता है। इसके लिये जितना हमें भेजना है उतने का एक पोस्टल आर्डर हम किसी भी पोस्टल आर्डर बेचने वाले डाकख़ाने से ले लेंगे और उसमें जिसको रुपया भेजना है उसका नाम और जहाँ वह रहता है वहाँ के डाकख़ाने का नाम लिखकर उसको एक लिफ़ाफ़े में रखकर उसी तरह से भेज देंगे जिस तरह से चेक भेजे जाते हैं। पोस्टल आर्डरों पर चेकों की तरह क्रासिंग भी की जा सकती है। प्रत्येक पोस्टल आर्डर को प्राप्त करने के लिये उसकी रकम और १ आना कमीशन देना

पड़ता है। जितने का पोस्टल आर्डर मिलता है उससे यदि थोड़ा बहुत अधिक भेजना है तो उतने का एक स्टाम्प लेकर उस पर चिपका दिया जाता है। मान लीजिये कि हमको १० आना भेजना है तो हम ८ आने का पोस्टल आर्डर लेकर उस पर २ आने का स्टाम्प लगा देंगे। पोस्टल आर्डर पाने वाला पोस्टल आर्डर की रकम उस पर लिखे हुये पोस्ट आफ़िस से वसूल कर लेता है।

(६) स्टाम्पों से भुगतान करना

बहुत छोटी रक़मों को भेजने के लिये डाकख़ाने के टिकट ख़रीद कर भेजे जा सकते हैं, किन्तु यह ढङ्ग भी बहुत अच्छा नहीं है। यदि लिफ़ाफ़े की रजिस्ट्री नहीं कराई जाती तो उसके अन्दर के टिकटों के निकल जाने का डर रहता है, और यदि रजिस्ट्री कराई जाती है तो व्यय अधिक पड़ता है। अतः, इस तरीके की अपेक्षा पोस्टल आर्डर द्वारा रुपया भेजने का तरीका अधिक अच्छा है। हाँ, यदि ८ आने से कम की रक़म भेजनी है तो वह टिकटो में भेजी जा सकती है। यह रकम इतनी कम है कि इसके खो जाने से भी कोई अधिक नुकसान नहीं होता है।

(७) सरकारी खजानों के बिलों से रुपया भेजना

भारतवर्ष की प्रत्येक तहसील में और ऐसे शहरों में जहाँ रिज़र्व बैङ्क अथवा इम्पीरियल बैङ्क की कोई शाख नहीं है एक सरकारी ख़ज़ाना अवश्य है। अतः, यदि किसी को इन स्थानों से किसी दूसरे स्थान को रुपया भेजना है तो वह इनमें रुपया देकर एक बिल प्राप्त कर सकता है। अब इसको जिसके पास रुपया भेजना है उसके पास भेज देने से वह अपने शहर के सरकारी ख़ज़ाने से अथवा रिज़र्व बैङ्क अथवा इम्पीरियल बैङ्क से इसका भुगतान प्राप्त कर लेता है। इन बिलों के लिये ये सरकारी ख़ज़ाने केवल नाम मात्र का ही कमीशन लेते हैं।

(८) बैङ्क ड्राफ़्ट से भुगतान करना

आधुनिक काल में देशांतर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के भुगतानों के लिये बैङ्क ड्राफ्ट का प्रयोग सबसे अधिक होता है। इसके लिये भुगतान भेजने वाला धनी किसी बैङ्क में भुगतान का रुपया जमा करके उससे भुगतान पाने वाले धनी के नाम में एक बैङ्क ड्राफ्ट ले लेता है। यह बैङ्क ड्राफ्ट देशांतर्गत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय दो में से कोई भी हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय बैङ्क ड्राफ्ट उस देश की मुद्रा में होता है जिसमें भुगतान देना होता है। अतः, उसकी एवज में भुगतान भेजने वाले धनी को अपने यहाँ की उतनी मुद्रायें देनी पड़ती हैं जितने की क़ीमत उस समय की विनिमय की दर से विदेशी मुद्राओं के बराबर होती है। भुगतान भेजने वाला धनी बैङ्क ड्राफ्ट को भुगतान पाने वाले धनी के पास भेज देता है और वह उसकी रकम अपने यहाँ के उस बैङ्क से ले लेता है जिसके ऊपर का वह होता है। वास्तव में बैङ्क ड्राफ्ट एक बैङ्क की उसके दूसरे दफ़्तर के अथवा किसी अन्य बैङ्क के ऊपर की हुण्डी होती है। भारतवर्ष में जब तक आधुनिक ढङ्ग के बैंक नहीं खुले थे यही काम यहाँ के महाजन अपनी हुण्डियों के द्वारा करते थे। वैसे तो जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे महाजन लोग अब भी इस काम के लिये अपनी हुण्डियाँ काम में लाते हैं; किन्तु जैसे-जैसे आधुनिक ढङ्ग के बैङ्कों का काम यहाँ पर बढ़ता जाता है महाजनों की इन हुण्डियों का प्रयोग कम होता जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी बैङ्क से ऐसे स्थान का बैङ्क ड्राफ्ट माँगता है जहाँ उसका स्वयम् का दफ़्तर होता है तब तो वह बैङ्क अपने ही दफ़्तर के ऊपर यह बैङ्क ड्राफ्ट कर देता है। किन्तु यदि यह किसी ऐसे स्थान का माँगा जाता है जहाँ उसका स्वयम् का कोई दफ़्तर नहीं होता है तब वह उसको किसी ऐसे अन्य बैङ्क के ऊपर करता है जिससे उसका सम्बन्ध होता है। प्रत्येक अच्छे बैङ्क का कुछ ऐसे बैङ्कों से अवश्य

सम्बन्ध होता है जिनकी शाखायें ऐसे स्थानों में होती हैं जिनमें उसके स्वयम् के दफ्तर नहीं होते हैं। रुपया भेजने वाले को ड्राफ्ट का रुपया जमा करते समय उसका कमीशन भी देना पड़ता है। यह कमीशन भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न लगता है। यदि किसी स्थान में बहुत से बैङ्क होते हैं और उनमें पारस्परिक प्रतिद्वन्दता होती है तो यह प्रायः एक आना प्रति सैकड़ा तक हो जाता है। विदेशी ड्राफ्ट का कमीशन देशी ड्राफ्ट से कुछ अधिक होता है। ड्राफ्ट मामूली लिफ़ाफ़ों में १½ आने का स्टाम्प लगा कर भेज दिये जाते हैं। जो बैङ्क ड्राफ्ट करता है वह भी जिस बैङ्क के ऊपर ड्राफ्ट किये जाते हैं उसको ड्राफ्ट करने की सूचना दे देता है। बैङ्क ड्राफ्ट को पाने वाला धनी उसका रुपया उसके ऊपर वाले बैङ्क से प्राप्त कर लेता है। यदि वह चाहता है तो स्वयम् रुपया ले आता है अथवा उसको अपने बैङ्क में भिजवा देता है और बैङ्क उसका रुपया वसूल कर लेता है। किसी दूसरे शहर के पाने वाले धनी को ड्राफ्ट के रुपया पाने में ज़रा-सी भी दिक्कत नहीं पड़ती है। जैसे ही उसको ड्राफ्ट मिलता है वैसे ही ऊपर वाले बैङ्क को उस ड्राफ्ट के भुगतान कर देने का आदेश भी मिल जाता है। किन्तु चेक में ऐसी बात नहीं है। चेक पाने वाले धनी को उसको उसी शहर में भिजवाना पड़ता है जहाँ से वह आई थी। अतः, उसका रुपया मिलने में देर लगती है। इसके अतिरिक्त जब कि ड्राफ्ट का कमीशन भुगतान भेजने वाला स्वयम् दे देता है चेक का कमीशन भुगतान पाने वाले धनी को देना पड़ता है। अन्तिम बात यह है कि जब कि चेक की वसूल कराई का व्यय अधिक पड़ता है बैङ्क ड्राफ्ट का कमीशन उसकी अपेक्षा बहुत कम पड़ता है। अतः, बाहरी भुगतानों के सम्बन्ध में चेक की अपेक्षा बैङ्क ड्राफ्ट अधिक प्रयोग में आते हैं।

(९) हुण्डियों से भुगतान करना

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है आधुनिक ढङ्ग के बैङ्कों के खुलने के पहिले भारतवर्ष में एक शहर से दूसरे शहर का भुगतान

अधिकतर हुण्डियों से होता था। किन्तु अब ऐसा बहुत कम होता है। तो भी बड़े-बड़े शहरों में आजकल भी कुछ ऐसे महाजन मिल जाते हैं जिनके पास रुपया जमा करके दूसरों के ऊपर की हुण्डियाँ प्राप्त हो सकती हैं। कभी-कभी एक व्यापारी दूसरे व्यापारी के ऊपर अपने माल की कीमत की वसूली के लिये भी हुण्डी करके दूसरों के हाथों बेच देता है। मान लीजिये कि इलाहाबाद के रामलाल ने कलकत्ते के श्यामलाल के पास १००० रुपये का माल भेजा है। अब रामलाल इस रुपये की वसूली के लिये श्यामलाल पर हुण्डी कर सकता है। साथ ही यदि इलाहाबाद के हरीराम को कलकत्ते के मनोहरदास को १००० रुपया भेजना है तो इलाहाबाद का हरीराम अपने यहाँ के रामलाल को रुपया देकर उसकी श्यामलाल के ऊपर की हुण्डी लेकर कलकत्ते के मनोहरदास के पास भेज सकता है और कलकत्ते का मनोहरदास उसको वहीं के श्यामलाल को दिखा कर उसका रुपया वसूल कर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि रामलाल श्यामलाल के ऊपर १००० रुपये की एक साथ एक हुण्डी न करके छोटी-छोटी रकमों की कई हुण्डियाँ कर ले। मान लीजिये कि हरीराम को मनोहरदास के पास केवल ५०० रु० भेजने हैं। ऐसी अवस्था में वह रामलाल से केवल ५०० रुपये की ही हुण्डी ले सकता है। अब जो रामलाल को ५०० रुपये लेने शेष रहे उसके लिये वह दूसरे लोगों को ५०० रुपये तक की हुण्डियाँ दे सकता है। अधिकतर तो कुछ महाजन ऐसे हैं जो हुण्डियों के काम को विशेष तौर पर करते हैं। वे माल बेचने वालों को हुण्डियाँ ले लेते हैं और उनको अपनी शाखाओं तथा अन्य महाजनों की शाखाओं में भेज कर वसूल करा लेते हैं। इस तरह से उनके पास स्थान-स्थान पर रुपया रहता है और उसीके ज़ोर पर वे भुगतान भेजने वालों को उन स्थानों की अपनी हुण्डियाँ दे देते हैं। हुण्डियाँ बट्टे पर बेची और ख़रीदी जाती हैं जो हुण्डियों के काम करने वालों का मुनाफ़ा होता है।

(१०) विनिमय के बिलों का भुगतान में प्रयोग

जिस तरह से भारतवर्ष में हुण्डियाँ प्रयोग में आती हैं उसी तरह से संसार के सभी देशों में विनिमय के बिलों (Bills of Exchange) का प्रयोग होता है। विनिमय के बिल वास्तव में हुण्डियों ही की तरह के होते हैं, किन्तु जब कि हुण्डियों का चलन दिनों-दिन कम होता जाता है इनका चलन दिनों-दिन बढ़ता जाता है। इसके कई कारण हैं :—(१) प्रथम तो भारतवर्ष की भाषायें जिनमें हुण्डियाँ लिखी जाती हैं, केवल भारतवर्ष में ही प्रचलित हैं, और अंग्रेज़ी भाषा जिनमें विनिमय के बिल लिखे जाते हैं संसार भर में प्रचलित हैं; (२) दूसरे हुण्डियों की शाब्दिक रचना बिलों की शाब्दिक रचना की अपेक्षा बहुत कठिन है; (३) तीसरे हुण्डियों की लिखावट और उनके नियमों में सब जगह एक-सा चलन नहीं है और बिलों में ऐसा है, (४) चौथे और सर्वोपरि भारतीयों का हाथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे बिल्कुल है ही नहीं और अंग्रेज़ तो इसमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं। जैसा कि हम पहिले भी कई जगह देख चुके हैं अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के सम्बन्ध में तो इन बिलो का खूब ही प्रचार है। जब कभी कोई व्यापारी अपना माल भेजता है तब वह माल ख़रीदने वाले के ऊपर अथवा अन्य किसी ऐसे बैङ्क अथवा बिलों के काम करने वाले व्यापारी के ऊपर जिससे माल ख़रीदने वाला इस बात को तै कर लेता है अपना बिल करता हैं, और फिर उसको बाज़ार में बेच लेता है। बाज़ार में ऐसे बिलों को या तो वे लोग जिनको विदेशों में भुगतान करना होता है अथवा विनिमय के बैङ्क ख़रीद लेते हैं। विनिमय के बैङ्क इन्हीं के सहारे अपने बैङ्क ड्राफ्ट निकालते हैं। देशांतर्गत भुगतान के सम्बन्ध में भी अन्य देशों में इन बिलों का खूब प्रचार है। यहाँ तक कि भारतवर्ष में भी ये हुण्डियों का स्थान ले रहे हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो हुण्डियाँ बिलों से अधिक सुरक्षित और काम करने वाली हैं,

किन्तु बिलों के आगे वे इस कारण नहीं ठहर पाती हैं कि एक तो हमारे यहाँ का बैंकिङ्ग का काम ऐसे लोगों के हाथ में चला जा रहा है जो अंग्रेज़ी भाषा का और अंग्रेज़ी पत्रों का प्रयोग करते हैं और दूसरे हुण्डियों में जो कमी है उनको भारतीय व्यापारी समय की प्रगति के अनुसार दूर करने के लिये राजी नहीं होते हैं।

(११) कैश-वारन्ट और टी० टी०, इत्यादि का प्रयोग

कभी-कभी बैङ्क अपने ड्राफ़्टों को न चालू करके कैश-वारन्ट, मेल ट्रांसफ़र और टेलीग्राफ़िक ट्रांसफ़र प्रभृति चीज़े चालू करते हैं। कैश-वारन्ट और मेल, ट्रांसफ़र बैङ्क ड्राफ़्ट को तरह भुगतान भेजने वाले धनी को नहीं दिये जाते बल्कि वह सीधे उस बैङ्क के पास भेज दिये जाते हैं जिसको उनका भुगतान करने का आदेश दिया जाता है। वह बैङ्क उनको पाकर भुगतान लेने वाले धनी को भुगतान ले जाने के लिये अपने यहाँ बुलवा कर भुगतान कर देता है। किन्तु इनमें यह डर रहता है कि शायद यह भुगतान करने वाले बैङ्क के पास न पहुँचें अथवा देर में पहुँचे तो भुगतान न हो अथवा देर में हो। अतः, इनके स्थान पर टी० टी० का भी प्रयोग होता है। टी० टी० का पूरा रूप टेलिग्राफ़िक ट्रांसफ़र है और इसके अर्थ तार से भुगतान करना है। टी० टी० में बैङ्क अपने दूसरे दफ़्तर को अथवा किसी अपने से सम्बन्धित दूसरे बैङ्क को भुगतान करने का आदेश तार द्वारा देता है। टी० टी० देशांतर्गत और अन्तर्राष्ट्रीय कोई भी हो सकता है। इसके लिये तार का अतिरिक्त ख़र्च पड़ता है।

(१२) भुगतान करने का दायित्व

अधिकतर तो भुगतान करने का दायित्व भुगतान करने वाले के ही ऊपर रहता है। अतः, बाहर के भुगतान में जो व्यय पड़ता है वह उसीको भुगतना चाहिये। इससे भुगतान करने के जो तरीक़े हैं उनमें प्रायः सभी में भुगतान का व्यय भुगतान करने वाले से ही

ले लिया जाता है। किन्तु जैसा कि हम पहिले देख चुके हैं यदि बाहर का भुगतान चेक से किया जाता है तो उसकी वसूल कराई का व्यय भुगतान पाने वाले के ही ऊपर पड़ता है। वास्तव में यह भुगतान के सिद्धान्त के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त भुगतान करने वाले को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि भुगतान पाने वाले को भुगतान पाने में कोई कठिनाई न पड़े। चेक से बाहर का भुगतान करने में भुगतान पाने वाले को उस समय तक भुगतान के लिये ठहरना पड़ता है जब तक कि भुगतान वसूल करने वाला उसका भुगतान जिस बैङ्क के ऊपर वह की गई है उससे नहीं प्राप्त कर लेता है! अतः, बाहर का भुगतान करने में जहाँ तक हो चेकों का प्रयोग कम करना चाहिये। हाँ, अपने ही शहर में भुगतान करने में चेकों का खूब प्रयोग होना चाहिये। ऐसा करने से मुद्राओं के द्वारा भुगतान करने में जो दिक्कतें होती हैं वह तो दूर हो ही जाती हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त देश के लोगों में बैंकिङ्ग की आदत भी फैलती है।

भुगतान करने वाला भुगतान पाने वाले धनी के पास जिस चीज़ को भेजता है जब तक वह उसके पास नहीं पहुँच जाती है और उसका भुगतान उसे नहीं मिल जाता है तब तक वह उसका ज़िम्मेदार रहता है। मान लीजिये कि राम ने श्याम के पास एक चेक, अथवा ड्राफ़्ट अथवा हुण्डी भेजी है और वह रास्ते में खो जाती है तथा उसका दाम अन्य कोई प्राप्त कर लेता है तब राम ही के ऊपर उसका उत्तरदायित्व रहता है। ऐसा भुगतान वाजिब भुगतान नहीं माना जायगा। किन्तु यदि राम ने श्याम के आदेश के अनुसार चेक, ड्राफ़्ट अथवा हुण्डी भेजी है तब अवश्य राम की ज़िम्मेदारी नहीं रह जाती है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि यदि यह चेक, ड्राफ़्ट अथवा हुण्डी खो गई है तो किन्तु उसका दाम किसी ने नहीं लिया है तो राम को उस चेक, ड्राफ़्ट अथवा हुण्डी की जैसी हो दूसरी नक़ल श्याम के पास भेजनी पड़ेगी।

१७. हुण्डी पुर्जे

(१) अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जे (२) चेक (३) विनिमय के बिल (४) प्रण-पत्र (५) हुण्डियाँ (६) अन्य पुर्जे (७) भारतवर्ष में चेकों और बिलों को अधिक प्रचलित करने के लिये कुछ विशेष उपाय।

इस अध्याय में हमको चेक, विनिमय के बिल, प्रण-पत्र, 'हुण्डी तथा अन्य ऐसे ही पुर्ज़ों का अध्ययन करना है। अब, इनमें से प्रथम तीन अर्थात् चेक, विनिमय के बिल और प्रण-पत्र तो अच्छा अधिकार देने वाले (Negotiable Instruments) हैं और अन्य ऐसे नहीं हैं।

(१) विनिमय साध्य साख-पत्र या अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जे (Negotiable Instruments)

अच्छा अधिकार देने वाले पुर्जों (Negotiable Instruments) और हस्तान्तरित होने वाले पुर्ज़ों (Transferable Instruments) में एक विशेष अन्तर है। वास्तव में प्रत्येक अच्छा अधिकार देने वाला पुर्ज़ा हस्तान्तरित होने वाला पुर्ज़ा तो होता ही है, किन्तु उसमें एक अन्य विशेषता भी होती है और वह यह है कि यदि पाने वाला धनी उसको उसका पूरा मूल्य देकर (in full consideration), अच्छे विचार से (in good faith) और समझ-बूझ कर (without negligence) प्राप्त करता है तो चाहे देने वाले का उस पर कैसा भी अधिकार क्यों न हो पाने वाले का उस पर अच्छा ही अधिकार (Good title) होता है। मान लीजिये कि 'अ' से एक अच्छा अधिकार देने वाला पुर्जा खो गया है, और उसको, 'ब' ने पा लिया है। तब 'ब'

का अधिकार तो उस पुर्जे पर अच्छा नहीं होगा किन्तु यदि उससे इस पुर्जे को 'स' ने इसकी पूरी क़ीमत देकर और यह जाने बिना कि 'ब' का उस पर अच्छा अधिकार नहीं है समझ-बूझ कर ले लिया है तो 'स' का उस पर अच्छा अधिकार होगा। अच्छे अधिकार के अर्थ हैं कि यदि उसने उसका दाम पा लिया है तो वह उसको रख सकेगा। उसको उसे 'अ' को अर्थात् जिससे वह पुर्ज़ा खो गया था अथवा जो उसका वास्तविक मालिक है उसको वापिस नहीं देना पड़ेगा। इसके विपरीत खराब अधिकार वाले को यह वापिस कर देना पड़ता है। हस्तान्तरित होने वाले पुर्ज़ों के भी दो गुण हैं (१) प्रथम तो यह कि उसका मालिक उसमें के धन को किसी को भी यदि वह देखनहार (bearer) है तो केवल उसको देकर और यदि वह फ़रमानजोग (order) है तो उसके नाम बेचान (endorse) करके हस्तान्तरित कर सकता है, और (२) दूसरे यह कि जिसको वह हस्तान्तरित किया जाता है उसको उसके ऊपर वाले धनी अथवा जो लोग उस पर उत्तरदायी हैं उनमें से किसी से भी उसका दाम ले लेने का अधिकार प्राप्त होता है। अतः, एक अच्छे अधिकार देने वाले पुर्ज़े के निम्न गुण हैं :—

(१) प्रथम तो यह कि उसमें का धन यदि वह देखनहार है तो केवल उसको देकर अथवा यदि वह फ़रमानजोग है तो उसका बेचान करके किसी को भी हस्तान्तरित किया जा सकता है।

(२) दूसरे यह कि उसको पाने वाला धनी उसमें का धन उसके ऊपर वाले धनी से अथवा किसी ऐसे धनी से जो उसके लिये दायी है प्राप्त कर सकता है।

(३) तीसरे यह कि उसको पाने वाले धनी का यदि उसने उसका पूरा मूल्य दे कर और देने वाले के अधिकार में किसी प्रकार की ख़राबी जाने बिना तथा समझ-बूझ कर लिया है उसमें के धन पर

पूरा अधिकार रहता है। अर्थात् यदि उसने उसको पा लिया है तो वह उसको उसके वास्तविक मालिक को वापिस देने का ज़िम्मेदार नहीं है।

विनिमय साध्य साख-पत्र विधान या अच्छे अधिकार देने वाले पुर्ज़ों के विधान (Negotiable Instruments Act) में केवल तीन अच्छे अधिकार देने वाले पुर्जों का अर्थात् जैसा कि पहिले कहा जा चुका है चेक, विनिमय के बिल और प्रण-पत्रों के नाम दिये हुये हैं। यहाँ पर यह भी कह देना अनुपयुक्त न होगा कि बाज़ारू चलन के अनुसार हुण्डी भी इन तीन पुर्ज़ों की ही तरह अच्छा अधिकार देने वाली समझी जाती है।

(२) चेक

चेकों का चलन सर्वप्रथम लन्दन के सर्राफ़ों ने प्रारम्भ किया था। सन् १६४० के पहिले तो वहाँ के लोग अपनी बचत सरकार के यहाँ जमा कर आया करते थे किन्तु उस वर्ष उस समय के उनके बादशाह चार्ल्स प्रथम ने उनकी पूरी रक़म को ज़ब्त कर लिया। अतः, इसके बाद उनका विश्वास सरकारी ख़ज़ानों पर से उठ गया और वह लोग अपनी रक़में बजाय सरकारी ख़ज़ानों में जमा करने के लन्दन के सर्राफ़ों के यहाँ जमा करने लगे। लन्दन के ये सर्राफ़ अपने ग्राहकों को उनकी जमा की हुई रक़म के लिये एक प्रण-पत्र दे दिया करते थे जो नोटों की तरह चलते थे। धीरे-धीरे ये प्रण-पत्र जमा की हुई पूरी रक़म के न होकर छोटी-छोटी रक़मों के होने लगे। इससे यह सुविधा हो गई कि जब कभी किसी ग्राहक को अपनी जमा की हुई रक़म में से केवल कुछ ही की आवश्यकता प्रतीत होती थी तो वह केवल एक छोटी रक़म का नोट भुना लेता था अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित कर देता था जो अपना रुपया सर्राफ़ों के पास जमा करना चाहता था। किन्तु जब बैङ्क आफ़ इङ्गलैण्ड खुल गया और उसके नोट सरकारी ख़ज़ानों

में भी स्वीकृत हो जाने के कारण इन नोटों की अपेक्षा अधिक लोक-प्रिय हो गये तब इन सर्राफ़ों ने अपने ग्राहकों को अपने प्रण-पत्र देने के स्थान पर ऐसे सादे पुर्ज़े देने प्रारम्भ कर दिये जिन पर मनमानी रक़मों को भर कर जो जमा की हुई रक़म तक ही हो सकती थी वे लोग भुगतान प्राप्त कर सकते थे अथवा दूसरे व्यक्तियों को हस्तान्तरित कर सकते थे। समय पाकर यही पुर्ज़े चेक कहे जाने लगे। वास्तव में चेक नोटों से अधिक सुविधाजनक होते हैं। नोटों में तो जितने के वह होते हैं उतने ही का भुगतान दिया जा सकता है। यदि कम का भुगतान देना है तो छोटी रक़मों के नोट अथवा मुद्रायें वापिस लेनी पड़ती हैं। किन्तु चेकों में जितने का भुगतान देना है उतना ही लिखा जा सकता है। अतः, इनका चलन खूब बढ़ा और आजकल इङ्गलैण्ड, इत्यादि देशों में अधिकांश भुगतान इन्हीं में होते हैं।

चेक की परिभाषा—अच्छे अधिकार देने वाले पुर्ज़ों के विधान में चेक की जो परिभाषा दी हुई है उसका निम्न अनुवाद है। चेक ऐसा विनिमय का बिल है जो उसमें दिये हुये किसी बैङ्क के ऊपर लिखा जाता है और जिसका भुगतान उसको देखते ही (On demand) करना पड़ता है। अतः, इसके तीन गुण हैं :—(१) प्रथम तो यह कि यह एक विनिमय का बिल है, (२) दूसरे यह कि यह इसमें दिये हुये बैङ्क के ऊपर लिखा जाता है, और (३) तीसरे यह कि इसका भुगतान माँगने पर उसी वक्त करना पड़ता है। इसको भली भाँति समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम यह देख लें कि एक विनिमय के बिल की क्या पारभाषा है। अच्छे अधिकार देने वाले पुर्ज़ों के विधान में दी हुई परिभाषा का अनुवाद करने पर यह निम्नाङ्कित होगी :—" विनिमय का बिल एक ऐसा लिखित पुर्ज़ा है जिसमें उसका लिखने वाला उसमें लिखे हुये किसी विशेष व्यक्ति को अपने हस्ताक्षर से इस बात की बिला शर्त आज्ञा देता है कि वह उसकी अथवा उसमें लिखे हुये किसी विशेष व्यक्ति को अथवा उसकी

आज्ञा के अनुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा उसको दिखलाने वाले व्यक्ति को उसमें दी हुई एक विशेष रक़म उसके माँगने पर अथवा एक विशेष अवधि के बाद दे दे"। अतः, उपरोक्त दी हुई चेक और विनिमय के बिल की परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुये हम चेक की एक स्वतन्त्र परिभाषा बना सकते हैं। चेक एक ऐसा लिखित पुर्ज़ा है जिसमें उसका लिखने वाला अपने हस्ताक्षर से उसमें लिखे हुये किसी बैङ्क को उसमें लिखे हुये किसी विशेष व्यक्ति को अथवा जिसको वह आज्ञा दे अथवा जिसके पास वह हो उसको माँगते ही बिना किसी शर्त के उस पर लिखी हुई एक विशेष रक़म देने की (अन्य कोई बात करने की नहीं) आज्ञा देता है।

यद्यपि उपरोक्त, परिभाषा का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण है किन्तु इसका विश्लेषण करने पर निम्न विशेषतायें मालूम पड़ती हैं :—

(१) यह एक आज्ञा-पत्र है।

(२) यह लिखित होता है।

(३) यह बेशर्त होता है।

(४) यह किसी विशेष बैङ्क के ऊपर होता है।

(५) इस पर इसके लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं।

(६) इसमें लिखी हुई रक़म माँगने पर फ़ौरन देनी पड़ती है।

(७) इसकी रक़म निश्चित होती है।

(८) जिसको भुगतान दिया जाता है उसका नाम इसमें लिखा होता है अथवा वह उसकी आज्ञा से निर्धारित होता है अथवा वह होता है जिसके पास यह हो।

(९) इसके अनुसार केवल एक रक़म देने की आज्ञा होती है, अन्य कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं होती है।

चेक के धनी—चेक के तीन धनी होते हैं—(१) चेक लिखने वाला धनी (इसका बैङ्क में रुपया जमा रहता है अथवा इसको बैङ्क

से रुपया माँगने का अधिकार होता है); (२) चेक का ऊपर वाला धनी (यह एक विशेष बैङ्क होता है); (३) चेक का पाने वाला धनी (कभी-कभी यह वही होता है जो इसको लिखता है)—यदि चेक पाने वाले धनी के नाम स्थान पर किसी व्यय का नाम लिखा रहता है, अथवा कोई कल्पित नाम होता है तो उसका भुगतान उसको दिखलाने वाले व्यक्ति को दिया जाता है। चेक में पाने वाले धनी के नाम के आगे फरमानजोग (order) अथवा देखनहार (bearer) शब्द होता है। फरमानजोग के अर्थ हैं कि जिसको पाने वाला धनी आज्ञा दे और देखनहार के अर्थ हैं जो उसको दिखलावे उसको भुगतान दिया जाय। अतः, जैसा लिखा हो उसीके अनुसार भुगतान देना चाहिये। कभी-कभी फरमानजोग और देखनहार में से कोई भी शब्द न लिखा जा कर 'केवल' (only) शब्द रहता है, जिसके अर्थ भी फरमानजोग हो जाते हैं, किन्तु जो हस्तान्तरित होने वाली भी होते हुये अच्छा अधिकार देने वाली नहीं रह जाती है। फरमानजोग चेक को हस्तान्तरित करने के लिये उस पर बेचान की आवश्यकता पड़ती है।

बेचान—किसी भी हस्तान्तरित होने वाले पुर्ज़े को हस्तान्तरित करने के लिये वह यदि फरमानजोग है (देखनहार नहीं है) उस पर बेचान करना पड़ता है। बेचान के अर्थ हैं किसी हस्तान्तरित होने वाले पुर्ज़े पर पाने वाले धनी का इस आशय से हस्ताक्षर करना कि उसमें का धन उस व्यक्ति को दे दिया जाय जिसको वह हस्तान्तरित किया जा रहा है। वैसे तो किसी पुर्ज़े का बेचान उसकी सीधी तरफ़ भी किया जा सकता है किन्तु क्रियात्मक रूप में वह केवल उसके पृष्ठ पर ही होता है। बेचान करते समय जिसको बेचान का पुर्ज़ा हस्तान्तरित किया जा रहा है उसका नाम भी लिखा जा सकता है। यदि एक फरमानजोग पुर्ज़े पर ऐसा ही किया गया है तो वह फरमानजोग ही रहता है, किन्तु यदि उस पर जिसको वह हस्तान्तरित किया

जा रहा है उसका नाम नहीं लिखा जाता तो वह देखनहार हो जाता है। एक देखनहार पुर्ज़े पर बेचान की आवश्यकता नहीं होती है। किसी पुर्ज़े का बेचान उस समय तक पूरा नहीं होता है जब तक कि वह उस व्यक्ति को सौंप न दिया जाय जिस व्यक्ति के पक्ष में उसका बेचान किया गया है।

बेचान की किस्में—बेचान (१) साधारण अथवा, (२) विशेष हो सकता है। साधारण बेचान में जिस व्यक्ति के पक्ष में बेचान होता है उसका नाम नहीं लिखा जाता है। बेचान करने वाला केवल अपने हस्ताक्षर कर देता है। विशेष बेचान में जिस व्यक्ति के पक्ष में बेचान किया जाता है। उसका नाम भी बेचान करने वाले के हस्ताक्षर के ऊपर लिखा होता है। इसके अतिरिक्त विशेष बेचान में कुछ और विशेषतायें भी हो सकती हैं जैसे बन्धनयुक्त बेचान, बिना ज़िम्मेदारी का बेचान, बिना अधिकार सूचना का बेचान।

बन्धनयुक्त बेचान—यह नाम जोग अथवा किसी अन्य बन्धन के साथ हो सकता है :—

नाम जोग बेचान—इसमें जिसके नाम बेचान किया जाता है उसके नाम के साथ-साथ केवल (only) शब्द भी दे दिया जाता है। इसके अर्थ हैं कि जिसके नाम यह बेचान की गई है उसको इसे बेचान करके किसी अन्य व्यक्ति को इस पर अपने से अच्छा अधिकार देने का हक़ नहीं है।

अन्य बन्धन के साथ बेचान—इसमें जिसके नाम बेचान किया जाता है उसके अधिकारों पर अन्य कोई बन्धन लगा दिया जाता है, जैसे राम को मेरे काम के लिये दिया जाय। इससे बैङ्क के ऊपर कोई बन्धन नहीं होता, सिर्फ़ जिसके नाम बेचान किया जाता है उसके ऊपर बन्धन रहता है।

बिना दायित्व का बेचान—वैसे तो बेचान करने वाले का

जिसके पक्ष में वह बेचान करता है और उसके बाद वाले सब व्यक्तियों के प्रति बेचान किये जाने वाले पुर्ज़े के सम्बन्ध का पूर्ण दायित्व होता है, किन्तु यदि बिना दायित्व का बेचान कर दिया जाता है तो बेचान करने वाला अपने दायित्व से छुटकारा पा जाता है। इसमें बेचान करने वाला अपने हस्ताक्षर के पहिले 'बिना मेरी ज़िम्मेदारी के' (without recourse to me) शब्द लिख देता है।

बिना अधिकार नोटिस बेचान—वैसे तो प्रत्येक बेचान करने वाले का यह अधिकार होता है कि यदि बेचान किये हुये पुर्ज़े का भुगतान न हो तो उसको इसके लिये उत्तरदायी ठहराने के लिये जिसको भुगतान न मिले वह फ़ौरन भुगतान न मिलने की सूचना दे दे। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह अपने उत्तरदायित्व से छुटकारा पा जाता है। किन्तु इस प्रकार का बेचान करने से बेचान करने वाले का सूचना पाने का यह अधिकार जाता रहता है और वह ऐसी सूचना पाये बिना ही उस पुर्ज़े का भुगतान न होने पर उसके लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। ऐसा बेचान करने के लिये हस्ताक्षर के पहिले 'सूचना पाने का अधिकार छोड़ दिया' (Notice of dishonour waived) लिख दिया जाता है।

बेचान आंशिक और शर्तिया भी किये जा सकते हैं किन्तु इनका वैधानिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है।

भारतवर्ष के बैङ्क केवल अंग्रेज़ी में लिखी चेक को ही वैधानिक मानते हैं। हाँ, उन पर उनके लिखने वाले के हस्ताक्षर किसी भी भाषा में हो सकते हैं, किन्तु वह हस्ताक्षर उनके यहाँ जो उसके हस्ताक्षरों का नमूना है उसीके अनुसार होने चाहियें। रह गया बेचान, सो वे लोग हिन्दुस्तानी में किये गये बेचानों का किसीके द्वारा ज़िम्मा कराये बिना उनको नहीं मानते हैं।

बेचान करने का ढङ्ग—बेचान करने का एक विशेष ढङ्ग है,

और चेकों पर उसी ढङ्ग से बेचान होना चाहिये अन्यथा वह बेचान बेचान करने वाले का नहीं माना जाता है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि जाली बेचानों पर भुगतान कर देने से बैङ्कों पर जो उत्तरदायित्व होता है उससे उनको कुछ अंश तक विधान ने मुक्ति दे दी है। विधान यह कहता है कि यदि ऊपर वाले बैङ्क ने अच्छे विचार से (In good faith), भली-भाँति से समझ-बूझ कर (Without negligence) और रीति रिवाज़ के अनुसार (In due course) किसी ऐसे चेक का भुगतान भी कर दिया है जिस पर जाली बेचान है किन्तु वह बेचान करने वाले के द्वारा ही किया गया मालूम होता है तो उस बैङ्क पर उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। अतः, बेचान ऐसा होना चाहिये जो बेचान करने वाले के द्वारा ही किया गया मालूम पड़े। इसके लिये बेचान करने वाले को निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) बेचान उन्हीं अक्षरों में होना चाहिये जिनमें चेक के ऊपर पाने वाले धनी का अथवा विशेष बेचानों में जिनके पक्ष में बेचान किया गया है उनका नाम लिखा होता है। यदि वह अक्षर ग़लत भी है तो ग़लती ही करके फिर शुद्ध बेचान कर देना चाहिये।

(२) बेचान सीधा-सादा होना चाहिये, अर्थात् उसमें किसी प्रकार का उपसर्ग जैसे मिस्टर, मिसेस, मिस, डाक्टर, सर, इत्यादि नहीं होना चाहिये। एक अविवाहित स्त्री अपने नाम के अन्त में मिस, और एक विवाहित स्त्री मिसेस लिख सकती है। कोई चेक यदि मिसेस रामसहाय के नाम है और उनका नाम विद्यावती है तो उनको विद्यावती, पत्नी बाबू रामसहाय (Wife of B. Ram Sahai) लिखना चाहिये।

(३) जो लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं उनके बायें अँगूठे का निशान लिया जाता है और उनका नाम लिख कर किसी गवाह का नाम और पता लिखवाया जाता है।

(४) यदि चेक ऐसे दो व्यक्तियों के नाम में है जो साभी नहीं है तो दोनों का अलग-अलग हस्ताक्षर होना चाहिये।

(५) यदि चेक किसी संस्था के नाम होता है तो संस्था के नाम के बाद बेचान करने वाले का हस्ताक्षर और पद दिया जाना चाहिये।

(६) पाने वाले धनी की यदि मृत्यु हो गई है तो उसका जो प्रतिनिधि विधान के द्वारा निर्धारित हुआ है वह बेचान कर सकता है।

चेक का रूप—प्रत्येक चेक के दो भाग होते हैं, एक वास्तविक (Foil) और दूसरा प्रतिरूप (Counterfoil)। चेक भरते समय वास्तविक भाग और प्रतिरूप दोनों भरे जाने चाहियें। चेक की किताब से वास्तविक भाग तो निकाल लिया जाता है और प्रतिरूप उसमें रहने दिया जाता है। यह प्रतिरूप काम पड़ने पर सकेत का काम देता है।

चेक के ऊपर बायें हिस्से में उसका नम्बर और दायें हिस्से में उसकी तारीख़ का स्थान होता है। फिर उस बैङ्क का और उसके स्थान का नाम छपा रहता है जिसके ऊपर वह चेक लिखी जाती है। इसके बाद पाने वाले धनी के नाम का और फिर शब्दों में रुपया लिखने का स्थान होता है। अन्त में बाईं ओर अङ्कों में रुपया लिखने का और दाँयीं ओर उसके लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर का स्थान होता है।

चेक का नमूना

सं० सी ५२३४ १० फ़रवरी, १९४७

इलाहाबाद बैङ्क, लिमिटेड,

इलाहाबाद

मेसर्स रामलाल श्यामलाल को अथवा उनके आदेश के अनुसार केवल पाँच हज़ार रुपये दीजिये।

रु० ५,०००) जैरामदास

चेक भरना—चेक भरने में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) तारीख—चेक की तारीख़ आगे की नहीं होनी चाहिये, अन्यथा जब तक वह तारीख़ नहीं आवेगी चेक का भुगतान नहीं होगा। अंग्रेज़ी में ऐसी चेक को पोस्ट डेटेड चेक कहते है। चेक पर यदि पहिले की तारीख है और वह छै महीने से अधिक पुरानी नहीं है तो कोई हर्ज़ नहीं है। छै महीने से अधिक पुरानी चेक स्टेल कहलाती है और उसका भुगतान नहीं किया जाता है। पहिले की तारीख़ की चेक को अंग्रेज़ी में एन्टी-डेटेड (Ante-dated) चेक कहते हैं।

(२) पाने वाले धनी का नाम—पाने वाले धनी का नाम सही अक्षरों में लिखना चाहिये अन्यथा उसको भी ग़लत अक्षरों लिखने पड़ेंगे। इसके बाद उसके आदेश के अनुसार अथवा देखनहार, (Order or bearer) लिखा जाता है। आदेश के अनुसार (Order) चेक नामजोग या फरमानजोग चेक कहलाता है। इसको हस्तान्तरित करने के लिये इस पर बेचान का होना आवश्यक है। धनी जोग या देखनहार चेक में बेचान की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फरमानजोग चेक में ऊपर वाला बैङ्क प्रत्येक बेचान की परीक्षा करता है और उसका भुगतान तभी देता है जब वे सब बेचान करने वाले के ही मालूम पड़ते हैं। देखनहार चेक में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं होती। अतः, फरमानजोग चेक देखनहार चेक की अपेक्षा अधिक सुरक्षित होती है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है ऊपर वाले बैङ्क को प्रत्येक चेक का भुगतान अच्छे विचार से, समझ-बूझ कर और रीति-रिवाज़ के अनुसार देना चाहिये, अन्यथा बेचान के जाली होने पर उसका दायित्व उसके ऊपर पड़ता है।

(३) धन—धन शब्दों और अंकों दोनों में भरा जाता है। इसको इस प्रकार लिखना चाहिये कि इसमें परिवर्तन करने की कोई

गुञ्जाइश न रह जाय। यदि ऐसा है और अधिक रुपयों का भुगतान हो जाता है तो बैङ्क उसका उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। शब्दों और अंकों दोनों में एक ही धन होना चाहिये। यदि उनमें भिन्नता है तो बैङ्क भुगतान नहीं करता, यद्यपि वह चाहे तो जो कम है अथवा शब्दों में जो लिखा है उसका भुगतान वह कर दे।

(४) लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर—चेक लिखने वाले धनी को उसी प्रकार के हस्ताक्षर करने चाहियें जिस प्रकार के हस्ताक्षर उसने बैङ्क में हिसाब खोलते समय नमूने के दिये थे। यदि हस्ताक्षरों में उलट-पलट हो जाती है तो बैङ्क भुगतान नहीं करता।

जाली हस्ताक्षर पर भुगतान करने से बैङ्क के ऊपर दायित्व पड़ता है। ऐसी अवस्था में वह उससे तभी मुक्त हो सकता है जब वह यह प्रमाणित कर दे कि जाल लिखने वाले धनी की जानकारी में हुआ है अथवा जाली चेक का भुगतान लिखने वाले धनी की किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट इच्छा से हुआ है। लिखने वाला धनी यदि कोई ऐसा भी काम करता है जिसके कारण बैङ्क का जाल करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार नहीं रह जाता है तो भी बैङ्क का जाली चेक का भुगतान ठीक समझा जाता है।

रेखांकित क्रास की हुई (Crossed) चेक—जिस चेक पर लिखने वाला धनी अथवा कोई भी व्यक्ति दो आड़ी समानान्तर रेखायें खींच देता है वह चेक क्रास की हुई चेक कहलाती है। इसके विपरीत जिस चेक पर ऐसी रेखायें नहीं होती हैं वह चेक खुली हुई (Open) चेक कहलाती है। क्रासिङ्ग दो तरह की होती हैं:—(१) साधारण और (२) विशेष। साधारण क्रासिङ्ग में रेखाओं के बीच में किसी बैङ्क का नाम नहीं रहता है और विशेष क्रासिङ्ग में उनके बीच में किसी बैङ्क का नाम रहता है। साधारण क्रासिङ्ग की चेक किसी भी बैङ्क के द्वारा भुनवाई जा सकती है और विशेष क्रासिङ्ग की चेक उसी बैङ्क के द्वारा भुनवाई जा सकती है जिसका नाम क्रासिङ्ग के

अन्दर दिया रहता है। ऊपर वाले बैङ्क का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह क्रास की हुई चेक का भुगतान किसी बैङ्क को छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति को न करे। यदि वह साधारण क्रासिङ्ग की चेक है तो जो बैङ्क चेक भेजे उसीको भुगतान कर दे और यदि वह विशेष क्रासिङ्ग की चेक है तो उसी बैङ्क को भुगतान दे जिसका नाम क्रासिङ्ग में लिखा हुआ है। एक साधारण क्रासिङ्ग की चेक पर कोई भी व्यक्ति क्रासिङ्ग के अन्दर किसी भी बैङ्क का नाम लिख कर उसको विशेष क्रासिङ्ग की चेक बना सकता है। क्रासिङ्ग केवल एक वार ही की जा सकती है। हाँ, जिस बैङ्क के द्वारा किसी क्रास की हुई चेक का भुगतान मँगवाया जाता है यदि वह बैङ्क स्वयम् भुगतान नहीं ले सकता है और अपने किसी प्रतिनिधि बैङ्क के द्वारा भुगतान मँगवाना चाहता है तो वह उस प्रतिनिधि बैङ्क के नाम की एक और क्रासिङ्ग कर सकता है। क्योंकि क्रास की हुई चेक का भुगतान केवल किसी बैङ्क ही के द्वारा किया जाता है और कोई बैङ्क केवल अपने ग्राहक की ही चेक की वसूली करता है, अतः, जो व्यक्ति चेक का रुपया लेता है यदि आवश्यकता पड़े तो उसका आसानी से पता लग सकता है। इसके अर्थ यह हैं कि ऐसी चेक अधिक सुरक्षित होती है।

अच्छा अधिकार न देने वाली क्रासिंग—यदि क्रासिङ्ग के अन्दर 'अच्छा अधिकार न देने योग्य (Not Negotiable) लिख दिया जाता है तो वह चेक अच्छा अधिकार देने वाली नहीं रह जाती है। इसके यह अर्थ होते हैं कि चेक लेने वाले का वही अधिकार होगा जो चेक देने वाले का है, अर्थात् यदि चेक देने वाले का भी अधिकार अच्छा है तो चेक लेने वाले का अधिकार अच्छा होगा और यदि चेक देने वाले का अधिकार अच्छा नहीं है तो चेक लेने वाले का अधिकार भी अच्छा नहीं होगा। अच्छा अधिकार न देने वाली चेक हस्तान्तरित तो की जा सकती है किन्तु इसको वही

लेगा जो यह समझता है कि हस्तान्तरित करने वाले का अधिकार अच्छा है, अतः, उसका भी अधिकार अच्छा ही होगा। अच्छा अधिकार न देने योग्य (Not Negotiable) शब्द बिना क्रासिङ्ग के भी लिखे जा सकते हैं।

भुगतान वसूल करने वाले बैङ्क की स्थिति—जब कोई बैङ्क किसी चेक को वसूल करने के लिये पाता है तब यदि वह उसका दाम देकर अर्थात् अपने ग्राहक के हिसाब में उसको जमा करके, अच्छे विचार से और समझ-बूझ कर लेता है तब तो उसका उसके ऊपर अच्छा अधिकार होता है, अर्थात् यदि उसके ग्राहक का अधिकार अच्छा नहीं है तो भी उसका अधिकार अच्छा होता है। इसके यह अर्थ हैं कि यदि बाद में यह पता चलता है कि उस चेक पर उसके ग्राहक का अच्छा अधिकार नहीं था तो भी उसका स्वयम् का अधिकार अच्छा होने के नाते उसको वह भुगतान उसके वास्तविक मालिक को वापिस नहीं करना पड़ता। हाँ, यदि उसने चेक पाने के समय चेक देने वाले को उसकी रक़म नहीं दी थी, अथवा यदि वह उसका ग्राहक है तो उसने उसके हिसाब में उसको नहीं जमा किया था तब तो उसको मूल्य देकर चेक न पाने के कारण अच्छा अधिकार नहीं मिल सकता है। यही बात चेक को अच्छे विचार से और समझ-बूझ कर न लेने से भी हो सकती है। किन्तु किसी चेक की रक़म वसूल हुये बिना ही उसके मूल्य को ग्राहक के हिसाब मे जमा कर देने में यह जोख़िम है कि यदि चेक वसूल नहीं होती और इस बीच में ग्राहक अपने हिसाब से रुपया निकाल लेता है तो बैङ्क की क्षति हो जाने की सम्भावना है। फिर यदि कोई चेक अच्छा अधिकार न देने वाली बना दी गई है तब तो वसूल करने वाले बैङ्क का उस पर वही अधिकार रहेगा जो उस व्यक्ति का है जिसने उसको वह चेक वसूल करने को दी है, अर्थात् यदि उसका उस पर अच्छा अधिकार नहीं है तो बैङ्क का भी उस पर अच्छा अधिकार नहीं है और बैङ्क को

उसका रुपया उसके वास्तविक मालिक को देना पड़ेगा। उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि भुगतान वसूल करने वाले बैङ्क की स्थिति बहुत ही भयावह है। किन्तु हम यह भी देख चुके हैं कि क्रास की हुई चेकों का रुपया केवल बैङ्कों के द्वारा ही मिल सकता है। अतः, बैङ्कों की स्थिति को बचाने के लिये विधान में एक प्रबन्ध किया गया है और वह यह है कि यदि कोई बैङ्क किसी क्रास की हुई चेक की वसूली अपने किसी ग्राहक के लिये करता है तो यदि उस ग्राहक का उस पर अच्छा अधिकार नहीं भी था तो भी वह बैङ्क उसकी ज़िम्मेदारी से मुक्त माना जायगा। हाँ, उसको ऐसा अच्छे विचार से और समझ-बूझ कर करना चाहिये।

पाने वाले धनी के हिसाब में (Account Payee only) अथवा किसी विशेष व्यक्ति के हिसाब में की क्रासिङ्ग—कभी-कभी क्रासिङ्ग के अन्दर पाने वाले धनी के हिसाब में (Account Payee only) अथवा किसी व्यक्ति का नाम लिख कर उसके हिसाब में जैसे राम के हिसाब में (Account Ram only) भी लिख दिया जाता है। यदि पाने वाले धनी के हिसाब में लिखा होता है तो वसूल करने वाले को यह देख लेना चाहिये कि उस चेक की रकम केवल पाने वाले धनी के ही हिसाब में जमा हो रही है। यदि वह यह नहीं देखता है, और आगे चल कर कोई बात खड़ी होती है तो वह उसके लिये ज़िम्मेदार होगा। इसी तरह से यदि किसी व्यक्ति का नाम दिया है तो रकम उसी के हिसाब में जमा होनी चाहिये। ऊपर वाले बैङ्क के ऊपर इस सम्बन्ध का कोई दायित्व नहीं है।

अधिकारी लहनी वाला (Holder)—किसी चेक, विनिमय के बिल और प्रण-पत्र का वही अधिकारी माना जाता है जिसके पक्ष में वह लिखे गये हैं अथवा उनका बेचान हुआ है और जो उनमें के धन का जो उन पर उत्तरदायी है उससे अपने नाम में वसूल कर

सकते हैं। यदि कोई पुर्ज़ा खो गया है अथवा नष्ट हो गया है तब भी उसका अधिकारी वही माना जाता है जो उसके खो जाने अथवा नष्ट हो जाने के पहिले उसका अधिकारी था। यदि किसी पुर्ज़े का अधिकारी 'अ' है और उसने 'ब' को उसको रखने को अथवा भुगतान वसूल करने को दे दिया है तो 'ब' उसका अधिकारी नहीं माना जाता। 'अ' ही उसका अधिकारी रहता है।

मूल्य दिये हुये पुर्ज़े का अधिकारी-लहनी वाला (Holder for Value)—जिस पुर्ज़े का मूल्य किसी ने कभी भी चुका दिया है उस पुर्ज़े का अधिकारी मूल्य दिये हुये पुर्ज़े का अधिकारी माना जाता है। एक चेक यदि 'ब' के पक्ष में है और 'स' का 'ब' के ऊपर रुपया चाहिये जिससे 'ब' ने 'स' के पक्ष में उसका बेचान कर दिया है। अब यदि 'स' उसको 'द' को दान में दे देता है तो 'द' मूल्य दिये हुये पुर्ज़े का अधिकारी है। उसने स्वयम् ने तो इसका मूल्य नहीं दिया है, किन्तु इसका मूल्य 'स' के द्वारा दिया जा चुका है।

चलन के अनुसार अधिकारी—लहनी वाला (Holder in due course)—चलन के अनुसार वह अधिकारी माना जाता है जिसने उसको स्वयम् मूल्य देकर, अच्छे विचार से और समझ-बूझ कर प्राप्त किया है। किसी अच्छे अधिकार देने वाले पुर्ज़े के चलन के अनुसार अधिकारी का ही उस पर अच्छा अधिकार होता है।

ऊपर वाला बैङ्क एक चेक का भुगतान देने से किन-किन परिस्थितियों में इन्कार कर सकता है :—(१) यदि चेक पर उचित बेचान नहीं है।

(२) चेक पर का चेक लिखने वाले धनी का हस्ताक्षर यदि उस नमूने के हस्ताक्षर से नहीं मिलता है जो उसने हिसाब खोलते समय बैङ्क को दिया था।

(३) यदि चेक पर आगे की तारीख़ है। ऐसी अवस्था में यदि

बैङ्क भुगतान कर देता है और बाद में कोई ऐसी चेक आती है जिसको भुगतान के लिये प्रथम चेक के भुगतान हो जाने के कारण रुपया नहीं रह जाता है तब भी बैङ्क को उसका भुगतान करना पड़ता है। वैसे तो ग्राहक के ऊपर यदि बैङ्क का ऋण हो जाता है तो बैङ्क को उससे उसको वसूल करने का अधिकार है, किन्तु इस परिस्थिति में यदि चेक लिखने वाले धनी की मृत्यु हो जाती है, अथवा वह दिवालिया घोषित कर दिया जाता है अथवा यदि वह उस चेक का भुगतान करने की मनाही कर देता है तब बैङ्क को उससे उसका रुपया वसूल करने का अधिकार नहीं रह जाता है।

(४) एक रेखांकित अथवा क्रास की हुई चेक यदि किसी बैङ्क के द्वारा नहीं उपस्थित की जाती है।

(५) यदि चेक छै माह से अधिक पुरानी है।

(६) यदि किसी ऐसे व्यक्ति की चेक है जिसका स्वयम् का हिसाब नहीं है बल्कि उसको किसी अन्य के हिसाब से उसके काम के लिये रुपया निकालने का अधिकार है (Trust Funds) और बैङ्क को इस बात का तनिक भी सन्देह हो जाता है कि उस व्यक्ति को अब रुपया निकालने का अधिकार नहीं रह गया है अथवा वह व्यक्ति उस रुपये को जिसका हिसाब है उसके काम में ख़र्च न करके उसको अपने काम में ख़र्च करेगा।

(७) यदि चेक पर लिखे हुये धन के विषय में तनिक भी सन्देह हो गया है। यदि शब्दों में और अंकों में लिखे हुये धन में कुछ अन्तर है।

(८) ग्राहक के हिसाब में यदि पर्याप्त रुपया नहीं है। ग्राहक को उसके हिसाब में जितना रुपया है यदि उससे अधिक रुपया निकालने का अधिकार है तब तो बैङ्क रुपया न रहने पर चेक का भुगतान करने से इनकार नहीं कर सकता है। हाँ, यदि भविष्य में

बैङ्क ग्राहक के इस अधिकार को चालू नहीं रखना चाहता है तो उसको इस बात की पहिले से सूचना दे देनी चाहिये।

(९) यदि ग्राहक स्वयम् उस चेक का भुगतान रुकवा देता है।

(१०) यदि ग्राहक की मृत्यु हो जाती है, अथवा वह दिवालिया घोषित कर दिया जाता है अथवा वह पागल हो जाता है।

(११) यदि किसी अदालत से किसी व्यक्ति के हिसाब से रुपये न देने का आदेश (Garnishee Order) प्राप्त हो जाता है।

(१२) यदि चेक कटी-फटी है।

चेक पर चिह्न बनाना (Marking of a cheque)— एक चेक पर उसको लिखने वाले को अथवा उसके अधिकारी की अथवा उसको वसूल करने वाले बैङ्क की प्रार्थना पर ऊपर वाला बैङ्क जब अपना हस्ताक्षर कर देता है तब उसको चेक पर चिह्न बनाना कहते हैं। इसके अर्थ यह हैं कि जिस समय चेक पर चिह्न बनाया गया है उस समय उसका भुगतान हो सकता था। बाद में यदि ग्राहक अपने हिसाब से कुछ रुपया निकाल ले तो सम्भव है कि उसका भुगतान न हो।

(३) विनिमय के बिल

विनिमय के बिल की परिभाषा तो इसी अध्याय में पहिले ही चेक की परिभाषा के सम्बन्ध में दी जा चुकी है। चेक एक विशेष प्रकार का विनिमय का बिल है किन्तु विनिमय का बिल चेक नहीं है। विनिमय के बिल में भी चेक की तरह के तीन धनी होते हैं, किन्तु चेक की तरह इसमें ऊपर वाले धनी के किसी बैङ्क के ही होने की आवश्यकता नहीं है। विनिमय के बिल दो प्रकार के होते हैं :— (१) देशांतर, और (२) अन्तर्राष्ट्रीय। देशांतर बिल का लिखने वाला धनी जिस देश में होता है उसीमें उसका ऊपर वाला धनी भी होता है अथवा उसका भुगतान होता है। जो बिल इसके विपरीत होता है वह अन्तर्राष्ट्रीय होता है।

देशांतर बिल का नमूना

दिल्ली

२ आ०	रु० ७००/-	५ जनवरी, १९४७

उपरोक्त तिथि से एक माह बाद पाँच सौ रुपया पहुँचे दाम बा० श्यामलाल को अथवा उनके आदेश के अनुसार दे दीजिये।

जोग देना :— अयोध्याप्रसाद सीताराम

मोहनलाल,

कलकत्ता

अन्तर्राष्ट्रीय बिल का नमूना

मूल लिपि

दिल्ली

२ आ०	पा० ४०/-	१० जनवरी, सन् १९४७

इस मूल लिपि को देखने के पचास दिन बाद यदि इसकी दूसरी और तीसरी लिपियों का भुगतान नहीं हुआ है तब चालीस पाउण्ड भाई एडवर्ड स्मिथ को पहुँचे दाम दे दीजिये।

जोग देना वी० बादशाह

मि० जेम्स स्मिथ,

लन्दन

बिल को लिखते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) तारीख—मुद्दती बिल में तारीख़ का बहुत महत्व होता है। प्रायः इसीमें अवधि का समय जोड़ कर भुगतान की तारीख़ मालूम की जाती है। हाँ, कभी-कभी अवश्य, विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय बिलों में भुगतान की तारीख़ का निश्चय करने के लिये अवधि के समय को उस तारीख़ में जोड़ते हैं जिस तारीख़ को ऊपर वाले धनी ने बिल को

देखा है। दर्शनी बिल का भुगतान बिल को दिखलाते ही करना पड़ता है।

(२) अवधि—मुद्दती बिल की अवधि बिल में ही दी रहती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है या तो यह बिल की तारीख़ में अथवा बिल के ऊपर वाले धनी के उसको देखने की तारीख़ में जोड़ दी जाती है। भुगतान की तारीख़ मालूम करने के लिये प्रायः तीन रियायती दिन भी जोड़ दिये जाते हैं। यदि किसी बिल का भुगतान किसी छुट्टी के दिन पड़ता है तो भारतवर्ष में उसका भुगतान छुट्टी के पहिले दिन हो जाता है। यही बात प्रण-पत्र के साथ भी है। दर्शनी बिल में रियायती दिन नहीं जोड़े जाते।

(३) धन—धन दो स्थानों पर दिया जाता है—(१) बिल के ऊपर बायें कोने पर और (२) बीच में। बायें कोने पर यह अङ्कों में होता है और बीच में शब्दों में होता है।

(४) धनियों के नाम—लिखने वाले धनी के हस्ताक्षर नीचे दाहिने कोने पर होते हैं। ऊपर वाले धनी का नाम नीचे बायें कोने पर होता है, और पाने वाले धनी का नाम बीच में होता है।

(५) स्टाम्प—जिस देश में जो बिल लिखा जाता है उसी देश के क़ानून के अनुसार उस पर स्टाम्प लगता है।

पहुँचे दाम—पहुँचे दाम के अर्थ हैं कि ऊपर वाले धनी ने इसका मूल्य पा लिया है। अतः, यदि बिल पर स्वीकृति देने के बाद वह उसका भुगतान नहीं देता है तो यह नहीं कह सकता है कि उसने उसका मूल्य नहीं पाया है।

अन्तर्राष्ट्रीय बिल की प्रायः तीन लिपियाँ होती हैं। प्रत्येक लिपि में अन्य दो लिपियों का संकेत होता है। ऊपर वाले धनी को केवल एक लिपि का भुगतान करना पड़ता है। तीनो बिलों को मिला कर 'सेट' (Set) और प्रत्येक को 'वाया' (Via) कहते हैं। यदि

किसी बिल की एक ही लिपि होती है तो वह 'सोला' (Sola) कहलाता है।

बिल पर स्वीकृति—प्रत्येक मुद्दती बिल पर उसके ऊपर वाले धनी को अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। ऐसा करने के लिये उसको चौबीस घंटों का समय मिलता है। जब तक किसी बिल पर उसकी स्वीकृति नहीं हो जाती है वह ड्राफ्ट (Draft) कहलाता है। स्वीकृति हो जाने पर वह एक्सेप्टेन्स (Acceptance) कहलाता है। ड्राफ्ट और एक्सेप्टेन्स दोनों को बिल कहा जाता है। दर्शनी बिल पर स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।

स्वीकृति की क़िस्में—स्वीकृति (१) साधारण अथवा (२) असाधारण हो सकती है। साधारण स्वीकृति में तो ऊपर वाला धनी लिखाई वाले धनी की सब शर्तें मान लेता है और केवल हस्ताक्षर कर देता है। यदि वह चाहे तो 'स्वीकार किया' भी लिख सकता है। किन्तु असाधारण स्वीकृति में स्वीकृति करने वाला धनी बिल की किसी भी शर्त को बदल देता है। ऐसी अवस्था में बिल का अधिकारी उस स्वीकृति को अस्वीकृति मान सकता है। असाधारण स्वीकृति निम्न प्रकार की हो सकती हैं:—

(१) शर्तिया—इसमें कोई शर्त दी जा सकती है जैसे माल आ जाने पर दाम दिया जायगा।

(२) आंशिक—इसमें बिल के धन से कम धन देने की स्वीकृति दी जाती है।

(३) स्थानीय—इसमें यह लिख दिया जाता है कि बिल का भुगतान केवल अमुक स्थान में ही किया जायगा। हाँ, यदि 'केवल' शब्द नहीं लगाया जाता और केवल भुगतान के स्थान का नाम दे दिया जाता है तो वह असाधारण स्वीकृति नहीं मानी जाती। ऐसे बिल को डोमीसाइल्ड बिल कहते हैं। प्रायः ऊपर वाला धनी भुगतान

के स्थान के लिए अपने बैंक का नाम दे देता है। ऐसे बिल का भुगतान करना न करना बैंक की इच्छा पर निर्भर है। हाँ, यदि उसने पहिले से स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप में ऐसा करने की स्वीकृति दे दी है तो अवश्य वह ऐसा करेगा।

(४) अवधि का परिवर्तन—लिखाई वाला धनी बिल में जितनी अवधि देता है उससे अधिक अवधि के लिये स्वीकृति देने पर अवधि का परिवर्तन कहलाता है। मान लीजिये एक बिल एक माह की अवधि का लिखा गया है। अब यदि ऊपर वाला धनी इसको दो माह के बाद दिया जायगा लिखकर स्वीकार करता है तो यह अवधि का परिवर्तन हुआ।

(५) ऊपर वाले सब धनियों की स्वीकृति न प्राप्त होना—यदि बिल एक से अधिक धनियों के ऊपर किया गया है और उसको सब धनियों ने स्वीकार नहीं किया है तो वह असाधारण स्वीकृति है।

यदि किसी बिल का अधिकारी उस पर की असाधारण स्वीकृति को स्वीकार कर लेता है तो वह अपने पहिले के सब धनियों को उस सम्बन्ध की ज़िम्मेवारियों से मुक्त कर देता है। अतः, अपने ही लाभ के लिये उसको ऐसा नहीं करना चाहिये।

बिल का तिरस्कार उसकी अस्वीकृति से अथवा भुगतान न होने से हो जाता है। किसी भी पुर्जे के तिरस्कृत हो जाने के बाद उसके अधिकारी को उसके ऊपर जो लोग जिम्मेदार होते हैं उनको उसकी सूचना दे देनी चाहिये। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह सब अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं।

बिल और प्रण-पत्र के तिरस्कृत हो जाने पर नोटरी पब्लिक या डवीर से जो एक प्रकार का वकील होता है उसकी नोटिङ्ग करानी पड़ती है। यह नोटरी पब्लिक ऊपर वाले धनी के सामने बिल

अथवा प्रण-पत्र उपस्थित करता है और उसके अस्वीकार कर देने पर यह बात उस पर लिख देता है। इसीको नोटिङ्ग कहते हैं। कहीं-कहीं पर बिल की नोटिङ्ग के अतिरिक्त प्रोटेस्टिङ्ग भी होती है। अन्तर्राष्ट्रीय बिल में यह बहुत आवश्यक हो जाती है। प्रोटेस्ट किसी बिल अथवा प्रण-पत्र की अस्वीकृति का एक प्रमाण-पत्र होता है जिसको नोटरी पब्लिक देता है। नोटिङ्ग और प्रोटेस्टिङ्ग के लिये नोटरी पब्लिक का कुछ मेहनताना होता है जिसको नोटिङ्ग और प्रोटेस्टिङ्ग का खर्च कहते हैं।

किसी बिल की नोटिङ्ग और प्रोटेस्टिङ्ग हो जाने के बाद यदि उसका अस्वीकृति के कारण तिरस्कार हुआ है तो उसके अधिकारी की राज़ी से कोई भी व्यक्ति उसके उपर जो व्यक्ति ज़िम्मेदार हैं उनकी तरफ़ से उसको स्वीकार कर सकता है। भुगतान न होने के कारण तिरस्कृत हो जाने पर ऐसे ही उसका भुगतान भी हो सकता है। जो व्यक्ति ऐसा करता है उसके प्रति वह व्यक्ति जिम्मेदार हो जाता है जिसके लिये ऐसा किया गया है।

यदि बिल अन्तर्राष्ट्रीय होता है और उसके लिखने वाले धनी को इस बात का सन्देह रहता है कि शायद उसका ऊपर वाला धनी उसका तिरस्कार न कर दे तो वह बिल के नीचे किसी ऐसे व्यक्ति का नाम लिख देता है जिसके पास बिल के अधिकारी के जाने पर बिल की स्वीकृति अथवा उसका भुगतान हो जाता है। इसको आवश्यकता पड़ने पर का ऊपर वाला धनी (Drawee in case of need) कहते हैं।

असाधारण परिवर्तन (Material Alterations)—किसी भी अच्छा अधिकार देने वाले पुर्ज़े पर कोई भी असाधारण परिवर्तन कर देने से उस पर जो उत्तरदायित्व बढ़ जाता है उसके लिये यदि वह उनकी आज्ञा से नहीं किया गया है जो उसके लिये ज़िम्मेदार हैं तो वह उनके ऊपर लागू नहीं है। निम्न परिवर्तन

साधारण (Immaterial alterations) परिवर्तन हैं। अतः, वह उन लोगों पर लागू हैं जो उस पर ज़िम्मेदार हैं :—

साधारण परिवर्तन (१) जब अर्ध लिखित (Inchoate stamped instruments) पुर्ज़ों को उनका अधिकारी पूरा कर लेता है।

(२) जब किसी साधारण बेचान को उसके ऊपर किसी का नाम लिख कर विशेष बेचान मे परिवर्तित कर दिया जाता है।

(३) जब क्रासिङ्ग के बीच में 'अच्छा अधिकार न देने वाले' (Not-Negotiable) शब्द जोड़ दिये जाते हैं।

(४) जब खुली हुई चेक पर साधारण अथवा विशेष क्रासिङ्ग कर दिया जाता है अथवा साधारण क्रासिङ्ग को विशेष क्रासिङ्ग में परिवर्तित कर दिया जाता है। वसूल करने वाला बैंक अपने पक्ष की क्रासिङ्ग में किसी अपने अढ़तिया बैंक को जिसके द्वारा वह उसे वसूल कराना चाहता है विशेष क्रासिङ्ग भी कर सकता है।

असाधारण क्रासिंग के निम्न उदाहरण हैं :—

(१) किसी पुर्ज़े की अवधि को बदलने के विचार से उसकी तारीख़ को बदलना।

(२) उसके धन को बदलना।

(३) उसकी अवधि को बदलना।

(४) उस पर ज़िम्मेदार धनियों को बदलना।

(५) ब्याज की अथवा विनिमय की दर को बदलना।

(६) भुगतान के स्थान को बदलना।

(४) प्रण-पत्र

प्रण-पत्र वह लिखित पुर्ज़ा है (यह बैंक नोट अथवा करन्सी नोट नहीं है) जिसमें उसका लिखने वाला उसमें दिये हुये किसी धनी को अथवा उसके आदेश के अनुसार अथवा जिसके पास वह पुर्ज़ा हो

विला किसी शर्त के उसमें लिखी हुई एक निश्चित रक़म देने का प्रण करता है।

प्रण-पत्र में केवल दो ही धनी होते हैं :—(१) उसका लिखने वाला, और (२) पाने वाला।

प्रण-पत्र का लिखने वाला धनी एक अकेला अथवा कई संयुक्त हो सकते हैं। संयुक्त प्रण-पत्र के लिखने वालों पर उसके भुगतान की केवल संयुक्त अथवा संयुक्त और अलग-अलग दोनो ज़िम्मेदारियाँ हो सकती हैं। प्रथम अवस्था में तो उसका पाने वाला धनी सब लिखने वाले धनियों को उसका भुगतान करने की केवल एक साथ ही सूचना दे सकता है किन्तु दूसरी अवस्था मे वह चाहे तो प्रत्येक लिखने वाले धनी से अलग-अलग भी उसका भुगतान करने को कह सकता है किन्तु इसमें शर्त यह है कि उसको उतना ही भुगतान मिलेगा जितना कि प्रण-पत्र में लिखा है।

प्रण-पत्र का नमूना

वनारस

२ आ०	रु० ३००/—	६ जनवरी, १६४७

उपरोक्त तारीख़ से एक माह बाद में भाई लाठामल को केवल तीन सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करता हूँ।

शिवनाथदास

प्रण-पत्र का नमूना
(संयुक्त)

ज़ीरो रोड,
इलाहाबाद

१ आ०	रु० १००/—	जनवरी १२, १६४७

हम लोग श्री० हरवंश जी को उनके माँगने पर केवल एक सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करते हैं।

व्रजमोहन साहू
कृष्णमोहन साहू

प्रण-पत्र का नमूना
(संयुक्त और पृथक्)

मैस्टन रोड,
कानपुर
फ़रवरी १५, १९४७

२ आ०	रु० ६००/—

हम लोग संयुक्त और पृथक्-पृथक् भाई रामलाल जी को आज से तीन महीना बाद केवल छै सौ रुपया पहुँचे दाम देने का प्रण करते हैं।

गोपीकृष्ण अग्रवाल
सीताराम कसरवानी

भारतीय कागज़ी-मुद्रा विधान के अनुसार रिज़र्व बैंक और भारतीय सरकार को छोड़ कर अन्य कोई व्यक्ति अथवा संस्था दर्शनी और देखनदार दोनों प्रण-पत्र एक में नहीं लिख सकता है।

(५) हुण्डियाँ

यद्यपि अच्छा अधिकार देने वाले पुर्ज़े विधान में केवल तीन ही अच्छा अधिकार देने वाले पुर्ज़ों अर्थात् चेक, विनिमय के बिल और प्रण-पत्र का नाम दिया हुआ है किन्तु रिवाज के अनुसार अन्य कई पुर्ज़े भी ऐसे माने जाते हैं। हुण्डियाँ प्रायः सभी विचार से विनिमय के बिलों से मिलती-जुलती हैं। उन्हीं की तरह उन पर स्टाम्प लगता है, उन्हीं की तरह उन पर बेचान होता है, और उन्हीं की तरह उनको सकारा जाता है। हाँ, उनकी लिखावट अवश्य कुछ भिन्न होती है। किन्तु जोखमी हुण्डी अवश्य विनिमय के बिलो की तरह नहीं होती। जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे इसके लिखने का सिद्धांत ही कुछ दूसरा है। इसके अलावा जहाज़ी रसीद, डक वारन्ट, सुपुर्दगी के आदेश-पत्र (जो सब माल के सम्बन्ध के हैं), शेयर वारन्ट, देखनहार ऋण-पत्र (जो अधिक अवधि के होते हैं) आंशिक अच्छा अधिकार देने वाले

पुर्ज़े (Semi-Negotiable Instruments) कहलाते हैं। इनके अधिकारी (लहनी वालों) को इनमें की सम्पत्ति को अपने नाम से वसूल कर लेने का अधिकार तो रहता है किन्तु इन पर उनका वैसा ही अधिकार हो पाता है जैसे उन लोगों का था जो इनको उन्हें हस्तान्तरित करते हैं।

हुण्डियाँ विशेषतः दो प्रकार की होती हैं :—(१) मुद्दती, और (२) दर्शनी; मुद्दती हुण्डी वह कहलाती है जिसका भुगतान हुण्डी लिखने की तारीख या मिती के बाद हुण्डी मे लिखी हुई अवधि के पूरा होने पर किया जाय। दर्शनी हुण्डी वह कहलाती है जिसमें 'पहुँचा तुरंत' अथवा इसी तरह के अन्य कोई शब्द लिखे जायँ जिनका अर्थ यह हो कि हुण्डी में लिखी हुई मिती के बाद किसी दिन उसको दिखाने पर उसका भुगतान हो जाय।

फिर हुण्डियाँ देखनहार, फरमानजोग, धनी जोग, शाह जोग और जोखमी भी हो सकती हैं।

धनी जोग या देखनहार हुण्डी—वह है जिसका भुगतान उसको दिखाने वाले व्यक्ति को किया जाय। दर्शनी हुण्डियाँ देखनहार नहीं होती हैं।

नामयोग या फरमान जोग हुण्डी—वह है जिसका भुगतान पाने वाले धनी के आदेशानुसार किया जाय। इसमें वेचान की आवश्यकता पड़ती है।

धनी जोग हुण्डी—वह होती है जिसका भुगतान केवल पाने वाले धनी को ही हो सकता है।

शाह जोग हुण्डी—वह है जिसका भुगतान किसी शाह को ही होता है। शाह उस व्यक्ति या फ़र्म या कम्पनी को कहते हैं जिसका नाम उस सूची में लिखा हो जो किसी स्थानीय बोर्ड के द्वारा समय-समय पर प्रकाशित हुआ करती है। आधुनिक काल के बैंक या इनके अलावा

जिसको हुण्डी भरने वाला अपनी जानकारी या जाँच के मुताबिक शाह मान ले उसे भी शाह कहते हैं।

जोखिमी हुण्डी—यह आजकल तो व्यापार के ढग बदल जाने के कारण नही चलती है किन्तु पहिले इसका बड़ा रिवाज था। मान लीजिये कि बनारस के किसी व्यक्ति के पास कलकत्ते की किसी फ़र्म का आर्डर आता है। बनारस का व्यक्ति माल तैयार करके किसी ऐसे व्यक्ति के सुपुर्द कर देता था जो माल ले जाने का, उसका बीमा करने का, और उसके सम्बन्धी की हुण्डी का मिति काट कर भुगतान करने के लिये (Discounting) तैयार होता था। यह हुण्डी जोखिमी होती थी। इसका लिखने वाला माल को बेचने वाला, ऊपर वाला माल ख़रीदने वाला और पाने वाला जिसको रक्खे भी कहते हैं वह होता था जो मिती काट कर इसका भुगतान करता था। मिती काटने वाले न सिर्फ़ मिती का ब्याज, बल्कि माल को बनारस से कलकत्ते ले जाने का किराया और उतने समय की जोखिम के बीमे का प्रीमियम भी काट लेता था। यदि माल सुरक्षित कलकत्ते पहुँच जाता था तो ऊपर वाला धनी माल लेकर उसको सिकार देता था, और यदि माल रास्ते ही मे खो जाता था तो हुण्डी का भुगतान नही होता था और रक्खे वाले धनी का नुकसान होता था। इस तरह से यह हुण्डी आजकल के विनिमय के बिल, बिल्टी और बीमा-पत्र तीनो का काम करती थी। चूँकि इसका भुगतान केवल उसी शर्त पर होता था जब माल ऊपर वाले धनी को सुरक्षित अवस्था मे दे दिया जाता था, यह बिला शर्त का पुर्ज़ा नही था। अतः, इसमें और विनिमय के बिल मे यह सैद्धान्तिक अन्तर था।

चिट्ठी—उस लिखान को कहते हैं जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे को लिखान के मुताबिक किसी विशेष रक़म का भुगतान मिलने की आज्ञा एक तीसरे व्यक्ति को देवे। इस चिट्ठी का बेचान नहीं होता। सकारने वाला धनी अगर रुपया पाने वाले की पहिचान माँगे

तो रक्खे वाले की पहिचान देनी पड़ेगी। चिट्ठी पाने वाला व्यक्ति वह है जिसको चिट्ठी मिले और फिर उसके अनुसार भुगतान मिले।

बिल्टी वाली हुण्डी या चिट्ठी—वह हुण्डी है जिसके साथ बिल्टी लगी होती है। लिखने वाला धनी इस बिल्टी को पाने वाले धनी को देता है और वह इसको ऊपर वाले धनी को देता है। यदि यह लिखने वाले धनी के नाम में होती है तो इस पर बेचान भी करना पड़ता है। जब तक हुण्डी नहीं सकरती, बिल्टी ऊपर वाले धनी को नहीं दी जाती है और जब तक बिल्टी नहीं दी जाती हुण्डी नहीं सकरती।

हुण्डी लहनी वाला—जिस धनी को हुण्डी की रकम वसूल करने का अधिकार होता है उसे लहनी वाला कहते हैं। यह अधिकारी का पर्यायवाची शब्द है।

जिकरी हुण्डी तथा जिकरी चिट्ठी—जब हुण्डी लिखने वाला या बेचान करने वाला हुण्डी पर ऊपर वाले के अलावा और किसी दूसरे आदमी का नाम लिख दे कि जिससे अगर ऊपर वाला हुण्डी न सिकारे तो उससे नीचे लिखे वाला सिकार देवे तो ऐसी हुण्डी को जिकरी कहते हैं और जिसके नाम पर ऐसा लेख किया जाय उसे जिकरी वाला कहते हैं। यदि ऐसा लेख हुण्डी पर न किया जाय और हुण्डी के साथ या बाद में इस आशय का लेख भेज दिया जाय तो इस चिट्ठी को जिकरी चिट्ठी कहते हैं। जिकरी वाले धनी को इस बात का पता लगा कर ही भुगतान करने की स्वीकृति देनी चाहिये अथवा भुगतान करना चाहिये कि ऊपर वाले ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया है।

देखाड़ और नकार—लहनी वाला हुण्डी या चिट्ठी का रुपया वसूल करने के लिये जो ऊपर वाले को एक निश्चित समय के ऊपर हुण्डी या चिट्ठी दिखलाता है उसे 'देखाड़' कहते हैं। ऊपर वाला

उस हुण्डी या चिट्ठी को देख कर उसकी नक़ल अपने यहाँ किसी बही अथवा किताब में लिख लेता है। इसीको नक़ल लेना कहते हैं। यदि ऊपर वाला नक़ल नहीं करता है तो जिकरी वाला नक़ल करके यह बतला देता है कि वह बिल की अवधि बीत जाने पर उसका भुगतान करेगा अथवा नहीं।

पकती मिती (Due Date)—उस मिती, तारीख़ अथवा दिन को कहते हैं जिस दिन हुण्डी भुगतान के काबिल हो जाती है।

गली मिती की हुण्डी—अगर किसी हुण्डी का देखान पकती मिती से पहिले अथवा पकती मिती पर न किया जाय और उसके बाद किया जाय तो वह गली मिती की हुण्डी कहलाती है।

खड़ी हुण्डी—पकी हुई मिती पर हुण्डी का देखान हो जाने पर जब किसी हुण्डी का भुगतान नहीं किया जा सकता है तो वह खड़ी हुण्डी कहलाती है।

खोखा—हुण्डी का भुगतान हो जाने पर और लहनी वाले द्वारा रुपये पाने की रसीद अथवा भरपाई नियमपूर्वक हो जाने पर वह हुण्डी खोखा कहलाती है।

पहुँचा तुरत मिती—दर्शनी हुण्डी मे पहुँचा तुरत मिती अथवा अन्य कोई ऐसी ही चीज़ लिखी जाती है।

गिलास—यह वे दिन होते है जो किसी मुद्दती हुण्डी की पकती मिती का निर्णय करने के लिये उस हुण्डी मे लिखी हुई मुद्दत के साथ जोड़ दिये जाते हैं।

खरे दिन—यदि किसी हुण्डी में मुद्दत के बाद 'खरे' लिखा हो तो उसमे गिलास के दिन नहीं जोड़े जाते।

हुण्डी या चिट्ठी की भरपाई—लहनी वाले को हुण्डी या चिट्ठी के भुगतान हो जाने पर उस पर भरपाई कर देनी चाहिये, अर्थात् अपने हस्ताक्षरों सहित इस बात को लिख देना चाहिये कि हुण्डी का रुपया मिल गया है।

प्रमाण-पत्र—किसी हुण्डी के तिरस्कृत हो जाने पर उसका प्रमाण-पत्र लिया जाता है। हर जगह पर भिन्न-भिन्न लोग ऐसा करते हैं। कुछ जगहों पर पंचायतें आदि बनी हैं।

निकराई सिकराई की जिम्मेदारी—किसी हुण्डी के खड़ी रह जाने पर उसका बेची करने वाला उसके लहने वाले के प्रति उसकी निकराई सिकराई का ज़िम्मेदार होता है। भिन्न-भिन्न शहरों में इसका भिन्न-भिन्न दर है। बम्बई में यह १½ रुपया सैकड़ा है और साथ ही १२ आने सैकडे का व्याज है और राजिस्ट्री चिट्ठी का ख़र्च है।

पैठ, पर पैठ, दर पैठ और मैजरनामा—किसी हुण्डी के खो जाने पर उसको पैठ, पैठ के खो जाने पर पर पैठ, पर पैट के खो जाने पर दर पैठ और दर पैठ के खो जाने पर उसका मैजरनामा देने का प्रबन्ध करना पड़ता है। अधिकतर पैठ से ही काम चल जाता है। इन पर जो स्टाम्प लगता है वह लहनी वाले को देना पड़ता है।

हुण्डी का नमूना

श्री गणेशजी सदा सहाय

सिद्ध श्री काशी शुभस्थाने श्री पत्री भाई रणछोड़दास बद्रीदास जी जोग लिखी मथुरा जी से लाठामल नैनसुख की जैगोपाल बँचने। अपरंच हुण्डी कीनी एक आप ऊपर रुपया ४०० अँकड़े चार सौ के नीमे दो सौ के दूने पूरे देना। यहाँ रक्खे भाई मेघराज हरविलास के मिती चैत बदी अष्टमी सम्वत् २००३ से पूरे इकावन दिन पीछे दाम धनी जोग बिना ज़ाब्ता बाज़ार चलन हुण्डी की रीति ठिकाने लगाय चौकस कर देना। मिती चैत्र बदी ८, सम्वत् २००३।

पिछली तरफ

नीमे के नीमे रुपया एक सौ के चौगुना पूरा रुपया चौकस कर दीजियेगा।

रु० ४००)

श्री पत्री भाई रणछोड़दास बद्रीदास जोग देना।

(६) अन्य पुर्ज़े

वैङ्क ड्राफ्ट—यह भी एक प्रकार का विनिमय का बिल ही है। जब आधुनिक काल के बैङ्क नहीं थे बैङ्क ड्राफ्ट का काम हुण्डियाँ ही करती थी। इस समय यदि किसी पार्टी को कहीं रुपया भेजना है तो जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है वह किसी बैङ्क से एक बैङ्क ड्राफ्ट भी ले सकती है। यह बैङ्क ड्राफ्ट एक बैक का उसके किसी अन्य आफ़िस के ऊपर अथवा अढ़तिया बैक के ऊपर एक प्रकार का दर्शनी बिल होता है जिसमें यह लिखा होता है कि वह एक अमुक पार्टी को अथवा उसके आदेश के अनुसार किसी को एक अमुक रक़म दे दे। रुपया भेजने में आजकल बैंक ड्राफ्ट का बहुत चलन हो गया है।

डिविडेन्ड वारन्ट—जब कोई कम्पनी अपना डिविडैण्ट-हिस्सों पर का मुनाफ़ा बाँटती है तब वह हिस्सेदारों को डिविडैन्ट वारन्ट भेज देती है। यह चेक की शक्ल का, अथवा बिल के शक्ल का, अथवा रसीद के शक्ल का हो सकता है। चेक की शक्ल का होने पर यह कम्पनी के द्वारा लिखा जाता है और इसका ऊपर वाला कम्पनी का बैक तथा पाने वाला हिस्सेदार होता है। ऐसा वारन्ट चेक की तरह ही माना जाता है अर्थात् इस पर क्रासिङ्ग भी हो सकती है। बिल की शक्ल का होने पर भी इसकी वही पार्टियाँ होती हैं जो चेक की शक्ल का होने पर होती हैं। इसकी रसीद की शक्ल होने पर यह पाने वाले (हिस्सेदार) की तरफ़ से रसीद होती है जिस पर बीस रुपये, अथवा उससे अधिक की रक़म होने पर स्टाम्प भी लगता है। यह

कम्पनी की तरफ़ से निकाली जाती है और हिस्सेदार इस पर हस्ताक्षर करके इसको कम्पनी के बैंक में दे देता है।

ट्रेज़री बिल—भारतवर्ष में इनको केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें (सन् १९३५ से) दोनों ही चालू कर सकती हैं। यह एक थोड़े दिनों का ऋण है। जिसकी अवधि प्रायः तीन माह की होती है। रिज़र्व बैङ्क के बैंकिग विभाग के सभी दफ़्तर और उसकी शाखायें (केवल दिल्ली को छोड़ कर) इनको टैन्डर से अथवा मध्यकालीन दर से निकालते हैं। जब ट्रेज़री बिल निकालने होते हैं तब एक सूचना के द्वारा जिसमें इसकी सभी शर्तें दी रहती हैं उनके लिये टैन्डर मँगवाये जाते हैं। टैन्डर के प्रार्थना-पत्रों में ट्रेज़री बिल की शर्तों का, उनकी रक़म का और दर का खुलासा हवाला रहता है। दर प्रत्येक सौ रुपये के लिये रुपये, आने और पैसों में दी रहनी चाहिये। जितना रुपया ऋण में लेना है यदि उतने से अधिक के लिये टैन्डर आ जाते हैं तो उनकी अनुपात के हिसाब से बँटनी हो जाती है। किसी पार्टी की बॅटनी पचीस हज़ार रुपये से कम की नहीं होती है। ट्रेज़री बिल पचीस हज़ार, एक लाख, पाँच लाख, दस लाख और पचास लाख रुपयों के होते हैं। जब सप्ताह के बीच में इनको चालू करना होता है यह उसी दर से चालू कर दिये जाते हैं जो दर उस सप्ताह के स्वीकृत टैन्डरों की होती है। ट्रेज़री बिलों की अवधि के बीत जाने पर उनका भुगतान रिज़र्व बैंक के द्वारा ही हो जाता है।

साख-पत्र—साख-पत्र कई प्रकार के होते हैं। एक तो यह गश्ती (Circular) अथवा किसी विशेष पार्टी के नाम में होते हैं। दूसरे यह चालू अथवा विशेष हो सकते हैं।

गश्ती साख-पत्र—जब किसी व्यक्ति को कई स्थानों पर रुपयों की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना रहती है तब वह गश्ती शाख-पत्र लेता है। इसमें एक रक़म दी होती है जिस हद तक पाने वाले को

किसी एक अथवा कई स्थानों से रक़म लेने का अधिकार रहता है। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति को यूरोप के कई शहरों में घूमना है और उसको सब मिला कर पाँच हज़ार पौंड की आवश्यकता है जिसको वह थोड़ा-थोड़ा करके यूरोप के बडे-बड़े शहरों में लेना चाहता है। अतः, यदि उसके पास गश्ती साख-पत्र है तो वह जहाँ चाहे वहाँ जिसने ऐसा शाख-पत्र निकाला है उसकी किसी शाख में अथवा उसके किसी अढ़तिये के यहाँ उसको दिखा कर अपनी आवश्यकता के अनुसार रुपया प्राप्त कर सकता है। रुपया देने वाला जितना रुपया देता है उसको शाख-पत्र पर लिख देता है जिससे पूरी रक़म जितनी उसमें लिखी है उससे अधिक न हो जाय।

साधारण शाख-पत्र—यह साख-पत्र किसी विशेष व्यक्ति के नाम रहता है जो एक निश्चित रक़म तक भुगतान दे सकता है। जो लोग माल ख़रीदना चाहते हैं उनको भी उनके अढ़तिये के नाम ऐसा पत्र मिल जाता है, जिससे कि अढ़तिया उनको माल दे देता है और उसके लिये साख-पत्र लिखने वाले के ऊपर जो प्रायः कोई बैङ्क होता है हुण्डी कर लेता है।

चालू साख-पत्र—इस साख-पत्र में एक निश्चित रक़म दी होती है जिस तक रुपया मिल जाता है और जिसकी वापसी पर फिर भी रुपया मिल सकता है। अतः, यह बराबर चालू रहता है।

विशेष साख-पत्र—इसमें एक विशेष रक़म दी रहती है जिस तक एक बार रुपया मिल जाता है। इसके भुगतान के बाद फिर रुपया नहीं मिल सकता है। यदि आवश्यकता पड़े तो एक दूसरा साख-पत्र लिखवाना पडता है।

आई० ओ० यू०—यह पुर्ज़ा अंग्रेज़ी के ऐसे तीन शब्दों के उच्चारण के नाम से विख्यात है जिसके अर्थ हैं मै तुम्हारा देनदार हूँ। इसमें दाहिनी ओर लिखने वाले का पता और लिखने की तारीख़

होती है। फिर उसके बाद बाईं ओर जिसका ऋण चाहिये उसका नाम, पता देकर बीच में आई० ओ० यू० शब्दो के साथ-साथ रकम दी होती है और अन्त मे दाहिने किनारे पर फिर लिखने वाले का हस्ताक्षर होता है।

(७) भारतवर्ष में चेकों और बिलों को अधिक प्रचलित करने के लिये कुछ विशेष उपाय

भारतवर्ष मे चेकों और बिलो का अभी उतना चलन नहीं है जितना होना चाहिये। अतः, इसके लिये कुछ विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। यहाँ पर यह कह देना अनावश्यक न होगा कि इनके चलन से मौसमी चीज़ों की भरती की घट-बढ़ से उनकी कीमतों में वैसा प्रभाव नहीं पड़ता है जैसा इनके न चलने पर पड़ता है। बात यह है कि यह व्यापार के बढ़ने के साथ-साथ स्वयम् बढ़ और घटने के साथ-साथ स्वयम् घट जाते हैं। अतः, मुद्राओं का और इनका सम्मिलित परिमाण सदैव उतना ही रहता है जितना कि व्यापारिक आवश्यकता के अनुसार रहना चाहिये। आगे चल कर करन्सी और सराफ़ा शीर्षक अध्याय में हम रुपये-पैसे सम्बन्धी पारिभाषिक सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे जिससे हमको यह ज्ञात होगा कि रुपये-पैसे और उनके स्थान पर चलने वाले चेक और बिल इत्यादि के चीज़ों के साथ घटने-बढ़ने से उनकी कीमतो में अधिक घट-बढ़ नहीं होती है, अथवा यदि चीज़े घट जाती हैं और ये नहीं बढ़ते हैं अथवा चीज़ें घट जाती है और ये नहीं घटते हैं तो चीज़ो की कीमतो मे बड़ी घटा-बढ़ा हो जाती है। वास्तव मे चीज़ो के बढ़ने से चेक और बिल बढ़ जाते है तथा उनके घटने से ये घट जाते हैं, और ये बात मुद्रा के साथ नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भी इनके प्रयोग से मुद्रा के चलन में कमी हो जाने के कारण मुद्राओं की ढलाई और गलाई, इत्यादि का व्यय कम हो जाता है, और

सोने-चाँदी की बचत होती है। उनके घिस जाने से जो नुकसान होता है वह भी बच जाता है और साथ ही ये अन्य कार्यों में भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं। इनको अन्य देशों में व्याज पर लगा देने से आय भी हो जाती है। फिर चेक और बिल के प्रयोग के अर्थ हैं देश की बैंकिङ्ग की उन्नति और बैंकिङ्ग की उन्नति के अर्थ हैं व्यापार की उन्नति। अतः, इस विचार से भी इनका प्रयोग बढ़ना ही चाहिये।

चेक का प्रयोग बढ़ाने के लिये उसको देश की भाषा में प्रचलित करने का ध्यान रखना चाहिये। अभी तक दो-एक बैङ्क ही ऐसे हैं जिनके चेक फ़ार्म देशी भाषाओं में हैं। इन पर के बेचान, इत्यादि को भी देश की भाषाओं में करने पर अनेकों प्रकार की बाधायें उपस्थित होती हैं। अतः, उन सब को दूर करना चाहिये। अच्छा अधिकार देने वाले पुर्ज़ों के विधान का देशी भाषाओं में प्रमाणित अनुवाद होना चाहिये।

जहाँ तक हो सब लोगों को भुगतान चेक से ही देना चाहिये। जब लोगों को यह चेकें मिलेंगी तो उनका सम्पर्क अवश्य ही बैङ्कों से बढ़ेगा, जिससे बैंकिङ्ग की उन्नति होगी और साथ ही चेकों का और चलन बढ़ेगा।

बैङ्कों को भी चेकों के भुगतान मे सुविधायें देनी चाहिये। इस समय एक चेक के भुनाने मे बडा समय नष्ट हो जाता है। दूसरे देशों मे यह बात नहीं है। अतः, हमारे बैङ्कों को भी उन्हीं की तरह काम करना चाहिये।

बिलों का प्रयोग बढ़ाने के अर्थ हैं, हुण्डियों का प्रयोग बढ़ाना, क्योंकि भारतवर्ष में हुण्डियाँ वही काम करती हैं जो अन्य देशों मे बिल करते हैं। हुण्डियों की भाषा बहुत कठिन है। अतः, उसको साधारण बना देनी चाहिये। इधर कुछ ऐसा प्रयत्न किया भी गया है। इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध के नियम सारे देश भर के लिये

एक से कर देने चाहियें। अभी उनमें भिन्नता होने के कारण बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। तीसरे बैङ्कों को उन व्यापारियों को अधिक सुविधायें देनी चाहिये जो अपना व्यवसाय हुण्डियों के सहारे करते हैं। वास्तव में हुण्डियों के प्रयोग के पक्ष में बहुत प्रचार करने की आवश्यकता है।

---

१८. स्टाक एक्सचेञ्ज

(१) स्टाक एक्सचेंज क्या है और उससे कौन से लाभ हैं ? (२) भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेंज (३) विदेशी स्टाक एक्सचेंज (४) स्टाक एक्सचेंजों में लेवा-बेची के लिये स्टाकों का दर्ज कराना (५) गत युद्ध के समय भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेंजों में घटा-बढ़ी, इत्यादि (६) सिक्योरिटियों में घट-बढ़ के कारण (७) स्टाकों की लेवा-बेची।

संसार के स्टाक एक्सचेञ्जों का प्रादुर्भाव तो केवल आधुनिक काल की परिस्थितियों के ही कारण हुआ है। वास्तव मे इनकी बढ़ती तो विशेष तौर पर परिमित दायित्व की कम्पनियों की बढ़ती के ऊपर ही निर्भर है। फिर स्टाक एक्सचेञ्जों के खुलने के पहिले करन्सी और सराफ़ा की भी उन्नति हो जानी चाहिये। वास्तव में इनकी उन्नति के बिना उद्योग-धन्धे नहीं पनप सकते और उद्योग-धन्धों के पनपे बिना कम्पनियाँ नहीं खुल सकतीं। इङ्गलैण्ड और हालैण्ड इसमे सबसे अगुआ थे। लन्दन का स्टाक एक्सचेञ्ज जो केवल सन् १७७३ ही मे स्थापित हुआ था आजकल न केवल इङ्गलैण्ड की बल्कि ससार की आर्थिक परिस्थितियों का एक विशेष द्योतक माना जाता है। उसकी संस्थापना के सौ वर्ष के अन्दर ही यूरोप के अन्य स्टाक एक्सचेञ्ज भी खुल गये। इनमें फ्रान्स का स्टाक एक्सचेञ्ज सबसे प्रमुख था और उसके बाद शीघ्र ही जर्मनी और अमेरिका के स्टाक एक्सचेञ्ज भी खुल गये। भारतवर्ष में ये उन्नीसवीं शताब्दि में ही खुल पाये। इसका एक मात्र कारण यहाँ पर के उद्योग-धन्धों का देर में खुलना था। इङ्गलैण्ड जिस समय औद्योगिक क्रान्ति की अन्तिम सीढ़ियो से निकल रहा था भारतवर्ष उस समय अपने पुराने दकियानूसी ढङ्गों पर ही चल रहा था। उस समय न केवल यहाँ के उद्योग-धन्धों की ही अवस्था

पिछड़ी हुई थी बल्कि करन्सी की दशा भी बड़ी ही डाँवाडोल थी और आधुनिक काल की बैंकिङ्ग का तो सिर्फ़ प्रारम्भ ही हो रहा था। देश में न तो रेलें थीं और न शीघ्र सूचना देने के कोई साधन थे। यह सब बातें तो दूर रहीं, मनुष्य का स्वयम् का जीवन भी ख़तरे में था। अतः, उसकी सम्पत्ति बैंकों में और अन्य उद्योग-धन्धों में न लग कर ज़मीन के अन्दर गड़ी रहती थी। किन्तु धीरे-धीरे हालत सुधरी और कम्पनियाँ खुलने लगीं तथा उनकी संख्या के बढ़ने के साथ साथ स्टाक एक्सचेञ्ज भी खुलने लगे। सन् १८५७ के कम्पनी विधान ने इसमें बड़ी सहायता पहुँचाई। बम्बई का स्टाक एक्सचेञ्ज जो भारतवर्ष का एक प्रमुख स्टाक एक्सचेञ्ज है इसके बाद ही स्थापित हुआ। हाँ, वहाँ पर स्टाकों की लेवा-बेची इसके पहिले से भी होती आ रही थी, किन्तु वह सगठित रूप से नहीं होती थी। कलकत्ते में भी वैसे तो स्टाकों की लेवा-बेची १८ वीं शताब्दि से ही होती आती थी, किन्तु कलकत्ता स्टाक एक्सचेञ्ज की संस्थापना तो और भी देर से हुई। इस समय वहाँ पर कई स्टाक एक्सचेञ्ज हैं जिनका विशेष अध्ययन हम आगे चल कर करेंगे।

(१) स्टाक एक्सचेंज क्या है और उससे कौन से लाभ हैं?

स्टाक एक्सचेञ्ज एक ऐसा बाज़ार है जिसमें कम्पनियों के हिस्से और ऋण-पत्र तथा सरकार के भिन्न-भिन्न प्रकार के बांड, प्रण-पत्र और अनेकों प्रकार के ऐसे ही कागज़ात खुले तौर पर ख़रीदे और बेचे जाते हैं। इसमें एक सस्था होती है जिसके सदस्य स्वयम् तो अपना काम बहुत कम किन्तु औरों का काम कहीं अधिक किया करते हैं। वस्तुतः, यह दलाल कहे जाते हैं। अस्तु, हम यह कह सकते हैं कि इसमें सर्वसाधारण की अधिक दिलचस्पी होती है। सच बात तो यह है कि यह उन्हीं की संस्था है हो, यद्यपि विधान के अनुसार यह

केवल अपने सदस्यों अर्थात् दलालों ही की संस्था कहा जा सकती हैं। इसमें इसके सदस्य दूसरों की ओर से हिस्सों, ऋण-पत्रों तथा अन्य ऐसे ही कागज़ातों की लेवा-वेची इसके कुछ निश्चित नियमों के अनुसार करते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह बहुत ही लाभदायक है। परिमित दायित्व के सिद्धान्त के चालू हो जाने से अनेकों कम्पनियाँ खुल गई हैं और उनमें बहुत से रुपये लगे हुये हैं। साथ ही आज-कल की सरकारों ने भी बड़ा रुपया कर्ज़ ले रक्खा है। अतः, इन सब के जो कागज़ात हैं उनके इसमे सुविधापूर्वक खरीद और बिक जाने के कारण ही वह इतने लोकप्रिय हो गये हैं। जो चीज़ें इस तरह से ख़रीदी और बेची नहीं जा सकती हैं उनमें लोग रुपया लगाने के इतने पक्ष में नहीं होते हैं। अब, क्योंकि ये इतनी सुविधा के साथ ख़रीदे और बेचे जा सकते हैं इनमें लोग इतना रुपया भी लगाते हैं। वास्तव में इन्हीं की लोकप्रियता के कारण कम्पनियों की लोक-प्रियता भी बढ़ती जा रही है। भारतवर्ष में जब कि सन् १६१० में इनकी सख्या केवल २,००० के लगभग थी, आजकल इनकी संख्या लगभग १५,००० के है। कम्पनियो की लोकप्रियता के अन्य भी कई कारण हैं, किन्तु उनमें से उनके हिस्सों इत्यादि के आसानी से ख़रीद और बिक जाने का भी कारण एक प्रमुख कारण है। सरकारों को भी ऋण मिलने में जो इतनी सफलता मिल रही है वास्तव मे उसका भी यही कारण है कि सब जानते हैं कि उनके कागज़ातों को जब कभी भी रुपयों की आवश्यकता हो इन स्टाक एक्सचेञ्जों मे बेचा जा सकता है। वास्तव में वैसे तो इनमे अधिकतर तो सटोरियों का ही काम होता है किन्तु रुपया लगाने वाले भी इनकी मार्फ़त अपना काम कर सकते हैं। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति को किसी कम्पनी के कुछ हिस्से चाहियें और उसको वह हिस्से उस कम्पनी से सीधे नहीं प्राप्त हो सकते हैं तब वह उनको इनमें ख़रीद सकता है। प्रत्येक बड़ी कम्पनी के कुछ न कुछ हिस्से तो प्रायः इसमें आते-जाते ही रहते हैं।

अथवा यदि कोई हिस्सेदार रुपयों की आवश्यकता होने के कारण अपने हिस्से. बेचना चाहता है तो भी उसका काम यहाँ पर हो जाता है। सटोरिये तो इनकी लेवा-बेची से बराबर लाभ उठाते ही रहते हैं। यहाँ पर यह भी प्रश्न उठ सकता है कि स्टाक एक्सचेञ्ज जो सटोरियों को उनकी सट्टेबाज़ी में सहायता पहुँचाते हैं उससे भी देश का कोई लाभ होता है अथवा नहीं। सच तो यह है कि सट्टेबाज़ी बहुत ही बदनाम है और प्रायः लोग इसको घृणा की दृष्टि से ही देखते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। सट्टेबाज़ी से चीज़ों की क़ीमतों की विषमता बहुत कम हो जाती है। उनकी ख़रीद और बिक्री के लिये बहुत से व्यक्तियों के तैयार रहने से उनमें लेवा और बेची के मूल्य में अधिक अन्तर नहीं रहता है और चीज़ें हर मूल्य पर ख़रीदी और बेची जा सकती हैं। इस तरह से उनके लिये हर समय एक स्वतन्त्र बाज़ार तैयार रहता है। सट्टेबाज़ी और जूये में अन्तर है। जबकि सट्टेबाज़ बाज़ार के रङ्ग-ढङ्ग को समझता है जुआड़ी उससे बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है। वह तो केवल अपने अनुमान से ही काम करता है। संक्षेप में स्टाक एक्सचेञ्जों से निम्न लाभ हैं :—

(१) प्रथम तो यह कि ये बचत की रक़म को पूँजी में परिवर्तित कर देते हैं। जिन कम्पनियों के हिस्सों की क़ीमतें बराबर बढ़ती रहती हैं उनमें लोग बराबर रुपया लगाते रहते हैं। वास्तव में लोग स्टाक एक्सचेञ्ज में ख़रीद और बिक्री के हिस्सों, इत्यादि के मूल्य को बराबर देखते रहते हैं और जिनके मूल्य बढ़ते रहते हैं उनमें रुपया लगाते रहते हैं और जिनके मूल्य घटते रहते हैं उनमें लोग रुपया नहीं लगाते हैं।

(२) दूसरे यह कि ये कम्पनियों की पूँजी को द्रवित बना देते हैं वैसे तो उनमें जो पूँजी लग जाती है वह उनके जीवन काल में वापस नहीं होती है किन्तु इनके कारण वह बिकती रहती है। जिन हिस्सों की लेवा-बेची स्टाक एक्सचेञ्जों में होती है वह उन हिस्सों की अपेक्षा

अधिक आसानी से बिक जाते हैं जिनकी लेवा-बेची उनमें नहीं होती हैं। इसके अतिरिक्त जो हिस्से, इत्यादि स्टाक एक्सचेञ्जों में खरीदे-बेचे जा सकते हैं उनका रेहन करने पर ऋण भी मिल जाता है। वास्तव में उनके मूल्य आसानी से मालूम हो जाते हैं।

(३) तीसरे और अन्तिम यह कि इनमें निश्चित नियमों के अनुसार काम होने से प्रत्येक लेवा-बेची सुरक्षित रहती है। न तो उसमें किसी प्रकार की जालसाज़ी होने की सम्भावना रहती है, न दाम में कोई अन्तर पड़ सकता है और न मनमानी दलाली, इत्यादि ही देनी पड़ती है। सब बातें एक ढङ्ग से होती हैं।

(२) भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेञ्ज

जैसा कि पहिले ही बताया जा चुका है भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेञ्जों में सबसे मुख्य स्टाक एक्सचेञ्ज बम्बई का है, और उसके बाद कलकत्ते का तथा फिर और दूसरे हैं। यहाँ पर हम इनमें से प्रत्येक की ऐतिहासिक उन्नति का थोड़ा-बहुत अध्ययन करेंगे।

बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज—यह स्टाक एक्सचेञ्ज देशी स्टाक एक्सचेञ्ज (Native Share and Stock Brokers Association) के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका नियमित संगठन सन् १८७७ में हुआ था। इसके पहिले भी उस जगह पर जहाँ अब एलफिन्सटन सरकिल स्थित है सिक्योरिटियों की लेवा-वेची हुआ करती थी। उस समय का व्यापारी वर्ग केवल छै ही काम करने वालों को मानता था। लेवा-बेची के लिये न तो कोई संग्रहीत नियम थे और न उसके लिये कोई समय ही निर्धारित था। सदस्यों के काम की आजकल की तरह निगरानी करने के लिये भी कोई कमेटी नहीं थी। सन् १८६० की अमेरिका की घरेलू लड़ाई के समय रुई के व्यापार को प्रोत्साहन मिलने से लोगों के पास जो रुपया बढ़ गया था उसके कारण उनमें सिक्योरिटियों में भी सट्टा करने की प्रवृत्ति

बढ़ गई। अतः, उसी समय दलालों की संख्या भी एकदम छै से साठ तक हो गई। सेठ प्रेमचन्द रामचन्द इन सबके मुखिया माने जाते थे और उनको इस स्टाक एक्सचेञ्ज को बढ़ाने का बड़ा ही श्रेय है। अमेरिका की घरेलू लड़ाई के समाप्त होते ही रुई की कीमत भी एकदम से गिर गई और उसके साथ ही कम्पनियों के हिस्सों की भी कीमतें गिर गईं। सन् १८६५ की पहिली जुलाई को शुक्रवार का दिन था और उस दिन वायदे के सौदों का निपटारा होना था। काम करने वालों को बड़ा घाटा लगा और बहुत से लोग तो दिवालिया घोषित कर दिये गये। अतः, उस दिन को 'काला शुक्र' कहते हैं।

अभी तक सारा काम मैदान में एक पेड़ के नीचे हुआ करता था। किन्तु उपरोक्त घटना के बाद लोगों को इसके लिये एक हाल की ज़रूरत महसूस हुई। अतः, सन् १८७५ में ३०० दलालों का एक एसोसियेशन बना और उसने १३० रु० के मासिक किराये पर दलाल स्ट्रीट में एक हाल लिया। सन् १८७७ में वर्तमान एसोसियेशन बना और तब से यह बराबर काम करता आ रहा है। सन् १९२० में इसके ४५१ सदस्य थे, किन्तु उसी वर्ष १०१ सदस्यों को बढ़ाने का निश्चय हुआ था किन्तु वास्तव मे केवल ३२ सदस्य ही बढ़ाये गये। इनके लिये जो कार्ड बेचे गये थे उनकी कीमतें ४८,००० रु० तक गईं। सदस्यो का वार्षिक चन्दा प्रारम्भ में तो ४ रु० था किन्तु अब धीरे-धीरे बढा कर ५१ रु० तक कर दिया गया है। प्रवेश शुल्क जिसको कार्ड का मूल्य कह सकते हैं सन् १८९६ के १००० रु० से अब तक सबसे अधिक ४८,४११ रु० तक पहुँच चुका है। इसका मूल्य बाज़ार में काम के घटने-बढ़ने के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। जब दलालों की आय अधिक प्रतीत होने लगती है इसका मूल्य भी चढ़ जाता है और जब उनकी आय गिर जाती है तब इसका भी मूल्य घट जाता है।

प्रथम महायुद्ध के पहिले तक यहाँ पर काम करने का ढङ्ग बहुत ही ख़राब था। केवल सूनी कपड़ों की विशेषकर रुई ओटने और दबाने की मिलो के हिस्सों की ही लेवा-बेची इसमें हुआ करती थी। तैयार और वायदे के सौदों के लिये कोई नियम नहीं थे। हाल में भी जिसकी तबीयत चाहती थी वह घुस जाता था। अतः, बहुत से लोग स्वयम् लेवा-बेची करने लगते थे, खोञ्चे वाले चिल्लाया करते थे, फ़कीर और पाकिटमार लोगों को परेशान किया करते थे।

सन् १६१७ में बम्बई में एक और स्टाक एक्सचेञ्ज खुला था। सन् १६२० में उसने उपरोक्त स्टाक एक्सचेञ्ज के साथ मिल जाने की इच्छा ज़ाहिर की किन्तु उसके स्वीकृत न होने पर कुछ दिनो बाद वह टूट गया।

सन् १६२० के बाद बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज में स्टाको की क़ीमतों के गिर जाने से लोगों को बड़ी हानि उठानी पड़ी और बहुत से लोग दिवालिया घोषित कर दिये गये। अतः, पूँजी की उद्योग-धन्धो की ओर जाने की प्रवृत्ति में रुकावट पड़ने के कारण इसकी कटु आलोचना होने लगी। इसके फल-स्वरूप सन् १६२३ में इसके विषय में जाँच-पड़ताल करने के लिये एक कमेटी जो अटले कमेटी के नाम से मशहूर है मुक़र्रर की गई किन्तु उसकी सिफ़ारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। सन् १६२५ मे गवर्नमेंट ने इसको एक अधिकार-पत्र देना चाहा जिससे कि वह इसके नियमों को बनाने का अधिकार तो स्वयम् लेना चाहती थी और बम्बई में इसको इस काम का एकाधिपत्य अधिकार देना चाहती थी। किन्तु इसने उसको स्वीकार नहीं किया। अधिकार-पत्र की बात अस्वीकृत हो जाने पर गवर्नमेंट ने प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा मे सिक्योरिटीज़ कन्ट्राक्ट्स कन्ट्रोल बिल पेश किया और सन् १६२७ मे इस सम्बन्ध का एक विधान बन गया। यह विधान बम्बई और अहमदाबाद के शहरों पर लागू है और इसके अनुसार इनमे स्टाक एक्सचेञ्ज खोलने के लिये सरकार की स्वीकृति लेना और अपने

नियमों को उसके सामने रखना आवश्यक हो गया है। गवर्नमेंट को इस विषय में पूरी ताकत दे दी गई है। वह चाहे तो किसी स्टाक एक्सचेञ्ज को खुलने दे अथवा नहीं और किसी स्टाक एक्सचेञ्ज को बन्द भी कर सकती है।

सन् १९२९ में संसार भर में चीज़ों की कीमतें गिरना आरम्भ हुईं और भारतवर्ष में विशेषकर सन् १९३०-३२ के राजनैतिक आन्दोलन के कारण इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। अतः, बम्बई स्टाक एक्सचेंज मे फिर दिवाले पिटने लगे जिसके कारण १९३६ में मोरिसन कमेटी बैठाली गई। इसकी सिफ़ारिशें तीन भागों में विभक्त थीं (१) एक तो बोर्ड की इसके कामो में दस्तन्दाज़ी करने की ताकत, (२) दूसरे इसके काम करने के ढङ्ग को इस प्रकार बदल देने की कि जिससे बेजा सट्टेबाज़ी न हो, और (३) तीसरे एक्सचेञ्ज की प्रबन्ध करने वाली मशीन में सुधार करने की। इन सिफ़ारिशों में से बहुत-सी बातें तो मान ली गईं और बहुत-सी नहीं।

इण्डियन स्टाक एक्सचेंज लिमिटेड—सन् १९३८ से बम्बई में एक दूसरा स्टाक एक्सचेञ्ज भी काम कर रहा है। इसका नाम इण्डियन स्टाक एक्सचेञ्ज लिमिटेड है। यह गारेन्टी से लिमिटेड है। प्रत्येक सदस्य के ऊपर नुकसान होने पर १०० रु० तक देने का दायित्व है और सदस्यता की फ़ीस १२० रु० वार्षिक है। इसकी एक बड़ी अच्छी प्रबन्धक कमेटी है। गवर्नमेन्ट ने इसको मंजूरी नहीं दी है तो भी यह वायदे का काम करता है जो ग़ैरकानूनी है, किन्तु वह सिलटवे जाते हैं, अतः, कोई कठिनाई नहीं पड़ती है। जो सौदा न सिलटे वह अदालत में नहीं जा सकता है। एक ही शहर में दो स्टाक एक्सचेञ्जों का होना तो आपत्तिजनक नहीं है; न्यूयार्क, लन्दन, पेरिस और बर्लिन में दो स्टाक एक्सचेंज हैं, किन्तु उनके लिये काफ़ी काम होना चाहिये। बम्बई में अभी उतना काम नहीं है। अतः, यह दोनों स्टाक एक्सचेंज एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी कहे जा सकते हैं।

एक बात अवश्य है जो यह है कि जब कि पुराने एक्सचेंज मे केवल उन्हीं स्टाकों की लेवा-बेची होती है जिनकी कम्पनियाँ बम्बई ही में हैं, इस स्टाक एक्सचेंज में भारतवर्ष के अन्य स्थानों की कम्पनियों के स्टाकों की भी लेवा-बेची होती है। तो भी इसमें अभी बहुत कम काम होता है।

कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज—कलकत्ते में स्टाकों की लेवा-बेची बहुत दिनों से होती आ रही थी। वास्तव में वहाँ पर यह काम १८वीं शताब्दी में भी होता था। जिस जगह पर आजकल चार्टर्ड बैंक के और जेम्स फिनले कम्पनी के दफ्तर हैं उस जगह पर नीम के एक पेड के नीचे शेयरों की लेवा-बेची होती थी। सन् १८४४ में जेम्स फिनले की और सन् १९०५ में चार्टर्ड बैंक की इमारतें बनी। चार्टर्ड बैंक की इमारत के बन जाने से स्टाक एक्सचेंज का काम उस स्थान से हट कर आजकल जहाँ पर इलाहाबाद बैंक है उसके पास होने लगा। किन्तु अभी तक यह खुले मैदान में ही होता था। सन् १९०८ में कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज स्थापित किया गया और उसका काम नं० २ न्यू चीना बाज़ार स्ट्रीट में जिसको अब नं० २ रायल एक्सचेंज प्लेस कहते हैं होना प्रारम्भ हुआ। उस समय इसके १५० सदस्य थे और बिजली तथा फ़रनीचर लगवाने के लिये कुल ३,५२५ रु० इकट्ठा किया गया था।

प्रथम महायुद्ध के समय इसमे काम बढा। अतः, सन् १९२३ में इसकी रजिस्ट्री हुई। उस समय २१० फ़र्म और ४४२ व्यक्ति इसके सदस्य थे। इसकी अधिकृत पूञ्जी ३ लाख रुपये रक्खी गई जो १,००० रुपयों के ३०० हिस्सों में विभक्त है।

१९०८ मे इसमें ९ सदस्यों की एक प्रबन्धक कमेटी बनी थी जिसमें पाँच यूरोपियन और चार भारतीय थे। सन् १९१३ में इसके ११ सदस्य हो गये थे जिसमें से छः यूरोपियन और पाँच भारतीय थे। सन् १९१८ में १२ सदस्य हुये, जिसमें से ४ यूरोपियन, ४ मारवाडी

और ४ बंगाली रक्खे गये। सन् १६२१ में इसमें २ अन्य भारतीय सदस्य बढ़ाये गये। फिर सन् १६३६ में २ और भारतीय सदस्य बढ़े। इन सबका निर्वाचन हर साल होता है, और इस बड़ी कमेटी में से कुछ छोटी-छोटी कमेटियाँ बनती हैं। इसमें केवल तैयार स्टाकों का ही सौदा होता है।

मद्रास स्टाक एक्सचैंज—यह सन् १६२० में स्थापित किया गया था। उस समय इसमें लगभग १०० सदस्य थे। प्रवेश-शुल्क के कार्ड १००० रु० के पड़ते थे, और १०० रु० वार्षिक चन्दा देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कार्यशील सदस्य को ३००० रु० डिपाज़िट करना पड़ता था। सौदे अधिकतर स्थानीय मिलों के शेयरों के ही हुआ करते थे किन्तु उनकी संख्या अधिक न होने के कारण कार्यशील सदस्यों की संख्या घटती गई। प्रारम्भ के २५ कार्यशील सदस्यो के स्थान में केवल तीन या चार ही कार्यशील सदस्य रह गये। अतः, सन् १६२३ में यह स्टाक एक्सचेञ्ज बन्द कर दिया गया।

सन् १६३७ में शेयरों, इत्यादि की संख्या बढ़ जाने के कारण यहाँ पर फिर एक शेयर बाज़ार खोला गया। इसमें इस समय दो प्रकार के सदस्य हैं, एक तो संस्थापक सदस्य और दूसरे साधारण सदस्य। प्रथम प्रकार के सदस्य ५०० रु० शुल्क देकर बने थे और द्वितीय प्रकार के सदस्य १००० रु० शुल्क देते हैं। इनको ५००० रु० का डिपाज़िट भी करना पड़ता है और २५ रु० वार्षिक चन्दा भी देना पड़ता है। यहाँ पर तैयार और वायदे के दोनों सौदे होते हैं। इसमें प्रायः स्थानीय मिलों के स्टाकों में ही काम होता है।

बंगाल शेयर ऐण्ड स्टाक एक्सचेंज असोसियेशन लिमिटेड—क्योंकि कलकत्ता स्टाक एक्सचेञ्ज में केवल तैयार सौदे ही होते हैं, अतः इस असोसियेशन की आवश्यकता पड़ी। इसकी स्थापना सन् १६३७ में ५,००,००० रु० की पूँजी से हुई जो १००० रु० के

५०० हिस्सों में विभक्त है। सदस्यों की कमेटी १४ संचालको और एक सभापति की है।

अहमदाबाद स्टाक एक्सचेंज—इसकी स्वीकृति बम्बई की सरकार के द्वारा हुई है। यह सन् १९३९ में स्थापित किया गया था। इसके नियम बम्बई के स्टाक एक्सचेञ्ज के नियमों से मिलते-जुलते हैं। इसमें भी प्रायः स्थानीय कम्पनियों के शेयरों का सौदा होता है।

पंजाब स्टाक एक्सचेंज लिमिटेड, लाहौर—उत्तरी भारत में सबसे पहिला स्टाक एक्सचेञ्ज सन् १९३४ में लाहौर स्टाक एक्सचेञ्ज के नाम से खोला गया। सन् १९३६ में एक दूसरा स्टाक एक्सचेञ्ज पञ्जाब स्टाक एक्सचेञ्ज के नाम से स्थापित हुआ, उसने उपरोक्त स्टाक एक्सचेञ्ज को ख़रीद लिया। इसकी पूँजी एक-एक हज़ार रुपयो के सौ हिस्सों में बटी हुई है। इसमें ५०० रु० तो प्रवेश शुल्क और १५ रु० मासिक स्थानीय सदस्यो से तथा ५ रु० मासिक बाहरी सदस्यो से चन्दा लिया जाता है। सौदे केवल नक़द ही होते हैं, और सिक्योरिटियाँ भी बहुत नहीं हैं।

यू० पी० स्टाक एक्सचेंज एसोसियेशन—इसकी संस्थापना कानपुर में सन् १९४० में हुई थी। इसके नियम कलकत्ता और बम्बई के स्टाक एक्सचेञ्जों के नियमो के अनुसार बने है। इसकी पूँजी ५०,००० रु०।है, जो ५० रुपये के, १०० हिस्सो मे विभक्त है। इसके लगभग ३० सदस्य हैं और ६ सदस्यों की इसकी एक प्रबन्धक कमेटी है। इसमें १५ स्थानीय मिलों और १० बाहरी मिलो के हिस्सो में सौदे होते हैं। वायदे के सौदे केवल छै ही प्रकार के हिस्सो के होते हैं।

हैदराबाद स्टाक एक्सचेंज, लिमिटेड—सन् १९४२ में यह नया स्टाक एक्सचेञ्ज खुला था। इसमें स्टेट के अन्दर के मिलो के शेयरों के हो सौदे होते हैं। इसके नियम सरकार द्वारा पास किये जा चुके हैं।

(३) विदेशी स्टाक एक्सचेञ्ज

विदेशी स्टाक एक्सचेञ्जों में मुख्य न्यूयार्क; लन्दन, पेरिस और बर्लिन के स्टाक एक्सचेञ्ज हैं। इनमें लेवा-बेची बहुत ही उन्नत अवस्था में होती है।

न्यूयार्क सिक्योरिटी मारकेट—न्यूयार्क में स्टाकों की लेवा-बेची तो सन् १७९२ से ही होती आ रही थी, किन्तु न्यूयार्क के स्टाक एक्सचेञ्ज ने अपना वर्तमान् रूप केवल सन् १८६५ ही में धारण किया था। सन् १९१७ से इसमें बराबर उन्नति होती आ रही है। कभी-कभी इसमें इतना अधिक काम आ जाता है कि वह बहुत मालूम पड़ने लगता है और इसी कारण वहाँ पर न्यूयार्क कर्ब एक्सचेञ्ज और बहुत से प्राइवेट एक्सचेञ्ज खुल गये हैं।

न्यूयार्क स्टाक एक्सचेञ्ज बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज की ही तरह स्वेच्छा से बना हुआ अगठित और बिना लाभ की दृष्टि से खोला हुआ एसोसियेशन है। इसका कोई अधिकार-पत्र नहीं है। यह केवल अपने ही उपनियमो के अनुसार संगठित है। सन् १९३४ में वहाँ पर एक सिक्योरिटीज़ एक्सचेञ्ज ऐक्ट बना था जिसके अनुसार एक सिक्योरिटीज़ एक्सचेञ्ज कमीशन की स्थापना हुई थी जिसकी देख-रेख में आजकल इसका काम चलता है। इसके बोर्ड में इसके सदस्य भी हैं और कुछ बाहरी लोग भी हैं अतः, इस बात में यह भारतीय स्टाक एक्सचेञ्जो से भिन्न हैं। इसकी तेरह कमेटियाँ हैं जिनमें इसका काम बँटा हुआ है। इनके काम इनके नाम से ही मालूम हो जाते हैं, अतः वह निम्नांकित हैं।

(१) प्रवेश की कमेटी, (२) झगड़ो के निपटारे की कमेटी, (३) प्रबन्धक कमेटी, (४) बांडो और नोटो के लेवा-बेची के देख-रेख की कमेटी, (५) सौदो को पूरा कराने की कमेटी, (६) विधान कमेटी, (७) अर्थ कमेटी, (८) क़ानून की कमेटी, (९) खुदरे लेन-देन की

कमेटी (Committee of odd-lots and specialists), (१०) विज्ञापन कमेटी, (११) दर और कमीशन की कमेटी (१२) सिक्योरिटीज़ कमेटी, और १३) स्टाक दर्ज कराने की कमेटी।

इसकी सदस्यता के लिये भी उसी तरह से जैसे अन्य स्टाक एक्सचेञ्जों की सदस्यता के सम्बन्ध में होता है एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। इसमे प्रार्थी के विषय में बहुत-सी बातों का खुलासा विवरण रहता है। प्रार्थी को किसी पुरान सदस्य से नामज़द भी करवाना पड़ता है और साथ ही ४,००० डालर की प्रवेश शुल्क देनी पड़ती है। केवल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ही कम से कम २१ वर्ष की आयु के ही नागरिक इसके सदस्य हो सकते हैं। उसके निर्वाचन के लिये कमेटी के दो-तिहाई सदस्यों की राय होनी चाहिये। इस समय १३७५ सदस्यो की हद बना दी गई है। सदस्य पाँच प्रकार के होते हैं—(१) कमीशन पाने वाले दलाल (Commission Brokers)—ये रुपया लगाने वाले लोगों और सटोरियो दोनों से काम पाते हैं। अतः, ये उन्ही की ओर से लेवा-बेची करते हैं, और इसके लिये कमीशन पाते हैं। ये अपना स्वयम् का काम नहीं करते ह। (२) दो डालर वाल दलाल (Two Dollar Brokers)—ये प्रत्येक १०० शेयरो की लेवा-बेची के लिये पहिले केवल दो डालर का कमीशन पाते थे। अतः, अब भी यद्यपि आजकल इनकी दलाली बहुत बढ़ गई है ये इसी नाम से पुकारे जाते हैं। इनको सीधा काम नहीं मिलता है। प्रथम वर्ग के दलालो के पास बहुत अधिक काम रहने के कारण ये लोग उन्हीं से काम पाते हैं। (३) विशेष प्रकार के स्टाकों के काम करन वाल (Specialist)—ये कुछ विशेष प्रकार की सिक्योरिटियों में ही काम करते हैं। जिस विशेष सिक्योरिटी मे एक दलाल काम करता है वह उसीमें करता है। यह दलाली भी करते हैं और अपनी बद भी सौदा करते हैं। सवेरे बाज़ार यही लोग खोलते हैं, अर्थात् सबसे पहिले इन्हीं को अपनी सिक्योरिटियों के दर बताने पड़ते

है। (४) खुदरे स्टाकों की लेवा-बेची करने वाले—वैसे तो स्टाकों की लेवा-बेची १०० इकाई से कम की नहीं होती, किन्तु ये लोग इससे कम की इकाई में भी काम करते हैं। न्यूयार्क एक्सचेञ्ज में यह खास विशेषता है जिससे छोटे-छोटे रुपया लगाने वालों और स्टोरियो को बड़ी सुविधा हो जाती है। और (५) स्वयम् लेवा-बेची करने वाले (Floor Traders)—ये लन्दन के जाबर और बम्बई के तारनी वालों की तरह के होते हैं, और अपने बद काम करते हैं। किन्तु ये उपरोक्त की तरह किसी विशेष स्टाक में काम न करके उनमें काम करते हैं जो किसी विशेष समय में बहुत प्रिय होते हैं।

इस एक्सचेंज मे सब लेवा-बेची नक़द ही होती है, किन्तु उसके भी पाँच रूप हो सकते हैं (१) नक़द—इसमें सुपुर्दगी और भुगतान उसी दिन पूरे कर दिये जाते हैं जिस दिन कन्ट्राक्ट होता है। (२) साधारण तरीक़े पर (Regular way)—इसमें सुपुर्दगी और भुगतान जिस दिन कन्ट्राक्ट होता है उसके दूसरे दिन पूरे किये जाते हैं। (३) तीसरे दिन की सुपुर्दगी—इसमे तीसरे दिन सुपुर्दगी और भुगतान दिया जाता है। इससे उन लोगों को फ़ायदा होता है जो सौदा तो किया चाहते हैं किन्तु जिनके पास रुपया नहीं है। ऐसे लोग इसी बीच में स्टाक बेच भी देते हैं। फिर इससे उन लोगों को भी सुविधा हो जाती है जो न्यूयार्क के बाहर के हैं। (४) बेचने वाले की इच्छा पर सुपुर्दगी इसमे कंट्राक्ट के दो दिन बाद और साठ दिन के अन्दर बेचने वाला जब चाहे तब अपनी इच्छा पर २४ घंटे की सूचना दे कर ख़रीदार को सुपुर्दगी दे सकता है। (५) जब जारी किये जायँ—इसमें सिक्योरिटीज़ कमेटी के निश्चय पर जब जारी किये जायँ हिस्सों की सुपुर्दगी दी जाती है। यह उस समय होता है जब कोई पुरानी कम्पनी कुछ नये हिस्से जारी करती है और उनको पुराने हिस्सेदारों को उनके जो हिस्से होते हैं उसके अनुपात मे बाज़ार

दर से कुछ कम दर पर देती है। अतः, यह अधिकार बेचा भी जा सकता है।

इनका (बलन) क्लिअरिङ्ग वैसे तो सन् १८६२ में प्रारम्भ किया गया था, किन्तु वास्तव में यह सन् १६२० ही में स्टाक क्लिअरिङ्ग कारपोरेशन की स्थापना के बाद से ही एक ढंग पर होने लगा है। इस कारपोरेशन की पूँजी सौ-सौ डालर के पाँच हज़ार हिस्सों में विभक्त है। सारे हिस्से एक्सचेंज के पास हैं जो इसका प्रबन्ध करता है। इसके अतिरिक्त सदस्यों के द्वारा प्रत्येक की क्लिअरिङ्ग की आवश्यकता के अनुसार जितने की आवश्यकता पड़ती है उससे एकत्रित किया गया दस मिलियन डालर का एक क्लिअरिङ्ग कोष भी है।

इस एक्सचेंज की एक विशेषता इसके टिकट मे है जिसके अनुसार स्टाकों की दरें जैसे-जैसे काम होता है वैसे-वैसे बिजली के द्वारा एक पर्दे पर आ कर छपती रहती हैं और उनसे सटोरियों को भाव मालूम पड़ते रहते हैं।

न्यूयाक-कर्ब एक्सचेञ्ज—इस एक्सचेंज का प्रादुर्भाव उसी समय हुआ था जब न्यूयार्क स्टाक एक्सचेंज पहिले-पहिल संगठित हुआ था। उस समय प्राइवेट काम करने वाले इधर-उधर गलियों में अनियमित ढङ्ग से काम किया करते थे। इधर-उधर टक्करें खाता हुआ यह कर्ब एक्सचेंज अन्त मे सन् १८२१ में वाल स्ट्रीट के पास के ब्रौड स्ट्रीट में जम गया। सन् १६०८ में इसका प्रबन्ध करने के लिये न्यूयार्क कर्ब एजन्सी बनाई गई और फिर तीन ही साल के बाद सन् १६११ में न्यूयार्क कर्ब मारकेट असोसियेशन बनाया गया।

इस एक्सचेंज के सदस्य दो प्रकार के होते है (१) रेगुलर (Regular (और (२) असोशियेटेड (Associated)। रेगुलर सदस्य होने के लिये प्रार्थना-पत्र भेजना पड़ता है और उसकी स्वीकृति पर

२,५०० डालर प्रवेश-शुल्क देने पड़ते हैं। असोशियेटेड सदस्य को केवल प्रार्थना-पत्र ही देना पड़ता है जिसकी स्वीकृति कमेटी के हाथ में है। यह एक्सचेंज के बाहर ही सौदा करते हैं किन्तु इनको अनेकों सुविधायें प्राप्त हैं। दोनो प्रकार के सदस्यो की आयु २१ वर्ष से अधिक होनी चाहिये। यहाँ के नियम न्यूयार्क एक्सचेंज की तरह ही है।

इसमें दर्ज हुई और बिना दर्ज हुई दोनो सिक्योरिटीज़ में सौदे होते हैं। बिना दर्ज़ हुई सिक्योरिटीज़ मे सौदे तभी होते है जब किसी सदस्य दलाल को इसकी अनुमति मिल जाती है और ज़ारी करने वाले को इसमें कोई आपत्ति नहीं होती तथा वह एक्सचेंज जो आवश्यक सूचनाये दे देता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के स्थानीय एक्सचेंज—न्यूयार्क के उपरोक्त दो एक्सचेंजों के अलावा संयुक्त राष्ट्र के अन्य शहरो मे भी कुछ एक्सचेंज हैं। इनकी सख्या लगभग ४० के है।

प्राइवेट तौर पर काम करना—इसके अलावा कुछ लोग प्राइवेट तौर पर भी काम करते हैं, अर्थात् एक से ख़रीदा और दूसरे को बचा। यह प्रायः उन स्टाकों में होता है जो दर्ज नहीं हैं। इनमें वास्तविक दरों का पता नहीं चलता है।

लन्दन स्टाक एक्सचेंज—वैसे तो लन्दन में स्टाक एक्सचेज का काम १७ वीं शताब्दी में भी हुआ करता था किन्तु उस समय कोई गठित एक्सचेंज नही था। पहिले-पहिल एक्सचेज की नीव न्यू जोनाथन के काफ़ी हाउज़ मे पड़ी। सन् १७७३ मे कुछ दलालों ने एक काफ़ी हाउस का नियन्त्रण अपने हाथों में ले लिया और उस पर 'स्टाक एक्सचेंज' की तख़्ती लगा दी। इसका प्रवेश शुल्क छै पेंस दैनिक रक्खा गया। सन् १८७७ में लदन स्टाक एक्सचेंज के नियम बनाने के लिये एक कमेटी बैठाली गई और सन् १८७८ में इसकी सिफ़ारिशो में से

कुछ की बिना पर कुछ नियम बना दिये गये। तब से यह एक्सचेञ्ज बराबर उन्नति करता आ रहा है। सन् १८०२ में इसके सदस्यों की संख्या ५५ और क्लर्कों की संख्या ६६ थी। सन् १८६४ में सदस्यों की संख्या ११०० हो गई थी और सन् १८७८ में यह २००० से ऊपर थी। सन् १६१० में ५१२५ सदस्य और २५४७ क्लर्क थे। यह संख्या बहुत थी, अतः, नियन्त्रण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस समय ४००० सदस्य और १६००, क्लर्क हैं। स्टाक एक्सचेञ्ज की पूँजी ५,००,००० पाउण्ड है।

लन्दन का स्टाक एक्सचेञ्ज भी बम्बई के स्टाक एक्सचेञ्ज ही की तरह अगठित (un-incorporated) है। सन् १८०२ के डीड आफ़ सैटिलमैण्ट ने इसका प्रबन्ध दो हाथों में कर दिया था जो अब तक चला जा रहा है, एक तो इसके मालिकों के और दूसरे इसके सदस्यों के प्रतिनिधि हैं। मालिको के प्रतिनिधि ६ हैं जो ट्रस्टीज़ और मनेजर्स कहलाते हैं और सदस्यों के ३० हैं जिनकी साधारण कामों की एक कमेटी (Committee for the General Purposes) है।

इसके सदस्यों का विभाजन दो प्रकार से हो सकता है (१) उत्तराधिकार का दृष्टि से और (२, काम करने का दृष्टि से। उत्तराधिकार की दृष्टि से एक तो वे हैं जो अपना अधिकार दूसरों को दे सकते हैं और दूसरे वे जा ऐसा नहीं कर सकते हैं। जो अपना अधिकार दूसरे को दे सकते हैं उनकी नामज़दगी केवल कोई रिटायर होने वाला सदस्य ही कर सकता है। अतः, इनकी संख्या बढ़ नहीं सकती है। प्रत्येक ऐसे सदस्य को ६०० गिनी का प्रवेश-शुल्क देना पड़ता है और साथ ही एक्सचेञ्ज के कम से कम तीन हिस्से ख़रीदने पड़ते हैं। उसकी० सिफ़ारिश भी कम से कम तीन ऐसे सदस्यों को करनी पड़ती है जो उसको व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और स्वयम् कम से कम चार वर्ष से एक्सचेञ्ज के सदस्य रहे हैं। इनके अलावा कुछ ऐसे

सदस्य हैं जो अपना अधिकार दूसरों को नहीं दे सकते हैं। इनको सदस्य बनने के लिये कम से कम चार साल तक क्लर्क रहना पड़ता है। जो व्यक्ति चार साल तक क्लर्क रह चुका है वह ऐसी सदस्यता के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकता है। अतः, ऐसे लोगों की एक सूची होती है जिसमें से हर साल कुछ न कुछ नये सदस्य बनाये जाते हैं। प्रत्येक ऐसे सदस्य को दो सदस्यों की तीन-तीन सौ पाउण्ड की ज़मानत दिलवानी पड़ती है और उसको एक्सचेंज का एक हिस्सा भी लेना पड़ता है। आगे चल कर यदि इसकी नामज़दगी हो जाती है तो यह उत्तराधिकार देने वाला सदस्य भी बन सकता है।

इस स्टाक एक्सचेंज का सदस्य कोई विज्ञापन भी नहीं कर सकता है, न वह किसी ग़ैर-सदस्य से साझा कर सकता है। काम करने के लिहाज़ से सदस्य दलाल (Brokers) और अपने बद का काम करने वाले (Jobbers) होते हैं। इन दोनों में भी साझा नहीं हो सकता है। एक्सचेंज के समीपवर्ती स्थान से दूर पर इनका आफ़िस भी नहीं हो सकता है। यदि कोई झगड़ा होता है तो इन्हें उसे पंचायत से ही निपटाना पड़ता है। ये उसे अदालत में नहीं ले जा सकते हैं। सदस्यता का निर्वाचन हर वर्ष होता है जिसके कारण सदस्यों के ऊपर कमेटी का बराबर दबाव रहता है और वह नियमानुसार काम करते रहते हैं।

लन्दन स्टाक एक्सचेंज में जो दलाल और अपना काम करने वाले दो प्रकार के सदस्य होते हैं। ऐसा संसार भर के किसी स्टाक एक्सचेंज मे नहीं है। बम्बई स्टाक एक्सचेंज में भी दलाल और तारनी वाले दो प्रकार के सदस्य होते है, किन्तु जब कि लन्दन का अपना काम करने वाला सदस्य किसी दूसरे का काम नहीं कर सकता बम्बई का तारनी वाला अपना काम भी कर सकता है और दूसरों का काम भी कर सकता है। वास्तव में यह बात उचित नहीं है। मान

लीजिये कि उसने कोई सौदा अपने लिये किया है तो उसमें घाटा होने पर वह उसको किसी दूसरे के नाम लगा सकता है और यदि कोई काम उसने दूसरे के लिये किया है तो नफ़ा होने पर उसको वह अपने नाम में लगा सकता है। लन्दन का काम करने वाला ऐसा कर ही नहीं सकता। वहाँ का दलाल अपने नाम पर रोज़मर्रा का काम नहीं कर सकता और काम करने वाला तो दलाली कर ही नहीं सकता। उसको तो अपनी बद काम करना पड़ता है। अतः, उसका बड़ा महत्व है। स्टाक एक्सचेंज में जितना काम होता है उसीके हाथ से होता है। दलाल उसीसे सौदा करते हैं और वह आपस में भी सौदा कर सकते हैं। दलाल को उसकी दलाली मिलती है और काम करने वाला केवल अपने नफ़ा अथवा नुकसान का ज़िम्मेदार होता है। लन्दन स्टाक एक्सचेंज का दलाल अपनी दलाली का कुछ हिस्सा लन्दन से बाहर के दलालों को और बैंकों को भी दे सकता है। वास्तव में उसको ये बाहर के दलाल और बैङ्क बड़ा काम दिलवाते हैं। वहाँ के दलाल नई कम्पनियों को हिस्से, इत्यादि निकालने में सलाह देते हैं और उनकी बँटनी में मदद पहुँचाते हैं। नये हिस्से, इत्यादि वहाँ पर प्रायः बैंकों और दलालों के ही मार्फ़त बेचे जाते हैं। काम करने वाले नये हिस्सों, इत्यादि के बेचने का बीमा करते हैं, और उनको दलालों के मार्फ़त बिचवाते हैं।

लन्दन स्टाक एक्सचेंज में नक़द और वायदे के दोनों प्रकार के सौदे होते हैं। प्रायः गवर्नमेन्ट सिक्योरिटीज़ में सौदे नक़द ही होते हैं, किन्तु वायदे के सौदे भी बहुत होते हैं। नक़द सौदों की सुपुर्दगी और भुगतान दूसरे दिन हो जाते हैं और वायदे के सौदों का निपटारा हर पन्द्रहवें दिन होता है। दलाल को जब काम करने का आदेश मिलता है वह काम करने वाले के पास जाकर उससे भाव पूछता है। काम करने वाले को यह नहीं मालूम रहता कि दलाल बेचेगा अथवा ख़रीदेगा। अतः, वह ख़रीदने और बेचने के अलग-

अलग भाव बताता है। दोनों का अन्तर उसका नफ़ा रहता है।-दलाल को अधिकार है कि वह १००० पाउण्ड तक का स्टाक चाहे बेच दे और चाहे ख़रीद ले। सौदा दोनों पार्टियाँ अपनी-अपनी जेबी किताबों में लिख लेती हैं। शाम को इन जेबी किताबों से कन्ट्राक्ट बनाये जाते हैं और सौदों को दोहराने की किताब (Checking Book) में भी लिखा जाता है। दूसरे दिन इस किताब से दोहराया जाता है। पाकेट बुक से जर्नल में भी लेखा होता है और उससे मूल्य और स्टाक, इत्यादि का हिसाब लगाया जाता है। फिर कन्ट्राक्ट को जर्नल के लेखे से मिला कर लेवा बेची करने वालों के पास भेज दिया जाता है और वह निश्चित समय पर सुपुर्दगी और भुगतान दे देते हैं।

वायदे के सौदों का जो एक पखवाड़े के होते हैं ४ दिन तक निपटारा होता रहता है। उनका या तो अन्तर दे दिया जाता है, अथवा बदला हो जाता है। पहिला दिन कन्टैंगो डे (Contango Day) कहलाता है। इस दिन बदला करने वाले बदला कर लेते हैं। दूसरा दिन टिकट डे (Ticket Day) कहलाता है। इस दिन ख़रीदी हुई सिक्योरिटी का टिकट बनाया जाता है और तीसरे दिन यही टिकट माल सुपुर्दगी के लिये भेजा जाता है। अब यदि बेचने वाले ने उसको किसी दूसरे से ख़रीद रक्खा है तो वह उस पर बेचान कर देता है। इस तरह से टिकट अन्त में उसके पास पहुँच जाता है जिसको सुपुर्दगी देनी है। अन्तिम दिन जिसको भुगतान का दिन कहते हैं, सिक्योरिटियों की सुपुर्दगी और उनका भुगतान होता है।

पेरिस स्टाक एक्सचेंज—पेरिस में भी एक आफ़िशियल और दूसरा कर्ब एक्सचेंज हैं। अफिशियल एक्सचेंज का काम एक इमारत के अन्दर होता है और उसके सदस्य स्टाक ब्रोकर कहलाते हैं। इसके विपरीत कर्ब एक्सचेंज पेरिस बोर (Burse) के बराण्डो में लगता है और उसके सदस्य बैंकर्स कहलाते हैं।

स्टाक एक्सचेञ्ज का नियन्त्रण सरकार द्वारा होता है और उसके लिये सरकारी नियम बने हुये हैं। कार्यकारणी सिंडीकेट चैम्बर कहलाती है जिसमें आठ सदस्य हैं। स्टाक एक्सचेञ्ज में ७० सदस्य हैं। प्रत्येक सदस्य का उत्तराधिकार है किन्तु किसी नये सदस्य की सदस्यता सरकार के अर्थ-मंत्री के द्वारा ही स्वीकृत होती है। वास्तव में किसी व्यक्ति को सदस्य होने के लिये यह आवश्यक है कि उसने किसी दलाल की अथवा किसी आर्थिक या व्यापारी संस्था की शागिर्दी की हो। सदस्यों के गुप्त साझी भी हो सकते हैं। सदस्यों को पूँजी का कम से कम चौथाई हिस्सा अपने पास से देना पड़ता है और सरकार के पास कुछ बांड जमा करने पड़ते हैं। प्रत्येक सदस्य के छै क्लर्क और कुछ सौदा लाने वाले दलाल भी हो सकते हैं। सदस्यों का दायित्व सम्मिलित है, अर्थात् यदि कोई सदस्य बाहरी पब्लिक का भुगतान नहीं कर पाता है तो अन्य सदस्य मिलकर उसका भुगतान करते हैं। यह पेरिस एक्सचेञ्ज की एक विशेषता है।

इस एक्सचेञ्ज में तैयारी और वायदे के सौदों के अलावा तेज़ी मन्दी के सौदे भी होते हैं। वायदे के सौदे यहाँ भी १५ दिन के ही होते हैं और उनका निपटारा उसी तरह से होता है जिस तरह से लन्दन स्टाक एक्सचेञ्ज में होता है। एक बात इस स्टाक एक्सचेञ्ज में विशेष है जो यह है कि यदि कोई व्यक्ति वायदे के सौदे की सिक्योरिटियों को वायदे के दिन के पहिले लेना चाहता है तो उसको वह रुपया देने पर डिस्काउन्ट पर मिल जाती हैं।

कर्ब एक्सचेंज में उन सिक्योरिटियों के सौदे होते हैं जो आफिशियल एक्सचेञ्ज की लिस्ट में नहीं हैं। यह न्यूयार्क कर्ब एक्सचेञ्ज की तरह है। जो लोग कर्ब एक्सचेंज में काम करते हैं वह पेरिस के स्वतन्त्र एक्सचेञ्ज में भी काम कर सकते हैं। यह स्वतन्त्र एक्सचेञ्ज उसी तरह से काम करता है जिस तरह से अन्य स्थानों के स्वतन्त्र एक्सचेञ्ज काम करते हैं।

बर्लिन स्टाक एक्सचेंज—जर्मनी में कोई एक्सचेञ्ज तभी स्थापित किया जा सकता है जब उसके नियमों को वहाँ की सरकार स्वीकार कर ले। फिर स्टाक एक्सचेञ्ज को एक स्टेट कमिश्नर के अन्तर्गत काम करना पड़ता है जो स्वयम् वहाँ के चैम्बर आफ़ इन्डसट्री और कामर्स के सम्मति से चलता है। बर्लिन स्टाक एक्सचेञ्ज के डायरेक्टरों का बोर्ड २१ सदस्यों का है जिनमें से १७ तो उसके सदस्यों के द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं और ४ को बर्लिन चैम्बर आफ़ कामर्स भेजती है। इस एक्सचेञ्ज की सदस्यता के लिये एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है जिसमें कम से कम तीन ऐसे सदस्यों की सिफ़ारिश होनी चाहिये जो कम से कम तीन साल तक इसके सदस्य रह चुके हैं। फिर इन सदस्यों में से प्रत्येक को पाँच सौ रेन्टेनमार्क नक़द अथवा बांड के रूप में ज़मानत के तौर पर जमा करने पड़ते हैं। सदस्य तीन प्रकार के होते हैं:—(१) स्वौर्न ब्रोकर्स (Sworn Brokers)—इनकी नियुक्त ब्रडेनवर्ग प्रान्त के लार्ड लफ्टिनेन्ट के द्वारा होती है। ये छोटे-छोटे गवर्नमेंट आफ़िशियल्स होते हैं। इनकी संख्या लगभग सौ के हैं। इनमें से प्रत्येक को अधिक से अधिक तीन स्टाक दे दिये गये हैं जिनमें यही लोग लेवा-बेची करते हैं। इनको इनकी दलाली मिलती है। (२) स्वतन्त्र दलाल (Free Brokers) हैं—ये अपना काम उपरोक्त दलालों के मार्फ़त करवाते हैं। (३) अधिकांश सदस्य तीसरे दर्ज़े के हैं। ये बैङ्कों के प्रतिनिधि होते हैं और स्वयम् एक्सचेञ्ज में बहुत कम आते हैं। इनका काम भी दलालों के ही मार्फ़त होता है।

बर्लिन स्टाक एक्सचेञ्ज का अधिकतर काम बैङ्कों के हाथ में है। तैयार सौदों का निपटारा तो सौदों की तारीख़ के दो दिन के भीतर ही हो जाता है। जहाँ तक वायदे के सौदों का प्रश्न है ये एक तो उन्हीं कम्पनियों के स्टाकों के हो सकते हैं जिनकी पूँजी कम से कम एक करोड़ रैन्टेनमार्क है और दूसरे इनके कन्ट्राक्ट कम से कम ६,०००

रैन्टनमार्क के अथवा उसके गुणनफल के ही हो सकते हैं। इन सौदों का निपटारा महीनेवारी होता है जिसमें पाँच दिन लगते हैं।

(४) स्टाक एक्सचेंजों में लेवा-बेची के लिये स्टाकों का दर्ज कराना

कोई स्टाक जब तक एक स्टाक एक्सचेञ्ज में दर्ज नहीं हो जाता है तब तक उसमें उसकी लेवा-बेची नहीं हो सकती है। स्टाकों को दर्ज कराने के लिये उनके ज़ारी करने वालों को आवश्यक विवरण के साथ एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसे स्टाक एक्सचेञ्ज के जो नियम होते हैं उनका भी उसको पालन करना पड़ता है। स्टाकों को स्टाक एक्सचेञ्जों में दर्ज कराने से बड़ा लाभ होता है। जहाँ पर कोई कम्पनी विधान नहीं है वहाँ पर स्टाकों के स्टाक एक्सचेञ्ज में दर्ज हो जाने के अर्थ हैं कि कम्पनी ने आवश्यक नियमों का पालन कर लिया है। अवश्य, इसके यह अर्थ नहीं हैं कि स्टाक में कोई जोखिम नहीं है अथवा उनमें रुपया लगाना अच्छा है। यह सब बातें तो रुपया लगाने वाले को स्वयम् समझ लेनी चाहियें। हाँ, किसी स्टाक के स्टाक एक्सचेञ्ज में दर्ज हो जाने से उसकी साख अवश्य बढ़ जाती है और लोग उसमें रुपया लगाने को तैयार हो जाते हैं। और कुछ न सही तो केवल इसी विचार से उसमें रुपया लगा देते हैं कि कम से कम जब वह चाहेंगे उनका रुपया तो मिल जायगा। इसी कारण ऐसे स्टाक गिरवीं भी रक्खे जा सकते हैं। दूसरे, ऐसे स्टाक एक नियम के अनुसार ख़रीदे और बेचे जाते हैं। अतः, ख़रीद और बिक्री करने वाले दोनों सुरक्षित रहते हैं। उनको एक निश्चित दलाली देनी पड़ती है और दलाल एक्सचेञ्ज के नियमों के अनुसार काम भी करते हैं जिससे बेईमानी और जालसाज़ी, इत्यादि का डर नहीं रहता है। स्टाकों की दर भी बराबर मालूम होती रहती है। प्रायः वह समाचार-पत्रों में निकलती रहती है।

बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज में स्टाक दर्ज कराने के लिये एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। इस प्रार्थना-पत्र के साथ-साथ चार फ़ार्म भर कर देने पड़ते हैं। फ़ार्म 'ए' में कम्पनी की पूँजी और उसके हिस्सों, इत्यादि के विषय में सूचनायें रहती हैं। फ़ार्म 'बी' में इस बात की प्रतिज्ञा रहती है कि स्टाक एक्सचेञ्ज कमेटी जिन बातो को चाहती है वह सब कम्पनी की नियमावली में मौजूद हैं। फ़ार्म 'सी' में हिस्सों की बँटनी का विवरण रहता है। और फ़ार्म 'डी' में कम्पनी और एक्सचेञ्ज के बीच का यह शर्तनामा रहता है कि कम्पनी एक्सचेञ्ज के नियमों को मानती रहेगी। जब प्रार्थना-पत्र और उसके साथ के यह सब फ़ार्म एक्सचेञ्ज आफ़िस में पहुँच जाते हैं तब पहिले तो यह सूचना एक बोर्ड पर लगा दी जाती है जिससे वह सबको मालूम हो जाय और उसमें यदि किसी को कोई आपत्ति हो तो वह उस आपत्ति को ज़ाहिर कर दे। फिर उस पर दर्ज करने वाली कमेटी अपनी राय देती है और अन्त में वह बोर्ड के सामने स्वीकृति के लिये जाता है। बोर्ड इस बात का ध्यान रखता है कि यह स्टाक ऐसा हो जिसमें प्रायः लोगों की दिलचस्पी हो और काफ़ी लेवा-बेची है। यदि कोई ऐसा स्टाक नहीं है तो भी दो तिहाई वोटोंके आ जाने पर उसको दर्ज करने की अनुमति मिल जाती है।

किसी स्टाक को वायदे के सौदों के लिये दर्ज कराने के वास्ते उपरोक्त शर्तों के अलावा कुछ अन्य शर्तों को भी मानना पड़ता है। प्रत्येक स्टाक एक्सचेञ्ज के इस विषय में अपने नियम होते हैं।

(५) गत युद्ध के समय भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेंजों में घटा-बढ़ी, इत्यादि

गत युद्ध के समय भारतवर्ष के स्टाक एक्सचेञ्जों में बराबर घटा-बढ़ी होती रहीं। हाँ, जिन-जिन स्टाको की दर नियत कर दी गई थीं उनमें अवश्य वैसी घटा-बढ़ी बन्द हो गई जैसी दरों के नियत होने के

पहिले होती थी। युद्ध के प्रारम्भ होते ही सबसे पहिले तो स्टाकों के दाम बढ़ गये, किन्तु सन् १६४० के आरम्भ में ही अतिरिक्त लाभ-कर लगने की घोषणा होने के कारण कुछ दिनों के लिये वह घट गये। फिर थोड़े समय के लिये बाज़ार ने जोर-पकड़ा, किन्तु मई १६४० में फ्रान्स के पतन के बाद उन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज २० मई सन् १६४० को छै सप्ताह के लिये बन्द कर दिया गया और बम्बई स्टाक एक्सचेंज २२ मई से २५ मई तक बन्द रहा। इसके बाद उसमें केवल तैयार सौदे ही होते रहे, वायदे के सौदों का काम बन्द कर दिया गया। मद्रास में केवल स्थानीय हिस्सों के ही सौदे करने की आज्ञा रह गई और यू० पी० स्टाक एक्सचेंज भी बन्द कर दिया गया। बम्बई स्टाक एक्सचेंज में १४ जून को उन हिस्सों को जिनमें वायदे के सौदे हुआ करते थे तैयारी के सौदों की लिस्ट में दर्ज कर दिया गया और सभी हिस्सों की कम से कम क़ीमतें निश्चित कर दी गईं। साथ ही कुछ विशेष हिस्सों के लेन-देनों के निपटारे के लिये नियम भी बना दिये गये। जून के अन्त में कलकत्ता एक्सचेंज भी गिल्ट एजेड और नियत ब्याज वाली सिक्योरिटियों के तैयार सौदों के लिये खुल गया। सन् १६४१ में उधार पट्टा बिल का अच्छा असर पड़ा। जून में जर्मनी के रूस पर हमला कर देने का भी बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके बाद जापान की यहाँ पर जो सम्पत्ति थी उसके भुगतान को रोक देने (Freezing of Japanese Assets) के कारण सूती कपड़ों की मिलों के हिस्सों के दाम बहुत बढ़ गये और यह कुछ घट-बढ़ के साथ उस समय तक चलते रहे जब दिसम्बर में जापान ने मित्र-राष्ट्रों पर हमला कर दिया। इसका प्रभाव कलकत्ता स्टाक एक्सचेंज पर बहुत विशेष पड़ा और फौरन ही कुछ सट्टे के हिस्सो की कम से कम दरों को नियत कर देना पड़ा। फिर बम्बई में भी यही करना पड़ा। सन् १६४२ में जापान की धड़ा-धड़ जीत का

हमारे एक्सचेंजों पर बहुत ख़राब प्रभाव पड़ा और उनमें दरों की नियुक्ति और वायदे के सौदों पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा। अक्टूबर में बम्बई में वायदे के सौदे बिल्कुल बन्द कर दिये गये। सन् १६४३ का जनवरी तो भारतीय एक्सचेंजों के लिये अच्छा रहा, किन्तु फ़रवरी में महात्मा गान्धी के अनशन का उन पर और विशेषकर बम्बई स्टाक एक्सचेंजों पर ख़राब प्रभाव पड़ा। इसके बाद मुद्रा प्रसार को रोकने के लिये भी गवर्नमेंट जिन उपायों को काम में लाई उनका भी ख़राब ही असर पड़ा। पूँजी नियन्त्रण आदेश (Capital Control Order) और सूती कपड़ों के नियंत्रण की योजना, इत्यादि का भी ख़राब ही असर पड़ा। सितम्बर में 'बदला' बन्द कर दिया गया और मुद्दती सुपुर्दगी केवल एक सप्ताह की रह गई। सन् १६४४ में बराबर आशाजनक स्थिति रही और उसके बाद कोई विशेष घटना नहीं घटित हुई। संक्षेप में हमारे स्टाक एक्सचेंजों ने एक बहुत बुरे समय को बड़ी होशियारी से पार किया।

(६) सिक्योरिटियों में घट-बढ़ के कारण

अब हमको यहाँ पर यह देखना है कि सिक्योरिटियों में घटा-बढ़ी किन कारणों से होती है। सिक्योरिटियों में घटा-बढ़ी के अनेकों कारण हैं और उन सबका यहाँ पर देना भी कठिन है किन्तु उनको हम यहाँ पर चार हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं। किन्तु उनका अध्ययन करने के पहिले हमको यह समझ लेना चाहिये कि स्टाकों पर उनकी माँग का जितना असर पड़ता है उतना असर उनकी भरती का नहीं पड़ता है। हम जानते हैं कि किसी कम्पनी की पूँजी एक तरह से नियत ही रहती है। अतः, यदि उसके हिस्सों की माँग बढ़ जाती है तो उनकी भर्ती नहीं बढ़ सकती है। इसी तरह से कम्पनियों की पूँजी कम भी नहीं हो सकती। अतः, उनकी माँग घट जाने से उनकी भरती कम नहीं हो सकती।

(१) सर्वसाधारण की सम्मति और धारणा (Public Opinion and Sentiment)—सर्वसाधारण की सम्मति और धारणा का स्टाक एक्सचेञ्जों पर जितना प्रभाव पड़ता है उतना सोने-चाँदी के बाज़ार को छोड़कर अन्य किसी बाजार पर नहीं पड़ता है। हम देखते हैं कि एक दिन जिन हिस्सों की क़ीमतें बढ़ती हुई नज़र आती हैं दूसरे दिन वही गिर जाती हैं। कम्पनी में तो ऐसी कोई बात होती नहीं है कि उसकी हालत एक रात में ही ख़राब हो जाय। वास्तव में यह तो लोगों की धारणायें होती हैं जिनका प्रभाव पड़ता है। किसी सिक्योरिटी की क़ीमत घटने की धारणा हो जाने पर लोग उसको बेचते चले जाते हैं, और कुछ लोगों के बेचने से जो क़ीमतें घटती चली जाती हैं उससे और लोग भी बेचना प्रारम्भ कर देते हैं। फिर जो कुछ बेची हुई है उसके पटान (Covering) के लिये ख़रीद प्रारम्भ हो जाती है जिससे दाम बढ़ते रहते हैं। इन बाज़ारों का यही हाल रहता है।

(२) मुद्रा के बाज़ार का सिक्योरिटियों के बाज़ार पर प्रभाव—सिक्योरिटियों में काम करने वाले सिक्योरिटियों के ऊपर ऋण लिये रहते हैं। अतः, यदि वह ऋण उनसे माँगे जाते हैं तो वह सिक्योरिटियो को बेच देते हैं जिससे उनका भाव गिर जाता है। व्याज की दर का भी इनके भावों पर असर पड़ता है। गवर्नमेंट सिक्योरिटियों पर और कम्पनियों के ऋण-पत्रों पर व्याज की दर निश्चित रहती है। मान लीजिये कि किसी सिक्योरिटी पर ६ रु० प्रति सैकड़ा व्याज मिलता है और बाज़ार में व्याज की दर भी ६ रु० प्रति सैकड़ा ही है और किसी सिक्योरिटी का भाव ६० रु० है तो यदि बाज़ार में व्याज का दर ५ रु० प्रति सैकड़ा हो जाता है तो सिक्योरिटी की क़ीमत बढ़ जानी चाहिये। इसके अलावा बाज़ार में व्याज की दर घट जाने से ऋण भी काफ़ी मिलने लगता है, इससे भी सिक्योरिटियों की माँग बढ़ जाती है और उनके भाव पर असर पड़ता है।

उपरोक्त से हम यह कह सकते हैं कि साधारणतया व्याज की दर के घट-बढ़ का सिक्योरिटियों पर उल्टा प्रभाव पड़ता है। व्याज की दर घट जाने से सिक्योरिटियों का भाव बढ़ जाता है और व्याज की दरें बढ़ जाने से सिक्योरिटियों के भाव घट जाते हैं।

मुद्रा का प्रसार—मुद्रा के प्रसार से पूञ्जी का आधिक्य हो जाता है। अत', सिक्योरिटियों के भाव बढ़ जाते हैं। साथ ही कम्पनियों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य के भी बढ़ जाने के कारण इनके भाव बढ़ जाते हैं।

मुद्रा सम्बन्धी अन्य कारण—बैङ्क रेट के अतिरिक्त मुद्रा सम्बन्धी अन्य ऐसे कारण हैं कि जिनका प्रभाव सिक्योरिटियों के ऊपर पड़ता है। उदाहरण के लिये हम स्वर्णमान के टूटने को अथवा मुद्रा के आन्तरिक मूल्य को कम करने (Devaluation) को ले सकते हैं।

(३) आम कारण—इनमें बाज़ारों की पारस्परिक निर्भरता, व्यापारिक चक्र (Trade Cycle), सोने चाँदी के मूल्य, युद्ध और राजनीति, स्थानीय राजनीति, स्टेट की नीति (जैसे आयात निर्यात-कर और अन्य कर), विशेष क़ानून किसी धन्धे को प्रोत्साहित करने की नीति, इत्यादि, विज्ञापन और ऐसी ही अन्य बातें आ जाती हैं। इनमें से प्रत्येक का सिक्योरिटियों के भावों पर प्रभाव पड़ता है।

(४) विशेष कारण—यह वे कारण हैं जो किसी विशेष कम्पनी के हिस्सों पर प्रभाव डालते हैं, जैसे लाभ का बँटवारा, उपज और बिक्री की घट-बढ़, पूँजी की घट-बढ़, मालिकाने का परिवर्तन, मज़दूरों की हड़ताल, इत्यादि। इनका सबका सिक्योरिटियों के भावों पर प्रभाव पड़ता है।

(७) स्टाकों की लेवा-बेची

हम यह देख चुके हैं कि न्यूयार्क स्टाक एक्सचेञ्ज, लन्दन स्टाक एक्सचेञ्ज और बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज में अवश्य ऐसे कुछ सदस्य हैं

जो अपने नाम में स्टाकों की लेवा-बेची कर सकते हैं, किन्तु अन्य स्टाक एक्सचेञ्जों में ऐसी बात नहीं है। इन स्टाक एक्सचेञ्जों में से भी न्यूयार्क स्टाक एक्सचेञ्ज और बम्बई स्टाक एक्सचेञ्ज के ऐसे सदस्य स्वयम् अपने बद का काम भी कर सकते हैं और दूसरों के बद की दलाली भी कर सकते हैं जो बहुत अनुचित है किन्तु लन्दन के काम करने वाले केवल अपना ही काम कर सकते हैं दूसरों का नहीं कर सकते हैं। अतः, उपरोक्त व्यक्तियो को छोड़ कर अन्य सभी व्यक्तियों को चाहे वह किसी स्टाक एक्सचेञ्ज के सदस्य हों अथवा न हों स्टाकों की लेवा-बेची के लिये जिस स्टाक एक्सचेंज में वह ऐसा करना चाहते हैं उस स्टाक एक्सचेंज के किसी दलाल सदस्य की सहायता लेनी पड़ती है। मान लीजिये कि ऊपर दिये हुये स्टाक एक्सचेंज का एक ऐसा सदस्य है जो स्वयम् का काम नहीं कर सकता है अर्थात् केवल दलाल है तो यदि उसको स्टाकों की लेवा-बेची करनी है तो वह भी किसी अपने दलाल भाई की सहायता से ही ऐसा कर सकता है। इसके अलावा ग़ैर सदस्यो को तो यह काम दलाल के ही मार्फ़त करवाना पड़ता है। अन्य स्टाक एक्सचेंजों में चाहे कोई उनका सदस्य हो अथवा न हो यदि वह स्टाकों की लेवा-बेची करना चाहता है तो उसको दलाल की सहायता लेनी ही पड़ती है।

प्रायः स्टाक एक्सचेंजों में दलालों को स्वयम् का विज्ञापन करने का अधिकार नहीं रहता है। अतः, यदि किसी ग़ैर-सदस्य को पहिले-पहिल काम करना है तो उसको किसी अच्छे दलाल का पता लगना ही कठिन हो जाता है। यदि वह जिस स्टाक एक्सचेंज में काम करना चाहता है उसके दलालों की सूची मॅंगाता है तो भी उसको उससे यह नहीं ज्ञात हो सकता कि कौन-सा दलाल अच्छा है। अतः, इसके लिये उसको या तो किसी ऐसे व्यक्ति की सहायता लेनी पड़ती है जो उस स्टाक एक्सचेंज में किसी दलाल के मार्फ़त काम कर चुका है अथवा किसी बैङ्क से पूछना पड़ता है। बैङ्क प्रायः अपना काम किसी न

किसी दलाल से करवाते ही रहते हैं, अतः, वह उसी का नाम बता देते हैं जो उनका काम करता रहता है। यदि कोई व्यक्ति चाहे तो वह बैङ्क को ही अपना काम सुपुर्द कर दे, किन्तु बैङ्क भी उसको किसी दलाल से ही करवायेगा। अतः, इसमें बैङ्क का भी कमीशन देना पड़ता है और दलाल को दलाली भी देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त ऐसे कामो में सीधा सम्बन्ध अधिक अच्छा होता है। सम्भव है कि जितने समय मे बैङ्क से बातचीत हो और बैङ्क दलाल से बातचीत करे बाज़ार भाव बदल जाय। फिर एक दलाल जितनी दिलचस्पी लेता है उतनी बैङ्क नहीं ले सकता। इसके अलावा-दलाल अपनी सम्मति भी दे सकता है, किन्तु बैङ्क ऐसा नहीं कर सकता है।

जब कोई दलाल चुन लिया जाता है तो वह किसी नये ग्राहक का काम उस समय तक नहीं करता है जब तक कि उसको उसकी आर्थिक स्थिति के अच्छी होने का कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं मिल जाता है। अतः, इसके लिये भी या तो उसके किसी पुराने ग्राहक की अथवा किसी बैङ्क की साक्षी देनी पड़ती है।

जैसा कि हम देख चुके हैं स्टाक एक्सचेञ्जों में कहीं-कहीं तो केवल तैयारी के ही सौदे होते हैं और कहीं-कहीं तैयारी और वायदे दोनों के। फिर उनमे उन्हीं स्टाकों के सौदे होते हैं जो उनके यहाँ दर्ज हैं। साथ ही जो स्टाक केवल तैयारी के ही सौदों के लिये दर्ज हैं उनमें केवल तैयारी ही के सौदे होते हैं और जो तैयारी और वायदे दोनों के लिये दर्ज हैं उनमें दोनो के सौदे होते हैं।

जिन लोगों कोई-कोई स्टाक अपने पास रखना है अर्थात् जो लोग रुपया लगाना चाहते हैं अथवा जिनके पास स्टाक हैं और वह उनको बेचना चाहते हैं वह तो तैयारी के सौदे करते हैं और जो सट्टे बाज़ी करना चाहते हैं वह वायदे के सौदे करते हैं।

तैयारी के सौदों में फौरन ही अथवा एक उचित अवधि के अन्दर स्टाक की सुपुर्दगी और उसका भुगतान निपट जाता है किन्तु वायदे के

सौदों में यह उस समय तक रुका रहता है जिस समय तक वायदे का दिन नहीं आता। वायदे के सौदों में स्टाक इसलिये ख़रीदे जाते हैं कि वह वायदे के दिन के पहिले बेच लिये जायँ और इसलिये बेचे जाते हैं कि वह वायदे के दिन के पहिले ख़रीद लिये जायँ। जो लोग ख़रीद करते हैं वह पोते वाले (Bulls) और जो लोग बेचते हैं वह मत्थे वाले (Bears) कहलाते हैं। भाव बढ़ जाने पर पोते वालों का लाभ और मत्थे वालों की हानि तथा भाव घट जाने से इसका उल्टा होता है। पोते वाले वायदे के दिन के पहिले बेची करके और मत्थे वाले वायदे के दिन के पहिले ख़रीद करके निपटारे के लिये तैयार हो जाते हैं। यदि उनको लाभ हुआ है तो वह निपटारे के दिन लाभ (Difference) पा जाते हैं और यदि उनकी हानि हुई है तो वह उसी दिन हानि (Difference) दे देते हैं। जो लोग बेच कर अथवा ख़रीद कर जिस तरह से हो सौदा बराबर नहीं कर लेते हैं वह चाहें तो स्टाक की सुपुर्दगी जैसा हो ले अथवा दे सकते हैं, अथवा भाव के अनुसार भी अन्तर देकर सौदे का निपटारा कर सकते हैं। इसके अलावा किसी सौदे का बदला भी किया जा सकता है। बदले में दो सौदे करने पड़ते हैं चाहे वह एक ही व्यक्ति से हो जायँ चाहे दो से। दो सौदों में से एक तो तैयारी का सौदा होता है और दूसरा अगले वायदे का। इन दोनों के भाव में जो अन्तर होता है वह बदला कहलाता है और उसका भुगतान हो जाता है। सट्टा करने के कुछ अन्य तरीक़ भी हैं जो नीचे दिये जाते हैं।

तेज़ी-मन्दी लगाना—इसको नज़राना भी कहते हैं। इसके यह अर्थ हैं कि जिस भाव पर तेज़ी-मन्दी लगाई गई है उस भाव के ऊँचे और नीचे (दोनों तरफ़ के) भावों पर लगाई गई है। नज़राना भाव-भाव के सौदे पर लगा करता है। जब कोई व्यक्ति यह समझ लेता है कि अमुक स्टाक पर अच्छी घट-बढ़ हो रही है अथवा होने वाली है तो वह तेज़ी-मन्दी लगा देता है। जिस समय बाज़ार दोरुखा चलता है,

अर्थात्, अनिश्चित-सा रहता है उस समय ही तेज़ी-मन्दी लगाई जाती है। इस तेज़ी-मन्दी के व्यापार में नुकसान जाने के लिये तो एक बँधी रकम ही होती है जो प्रारम्भ में नज़राने के तौर पर दी जाती है मगर फ़ायदे के लिये कोई बन्धेज नहीं है। जितना भाव बढ़ता अथवा गिरता जाता है उतना ही फ़ायदा होता जाता है। मान लीजिये कि किसी स्टाक पर ६० रु० से तेज़ी-मन्दी लगाई जाती है। ऐसी हालत में जितने स्टाक की तेज़ी-मन्दी लगाई जाती है वह भी तै हो जाता है और नज़राना भी तै हो जाता है। मान लीजिये १० स्टाक पर तेज़ी-मन्दी लगाई गई है और २० रु० नज़राना दिया गया है। तब वायदे की तारीख़ को यदि भाव गिर जाता है तो नज़राना लगाने वाले को १० स्टाक ६० रु० के भाव मे बेच देने का अधिकार रहता है और यदि वह बढ़ जाता है तो उसको १० स्टाक ६० रु० के भाव से ख़रीद लेने का अधिकार रहता है। अब यदि भाव ८५ रु० हो गया तो ५ रु० प्रति स्टाक की दर से ५० रु० मिलता है। इसमें से नज़राने वाले २० रु० घटा देने से ३० रु० का लाभ होता है। और यदि भाव ६३ रु० हो जाता है तो ३ रु० की दर से ३० रु० मिलते हैं; जिसमें से २० रु० नज़राना वाले निकाल देने से १० रु० का लाभ होता है। यदि भाव ६० रु० हो पर पड़ा रह जाता है तो अवश्य ही २० रु० का नुकसान होता है किन्तु ऐसा असम्भव है। भाव मे घट-बढ़ तो होता ही है। जितना दूर का वायदा होगा उतनी ही अधिक घट-बढ़ होने की सम्भावना है। हाँ, यदि घट-बढ़ केवल २ रु० प्रति स्टाक के हिसाब से होती है तो उतना रुपया नहीं मिलेगा कि जिससे नज़राने का घाटा पूरा हो जाय। अतः, यदि धारणा ग़लत मालूम पड़े तो तेज़ी-मन्दी लगाने वाले को तेज़ी-मन्दी खा कर सौदा बराबर कर लेना चाहिये। इसमें भी कुछ नुकसान हो सकता है। लेकिन वह केवल नज़राने की रकम के ही अन्तर का होगा। तेज़ी-मन्दी लगा देने के बाद कई बार मौके के अनुसार सौदे भी किये जा सकते हैं, किन्तु एक अवधि के

अन्दर लेवा-बेची बराबर स्टाक की ही होनी चाहिये। इससे अन्तर का लाभ मिलता रहेगा और नुकसान केवल नज़राने की ही रक़म का होगा। तेज़ी-मन्दी के सौदों में बड़ी होशियारी से काम करना चाहिये। तनिक सी भी चूक होने से नुक़सान लग जाता है।

तेज़ी-मन्दी खाना—यह व्यापार तेज़ी-मन्दी लगाने के व्यापार से उल्टा होता है, अर्थात् इसमें लाभ तो कम किन्तु हानि अधिक होने की सम्भावना रहती है। लेकिन यदि भाव अन्त में एक-सा ही रहता है तो फ़ायदा ही फ़ायदा है। यदि बीच मे एकरुख़ा बाज़ार चले तो यह समझ कर कि नज़राना लगाने वाला ख़रीदेगा अथवा बेचेगा स्वयम् भी ख़रीद अथवा बेच ले। ऊपर वाले उदाहरण में बाज़ार के ८८ रु० से नीचे जाते ही नज़राना खाने वाला १० स्टाक बेच देगा और ९२ रु० के ऊपर जाते ही १० स्टाक ख़रीद लेगा। इसका यह अर्थ होगा कि यदि भाव ८६ रु० हो जाता है तो नज़राना लगाने वाले के १० स्टाक बेचने पर यह नज़राना खाने वाला उनको ख़रीद लेगा और उस व्यक्ति को दे देगा जिसको उसने इन्हे ८८ रु० के भाव से बेचने का वायदा किया था। और यदि भाव ९४ रु० हो जाता है तो नज़राना लगाने वाला उससे १० स्टाक ख़रीदेगा और वह उसको उस व्यक्ति से लेकर जिसने ९२ रु० के भाव से उसको वह स्टाक बेचे थे उसको दे देगा। इस तरह से उसको कोई नुकसान न होगा। हाँ, यदि उसने ८८ रु० से ऊपर ही बेच दिया है अथवा ९२ रु० से नीचे ही ख़रीद लिया है तो उसे अवश्य कुछ मिल जायगा। और यदि उसका सौदा ८८ रु० पर अथवा ९२ रु० पर नहीं हो पाता है तो उसको नुक़सान उठाना पड़ता है।

इकतरफा तेज़ी और मन्दी—जब कभी किसी का ध्यान बाज़ार में ज़्यादा तेज़ी या मन्दी का हो जाता है तो उसको केवल तेज़ी अथवा केवल मन्दी जैसा मालूम पडे वैसा ही लगा देना चाहिये।

इस हालत में उसे नज़राने से कम रक़म लगानी पड़ती है। यदि बाज़ार ध्यान के अनुसार उसी तरफ़ चल गया जो चीज़ (तेज़ी अथवा मन्दी) लगाई गई है तो इस तरह से कम रक़म लगा कर फ़ायदे का काम हो जाता है। इस लगाई हुई तेज़ी अथवा मन्दी के पेटे लेवा-वेची भी की जा सकती है। जिस तरह से एक व्यक्ति तेज़ी अथवा मन्दी लगाने का काम करता है उसी तरह से दूसरा व्यक्ति तेज़ी अथवा मन्दी खाने का भी काम करता है। इसमें भी घाटे की रक़म अधिक और लाभ की रक़म केवल उतनी ही जितनी कि प्रारम्भ में मिल जाती है हो सकती है। किन्तु इसके लिये भी बाज़ार के उल्टा जाने पर लेई अथवा वेची कर के नुक़सान को रोका जा सकता है।

---

१६. करन्सी और सराफ़ा

(१) करन्सी किसे कहते हैं ? (२) द्रव्य का प्रमाण (३) पारिमाणिक सिद्धांत और ग्रीशम का नियम (४) मुद्रा प्रसार और मुद्रा संकुचन का प्रभाव (५) भारतीय करन्सी (६) सराफा और उसके सिद्धांत (७) भारतीय बैंकिङ्ग।

करंसी और सर्राफ़ा आधुनिक व्यापार के मुख्य अंगो में से हैं। जिन देशों में इनकी उन्नति नहीं हुई है उनमें व्यापार की अवस्था भी पिछड़ी हुई है। करंसी और सर्राफ़े पर व्यापार निर्भर है और व्यापार पर करंसी और सर्राफ़ा निर्भर है। अंग्रेज़ों के आने के पहिले भारतवर्ष के व्यापार के योग्य भारतवर्ष का करंसी और सर्राफ़ा था। यहाँ के सभी सम्राटों ने अपने समय की करसी को उन्नति अवस्था में पहुँचाने का प्रयत्न किया था। सर्राफ़े के विषय में तो फ्रेंच यात्री टेवरनियर ने लिखा है कि रोम के सर्राफ़ भारतवर्ष के सर्राफ़ों के यहाँ बहुत दिनों तक काम सीख सकते हैं। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के लोग यहाँ के सराफ़ों की वहुत इज्जत करते थे। भारतवर्ष में उनका बड़ा दबदबा था। वे बहुत बड़े धनी भी थे और लोगों में प्रिय भी थे।

(१) करन्सी किसे कहते हैं ?

यहाँ पर हमें द्रव्य (Money), करंसी (Currency), मुद्रा (Coins), कागज़ी मुद्रा (Notes), और साख-पत्र (Credit instruments) के विषय मे भली भाँति समझ लेना चाहिये। द्रव्य शब्द वहुत ही व्यापक है। इसमें ऐसी सभी चीज़ें सम्मिलित हैं जिनके द्वारा विनिमय की चीज़ें ख़रीदी और वेची जा सकती हैं।

इनमें करेंसी, मुद्रा, कागज़ी मुद्रा और साख-पत्र सभी आ जाते हैं। इसके विपरीत करेंसी में केवल वही वस्तुएँ आती हैं जिनको लोग किसी एक विशेष समय में और किसी एक विशेष देश में बिना किसी संदेह के अपने ऋण की अदायगी में ले लेते हैं। आधुनिक काल में भारतवर्ष में इनके उदाहरण के लिये धात्विक तथा कागज़ी मुद्राएँ हैं। इनको प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी सन्देह के ग्रहण कर लेता है। ये कानूनन् ग्राह्य (Legal tender) हैं। जहाँ तक मुद्रा शब्द का प्रयोग है वह केवल धात्विक मुद्रा के लिये ही प्रयोग में आता है। विनिमय के लिये देश और काल के अनुसार अनेकों वस्तुयें काम में आती रही हैं। आज भी कनाडा में समूर, हमारे सीमा प्रान्त के उस पार राइफ़िलें, दक्षिणी अमरीका के कुछ देशों में टीन के टुकड़े और भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ प्रयोग में आ रही हैं। इन सब वस्तुओं में धातु और विशेषकर सोना, चाँदी इस काम के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं। विनिमय में काम मे आने वाली वस्तुओं में कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता है, जैसे (१) उपयोगिता, (२ पहिचाने जाने की शक्ति, (३) हल्कापन, (४) बिभाजित होने की शक्ति, (५ शीघ्र ही ख़राब न हो जाने की शक्ति, (६) मूल्य की स्थिरता, (७ एकसाँ होने की शक्ति, और (८) मुद्रा के रूप में ढलने और फिर गलने की शक्ति। यदि हम ध्यान से देखें तो ये सब गुण धातुओं में और सोने तथा चाँदी मे विशेष तौर पर यदि पूरी तौर से नहीं तो यथेष्ट मात्रा में पाये जाते हैं। अतः, सोना-चाँदी बहुत दिनों से विनिमय के काम मे आता रहा है। पहिले इसके टुकड़े काम में आते थे, फिर अग्रगणी व्यापारी एक विशेष तौल के टुकड़ों पर अपनी छाप लगा कर आम जनता की सुविधा के लिये उनको प्रमाणित बनाने लगे, और अन्त मे इस काम को स्वयम् स्टेट ने ले लिया। अतः, मुद्रा धातु का वह प्रमाणित टुकड़ा है जिसका एक विशेष रूप होता है, तौल होती है, प्रमाण होता है और जो एक विशेष मूल्य पर ली दी जाती है। मुद्रायें

पहिले-पहल हाथ से बनाई जाती थीं जिससे उनमें बहुत कुछ कमी रह जाती थी। किन्तु वह मुद्रायें भी दिन पर दिन अच्छी बनती जाती थीं। प्रत्येक स्टेट अपनी स्वतन्त्रता का संकेत अपनी निज की मुद्रा के द्वारा करती थी। भारतवर्ष मे जब अंग्रेज़ लोग आये थे यहाँ पर अनेकों राज्य थे और इसीलिये नौ सौ चौरानबे प्रकार की मुद्रायें भी प्रचलित थीं। मशीनों के द्वारा मुद्राओं का बनाना सत्तरहवीं शताब्दी में शुरू हुआ था और इसमें बराबर उन्नीत हती आ रही है। आज-कल की मुद्रा बहुत ऊँचे दर्जे की बनने लगी है। मुद्रायें कई प्रकार की होती हैं। (१) पारिमाणिक (Standard) और (२) साकेतिक (Token)। पारिमाणिक मुद्रा का धात्विक मूल्य और बाज़ारू मूल्य एक-सा होता है, उसकी ढलाई के लिये टकसाल बराबर खुली रहती है और वह अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य होती है (Unlimited Legal Tender)। स्पष्ट है कि यह मुद्रा देश की मुख्य मुद्रा होगी। भारतवर्ष में सन् १८९३ तक रुपया पारिमाणिक मुद्रा था। उस वर्ष टकसाल को इसकी ढलाई के लिये जहाँ तक आम जनता का प्रश्न है बन्द कर दिया गया। तभी से इसका धात्विक मूल्य और बाज़ारू मूल्य एक दूसरे से भिन्न हो गया है तब भी यह अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य है और साथ ही देश की मुख्य मुद्रा है। अतः, इसको प्रामाणिक सांकेतिक मुद्रा (Standard Token Coin) कहते हैं। सांकेतिक मुद्रा की ढलाई सरकार अपनी आवश्यकता के अनुसार करती है उसका धात्विक मूल्य उसके बाज़ारू मूल्य से कम होता है और वह परिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य (Limited Legal Tender) होती है। यह मुद्रा मुख्य मुद्रा की आंशिक मुद्रा होती है और उसकी सहायता के लिये होती है। भारतवर्ष में चवन्नी, दुअन्नी, एकन्नी, अधन्ना, पैसा, अधेला, पाई, साकेतिक मुद्रायें हैं। यह एक रुपये से कम तक ही कानूनन् ग्राह्य हैं। कागज़ी मुद्रा का चलन सबसे पहिले शायद चीन में हुआ था, फिर बारहवीं शताब्दी में इसका प्रारम्भ

इटली में हुआ था। किन्तु इसकी सबसे अधिक उन्नति इंगलैंड में हुई। वहाँ के सराफ़ अपने नोट चलाते थे, फिर बैङ्क आफ़ इंगलैंड के भी नोट चलने लगे। इसके बाद सराफ़ों के नोट तो धीरे-धीरे बन्द हो गये किन्तु बैङ्क आफ़ इंगलैंड के नोट अभी तक चलते हैं। जो सस्था नोट चलाती है वह उनके लिये या तो पूरा कोष धातु में रखती है या कुछ कम। यदि वह पूरा कोष धातु में रखती है तो नोट धातु के प्रतिनिधि मात्र रहते हैं। उनसे धातु के घिसावट की क्षति तो रुक जाती है और उनको प्रयोग में लाने में भी सुविधा होती है किन्तु और कोई लाभ नहीं होता है। किन्तु जब पूरा कोष धातु में नहीं रक्खा जाता है तब उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी होते हैं। एक तो ऐसी अवस्था में करन्सी का परिमाण धातु की प्राप्ति पर निर्भर नहीं रहता है। अतः, वह आवश्यकता के अनुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। दूसरे जितना सोना आजकल संसार में है उतने सोने से ही सब देश स्वर्ण-मान रख सकते हैं। तीसरे देश का फ़ालतू सोना कोष में न रह कर बाहर काम में आता है और उस पर ब्याज के रूप में आय होती है, किन्तु सोने के परिमाण से अधिक नोटों का निकालना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जब नोटों का भुगतान मुद्रा में अथवा सोने में करने की स्टेट की ज़िम्मेदारी नहीं रहती है तब नोट बहुत अधिक मात्रा में निकाल दिये जाते हैं और उनकी क़ीमत काग़ज़ के टुकड़ों के समान हो जाती है। अतः, उनके मुद्रा में अथवा सोने में भुगतान करने की ज़िम्मेदारी तो स्टेट की अवश्य ही होनी चाहिये। इस ज़िम्मेदारी को निबाहने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि नोटों के लिये शत प्रतिशत स्वर्ण कोष हो। यदि स्टेट नोटों के भुगतान की ज़िम्मेदारी ले लेती है तो वास्तविक भुगतान लेने के लिये बहुत कम लोग जाते हैं और कुछ प्रतिशत स्वर्ण-कोष से ही काम चल सकता है। अतः, नोटों का भुगतान होना बहुत ज़रूरी है। जिस तरह से नोट द्रव्य हैं उसी तरह से साख-पत्र भी द्रव्य हैं।

साख-पत्र व्यापार के दौरान में ही उत्पन्न होते हैं और समाप्त हो जाते हैं। अतः, उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि उनके कारण द्रव्य का परिमाण व्यापार की घटती और बढ़ती की आवश्यकता के अनुसार ही होता है। जैसा कि हम आगे चल कर पारिमाणिक सिद्धांत के सम्बन्ध में देखेंगे इससे मूल्य की स्थिरता में बड़ी सहायता मिलती है। साख-पत्रों के उदाहरण के लिए चेक, विनिमय के बिल प्रण-पत्र और हुण्डी इत्यादि हैं।

(२) द्रव्य का प्रमाण (Monetary Standards)

मोटे रूप से हम प्रमाणों को चार भागों मे बाँट सकते हैं—(१) धातु मान, (२) विनिमय-मान, (३) काग़ज़ी-मान, (४) कोष्टक-मान।

धातु-मान—धातु-मान में एक धातु चलन अथवा द्विधातु चलन प्रमाण हो सकता है। एक धातु चलन के अनुसार केवल एक धातु के, साधारणतया यह धातु सोना अथवा चाँदी होती है, बने सिक्के जो प्रामाणिक मुद्रा होते हैं अथवा किसी अन्य धातु की अथवा काग़ज़ी मुद्राएँ जिनका मूल्य एक धातु में निर्धारित रहता है प्रयोग में लाये जाते हैं। यदि प्रामाणिक सिक्का होता है तो उसको ढलवाने की प्रत्येक व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता होती है। कोई भी मनुष्य टकसाल द्वारा निश्चित दर पर उस धातु को टकसाल में ले जाकर उसको सिक्के के रूप में बदलवा सकता है इनमें प्रामाणिक मुद्रा के सभी गुण होते हैं। यदि प्रामाणिक सिक्के नहीं होते हैं तो कोई अन्य मुद्रा होती है जिसका मूल्य सोने अथवा चाँदी में निर्धारित होता है। भारतवर्ष में रुपये का मूल्य बहुत दिनों तक सोने में निर्धारित रहा है। अब यदि देश की मुद्रा और उसके मूल्य का सोना देश के अन्दर परिवर्तित हो सकते हैं तो वह स्वर्ण-मान का स्वर्ण-पाट-प्रमाण कहलायेगा और यदि ये दोनों केवल देश के बाहर ही सोने की सुपुर्दगी में परिवर्तित हो सकते हैं तो वह स्वर्ण-मान का स्वर्ण-विनिमय प्रमाण कहलायेगा। जब

सोने की प्रामाणिक मुद्राएँ चलती हैं तब वह स्वर्ण-मुद्रा प्रमाण कहलाता है। रजत-मान में ये तीन रूप नहीं होते हैं। उसमें केवल रजत मुद्रा-प्रमाण-रूप ही देखा गया है। द्विधातु चलन में मुख्य मुद्राएँ दो होती हैं। एक का आधार स्वर्ण होता है और दूसरे का रजत होता है और ये दोनों मुद्राएँ परस्पर एक निश्चित दर से अदली-बदली जा सकती हैं। दोनों ही मुद्राओं के ढलने के लिए टकसाल खुली रहती है, दोनों का धात्विक मूल्य उनके बाज़ारू मूल्य के बराबर रहता है और दोनों अपरिमित क़ानूनन् ग्राह्य रहती हैं। अब इसमें दोनों मुद्राओं के बीच की निश्चित की हुई दर का जिसको टकसाली दर भी कहते हैं और उनके बीच की बाज़ारू दर का जो सोने और चाँदी के पारस्परिक मूल्य की घटा-बढ़ी के कारण बदलता रहता है बराबर एक-सा रहना कठिन हो जाता है। अतः, इसमें ग्रीशम के नियम के चलने से यह प्रमाण टूट जाता है। ग्रीशम के नियम को और द्वि-धातु चलन के टूट जाने को हम आगे देखेंगे किन्तु यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि इस कठिनाई के कारण द्विधातु चलन के कुछ नये-नये रूप प्रयोग में आये। ये समानान्तर चलन (Parallel Standard) और लंग चलन (Limping Standard) कहलाते हैं। समानान्तर चलन में दो प्रामाणिक मुद्रायें होती हैं इनमें से एक चाँदी की और दूसरी सोने की होती है। दोनों की ढलाई के लिये टकसालें खुली रहती हैं, प्रत्येक का धात्विक मूल्य उसके बाज़ारू मूल्य के बराबर होता है और प्रत्येक अपरिमित रूप में क़ानूनन ग्राह्य होती है। दोनों के बीच में कोई क़ानूनी दर नहीं निश्चित रहती। वे परस्पर बाज़ारू दर के अनुसार चलते रहते हैं। अतः, ग्रीशम के नियम का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लंग चलन में द्विधातु चलन की सभी बातें होती हैं और दोनों मुद्राओं में पारस्परिक परिवर्तन की दर भी निर्धारित रहती है किन्तु उनमें से एक की प्रायः चाँदी की मुद्रा की ढलाई के लिये टकसाल नहीं खुली रहती। वह केवल सरकार

की इच्छा के अनुसार ही ढलती है। द्विधातु चलन के एक इस गुण की अनुपस्थिति के ही कारण यह चलन लंग चलन कहलाता है।

संयुक्त क़ानूनन् ग्राह्य व्यवस्था (Composite Legal Tender System)—एक धातु चलन में सोने अथवा चाँदी का एक प्रामाणिक सिक्का होता है, साथ ही उसके कुछ अन्य छोटे-छोटे सिक्के भी हो सकते हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य धातुओं के भी छोटे-छोटे सिक्के होते हैं। इसको संयुक्त क़ानूनन् ग्राह्य व्यवस्था कहते हैं।

(२) विनिमय-मान—इस मान में जो मुद्रा चलती है उसका मूल्य किसी दूसरे देश की मुद्रा में निर्धारित होता है जैसे रुपये का मूल्य पौंड-शिलिंग-पेंस में निर्धारित है। जिन देशों की मुद्राओं का मूल्य अंग्रेज़ी मुद्रा में निर्धारित है वे स्टर्लिंग विनिमय-मान पर कहे जाते हैं। कुछ देश डालर विनिमय-मान पर हैं। उनकी मुद्राओं का मूल्य डालर में निर्धारित है। द्वितीय महायुद्ध के समय कुछ देशों में येन-विनिमय-मान और कुछ देशो में मार्क-विनिमय मान भी था। येन-जापानी मुद्रा को और मार्क जर्मनी मुद्रा को कहते हैं। विनिमय-मान का सबसे बड़ा अवगुण है कि देश की करसी किसी दूसरे देश की मुद्रा पर निर्भर रहती है। इससे जनता का उस पर विश्वास भी नहीं रहता।

(३) काग़ज़ी-मान—कागज़ी-मान में कागज की मुद्रा का प्रसार होता है, और उसके मूल्य को किसी भी आधार पर नहीं निर्धारित किया जाता है।

(४) कोष्टक मान—इसमें वस्तुओं के मूल्य के कोष्टक बना लिये जाते हैं और करेन्सी के मूल्य को उन्हीं के आधार पर स्थिर रक्खा जाता है।

(३) पारिमाणिक सिद्धान्त और ग्रीशम का नियम

अब हम करन्सी के सम्बन्ध की दो विशेष बातों की ओर आते

है। इनमें से प्रथम तो पारिमाणिक सिद्धान्त है और दूसरा ग्रीशम का नियम। पारिमाणिक सिद्धान्त यह बतलाता है कि वस्तुओं की कीमत उसी अनुपात में बढ़ती हैं जिस अनुपात में चालू द्रव्य का परिमाण या उसकी चलन गति बढ़ती है, यदि लेन-देन की मात्रा पहिले के बराबर रहे, और यदि चालू द्रव्य का परिमाण और उसकी चलन गति मे परिवर्तन न हो, तो वस्तुओं की कीमत उसी अनुपात में घटती है जिस अनुपात मे वार्षिक लेन-देन की मात्रा बढ़ती है। यह सिद्धांत सांकेतिक रूप में इस प्रकार लिखा जाता है :—

$$\frac{\text{द्र०} \times \text{ग०}}{\text{ले०}} = \text{की०} \left(\frac{MV}{T} = P\right)$$

द्र० = द्रव्य; ग० = द्रव्य के चलन की गति; ले० = वार्षिक लेन-देन की मात्रा; की० = वस्तुओं की कीमत।

उपरोक्त में द्रव्य का परिमाण करन्सी और साख पत्रों का परिमाण मालूम करके जाना जा सकता है। अब करन्सी कितनी निकली है यह तो मालूम हो सकती है किन्तु कितनी करन्सी वास्तव में काम में आ रही है यह मालूम होना सम्भव नहीं है। फिर साख-पत्रों के परिमाण को मालूम करना और भी कठिन है। रह गया द्रव्य की चलन-गति सो यह भी यथार्थ रूप में नही मालूम की जा सकती। अन्तिम बात लेन-देन की मात्रा को भी यथार्थ रूप में मालूम करना असम्भव-सा है। अतः, इस सिद्धान्त की सत्यता पूर्ण रूप से तो जानी नही जा सकती, किन्तु यह सिद्धान्त बहुत अंशों तक सही है।

यदि किसी एक ही वस्तु की अथवा कुछ ही वस्तुओं की कीमतें घटती-बढ़ती हैं तब तो यह हो सकता है कि उनकी माँग के बढ़ने-घटने से ही यह हुआ हो। किन्तु जब सभी चीज़ों के मूल्य में एक साथ परिवर्तन होता है तब अवश्य वह द्रव्य के परिमाण में परिवर्तन होने के कारण होता है।

दोनों महायुद्धो के समय इस सिद्धांत की सत्यता बहुत अच्छी तरह से प्रमाणित हो गई। जिन-जिन देशों में वस्तुओं की कीमत एक साथ बढ़ी, उनमें कागज़ी मुद्राओं का अधिक प्रचार किये जाने से चालू द्रव्य की मात्रा बहुत बढ़ गई थी। भारत मे भी ऐसा ही हुआ था। सन् १९१२ की ६६ करोड़ रुपये की चालू कागज़ी मुद्रा की तुलना में सन् १९१९ में यह १८३ करोड़ रुपये की हो गई थी। इसी कारण वस्तुओं की क़ीमत का इन्डेक्स नम्बर भी १९१२ के १३७ से सन् १९१९ में २७६ हो गया था। इस युद्ध में १९३९ की चालू कागज़ी मुद्रा १८२ करोड़ से जनवरी सन् १९४७ में १२२६ करोड़ हो गई थी। इसीके साथ-साथ वस्तुओं की क़ीमत का इन्डेक्स नम्बर सन् १९३९ के सौ की तुलना मे सन् १९४७ मे हो गया था।

ग्रीशम का नियम :— एलिज़ाबेथ के समय मे लन्दन टावर में एक नई टकसाल खोली गई थी जिसमे उस समय के अनुसार सबसे बढ़िया मुद्रायें ढलती थीं। रानी यह चाहती थी कि बाज़ार मे अच्छी मुद्रायें चलें और ख़राब घिसी हुई मुद्राये चलना बन्द हो जायें। टकसाल बराबर चौबीस घटे मुद्रायें ढालती रहती थीं किन्तु बाज़ार में केवल घिसी हुई पुरानी मुद्रायें ही नज़र आती थीं। रानी की समझ में नहीं आता था कि लोग अच्छी मुद्राओं को इस्तेमाल न करके बुरी मुद्रायें क्यों इस्तेमाल करते हैं। साधारणतया तो मनुष्य अच्छी चीज़ों को इस्तेमाल करता है और बुरी चीज़ों का इस्तेमाल बन्द कर देता है। उसके मन्त्री भी इसका कारण नहीं बता सकते थे, किन्तु ग्रीशम ने कहा कि इसमें कोई विचित्र बात नहीं है। जब अच्छी और बुरी मुद्रायें साथ-साथ एक ही मूल्य पर चलती हैं तब लोग अच्छी मुद्राओं को तो अपनी बचत के रूप में रख लेते हैं अथवा उनमें अधिक धातु होने के कारण उनको विदेश भेज देते हैं जहाँ वह धातु के मूल्य पर चलती हैं। स्पष्ट है कि अच्छी मुद्राओं को रखने में और विदेश

भेजने में घिसी हुई मुद्राओं को ऐसा करने की अपेक्षा अधिक लाभ होगा। उस समय से घिसी हुई मुद्राओं को सरकार वापस लेने लगी है। हाँ, यदि उनकी तौल इतनी कम हो जाती है कि साफ़ स्पष्ट होता है कि वह जान कर कम की गई है—तब सरकार उन मुद्राओं को नहीं लेती। पुराने सिक्के एक निश्चित तारीख़ के बाद जनता में क़ानूनन् ग्राह्य नहीं रह जाते हैं। ग्रीशम के नियम का यह रूप तो उस समय दृष्टिगोचर होता है जब धातु की बनी हुई हल्की और भारी मुद्रायें साथ-साथ चलती हैं किन्तु वह दो अन्य रूपों में भी दृष्टिगोचर होता -इनमें से एक तो उस समय दृष्टिगोचर होता है जब द्विधातु चलन रहता है और दूसरा उस समय जब धात्विक मुद्राओं अथवा धातु में भुगतान न होने वाली कागज़ी मुद्रा और धात्विक मुद्रायें साथ-साथ चलती हैं। प्रथम महायुद्ध के समय इङ्गलैंड की कागज़ी मुद्राओं का धात्विक मुद्राओं में भुगतान बन्द कर दिया गया था, अतः, वहाँ पर कुछ दिनों तक कागज़ी मुद्रायें और धात्विक मुद्रायें साथ-साथ चलती रहीं—किन्तु धीरे-धीरे धात्विक मुद्रायें तो बाज़ार से ग़ायब हो गईं और केवल कागज़ी मुद्रायें ही बाज़ार में रह गईं। द्विधातु चलन में ग्रीशम के नियम के अनुसार जिस मुद्रा की टकसाली दर उसकी धात्विक दर से ऊँची निर्धारित कर दी जाती है उस मुद्रा को निकाल बाहर करती है जिसकी टकसाली दर उसकी धातु की क़ीमत से कम रह जाती है। मान लीजिये—एक सोने की और दूसरी चाँदी की मुद्रा है और दोनों एक एक तोले सोने-चाँदी की हैं। अब यदि उनकी टकसाली दर पन्द्रह चाँदी की मुद्राओं के लिये एक सोने की मुद्रा रखी गई है तो यदि बाज़ार में चाँदी का दर गिर जाता है और साढ़े पन्द्रह तोले चाँदी एक तोला सोने के बराबर हो जाती है तो चाँदी के सिक्के सोने के सिक्कों को भगा देंगे। स्पष्ट है कि एक सोने के सिक्के में जो एक तोला सोना होगा उसके बदले में बाज़ार में साढ़े पन्द्रह तोले चाँदी मिलेगी और उसमें से पन्द्रह तोले चाँदी के

पन्द्रह सिक्के बनवा कर सरकार से सोने का एक सिक्का ले लिया जायगा। उस सोने के सिक्के से फिर एक तोला सोना निकाल कर साढ़े पन्द्रह तोले चाँदी ली जायगी। यह काम बराबर होता रहेगा—क्योंकि इसमें बराबर आधा तोला चाँदी बचती रहती है। इससे सोने के सिक्के गला-गला कर कम कर दिये जायेंगे और चाँदी के सिक्के बना-बना कर बढ़ा दिये जायेंगे। सोने का मूल्य घट जाने से इसका उलटा होगा। अतः, द्विधातु चलन मान अदलता-बदलता हुआ मान (Alternating Standard) है।

(४) मुद्रा प्रसार और मुद्रा संकुचन का प्रभाव

प्रत्येक देश को एक समय में एक विशेष परिमाण की मुद्रा की आवश्यकता होती है। मुद्रा की यह आवश्यकता चीज़ों का जितना विनिमय होता है उससे निर्धारित होती है। कितना विनिमय एक देश में एक समय पर होगा यह उस समय के व्यापार, व्यवसाय तथा अन्य आर्थिक कारोबार सम्बन्धी आवश्यकताओं पर निर्भर रहता है। मुद्रा की इस आवश्यकता को पूरी करने के लिये उस परिमाण में मुद्रा की ज़रूरत होती है। यदि किसी समय मुद्रा का परिमाण आवश्यकता से अधिक है तो यह अवस्था मुद्रा प्रसार की अवस्था कहलाती है। इसका यह परिणाम होता है कि मुद्रा का चीज़ों मे मूल्य गिर जाता है अर्थात् चीज़ो के भाव मे तेज़ी आ जाती है। दोनों महायुद्धो में संसार के सभी देशों में उनकी मुद्राओं के प्रसार के कारण बड़ी-बड़ी तेज़ियाँ आई हैं। मुद्रा-प्रसार के अनेकों दुष्परिणाम हैं। इसका प्रभाव निश्चित आय वाले वर्गों पर बहुत बुरा पड़ता है क्योंकि उनकी आय तो बढ़ती नहीं है किन्तु चीज़ो के मूल्य अधिक बढ़ जाने के कारण उनको तकलीफ़ बहुत होती है। मध्यमवर्ग और मज़दूरवर्ग को इससे हानि होती है—हाँ—व्यवसायीवर्ग को भाव में तेज़ी आ जाने से लाभ अवश्य होता है। यह लाभ अधिक समय तक स्थायी

नहीं रहता—क्योंकि व्यवसाई वर्ग या तो इसको व्यवसाय के अन्य साधनों को जुटाने वाले वर्गों में विशेषकर मज़दूरों में बाँट देता है या यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उनकी क्रय शक्ति के घट जाने से उसका माल नहीं बिकता है। इसी तरह से मुद्रा-प्रसार का भाव ऋणदाता के लिये हानिकर और ऋणी के लिये लाभप्रद होता है। हम जानते हैं कि ऋणदाता को ऋण के चुकाने में जो मुद्राये मिलती हैं उनसे उतनी वस्तुएँ नहीं ख़रीदी जा सकतीं जितनी कि उस समय ख़रीदी गई थीं जब कि मुद्रा का प्रसार नहीं हुआ था। ऋणी जितनी मुद्राये लेता है वह उनको कम माल बेचने से अथवा कम सेवा करने से मिल जाती है, इससे यह उसके लिये लाभप्रद है। मुद्रा-प्रसार के कारण भाव में जो तेज़ी आता है उससे सट्टेबाज़ी को प्रोत्साहन मिलता है और बाज़ार में कुछ अनिश्चितता आ जाती है।

जब किसी देश में किसी समय मुद्रा की पूर्ति उसकी माँग से कम होती है तब ऐसी अवस्था को मुद्रा सकुचन की अवस्था कहते हैं। इससे जो आर्थिक परिणाम सामने आते हैं वह मुद्रा-प्रसार के सर्वथा विपरीत होते हैं। मुद्रा-प्रसार और मुद्रा सकुचन दोनों ही के दुष्परिणाम होते हैं अतः, दोनों को ही रोकना चाहिये। मुद्रा-प्रसार के दुष्परिणाम हम लोग भली भाँति देख रहे हैं। मँहगाई के कारण करोड़ों आदमियों को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता और न मालूम कितने काल के गाल में जा चुके हैं।

(५) भारतीय करन्सी

भारतवर्ष में सोने और चाँदी के सिक्कों का प्रचार बहुत पहले से था। मुसलमानी राज्य के समय चाँदी के सिक्कों का प्रचार बढ़ा किन्तु दक्षिण में जो हिन्दू राज्य थे उनमें सोने के सिक्के ही अधिक चालू थे। यहाँ की मुद्राओं की बनावट उत्तरोत्तर उन्नति करती रही। मुहम्मद तुग़लक ने ताँबे के रुपयों को चला कर जो एक नया चलन

जारी करना चाहा था वह उसके समय के अनुकूल नहीं था। इसी कारण इतिहासकार उसे पागल भले ही कहें किन्तु जब काग़ज़ी मुद्रायें चल सकती हैं तो ताँबे की मुद्रायें चलाने में कोई पागलपन नहीं था। हम तो उसको मुद्रा संबन्धी जाँच करने वाले व्यक्तियो में सबसे अग्रगण्य कहेंगे। जहाँगीर ने अनेकों प्रकार की मुद्रायें चलाई थी। शेरशाह के रुपयों को हम आधुनिक रुपयों का बाबा कह सकते हैं। ईस्ट इण्डिया के आने के समय जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है—यहाँ पर ६६४ तरह के सिक्के चालू थे जिनके मूल्य का एक दूसरे में पता लगाना बड़ा मुश्किल था। चीज़ों की कीमतें भिन्न-भिन्न सिक्कों में भिन्न-भिन्न थीं और सिक्कों की दशा भी इतनी ख़राब हो गई थी कि व्यवसाइयों को अपनी जेब में बराबर काँटा और कसौटी रखना पड़ता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संयोजको के सामने यह प्रश्न था कि सिक्के चाँदी के अथवा सोने के चलाये जावें या दोनों चलाये जावें। जो हो अन्त में निश्चय यही हुआ है कि चाँदी के ही सिक्के चलाये जावें लेकिन सोने के सिक्को का चलना भी न रोका जाय। सन् १८३५ में उस समय की सरकार ने मुद्रा सम्बन्धी एक क़ानून पास किया जिसके अनुसार एक तोले चाँदी का एक रुपया और एक तोले सोने की एक मोहर बनना प्रारम्भ हुआ। इसमें ११/१२ शुद्ध और १/१२ मिलावट होती थी। पन्द्रह रुपये की एक मोहर रखी गई किन्तु यह कोई निश्चित दर नहीं थी। रुपये और मोहर परस्पर सोने और चाँदी के बाज़ारू दर पर लिये दिये जाते थे केवल रुपया ही प्रामाणिक सिक्का था। टकसाल तो रुपये और मोहर दोनों के ढलने के लिये खुली थी। दोनों की टकसाली दर भी दोनों के आन्तरिक मूल्य के बराबर थी किन्तु केवल रुपया ही कानूनन् ग्राह्य रखा गया था, मोहर केवल लोगों की इच्छा पर ही चलती थी। वास्तव मे यह अवस्था रजत-मान की जीत और स्वर्ण-मान की हार थी। भारतीय व्यापारी स्वर्ण-मान के पक्ष में थे। उन्होने बड़ा कुहराम मचाया जिससे सन् १८४१ में सरकार ने सोने के

सिक्कों को जनता के भुगतान में लेना स्वीकार कर लिया। किन्तु दस वर्ष बाद जब सोने की खदानों के निकलने के कारण सोने की क़ीमत गिरने लगी, सरकार ने भी सोने के सिक्कों को लेना बन्द कर दिया। सन् १८३५ के क़ानून के अनुसार चाँदी की अठन्नियाँ, चवन्नियाँ और दुअन्नियाँ तथा सोने की आठमाशी और चारमाशी मोहरें भी चलती थीं। छोटे-छोटे सिक्कों के लिये अधन्ने, पैसे, धेले और पाई के बनाने का भी प्रबन्ध किया गया। सरकार ने सन् १८६१ तक काग़ज़ी मुद्रा नहीं चलाई। कुछ सर्राफ़ और प्रेसीडेन्सी बैङ्क अपनी काग़ज़ी मुद्रायें चलाते थे। यह क़ानूनन् ग्राह्य न होने के कारण बहुत प्रचलित न थे। सन् १८६१ में सरकार ने पहिले-पहल काग़ज़ी मुद्रा चलाई। प्रारम्भ में तो केवल चार करोड़ रुपये की ही काग़ज़ी मुद्रा बिना सोने और चाँदी के कोष के चल सकती थी किन्तु धीरे-धीरे प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने के वर्ष तक यह बारह करोड़ तक पहुँच गई थी। इसके ऊपर जितनी भी काग़ज़ी मुद्रा होती थी उसके लिये शत प्रतिशत सोने और चाँदी का और बाद मे रुपयो और चाँदी का कोष रखा जाता था। पहिले-पहिल एक केन्द्र की काग़ज़ी मुद्रा का भुगतान दूसरे केन्द्र में रुपयो में देने के लिये सरकार बाध्य नहीं थी किन्तु धीरे-धीरे उसने यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। सन् १६१२ तक मे काग़ज़ी मुद्रा ६६ करोड़ रुपयो तक की हो गई थी। प्रथम महायुद्ध के अन्त में यह १८३ करोड़ तक पहुँच गई थी। फिर यह सन् १६३६ तक लगभग इतनी ही रही, किन्तु अब यह बारह सौ करोड़ रुपये के ऊपर है। नोटों के भुगतान के लिये एक कोष रक्खा जाता है। पहिले यह भारतीय सरकार की हुण्डियों, रुपयों और सोने-चाँदी मे रहता था। बाद मे इसमें अंग्रेज़ी सरकार की हुन्डियाँ भी रखी जाने लगीं जो आजकल ग्यारह सौ करोड़ के ऊपर की हैं। देश के कोष का इतना बड़ा हिस्सा किसी दूसरे देश के सरकार की हुण्डियों में रखना सर्वथा अनुचित है। यहाँ का सोना भी एक परिमित मात्रा मे विलायत में रखा जाता था जो

इस लड़ाई मे बन्द हो गया है। सन् १९३५ से कागज़ी मुद्रा के चलाने का काम रिज़र्व बैङ्क के सुपुर्द कर दिया गया है। बैङ्क की कागज़ी मुद्रा सरकार की कागज़ी मुद्रा से अच्छी होती है। प्रथम तो सरकार के ऊपर कोई देख-भाल न हो सकने के कारण उसके कागज़ी मुद्रा को मनमाने ढंग से चलाने की आशंका रहती है और बैङ्क के ऊपर सरकार की देख-रेख होने के कारण ऐसा नहीं हो सकता—हाँ, यदि बैङ्क और सरकार मिल जायँ तो अवश्य गड़बड़ी होने की सम्भावना है जैसा कि हमारे यहाँ हुआ है। इस महायुद्ध में कागज़ी मुद्रा का इतना अधिक प्रसार केवल सरकार के बैङ्क के ऊपर दबाव के ही कारण हुआ है। यह मुद्रा-प्रसार न तो यहाँ के व्यवसाय की माँग के लिये आवश्यक था और न यहाँ की सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक था। यह तो केवल इसलिये आवश्यक हो गया कि हमारी सरकार ने मित्र राष्ट्रों के लिये और विशेषकर अंग्रेज़ी सरकार के लिये यहाँ पर मनमाना ख़र्च किया और सामग्रियाँ ख़रीदीं। यदि उनका भुगतान हो गया होता तो कागज़ी मुद्रा का प्रसार न होता। उनके बदले में तो केवल इङ्गलैण्ड के सरकार की हुण्डियाँ ही मिली है जो कागज़ी मुद्रा कोष में रखी हुई हैं और जिनके एक बहुत बड़े हिस्से को बट्टे-खाते लिखना पड़ेगा अथवा विलायत से माल मँगा कर ख़र्च करना पड़ेगा जिससे हमारे यहाँ के उद्योग-धन्धों के उन्नति मे बाधा पड़ेगी। बैङ्क की कागज़ी-मुद्रा होने से यह भी आशा की जा सकती है कि बैङ्क उसको बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार ही चलायेगा। सरकार को बाज़ार की आवश्यकता का उतना अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता जितना कि बैङ्क को हो सकता है—फिर यदि उसको यह ज्ञान हो भी जावे तो भी वह इससे लाभ नहीं उठा सकती है क्योंकि उसका काम धीरे-धीरे होता है। वह बाज़ार के साथ-साथ नहीं चल सकती है। इससे क़ीमतों की और ब्याज के दर की घट-बढ़ की सम्भावना रहती है। केवल उपरोक्त

को छोड़ कर जब कि रिज़र्व बैङ्क ने सरकार के दबाव में आकर देश की अवस्था का ध्यान नहीं रक्खा था, उसका काम सन्तोषजनक रहा है, यद्यपि उसकी सस्थापना से अब तक उसकी परीक्षा का बहुत अच्छा अवसर नहीं आया है—किन्तु आशा है कि अपनी सरकार होने पर भविष्य में वह देश की आवश्यकता के अनुसार ही काम करेगा।

सन् १८३५ मे भारतवर्ष में जो रजत-मान अपनाया गया था उसके विरोध में बराबर आवाज़ें उठती रहीं। डलहौज़ी की सरकार ने जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जब आम-जनता के भुगतान में मोहरों का लेना बन्द कर दिया तब स्वर्ण-मान के पक्ष में फिर एक बहुत बड़ा आन्दोलन उठ खडा हुआ। यहाँ तक कि सर रिचर्ड टेम्पल ने जो भारत सरकार का एक नेक अर्थ-मन्त्री था इस बात की बडी शिकायत की कि भारतवर्ष में स्वर्ण-मान क्यों नहीं चलाया जाता है। सन् १८७२ में उसने त्याग पत्र दे दिया और उसके बाद बीस वर्ष तक स्वर्ण-मान न होने के कारण भारत सरकार को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन वर्षों में चाँदी की क़ीमत बराबर गिरती रही और उससे रुपये की क़ीमत भी गिरती रही—अर्थात् चीज़ों का मूल्य बढ़ता रहा और रुपये का बाहरी सिक्कों में मूल्य गिरता रहा। सन् १८७२ में एक रुपया दो शिलिंग के बराबर था किन्तु १८९३ में यही क़रीब एक शिलिंग के बराबर हो गया था। इससे भारत की जनता को, व्यापारियों को और सरकार को बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पडी। एक तो चाँदी की क़ीमत बराबर गिरती रहने के कारण विदेशी लोग यहाँ के व्यापार के भुगतान में चाँदी ही भेजते रहे और भारतीय टकसालों के आम-जनता के लिये खुली रहने के कारण उससे रुपये बनते रहे जिससे द्रव्य का परिमाण बढ़ते रहने के कारण वस्तुओं की भी क़ीमतें बढ़ती रहीं। इससे आम जनता को विशेषकर नौकरी पेशे के लोगों को जिनकी आय क़रीब-क़रीब स्थायी रहती है बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। दूसरे

सरकार को मँहगी के कारण अपने कर्मचारियों के वेतन बढ़ाने पड़े। साथ ही जो अंग्रेज़ कर्मचारी यहाँ पर काम करते थे वह अपनी बचत का जो हिस्सा इंगलैंड भेजते थे उससे २ शिलिंग की दर से जितने पौंड इंगलैंड पहुँचते थे एक शिलिंग प्रति रुपये की दर से वह उससे लगभग आधे के पहुँचने लगे जिससे उन्होंने सरकार को और भी अधिक वेतन देने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त सरकार स्वयं विलायत में बहुत कुछ खर्च करती थी उसके लिए उसको बराबर अधिक से अधिक रुपया भेजना पड़ता था। इन सब के कारण उसका खर्च बहुत बढ़ गया था। अतः, इसके कारण उसको जनता के ऊपर नित्य नए कर लगाने पड़ते थे जो न जनता ही पसन्द करती थी न स्वयं सरकार ही। सरकार का यह मालूम था कि जनता की कर देने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी और अधिक कर लगाने से उसमें विरोधाग्नि फैलने की आशंका थी। अतः, जहाँ तक संभव था वह ऐसा नहीं करना चाहती थी। व्यापारीवर्ग को भी इससे बड़ी हानि हुई। वे लोग नए धन्धे खोल रहे थे किन्तु उनके लिए जो मशीनें मँगानी पड़ती थीं उनके लिए बराबर अधिक से अधिक रुपये देने पड़ते थे। मज़दूरों के भी वेतन बढ़े हुए थे और भी सभी चीज़ों की क़ीमतों में वृद्धि हो रही थी। इन सबका यह फल था कि उनकी पैदा की हुई चीज़ों का मूल्य अधिक पड़ता था। जो व्यापारी बाहर से माल मँगाते थे उसके लिए भी उन्हें विनिमय की दर बढ़ जाने के कारण उससे अधिक रुपये देने पड़ते थे जितना कि वह समझते थे कि उनको देना पड़ेगा। फिर व्यापार क्या था विनिमय की सट्टेबाज़ी थी। अतः, सभी लोग यह प्रयत्न कर रहे थे कि भारतवर्ष में कोई ऐसा द्रव्य-मान हो जाय जिससे कि विनिमय की दर बराबर एक सी रहे। बहुत से लोग रजत-मान को छोड़ना नहीं चाहते थे, बहुत से लोग द्विमुद्रा मान अपनाना चाहते थे और बहुत से लोग स्वर्ण-मान को अच्छा समझते थे। इन सब प्रश्नों को लेकर १८९३ में एक करन्सी कमीशन नियुक्त किया

गया जो अपने सभापति के नाम से हरसल कमीशन कहलाता है। यह कमीशन भारतवर्ष के स्वर्ण-मान अपनाने के पक्ष में था किन्तु इसका यह विचार था कि उस समय भारतीय सरकार के पास स्वर्ण-कोष के न होने के कारण फौरन ही स्वर्ण मान नहीं अपनाया जा सकता था। अतः, उसने भारतीय मान का लक्ष्य तो स्वर्ण-मान रक्खा किन्तु इसके लिये यह कह दिया कि वह कुछ समय बाद एक दूसरे कमीशन की सिफ़ारिश के बाद अपनाया जाय। फ़िलहाल उसने टकसालों को रुपये और मुहरों के बनने के लिये आम जनता के लिए बन्द कर दिया। हाँ, सरकार के लिए वे खुली रहीं अर्थात् सरकार जब चाहे तब सिक्के बनवा सकती थी। किन्तु उसने यह भी सिफ़ारिश की थी कि सरकार उस समय तक नए रुपये न ढाले जब तक कि रुपयों की काफ़ी कमी न हो जाए और उससे वस्तुओं का मूल्य काफ़ी कम न हो जाय। रुपये की सोने में और शिलिंग में दर एक शिलिंग चार पेंस रक्खी गई जो कोई भी चाहता था वह सोना और सोने के सिक्के सरकारी ख़ज़ानों में, सरकार के भुगतान में और रुपये के एवज़ में १ शिलिंग ४ पेंस के हिसाब से जमा कर सकता था। इसके यह अर्थ हैं कि सरकार सोने और सोने के सिक्कों को लेने के लिए बाध्य थी किन्तु वह रुपयों के एवज़ में सोना और सोने के सिक्कों को देने के लिए बाध्य नहीं थी। उसकी सिफ़ारिश के अनुसार यह थोड़े ही दिनों के लिए था। उसकी सिफ़ारिशें मानी गईं किन्तु कुछ दिन तक तो रुपयों की कमी महसूस नहीं हुई और रुपयों का मूल्य नहीं बढ़ा लेकिन कुछ ही दिनों बाद रुपये का मूल्य बढ़ गया अर्थात् वस्तुओं की क़ीमतें गिर गईं और विनिमय की दर बढ़ने लगी। यहाँ तक कि यह सन् १८९८ तक लगभग १ शिलिंग ४ पेंस तक पहुँच गई। अतः, इस वर्ष एक नया करंसी कमीशन बैठाया गया। यह अपने सभापति के नाम से फ़ाउलर कमीशन कहलाता है। इसने भारतवर्ष के लिये स्वर्ण-मुद्रा-मान की

शिफ़ारिश की और वह सरकार के द्वारा मंजूर भी कर ली गई किन्तु बाद मे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ गई जिससे यहाँ पर स्वर्ण-मुद्रा-मान न हो सका बल्कि उसके स्थान में स्वर्ण विनिमय-मान अथवा स्टर्लिंग विनिमय-मान हो गया। इस कमीशन ने रुपये की दर वही एक शिलिंग ४ पेंस रक्खी और अंग्रेज़ी सावरन को यहाँ का मुख्य सिक्का मानने के लिये शिफ़ारिश की अर्थात् सावरन १५ रुपये की रक्खी। सावरन की ढलाई के लिये यहाँ पर टकसाल खोलने का भी प्रबन्ध किया जाने लगा और उसके लिये ब्रिटिश अनुमति प्राप्त करने के लिये आवेदन-पत्र भी भेज दिया गया किन्तु यहाँ पर जब ऐसी टकसाल खुलने का पूरा प्रबन्ध हो गया तब ब्रिटिश सरकार ने उस आवेदन-पत्र को अस्वीकार कर दिया। इस बीच में यह भी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया कि भारतीय स्वर्ण-मुद्रा के विरुद्ध हैं और भारत इसके लिए उपयुक्त नहीं है। बात यह थी कि सरकार ने अपने ख़ज़ानों, डाकघरों और रेल आफ़िसों के द्वारा जनता में सावरन चलाने का प्रयत्न किया। किन्तु एक तो जब कोई विदेशी सरकार कोई अच्छा भी काम करती है तब भी जनता को तरह-तरह की आशंकायें होने लगती हैं। इससे लोगों ने उनको लेने से इन्कार किया और उस समय यहाँ पर एक बड़ा अकाल पड़ा जिससे कि लोग इतने अधिक मूल्य का सिक्का काम में भी नहीं ला सकते थे। भारत के रहन-सहन का दर्जा उस समय इतना ऊँचा न था कि १५ रुपये का एक सिक्का उसके सार्वजनिक कामों में उपयोग में आ सकता था। उसके लिये तो फ़ाउलर कमीशन को सोने का कोई छोटा सिक्का चलने की सिफ़ारिश करनी चाहिये थी। यदि वह ऐसा करता तो उन सिक्कों को ढालने के लिए ब्रिटिश टकसाल की अनुमति न लेनी पड़ती। इस कमीशन ने जो स्वर्ण-मुद्रा-मान अपनाने की शिफ़ारिश की थी उसमें एक अन्य कमी भी थी और वह यह थी कि जब विलायत में स्वर्ण-मुद्रा तो अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य थी और रजत-मुद्रा परिमित

रूप में क़ानूनन् ग्राह्य थी भारतवर्ष में स्वर्ण-मुद्रा तो अवश्य अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य थी किन्तु रजत-मुद्रा अर्थात् रुपये परिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य न रख कर अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य रहे। इसके यह अर्थ थे कि सोने और चाँदी के दोनों सिक्के अपरिमित रूप में क़ानूनन् ग्राह्य थे। किन्तु यह द्विधातु मान नहीं था। हम जानते हैं कि रुपये बनने के लिए टकसालें जहाँ तक आम जनता का प्रश्न था बन्द थीं। फ़ाउलर कमीशन ने उनको सरकार के लिये भी फ़िलहाल बन्द ही रक्खा था क्योंकि उसने यह कहा था कि जब तक रुपयों की बहुत अधिक कमी न हो जाये तब तक सरकार उन्हें न ढाले। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। सावरनों के फिर जाने के कारण रुपयों की कमी फिर महसूस हुई और सरकार ने रुपये ढालने प्रारम्भ कर दिये। कमीशन ने यह भी कहा था कि जब रुपये ढाले जायँ तो उसका लाभ एक स्वर्ण-कोष में रक्खा जाय जिससे आवश्यकता पड़ने पर जनता को रुपयों के एवज़ में स्वर्ण दिया जा सके किन्तु सरकार ने इस स्वर्ण को विलायत भेज दिया और वहाँ पर उसका कुछ भाग ब्रिटिश सरकार के प्रण-पत्रों में लगा दिया गया। ऐसा सोचा गया कि इस सोने के वहाँ पर रहने से रुपयों के ढालने के लिये चाँदी खरीदी जा सकेगी। साथ ही यहाँ के निर्यात् के एवज़ में जो स्वर्ण आना था उसको भी भारत मन्त्री ने भारतीय सरकार के ऊपर की हुण्डियों को वहाँ बेच कर यहाँ आना रोक दिया। पहिले तो वह यह हुण्डियाँ केवल इतने ही तक की बेचता था जितने की उसको भारत-सरकार के एवज़ में वहाँ ख़र्च करने की आवश्यकता थी। किन्तु बाद में वह उनको अपरिमित रूप में बेचने लगा जिससे कि वहाँ पर भारतवर्ष के माल का आयात करने वाले जो व्यापारी थे वह उनको अपनी माँग के अनुसार ख़रीदने लगे। इससे उसके पास सोने का कोष इकठा होने लगा और उसमें से एक अंश को वहाँ पर ऋण के रूप में दे देने से भारत को व्याज के रूप में कुछ आय

र्भा होने लगी। भारतीय सरकार के ऊपर की हुण्डियों को एक शिलिङ्ग ४$\frac{1}{8}$ पेंस प्रति रुपये की दर से बेचने के कारण रुपये की दर इससे अधिक उठने से रुक गई किन्तु अभी वह स्वर्ण-निर्यात विन्दु के नीचे गिर सकती थी। सन् १६०७-८ में भारतवर्ष की व्यापारिक विषमता उसके विपक्ष में हो गई और यहाँ के आयात करने वाले अपने भुगतान के लिये सोना माँगने लगे। वास्तव में फ़ाउलर कमीशन ने स्वर्ण-कोष बनाने की सिफ़ारिश इसीलिये ही की थी कि वह ऐसे समय में काम में आवेगा। किन्तु स्वर्ण-कोष तो देश मे था ही नहीं। अतः, भारत सरकार ने १ शि० ३$\frac{29}{32}$ पें० की दर से उल्टी हुण्डियाँ भारत मन्त्री के नाम करना प्रारम्भ कर दीं। इन हुण्डियो को यहाँ के आयात करने वाले विलायत के निर्यात करने वालो के पास भेज देते थे और वह उनका दाम भारत-मन्त्री से ले लेते थे। भारत-मन्त्री ने जहाँ तक हो सका इनका भुगतान अपनी नक़द रोकड़ से किया और उसके बाद ब्रिटिश सरकार के ऋण-पत्रों को बेच कर किया। अतः, इन ऋण-पत्रो को एक साथ बेचने के कारण उनकी दर भी गिर गई जिससे भारतवर्ष की कुछ हानि भी हुई। किन्तु इससे रुपये की विनिमय की दर का १ शि० ३$\frac{29}{32}$ पेंस से नीचे गिरना रुक गया। हम यह तो पहिले ही देख चुके हैं कि भारत-मन्त्री ने रुपये के विनिमय की दर को भारत सरकार के ऊपर की हुण्डियों को बेच कर एक विशेष विन्दु से ऊपर बढ़ने को रोक दिया था। अब यह उलटी हुण्डियों को चला कर एक विशेष विन्दु से नीचे गिरने से भी रोक दी गई। इस तरह से रुपये के विनिमय की दर को एक प्रकार से स्थिर रखने का ढङ्ग निकाल लिया गया। यह स्वर्ण-मुद्रा के चलाये बिना ही स्वर्ण-मान हो गया। इसीको स्वर्ण-विनिमय-मान कहते हैं। रुपयो को ढालने से जो लाभ होने की सम्भावना थी फ़ाउलर कमीशन ने उससे जिस स्वर्ण-कोष को बनाने की सिफ़ारिश की थी उसको उसने स्वर्ण में ही रखने को और व्यापारिक विषमता के

विपक्ष में होने से आयात करने वालों को सोने में देने को कहा था। किन्तु सरकार ने जैसा, कि हम देख चुके हैं उसको रखने में और उसका प्रयोग करने में अपनी मनमानी की। साथ ही उसने उसका एक अंश रेलवे की उन्नति में लगा दिया। सन् १६०७-८ की उपरोक्त परिस्थिति के बाद इस पर बड़ी टिप्पणियाँ हुईं और यह बन्द कर दिया गया। फिर फ़ाउलर कमीशन ने करन्सी की जिस प्रणाली को अपनाने की सिफ़ारिश की थी उसको भारत सरकार के न अपनाने के कारण भी बहुत विरोध हो रहा था। अतः, इन सब बातों का निर्णय करने के लिये सन् १६१३ में चैम्बरलेन कमीशन नियुक्त हुआ। इसने स्वर्ण-विनिमय-मान की बड़ी प्रशंसा की और भारत के लिये उसीको उपयुक्त बताया। इसने यह भी कहा कि स्वर्ण-मुद्रा मान न तो भारतवर्ष के लिये उपयुक्त ही है और न भारतवासी इसको चाहते ही हैं। इसके अतिरिक्त उसने स्वर्ण-कोष के विषय में भी जो अब अपने प्रयोग के कारण स्वर्ण-मान-कोष कहलाने लगा था कुछ सिफ़ारिशें कीं। प्रथम तो उसकी यह सिफ़ारिश थीं कि इसमें अधिकाधिक सोना होना चाहिये और जो कुछ भी ऋण-पत्रों मे लगाया जाय वह ऐसे ऋण-पत्रों में लगाया जाय जो दूर की तारीख़ों की मुद्दत के न हों। दूसरे यह बराबर बढ़ने दिया जाय। तीसरे यह लन्दन में ही रक्खा जाय। उसका यह विचार था कि भारतवर्ष की व्यापारिक विषमता उसके विरुद्ध हो जाने पर इसकी माँग विलायत ही को भेजने को होगी। अतः, यदि यह वहीं रहेगा तो अच्छा ही है। इस कमीशन ने काग़ज़ी मुद्रा के सम्बन्ध में भी ऐसी सिफ़ारिशें की थीं जिनसे वह और अधिक लोकप्रिय हो जाय। किन्तु कमीशन की सिफ़ारिशें काम में भी न लाई जा सकी थीं कि प्रथम महायुद्ध छिड़ गया जिससे नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं हैं।

युद्ध छिड़ते ही चीज़ों के दाम बढ़ने लगे। फिर ब्रिटेन के लोगों के अपनी सम्पत्ति को यहाँ से वापस मँगाने के कारण विनिमय की दर

भी गिरने लगी। किन्तु भारत सरकार ने उलटी हुण्डियों को बेच कर उसको रोक दिया। इसके अलावा लोगों ने अपनी कागज़ी मुद्रा को भुनाना और बैङ्कों से रुपया निकालना भी शुरू कर दिया। इस समय सरकार ने विश्वास जमाने के लिये थोड़ा-सा सोना भी दिया किन्तु बाद में वह बन्द कर दिया गया। यह तो ऐसी बातें थीं जो कुछ ही दिनों रहीं, किन्तु कुछ अन्य बातें भी हुईं जो बराबर होती रहीं। एक तो सन् १९१६ से रुपये की विनिमय दर का बढ़ना आरम्भ हुआ। इसका एक मात्र मुख्य कारण चाँदी के मूल्य का बढ़ना था। जब तक चाँदी का मूल्य ४२ पें० प्रति आउन्स के नीचे था भारत मन्त्री भारत सरकार के ऊपर की हुण्डियो को बेच कर रुपये के विनिमय की दर को १ शि० ४$\frac{1}{2}$ पें० से ऊपर बढ़ने को रोक सकता था। किन्तु जब वह ४२ पें० प्रति आउन्स से ऊपर चली गई तब वह ऐसा नहीं कर सकता था। बात यह थी कि भारत सरकार के ऊपर की हुण्डियों का यहाँ पर भारत सरकार को रुपयों में भुगतान करना पड़ता था, और चाँदी की क़ीमत बढ़ जाने से रुपया १ शि० ४$\frac{1}{2}$ पें० से अधिक क़ीमत का पड़ता था। अतः, इस क़ीमत पर हुण्डियों को बेच कर इससे अधिक क़ीमत का रुपया देना असम्भव था। इसका यह फल हुआ कि जैसे-जैसे चाँदी की कीमत बढ़ती गई वैसे-वैसे रुपये के विनिमय की दर को भी बढ़ाना पड़ा। यहाँ तक कि यह २ शि० के लगभग हो गई। भारत से अधिकाधिक माल विलायत जा रहा था और यहाँ का आयात बन्द-सा हो गया था। भारत अन्य रणक्षेत्रों में भी मित्र-राष्ट्रों के लिये सामान भेज रहा था और यहाँ पर तथा उन स्थानों में भी वह उनके लिये ख़र्च कर रहा था। अतः, इन सबका भुगतान देने के लिये भारत सरकार के ऊपर की हुण्डियों की माँग बहुत बढ़ी हुई थी। यहाँ पर इन हुण्डियों का भुगतान रुपयो में और कागज़ी मुद्रा में किया जाता था। अतः, रुपये के साथ-साथ कागज़ी मुद्रा का प्रचार बराबर बढ़ता जा रहा था। ढाई रुपये और एक रुपये

के नोट भी चलाये गये थे। युद्ध के पहिले कागज़ी मुद्रा का भुगतान रुपये में देने के लिये अधिकाधिक सुविधा दी जा रही थी, किन्तु इस समय ऐसा प्रबन्ध किया गया जिससे रुपये की माँग कम हो जाय। रुपये रेल और डाक, इत्यादि से बिना सरकारी आज्ञा के नहीं भेजे जा सकते थे। चाँदी की क़ीमत के एक रुपया तोला के लगभग हो जाने से रुपयों के गलने की आशंका थी। अतः, उनको गलाना अथवा अन्य किसी अन्य काम में लाना मना कर दिया गया था। छोटे सिक्के अर्थात् अठन्नी, चवन्नी, दुवन्नी, इत्यादि चाँदी की न बन कर गिलट की बनने लगी थीं। कागज़ी मुद्रा-कोष में ब्रिटिश सरकार के ऋण-पत्र बढ़ रहे थे। बैङ्कों, इत्यादि में डिपाजिट भी बढ़ रहा था। मुद्रा प्रसार के कारण चीज़ें भी महँगी हो रहीं थीं। सन् १९१८ में युद्ध समाप्त हुआ। इसके बाद भी दो वर्षों तक परिस्थिति ख़राब ही रही। विनिमय की दर तो अधिकांश में युद्ध की समाप्ति पर ही बढ़ी थी। युद्ध-काल में स्टर्लिंग और डालर के बीच में जो सम्बन्ध था वह उसकी समाप्ति पर टूट गया और स्टर्लिंग का मूल्य डालरों में गिरता गया। इससे रुपयों के एवज़ में अधिकाधिक स्टर्लिंग मिलने लगे।

सन् १९२० में बेबिन्गटन स्मिथ कमीशन बैठा। युद्ध के समय में इंगलैंड स्वर्ण-मान छोड़ चुका था। अतः, उस समय स्टर्लिङ्ग विनिमय-मान और स्वर्ण-विनिमय-मान दोनों एक ही न रह गये थे। इस कमीशन ने इस बात की स्पष्ट रूप से व्याख्या की। साथ ही उसने भारतवर्ष के लिये स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने की सिफ़ारिश की। चाँदी का मूल्य अधिक होने के कारण उसने रुपये के विनिमय की दर २ शि० स्वर्ण रक्खी और यह उस समय स्टर्लिङ्ग में लगभग ३ शि० के थी। उसने सावरन १० रु० की कर दी, और फिर एक निश्चित तिथी के बाद उनको क़ानूनन् ग्राह्य होने से मना कर दिया। इस कमीशन ने बैंक आफ़ बङ्गाल, बैंक आफ़ मद्रास, और बैंक आफ़ बम्बई तीनों को मिला कर एक इम्पीरियल बैंक बनाने की भी सिफ़ारिश

की। इसकी अन्य सिफ़ारिशें कागज़ी मुद्रा और कागज़ी मुद्रा-कोष के सम्बन्ध की थीं। इनमें से कुछ अन्तरकालीन थीं और कुछ स्थाई थीं। इसने कागज़ी मुद्रा के लिये पहिले-पहिल आनुपातिक कोष प्रणाली अपनाने की सिफ़ारिश की और साथ ही इम्पीरियल बैंक को बिलों की एवज़ में एक विशेष सीमा तक कागज़ी मुद्रा को प्राप्त करने का अधिकार दे कर उसको लोचदार भी बना दिया। किन्तु इस कमीशन की रिपोर्ट निकलते-निकलते चाँदी की कीमत और उसके साथ ही रुपये की विनिमय दर घटने लगी। सरकार ने रुपया २ शि० स्वर्ण के और उसीके अनुसार लगभग ३ शि० स्टर्लिङ्ग के बराबर रखने की घोषणा की। अतः, लोगों ने रुपये दे-देकर खूब स्टर्लिङ्ग लिये। बिलायत के लोगों ने अपने लाभ और व्याज की रकम मँगा ली और यहाँ के व्यापारियों ने बिलायत से माल मँगाने के लिये विनिमय प्राप्त कर लिया। किन्तु जब चाँदी बहुत गिर गई और सरकार का स्वर्ण-मान-कोष बहुत कुछ खाली हो गया तब सरकार रुपये का २ शि० स्वर्ण न दे सकी। कुछ दिनों तक उसने २ शि० स्टर्लिङ्ग दिया, किन्तु जब वह ऐसा भी न कर सकी तब उसने विनिमय देना बन्द कर दिया। इससे उन लोगों की बड़ी हानि हुई जिन्होंने विनिमय का प्रबन्ध किये बिना ही माल का आर्डर दे दिया था। भारतीय बन्दरगाह ऐसे माल से भर गये जिनकी सुपुर्दगी लेने के लिये लोग तैयार नहीं थे। अन्त में लोगों को बहुत नीची दर पर विनिमय लेना पड़ा। विनिमय दर १ शि० ४ पें० के लगभग हो गई थी। तब सरकार ने फिर मुद्रा संकुचन करके उसको १ शि० ६ पें० स्टर्लिङ्ग कर दिया। धीरे-धीरे इंगलैंड में फिर स्वर्ण-मान हो गया जिससे १ शि० ६ पें० स्टरलिङ्ग १ शि० ६ पें० स्वर्ण के हो गया। अन्त में हिल्टन यंग कमीशन बैठा जिसने रुपये की विनिमय दर १ शि० ६ पें० स्वर्ण निर्धारित की।

विनिमय की दर के १ शि० ६ पें० स्वर्ण निर्धारित करने के साथ-

साथ इस कमीशन ने भारतवर्ष के लिये स्वर्ण पाट मान को अपनाने को भी सिफ़ारिश की। किन्तु यह स्वर्ण पाट मान इंगलैंड के स्वर्ण पाट मान से विशेषतः इस बात में भिन्न था कि इसमें जब चाहे तब मुद्रा सञ्चालक भारतीय करन्सी के एवज़ में भारत में स्वर्ण न दे कर लन्दन में स्वर्ण दे सकता था। अतः, जब वह स्वर्ण लन्दन में देता था यह स्वर्ण-विनिमय मान हो जाता था और क्योंकि स्टर्लिंग स्वर्ण-मान पर था यह स्टर्लिंग विनिमय-मान भी था। इस कमीशन ने रिज़र्व बैंक आफ़ इण्डिया की सस्थापना की भी सिफ़ारिश की थी। इसने उसी को कागज़ी मुद्रा भी जारी करने का अधिकार देने की सिफ़ारिश की थी। इसके अलावा एक केन्द्रीय बैंक के जितने काम हैं उन सब को भी इसी बैंक को सौंप देने की भी सिफ़ारिश उसने की थी। इस कमीशन के सिफ़ारिश के अनुसार स्वर्ण-मान क़ानून तो सन् १९२७ में ही पास हो गया किन्तु रिज़र्व बैंक की सस्थापना केवल १९३५ में ही हो सकी। सन् १९२७ से अब तक उसने जो रुपये की विनिमय दर रखी थी उसका बराबर विरोध होता आ रहा है। प्रथम महायुद्ध के पहिले विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पेंस थी और उसके बाद केवल इंगलैंड को छोड़ कर जिसने कि अपनी विनिमय की दर वही रखी थी जो युद्ध के पहिले थी अन्य सभी राष्ट्रों ने अपनी विनिमय की दर घटा दी थी। भारत के व्यापारी लोग यह चाहते थे कि यदि भारतीय मुद्रा की विनिमय दर घटाई न जाय तो वह बढ़ाई भी न जाय। भारतीय मुद्रा की विनिमय दर के बढ़ा देने से भारतीय व्यापार को बड़ी ठेस लगी। सन् १९३१ में इंगलैंड ने स्वर्ण-मान छोड़ दिया और भारत ने भी ऐसा ही किया किन्तु भारत की मुद्रा का गठबन्धन इंगलैंड की मुद्रा से रहा आया अर्थात् रुपया १ शिलिंग ६ पेंस के बराबर रहा। यह स्टर्लिंग विनिमय मान था जो सरकार ने बिना किसी क़ानून के पास कराये ही ज़ारी कर रखा। सन् १९३१ के बाद इंगलैंड के स्वर्ण-मान छोड़ देने पर स्टर्लिंग में और इसी कारण रुपये

में सोने की क़ीमत बहुत बढ़ गई जिससे उसके बाद से द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक भारतवर्ष से बराबर सोने का निर्यात होता रहा। इसका भी बहुत विरोध हुआ किन्तु सरकार ने इसको रोकने के लिये कुछ भी नहीं किया।

द्वितीय महायुद्ध के समय में एक ख़ास बात यह हुई कि भारत में मित्रराष्ट्रों के लिये बहुत माल ख़रीदा गया और उसका दाम मित्रराष्ट्रों के न देने के कारण भारत सरकार ने रुपयों में दिया। इसके लिये उसने रिज़र्व बैङ्क से काग़ज़ी मुद्रायें प्राप्त कीं और उनकी एवज़ में उसको ब्रिटिश सरकार के ऋण-पत्र दिये। इस अत्यधिक मुद्रा-प्रसार से देश में चीज़ें बहुत महँगी हो गईं और जनता त्राहि-त्राहि कर रही है। उधर रिज़र्व बैङ्क के पास ब्रिटिश सरकार के बहुत अधिक ऋण-पत्र इकट्ठा हो गये हैं जिन्हें स्टर्लिंग पावन के नाम से पुकारा जाता है। इन स्टर्लिंग पावनों का कुछ अंग्रेज़ तो भुगतान करना ही नहीं चाहते—कुछ उनको कम करवा लेना चाहते हैं और सभी इनको अपनी सुविधा के अनुसार देना चाहते हैं। भारतवर्ष को अपने धन्धों को बढ़ाने के लिये इनकी इस समय बहुत आवश्यकता है और वह इनका भुगतान फ़ौरन चाहता है। वह अमेरिका से मशीनें प्राप्त करना चाहता है जिनका दाम वह चाहता है कि ब्रिटिश सरकार स्टर्लिंग पावने को डालर में परिवर्तन करके दे दे। इस विषय के अन्य जो प्रश्न हैं उनका अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे।

द्वितीय महायुद्ध के समय रुपयों में चाँदी की मात्रा आधी कर दी गई और अब गिलट के रुपयों को चलाने का प्रबन्ध हो गया है, साथ ही रिज़र्व बैङ्क की काग़ज़ी मुद्रा का भुगतान अब केवल सिक्कों में न होकर भारत सरकार के काग़ज़ी रुपयों में भी हो सकता है। इस बीच में रेज़गारी को भी बड़ी दिक़्क़त हुई और नये प्रकार के सिक्के चलाये गये जिनकी मिलावट बहुत अच्छी न होने के कारण अब बदलना पड़ रहा है। अतः, कुछ लोग यह चाहने लगे कि यहाँ पर मुद्रा को

चहरुम प्रणाली को छोड़ कर दशमलव प्रणाली अपनायी जाय। उनका यह विचार था और है कि इस प्रणाली में हिसाब-किताब आसानी से हो सकता है। किन्तु यह भ्रमपूर्ण है। भारतीय व्यापारी चहरुम प्रणाली की मुद्राओं में ही अपना हिसाब-किताब आसानी से कर सकते हैं, इसके लिये उनके गुरु हैं जिनको दशमलव प्रणाली के आ जाने से उन्हें बदलना पड़ेगा। फिर करन्सी प्रणाली को बदलने के साथ-साथ तौल और नाप की प्रणाली को भी बदलना पड़ेगा और सबसे ख़राब बात तो यह है कि भारतीय सिक्कों के नाम विदेशी सिक्कों को तरह हो जायेंगे।

(६) सर्राफ़ा और उसके सिद्धान्त

सर्राफ़ा शब्द यहाँ पर बैङ्कों के लिये प्रयोग में लाया गया है। बैङ्क कई प्रकार के होते हैं किन्तु उनके साथ जब हम कोई विशेषण नहीं लगाते हैं तब वह व्यापारिक (Commercial Banks) बैङ्क ही समझे जाते हैं। कमर्शियल बैङ्क का मुख्य काम तो जमा प्राप्त करना, उधार देना, रुपयो का एक जगह से दूसरे जगह पहुँचाना और अनेकों अन्य इसी प्रकार के काम करना है। इनके अलावा प्रत्येक देश म एक केन्द्रीय बैंक होता है जो मुद्रा का परिमाण ठीक रखता है और उसकी क्रिय शक्ति को तथा विनिमय की दर को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है। यह काग़ज़ी मुद्रा चलाता है, सरकार का ख़ज़ांची होता है, उसको बैंकों के सम्बन्ध की उचित सलाह देता है, देश के अन्य बैंकों का भी ख़ज़ान्ची होता है, उनकी देख-भाल करता है और उचित सलाह देता है, राष्ट्र के स्वर्ण-कोष का रखता है, निकास-गृह (Clearing) का प्रबन्ध करता है, इत्यादि, इत्यादि। अब हमको यह देखना है कि भारतीय बैंकिङ्ग की क्या अवस्था है और उसकी उन्नति कैसे की जा सकती है।

(७) भारतीय बैंकिङ्ग

अंग्रेज़ों के आने के पहिले भी भारतवर्ष में बैकिङ्ग थी और वह

उस समय के व्यापार के लिये उपयुक्त थी, किन्तु अंग्रेज़ों के आने से सारा काम अंग्रेज़ी ढङ्ग से होने लगा, जिसको कि भारत के महाजनों ने सीखने का प्रयत्न नहीं किया। अंग्रेज़ों ने पहिले तो भारतीय बैंकिङ्ग को समझने का प्रयत्न किया था किन्तु जब वह इसमें असफल रहे तब उन्होंने यहाँ पर अपने ढङ्ग के बैङ्क खोले। भारतवर्ष के बैङ्कों में आजकल दो ढङ्ग के बैङ्क हैं। एक तो देशी साहूकार और बैङ्कर्स जो देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग नाम से जाने जाते हैं। जैसे सर्राफ़, मारवाड़ी, महाजन, बोहरा, चेट्टीज़, इत्यादि और दूसरे आधुनिक बैंकिङ्ग संस्थायें जैसे इम्पीरियल बैङ्क, रिज़र्व बैङ्क, ज्वाइन्ट स्टाक बैङ्क, विदेशी विनिमय बैङ्क, सहकारी बैङ्क, सेविंग्स बैङ्क, भूमि बन्धक बैङ्क, इत्यादि।

देशी साहूकार और बैंकर्स—यह बैंकिङ्ग के साथ अन्य काम भी करते हैं। यह प्रायः सम्मिलित परिवार के लोग हैं अथवा इनमें साझा है। यह लोगों से प्रायः जमा नहीं प्राप्त करते हैं। इनका मुख्य कार्य ऋण देना है जो प्रायः अपनी ही पूँजी से देते हैं। यह उत्पत्ति के और उपभोग के दोनों के लिये ऋण देते हैं, इसके लिये इनको ज़मानत मिल जाती है तो ठीक है, नहीं तो यह बिला ज़मानत के भी ऋण दे देते हैं। अधिकांश में यह छोटी-छोटी रक़में उधार देते हैं जिनको वसूलने में इनको अनेक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। इन सब कारणों से यह सूद भी अधिक लेते हैं। इनमें से कुछ धोखेबाज़ी भी करते हैं और अपनी पूञ्जी वसूलने में बड़ी सख्ती करते हैं। इन्हीं कारणों से यह विशेषकर इनमें से छोटे लोग जिनमें उपरोक्त बुराइयाँ ज़्यादा पाई जाती हैं, बुरी निगाह से देखे जाते हैं। जो हो यह बात तो कहनी ही पड़ेगी कि केवल यही उपभोग के लिये ऋण देते हैं। कृषी के लिये भी जो पूँजी की आवश्यकता पड़ती है वह भी यही देते हैं, और हाथ के कारीगरों की भी यही मदद करते हैं। देश के व्यापार की भी अधिकांश में यही सहायता करते हैं। वास्तव में इनके बिना काम

नहीं चल सकता है। आधुनिक बैंकिंग संस्थाओं को सारे देश में, विशेषकर गाँवों में फैलने में बहुत समय लगेगा। तब तक ये सबकी आवश्यकताओं को पूरी कर सकते हैं। हाँ, इनको अपने अवगुणों को निकाल देना चाहिए और ऐसा हो जाने पर इनका रिज़र्व बैंक और अन्य बैंकों से भी एक प्रकार का गठबन्धन हो सकता है जो कि बहुत आवश्यक है।

(१) आधुनिक बैंकिंग संस्थाएँ—इम्पीरियल बैंक, यह बैंक सन् १९२१ में खुला था। इसके पहिले तीन प्रेसीडेंसी बैंक थे जो बैंक आफ़ बङ्गाल, बैंक आफ़ मद्रास और बैंक आफ़ बम्बई कहलाते थे। जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है, इन्हीं तीनों बैंकों को मिला कर यह बैंक बना था। कागज़ी मुद्रा का नियंत्रण रखने को छोड़ कर केन्द्रीय बैंकिंग के सभी काम इसको सुपुर्द किये गये थे; किन्तु इसके उन कामों में सफल न होने के कारण सन् १९३५ में रिज़र्व बैंक खोला गया। यह बैंक केन्द्रीय बैंक के कर्त्तव्यों के साथ-साथ साधारण बैंकों के कर्त्तव्य भी करता था और अब तो केवल यह एक साधारण बैंक ही है। हाँ, इसकी स्थिति अब भी इसके रिज़र्व बैंक के प्रतिनिधि होने के कारण सब बैंकों की स्थिति से ऊँची समझी जाती है। पहिले यह कानून के अनुसार विनिमय के काम नहीं कर सकता था किन्तु अब यह ऐसा कर सकता है लेकिन यह ऐसा नहीं करता है। भारत का कोई भी बैंक विनिमय का कार्य अच्छे पैमाने पर नहीं करता है। साधारण बैंकों के काम तो बहुत से बैंक करते हैं, अतः, इसको चाहिए कि यह उनसे प्रतियोगिता न करके विनिमय का काम करे।

(२) रिज़र्व बैंक—यह बैंक जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है सन् १९३५ में स्थापित हुआ था। यह हिस्सेदारों का बैंक है किन्तु इसमें सरकार का रुपया तथा अन्य बैंकों का भी रुपया जमा रहता है। सरकार के लिये तो वह रुपया प्राप्त करता है, उसका भुगतान करता है, ऋण लेने की सलाह देता है उसका प्रबन्ध करता है,

आर्थिक विषयों में अपनी सलाह देता है इत्यादि-इत्यादि। अन्य बैंकों का भी रुपया इसमें जमा रहता है। प्रत्येक ऐसे बैंक को जिसकी पूँजी और रक्षित कोष मिला कर पाँच लाख है इसका सदस्य बनना पड़ता है और प्रत्येक ऐसे सदस्य बैंक को अपने दर्शनी ऋण का पाँच प्रतिशत और मुद्दती ऋण का दो प्रतिशत इसके पास जमा रखना पड़ता है। अन्य बैंक भी विशेष अवस्थाओं में इसके पास अपना रुपया रख सकते हैं। सदस्य बैंक इससे ऋण भी पा सकते हैं और अपनी हुण्डियों को भुना सकते हैं। बैंकों की यह निगहबानी करता है और उनको उचित सलाह भी देता है। रिज़र्व बैंक काग़ज़ी मुद्रा भी जारी करता है। अन्य बैंकों को यह अधिकार नहीं है। युद्ध-काल में भारत सरकार भी एक-एक रुपये की काग़ज़ी मुद्रा जारी करने लगी है किन्तु यह थोड़े समय के लिये ही है। यह देश के निकास गृह के काम (Clearing House Business) का भी नियन्त्रण करता है। जिन स्थानों में इसके दफ़्तर और शाखाएँ नहीं हैं, वहाँ इसका सारा काम इसकी जगह इम्पीरियल बैंक करता है।

(३) ज्वाइन्ट स्टाक बैंक—देश के अधिकांश बैंक ज्वाइन्ट स्टाक बैंक हैं। अब पचास हज़ार रुपये से कम पूँजी के बैंक तो खुल ही नहीं सकते। जो ऐसे बैंक हैं भी उनको भी अपना सुरक्षित कोष बढ़ाना पड़ रहा है जिससे वह भी कम से कम पचास हज़ार के बैंक तो हो ही जायेंगे। नए बैंकिंग कानून में जो अभी पास नहीं हुआ—बैंकों की पूँजी उनकी शाखाओं के अनुसार रखी गई है। पाँच लाख से कम की पूँजी के इस समय लगभग ६०० बैंक हैं। इससे ऊँची पूँजी के बैंकों की संख्या इस समय लगभग १५० है। यह बैंक अधिकतर व्यापारियों के साथ काम करते हैं अतः, इनके यहाँ अधिकांश में चालू खाते होते हैं। इनके अलावा इनके यहाँ डिपाज़िट एकाउंट और सेविंग्स बैंक एकाउन्ट होते हैं। किन्तु उनको यह अधिक महत्व नहीं देते हैं। यह व्यापारियों को ऋण देते हैं जिसके लिये कुछ

न कुछ ज़मानत अवश्य ले लेते हैं। यदि किसी व्यापारी को अपने स्थान से किसी दूसरे स्थान पर रुपया भेजना होता है तो वह उनसे बैंक ड्राफ़्ट भी ले लेता है। इनके व्यापारी अन्य लोगों से जो चेक इत्यादि पाते हैं, उनको भी यह वसूल करते हैं। इनका मुख्य काम व्यापार को मदद पहुँचाना है। कृषी के व्यापार को मदद पहुँचाने के लिये इन्होंने अपनी शाखाएँ और उपशाखाएँ प्रायः सभी मण्डियों में खोल रखी हैं। इस युद्धकाल में इन्होंने बड़ी उन्नति की है। इनकी संख्या बढ़ गई है, इनकी शाखाओं की संख्या बढ़ गई है, और इनके डिपाज़िट भी बढ़ गये हैं। इनका अधिकांश धन इस समय सरकारी ऋण-पत्रों में लगा हुआ है। वैसे तो यह अच्छी बात नहीं है। किन्तु युद्ध के समय ऐसा करना ही पड़ता है और विशेषकर जब कि व्यापारियों के पास अधिक धन होने के कारण वह उधार नहीं लेते हैं और उधार देने पर अनेकों नियन्त्रण होने के कारण अधिक उधार दिया भी नहीं जा सकता है, ऐसा करना बहुत आवश्यक हो जाता है। यह आशा की जाती है कि यह बैंक बढ़ते हुए व्यापार को देखकर अपना अधिकांश रुपया व्यापारियों को ही देंगे। इनमें से कुछ बैंक बहुत छोटे हैं जिन्हें आपस में मिल जाना चाहिए, जिससे कि वह बहुत मज़बूत बन सकते हैं।

(४) विदेशी विनिमय बैंक—यह बैंक विदेशियों के हैं। भारतवर्ष में प्रत्येक व्यापारी देश ने अपने बैंक खोले थे। इनमें से कुछ तो प्रथम और कुछ द्वितीय महायुद्ध के समय में बन्द हो गये हैं। किन्तु अब भी यहाँ पर इंगलैंड, अमेरिका तथा अन्य मित्रराष्ट्रों के बैंक हैं। यह बैंक यहाँ पर अपने देश के व्यापार को बढ़ाते हैं और अपने देश के व्यापारियों को हर तरह से लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। भारतीय व्यापारियों को इनसे कोई लाभ नहीं है। सच बात तो यह है कि इन्हीं के कारण विदेशी व्यापार में भारतवासियों का कोई हाथ है ही नहीं। इन बैंकों की शाखाएँ उन शहरों में तो हैं ही जहाँ पर

बन्दरगाह हैं किन्तु इनमें से कुछ की शाखाएँ देश के अन्य बड़े व्यापारिक शहरों में भी हैं जिससे कि यह देश के अन्दरूनी व्यापार में भी देश के बैंकों से प्रतियोगिता करते हैं। इनको ऐसा करने से रोकना चाहिए और जहाँ तक हो सके इनके ऊपर अन्य प्रतिबन्ध लगाने चाहिए जिससे कि यह भारतीय और विदेशी व्यापारियों के बीच में जो भेदभाव नीति प्रयोग में लाते हैं वह बन्द हो जावे। जो देश अपने यहाँ भारतीय बैंको को नहीं खुलने देते हैं, उनके बैंकों को भी यहाँ बन्द कर देना चाहिए।

(५) सहकारी बैंक--सबसे पहिले सन् १६०४ में भारतवर्ष में सहकारिता सम्बन्धी क़ानून बना और सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई। उस क़ानून में ग़ैर-साख सहकारी समितियों, केन्द्रीय सहकारी बैंक और प्रान्तीय सहकारी बैंकों की स्थापना के लिये कोई स्थान नहीं था। किन्तु सन् १६१२ के क़ानून के अनुसार इनकी भी स्थापना होने लगी। सहकारी बैंक तीन प्रकार के होते हैं :—(१) प्रारम्भिक सहकारी समिति, (२) केन्द्रीय अथवा ज़िला सहकारी बैंक और (३) प्रान्तीय सहकारी बैंक।

प्रारम्भिक सहकारी समिति—ये दो प्रकार की होती हैं (१) कृषक, और (२) शहरी। इनमें कुछ अन्तर है :—

(१) कृषक साख समिति में या तो हिस्से होते ही नहीं या होते हैं तो बहुत कम मूल्य के होते हैं। शहरी समितियों में हिस्से अधिक मूल्य के होते हैं।

(२) कृषक साख समितियों का दायित्व अपरिमित रहता है किन्तु शहरी साख समितियों में यह परिमित रहता है।

(३) कृषक साख समितियों में साधारणतया लाभ नहीं बाँटा जाता है और शहरी साख समितियों में लाभ बाँटा जाता है। कृषक सहकारी समितियों का सारा लाभ रक्षित कोष में जमा कर दिया जाता

हैं। शहरी साख समितियो में एक चौथाई लाभ रक्षित कोष में रक्खा जाता है।

(४) कृषक साख समितियों में किसी भी सदस्य को समिति का कार्य करने के लिये कोई वेतन नहीं मिलता किन्तु शहरी साख समितियों में प्रबन्ध करने वालों को वेतन दिया जा सकता है।

दोनों प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों को उचित सूद पर साख देने का प्रबन्ध करती हैं। इसके लिये कृषक सहकारी समितियाँ बीज, हल, खाद तथा खेती के औज़ारों का भी प्रबन्ध करती हैं। शहरी साख समितियाँ कच्चे माल और औज़ार का प्रबन्ध करती हैं। यहाँ कृषक साख समितियाँ ही अधिक हैं।

कोई भी दस सदस्य मिल कर एक सहकारी समिति बना सकते हैं। इनके सदस्यो की सख्या दस से कम नहीं होनी चाहिये। कृषक साख समिति के सदस्य एक ही गाँव के रहने वाले, अथवा जाति अथवा पेशे के हो सकते हैं। केवल अच्छे चरित्र वाले लोग ही सहकारी समितियो के सदस्य हो सकते हैं। इनका प्रबन्ध प्रजातन्त्र नियमों के अनुसार होता है।

केन्द्रीय अथवा जिला सहकारी बैंक—हर ज़िले में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक होता है। इसके सदस्य उस ज़िले के गाँवों की सहकारी समितियाँ तथा जनता के लोग हो सकते हैं। इसका काम प्रारम्भिक सहकारी समितियों की सहायता तथा निगहबानी करना होता है।

प्रान्तीय सहकारी बैंक—हर प्रान्त में प्रायः एक प्रान्तीय सहकारी बैंक होता है। इसका केन्द्रीय सहकारी बैंकों से वही सम्बन्ध होता है जो केन्द्रीय सहकारी बैंको का प्रारम्भिक सहकारी समितियों से होता है।

सहकारी समितियों के सदस्य उनमें रुपया जमा करते हैं। जिनके हिस्से होते हैं उनकी स्वयम् की पूँजी भी होती है। ग़ैर सदस्यों से भी

इनको रुपया मिल जाता है, और केन्द्रीय सहकारी बैंक भी इनकी सहायता करते हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंकों की सहायता रिज़र्व बैंक भी करता है।

भारतवर्ष में सहकारिता उतनी सफल नहीं हुई है जितनी होनी चाहिये। भारतवर्ष तो सहकारिता का देश ही है। अतः, यहाँ पर तो उसको सफल बनाना ही चाहिये।

(६) सेविंग्स बैङ्क—भारतवर्ष में सेविंग्स बैङ्क का काम ज्वाइन्ट स्टाक बैङ्कों में और डाकख़ानों में होता है। इनमें कोई भी व्यक्ति एक विशेष रक़म तक की अपनी बचत का रुपया जमा कर सकता है। इनमें से रुपया सप्ताह में प्रायः एक बार ही निकाला जा सकता है। इनमें चार तारीख़ और महीने की आख़ीरी तारीख़ के बीच में जो कम से कम रक़म होती है उस पर सूद मिलता है।

(७) भूमि बन्धक बैङ्क—सरकारी साख समितियाँ किसानों को अधिक समय तक के लिये ऋण नहीं दे सकती हैं। अतः, यदि उनको पुराना ऋण चुकाने के लिये, कुँआ बनवाने के लिये और भूमि में किसी अन्य प्रकार की उन्नति करने के लिये अधिक समय के लिये अर्थात् दो या तीन वर्ष से अधिक के लिये रुपया चाहिये तो वे भूमि बन्धक बैङ्कों में अपनी-अपनी भूमि को रेहन करके ऋण ले सकते हैं। भूमि बन्धक बैङ्क दो प्रकार के होते हैं, (१) सहकारी भूमि बंधक बैङ्क, और (२) व्यापारिक भूमि बन्धक बैङ्क। सहकारी भूमि बन्धक बैङ्क उन्हीं व्यक्तियों के हाथ अपने हिस्से बेचते हैं जिनको वे ऋण देते हैं। ऋण देने के समय ये हिस्सों के रुपयों को काट लेते हैं। व्यापारिक भूमि बन्धक बैङ्क अपने हिस्सों को आम जनता में बेच देते हैं। भारतवर्ष में एक तीसरे प्रकार के बैङ्क हैं जिनको अर्ध सहकारी भूमि बन्धक बैङ्क कहा जा सकता है। इनके हिस्से इनके ऋणियों के पास और अन्य लोगों के पास भी होते हैं। ये ऐसा केवल अन्य लोगों की प्रबन्धक

शक्ति को प्राप्त करने की ही इच्छा से ऐसा करते हैं। भूमि बन्धक बैङ्क जिन भूमियों को बन्धक रख कर ऋण देते हैं, उन्हीं की ज़मानत पर ऋण-पत्र भी जारी करते हैं। हमारे देश में इनकी संख्या बहुत कम है, अतः, इस ओर हमारा अधिक ध्यान जाना चाहिये।

भारतवर्ष की बैंकिङ्ग की अवस्था अच्छी नहीं है। एक तो यहाँ पर जो देशी और आधुनिक दो प्रकार की भिन्न-भिन्न बैंकिग हैं उनमें परस्पर न तो सहयोग ही है और न किसी प्रकार का संगठन ही है। अतः, एक ओर जब देशी बैङ्को के पास तो रुपये की कमी होने के कारण वे अपने सब ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर सकते हैं, और इसी कारण बहुत अधिक सूद लेते हैं, दूसरी ओर आधुनिक बैङ्को के पास इतना फ़ालतू रुपया रहता है कि वे जमा की रक़म पर सूद घटाते चले जा रहे हैं। ये लोग केवल उत्पत्ति और व्यापार के लिये ही और ज़मानत पर ही ऋण देते हैं, अतः इनके यहाँ ऋण की माँग उतनी नहीं रहती है जितनी महाजनों के यहाँ रहती है। दूसरे जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है महाजनो का काम करने का ढङ्ग अच्छा नहीं है। साथ ही आधुनिक बैङ्को के काम करने के ढङ्ग में भी बहुत-सी ख़राबियाँ हैं। उनको भारतीय भाषाओं को अपनाना चाहिये और जहाँ पर सम्भव हो सके अंग्रेजी ढङ्गों को छोड़ कर इस देश के ढङ्गों पर चलना चाहिये। तीसरे यहाँ पर आधुनिक बैङ्को की जो उन्नति हुई है वह केवल ज्वाइन्ट स्टाक बैङ्कों की ही हुई है, अन्य प्रकार के बैङ्को की संख्या तो बहुत कम है, और उनका काम भी सन्तोषजनक नहीं है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है भारतीय विनिमय बैङ्क तो हैं ही नहीं। सहकारी बैङ्कों और भूमि बन्धक बैङ्को की भी उन्नति की बड़ी आवश्यकता है। चौथे, यहाँ पर बिलों का प्रयोग बहुत कम होता है, अतः देश में बिलों का बाज़ार नहीं है। बिलों के प्रयोग से बैंकिग को बड़ी सुविधा प्राप्त हो जाती है। पाँचवें, यहाँ पर बैङ्क बराबर फेल होते रहे हैं जिससे उन पर आम लोगों का विश्वास

नहीं है। किन्तु भविष्य में ऐसी आशा है कि रिज़र्व बैङ्क की निगरानी के कारण अब ये अधिक फेल न होंगे।

उपरोक्त कमियों को पूरा करना चाहिये जिससे देश की व्यापारिक अवस्था में उन्नति हो सके।

२०. हमारी कुछ वर्तमान समस्याएँ

(१) अन्न और वस्त्र की कमी (२) मुद्रा-प्रसार (३) पौंड पावने का प्रश्न (४) बैंकिङ्ग की उन्नति (५) भारत की भावी व्यापारिक योजना की रूपरेखा (६) अन्तर्राष्ट्रीय घनिष्ठता।

संसार के सभी देश आजकल एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। अतः, किसी एक देश की उन्नति अथवा अवनति केवल उसी देश की परिस्थितियों पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि अन्य देशों की परिस्थितियों से भी प्रभावित होती है। अमेरिका के घरेलू युद्ध का भारतवर्ष के ऊपर एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। उससे देश के रुई के व्यवसाय को प्रोत्साहन मिला था। रुई की क़ीमतों के बढ़ जाने से अनेकों लोग लखपती हो गये थे। अतः, इससे पूँजीवाद की वृद्धि में बड़ी सहायता मिली थी। प्रथम महायुद्ध का भी कुछ ऐसा ही प्रभाव पड़ा था। उससे देश में लोहे, काग़ज़, कपड़े, चीनी, दियासलाई, आदि के कारख़ाने खुले थे और उनको काफ़ी प्रोत्साहन भी मिला था। पूँजीवाद की वृद्धि में यह दूसरी सीढ़ी थी। गत महायुद्ध का प्रभाव तो हमारे सबके सामने ही है और यह बहुत दिनों तक रहेगा। इस अवसर पर हमको ऐसी अनेकों बातें देखने को मिली हैं जिनका पहिले हमें, तनिक भी ध्यान नहीं था। वास्तव में हमारी भविष्य की योजनाओं पर इन सबका एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा। अतः, हम इनमें से कुछ का यहाँ अध्ययन करते हैं।

(१) अन्न और वस्त्र की कमी

वैसे तो इस युद्ध के पहिले भी भारतवर्ष में अन्न और वस्त्र की कमी थी। किन्तु उस समय वह बहुत अधिक नहीं अखरती थी। एक तो कुछ जनता ऐसी थी जो क्रय-शक्ति के काफ़ी न होने के कारण

अपना गुज़र-बसर केवल अर्ध पेट ही भोजन करके और अर्ध-नग्न रह कर ही कर लेती थी। किन्तु इस युद्ध के समय उसके एक बहुत बड़े भाग को नौकरी, इत्यादि मिल जाने से उसकी आवश्यकतायें बढ़ गई और वह भरपेट भोजन करने लगी और पूरा कपड़ा पहिनने लगी। इसके विपरीत कुछ अंश ऐसा रह गया जिसकी क्रय-शक्ति तो बढ़ी नहीं, बल्कि चीज़ो के महँगी हो जाने के कारण वह उनको ख़रीद नहीं सकी, जिसका फल बगाल, उडीसा, मलाबार और ट्रावन्कोर की भुखमरी थी। दूसरे, अन्न की कीमत बढ़ जाने से किसान लोगों को काफ़ी पैसा मिलने लगा जिससे वह कम अनाज बेचने लगे और स्वयम् शेष अनाज प्रयोग मे लाने लगे। ये किसान कपड़ा भी अधिक खर्च करने लगे। तीसरे, फौज की भी आवश्यकतायें बढ़ गई थीं। इनमें कुछ लोग तो बाहर से आये थे और कुछ यहीं के ऐसे लोग थे जो पहिले कपड़ा और अनाज़ बहुत कम ख़र्च करते थे। चौथे, लडाई के आरम्भ होते ही कपड़े का आयात तो बन्द हो गया था और फिर बर्मा, इत्यादि के जापान के कब्जे मे आ-जाने से वहाँ से चावल, इत्यादि का भी आयात समाप्त हो गया था और दूसरी ओर यह दोनों वस्तुयें मध्य पूर्व और सुदूर पूर्व को भारतवर्ष से जाने लगी थीं। इन सब कारणों से यहाँ पर अन्न और वस्त्र की बहुत बडी कमी हो गई है। सरकार ने खाद्य-सामग्री और कपड़े की उत्पत्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया तो किन्तु वह असफल रही। खाद्य-सामग्री की उत्पत्ति को बढ़ाने के लिये उपज का बढ़ाना, खेती के निमित्त अधिक भूमि काम में लाना और अधिक ख़ाद्य-सामग्री पैदा करना आवश्यक है। उपज को बढ़ाने के सम्बन्ध मे सबसे पहिले तो खेतों की चकबन्दी का प्रश्न हमारे सामने आता है। इसके लिये सहकारिता का सहारा लेना पड़ेगा। ऐसा करने से गाँव के सभी खेत मिला कर एक कर दिये जायँगे और सम्मिलित खेती होगी। अन्त में इससे जो लाभ होगा वह सबों में बँट जायगा। जो लोग काम करेंगे उन्हें मज़दूरी मिलेगी और शेष

लोग दूसरा काम कर सकेंगे। एक खेत होने से नये-नये तरीकों से तथा मशीन से और ट्रैक्टर द्वारा काम करके खेतों की उपज भी बढ़ाई जा सकेगी। पाताल तोड़ कुँये खोद कर सिंचाई करानी पड़ेगी, साथ ही उचित और वैज्ञानिक खाद का प्रबन्ध करना पड़ेगा। कहना न होगा कि उपरोक्त में से कोई भी काम अब तक हमारी सरकार नहीं कर सकी है। अब दूसरा प्रश्न जो खेती के लिये भूमि बढ़ाने का है, उसके सम्बन्ध में भी ऐसा जान पड़ता है कि इस समय ८०० लाख एकड़ भूमि ऐसी है जो खेती के काम में लाई जा सकती है। इधर भी हमारी सरकार ने कोई सराहनीय काम नहीं किया है। हमारे सामने तीसरा प्रश्न जो अधिक अनाज पैदा करने का है वह बंगाल में जूट की उत्पत्ति, संयुक्तप्रान्त और पंजाब में रुई की उत्पत्ति, और अन्य स्थानों में कुछ अन्य चीज़ों की उत्पत्ति कम करके अधिक अन्न पैदा करने का है। इसके लिये हमको अनाज की क़ीमत ऊँची और अन्य चीज़ों की क़ीमतें नीची रखनी पड़ेंगी। यदि आवश्यकता हो तो अनाज पैदा करने वालों को कुछ आर्थिक सहायता भी दी जानी चाहिये। किन्तु अभी तक उपरोक्त में से तो कुछ भी नहीं हुआ है। हाँ, सरकार ने थोड़ा-बहुत अनाज बाहर से मँगाने का अवश्य प्रयत्न किया है और इसमें वह सफल भी रही है। पहिले तो अनाज का दाम बढ़ता रहा और सरकार ने यह समझ कर कि उसको अनाज के दाम के बढ़ने को रोक कर उन किसानों को नुक़सान पहुँचाने का कोई अधिकार नहीं है जिनको उसने उस समय जब कि अनाज का दाम गिर रहा था उसको रोक कर किसी प्रकार का फ़ायदा नहीं पहुँचाया था। किन्तु बाद में वह चुपचाप न बैठ सकी। सन् १९४१ में सरकार ने लायलपुर और हापुड़ की मण्डियों में गेहूँ की अधिक से अधिक क़ीमतें बाँध दीं। अप्रैल सन् १९४२ में गेहूँ के कमिश्नर की आज्ञा प्राप्त किये बिना एक सूबे से दूसरे सूबे को गेहूँ जाना बन्द कर दिया गया। इससे कहीं पर तो अधिकता और

कहीं पर कमी हो गई जिससे जनता को बड़ी तकलीफ़ हुई। सन् १९४३ में राशनिंग प्रारम्भ हुआ और कुछ दिनों में वह प्रायः सभी शहरों में हो गया। इससे जनता को सस्ती खाद्य-सामग्री तो अवश्य मिलने लगी, किन्तु वह काफ़ी नहीं होती है। इसके अलावा सरकार जिन तरीक़ों से इनको इकट्ठा करती है उनसे भी प्रायः उत्पादकों को बड़ा कष्ट होता है, कोई भी किसान खुशी से अपनी उपज नहीं देना चाहता है जिससे उसके ऊपर अनेकों प्रकार की ज़बर्दस्तियाँ की जाती हैं। फिर भी उनके पास कुछ न कुछ माल बच जाता है। इसके अलावा ग़रीब लोगों को जो अच्छी चीज़ें राशन से मिलती हैं और जिनको वे उपभोग में नहीं ला सकते हैं वे चीज़ें चोर बाजार मे बिकती हैं। राशनिंग-विभाग के कर्मचारी घूस लेते हैं जिससे वह जनता जो घूस नहीं दे सकती है बड़ी तकलीफ़ पाती है। इसके अलावा जो लोग घूस भी नहीं लेते हैं वे अपने इष्ट-मित्रों को लाभ पहुँचाते हैं जिससे साधारण लोगो को नुकसान उठाना पड़ता है। राशनिंग की एक अन्य ख़राबी भी है और वह यह है कि राशनिंग के कर्मचारी यह नहीं जानते कि कौन-सी सामग्री किस तरह से रक्खी जानी चाहिये और कब काम में आनी चाहिये। इसका यह फल होता है कि चीज़ें ख़राब हो जाती हैं और या तो वह फेंक दी जाती हैं या उपभोग में आने से स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं। फिर चीज़ें समय पर न मिल कर कुसमय में मिलती हैं, जैसे बाजरा जो जाड़े के उपभोग की वस्तु है गर्मी में दिया जाता है।

कपड़ों की उत्पत्ति में तो वृद्धि कोयले की दिक्क़तों, मज़दूरों की दिक्क़तों और मशीनों की दिक्क़तों के कारण नहीं हो पाती है। कोयले की खदानों में काम करने के लिये मज़दूर नहीं मिलते हैं और उनकी ढुलाई मे भी दिक्क़त पड़ती है। मजदूरों की दिक्क़त इसलिये है कि वे लोग उचित वेतन चाहते हैं और उनके न मिलने पर हड़तालें करते हैं जिससे बड़ा समय नष्ट होता है। कपड़े की मशीनें

पुरानी होने के कारण घिस गई हैं और नई मशीनें जिन देशों से मिल सकती हैं, उनको उनका दाम देने के लिये हमारे पास उनकी मुद्रायें नहीं हैं। हमारे पास पाउण्ड हैं जिनको डालर, इत्यादि में मनमाने रूप से बदला नहीं जा सकता है। सरकार के निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी कपड़े की हालत आजकल पहिले से भी ख़राब है। इसके वितरण में भी बहुत-सी ख़राबियाँ हैं। कहीं पर वितरण की एक प्रणाली है तो कहीं पर दूसरी प्रणाली है। इसके अलावा सरकार सबको एक ही तरह का और एक ही परिमाण में कपड़ा देती है। प्रायः जो स्त्रियाँ ५ गज़ की साड़ियाँ पहनती हैं उन्हें ६ गज़ की और जो ६ गज़ की साड़ियाँ पहिनती हैं उन्हें पाँच गज़ की साड़ियाँ मिल रही हैं। फिर देहात वालों को जो महीन कपड़ा मिलता है उसको वे स्वयं काम में न लाकर चोर बाज़ार में बेच लेते हैं।

अतः, इन सब कमियों को पूरा करने के लिये एक बहुत अच्छी योजना की आवश्यकता है और फिर ऐसे सरकारी कर्मचारियों का होना ज़रूरी है जो अपने फ़ायदे का ध्यान न रख कर जनता के फ़ायदे का ध्यान रख सकते हों।

(२) मुद्रा-प्रसार

आजकल हम जो बढ़ी हुई क़ीमतें देखते हैं वह अधिकांश में मुद्रा-प्रसार के कारण है। हमारे देश में मुद्रा में अत्यधिक वृद्धि हुई है या नहीं इसका पता लगाने के दो तरीक़े हैं। एक तो यह कि हम यह देखें कि मुद्रा की वृद्धि कितनी हुई है और पैदावार की वृद्धि कितनी हुई है। दूसरे यह कि सरकार को युद्ध-संचालन के लिये जितने रुपयों की आवश्यकता थी उतना सरकार को कर और ऋण से मिला अथवा नहीं। यदि कर और ऋण से नहीं मिला तो वह मुद्रा-प्रसार से मिला होगा। जहाँ तक मुद्रा-वृद्धि का प्रश्न है वह नोटों के, रुपयों के, रेज़-

गारी के और डिपाज़िट के सन् १९४७ के आँकड़ों को इनके सन् १९३९ के आँकड़ों से मिलान करने पर पता लगता है। मुद्रा कम से कम पँचगुनी बढ़ गई है। इसके विपरीत चीज़ों की उत्पत्ति अधिक से अधिक केवल २५ प्रतिशत बढ़ी है। दूसरे भारत सरकार के बजट को देखने से पता चलता है कि इस बीच में उसने अपनी ओर से जो कुछ भी खर्च किया है उसका अधिकांश तो कर और ऋण से वसूल हो गया है, किन्तु उसने ब्रिटिश सरकार की ओर से और अन्य राष्ट्रों की ओर से यहाँ पर बहुत सा ख़र्च किया है। वैसे तो यह रकम उन लोगों से मिलनी चाहिये थी, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हमारी पुरानी सरकार ने ब्रिटिश सरकार के लिखे हुये ऋण-पत्रों को रिज़र्व बैंक को देकर उससे नोट प्राप्त किये और उनसे भुगतान किया। वास्तव में यहाँ पर जितना मुद्रा-प्रसार हुआ है वह इसी कारण हुआ है।

इस मुद्रा-प्रसार का यह असर हुआ है कि चीज़ों के दाम बहुत बढ़ गये हैं जिससे ग़रीबों और विशेषकर नौकरी पेशे वालों को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी हैं। सर्वत्र चोर बाज़ार का प्रचलन हो गया है और इन लोगों को अधिक व्यय करने पर भी अपने रहन-सहन का दर्जा काफ़ी नीचा कर देना पड़ा है। हाँ, इससे बड़े-बड़े उद्योगपतियों को, सरकारी ठेकेदारों को और बीच के दलालों का बड़ा फ़ायदा हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि इससे किसानों का भी बहुत फ़ायदा हुआ है, किन्तु ऐसा नहीं है। भारतवर्ष में अधिकतर किसानों के खेत बहुत छोटे हैं। अतः, उनके यहाँ जो कुछ पैदावार होती है वह बहुत अधिक नहीं होती है। जो चीज़ें खेत में उत्पन्न होती हैं उनके अलावा अन्य चीज़ों के लिये तो उनको बहुत अधिक दाम देने पड़ते हैं। अतः, उनको अपने यहाँ की उत्पत्ति से जो धन मिलता है उसका एक बहुत बड़ा हिस्सा इसी में ख़र्च हो जाता है। फिर मुद्रा में उसका अधिक विश्वास न होने के कारण वह उतना ही सामान बेचता है जितने से उसको अपने ख़र्च के लिये काफ़ी रुपया मिल जाता है।

शेष को वह स्वयं ख़र्च कर लेता है। इससे उनका यही फ़ायदा हुआ है कि यदि पहिले वह मोटा अनाज खाते और मोटा कपड़ा पहिनते थे तो अब महीन अनाज खाते और महीन कपड़ा पहिनते हैं। अथवा यदि वह पहिले भरपेट भोजन नहीं करते थे और आधे नंगे रहते थे तो अब भरपेट भोजन करते हैं और काफ़ी कपड़ा पहिनते हैं। इसमें एक बुराई भी है और वह यह है कि भविष्य में जब चीज़ों के दाम गिर जायँगे शायद इनको तकलीफ़ हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि नई-नई योजनाओं द्वारा इनके यहाँ की उत्पत्ति बढ़ाई जाय और इन्हें खेती के अलावा अन्य काम भी मिलें।

जब भारत सरकार को यह स्पष्टतया विदित हो गया कि देश में मुद्रा-प्रसार से काफ़ी असन्तोष है तब उसने करों को बढ़ा कर, अधिक रुपया उधार लेकर, लोगों को अधिक बचाने के लिये प्रोत्साहित करके और मूल्य नियन्त्रण तथा राशनिंग करके उस असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसमें वह पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकी। अब जब युद्ध समाप्त हो गया है तब प्रश्न यह है कि भविष्य में क्या करना चाहिये। मुद्रा-प्रसार की दवा मुद्रा-संकुचन नहीं है। मुद्रा-संकुचन का असर हमारे देश के लिये बड़ा घातक होगा। इसके कारण यहाँ बेकारी फैल जायगी, लोगों के रोज़गार को धक्का लगेगा, आय में कमी हो जायगी। मन्दी का स्वरूप तेज़ी से भी अधिक भयानक होता है। अतः, जितनी मुद्रा का संकुचन आवश्यक है उतनी मुद्रा का ही संकुचन होना चाहिये और वह भी धीरे-धीरे। इसका असर यह होगा कि मन्दी भयङ्करता से एकदम नहीं आयेगी। दूसरे, देश का उत्पादन भी बढ़ाना चाहिये। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ेगा वैसे-वैसे मुद्रा-प्रसार का प्रभाव कम होगा। अतः, सरकार को चाहिये कि वह यहाँ के उद्योग-धन्धों को बढ़ाने का प्रयत्न करे। इसके लिये सरकार के कर्मचारी भी बहुत कुछ कर सकते हैं।

अभी तक तो साधारण से साधारण कामों के करने के लिये भी वे घूस लेते हैं।

(३) पौण्ड पावने का प्रश्न

मुद्रा-प्रसार के प्रश्न से सम्बन्धित पौंड पावने का भी प्रश्न है। मुद्रा-प्रसार के ही सम्बन्ध में यह बताया जा चुका है कि रिज़र्व बैङ्क के पास ब्रिटिश सरकार के प्रण-पत्र हैं। ये प्रण-पत्र उसके पास न केवल उसके कागज़ी मुद्रा विभाग मे ही हैं बल्कि बैंकिङ्ग विभाग में भी हैं। पौंड पावने का प्रश्न इस समय केवल भारत और इगलैंड के बीच में ही नहीं है बल्कि एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है। इसके विषय मे पहिली बात तो यह है कि जिस भारतवर्ष के ऊपर युद्ध के पहिले इगलैड का ३६० करोड रुपये का कर्ज़ था उसी भारतवर्ष का अब उल्टे उसके ऊपर लगभग १६०० करोड़ रुपये का कर्ज़ किस प्रकार हो गया है। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो यह कि युद्ध के समय में भारतवर्ष ने इगलैंड को करोड़ों रुपयों का सामान भेजा। वास्तव में उसने यह ऐसे समय में किया जब इगलैड को कोई भी उधार सामान देने के लिये तैयार नहीं था। भारतवासियों ने कम खाकर, नगे रह कर, स्वयम् मौत के मुँह मे पड़ कर यह सब किया। दूसरे, इस समय अमेरिका भी भारतवर्ष से काफ़ी मात्रा में सामान मँगा रहा था। उसके सिपाही, इत्यादि भी यहाँ पर थे जिन पर भारत-सरकार ही उसकी ओर से खर्च करती थी। अतः, उसके लिये भारत-सरकार को डालर मिले, किन्तु इनको भी उसने ब्रिटिश सरकार को दे दिया। कहना न होगा कि ब्रिटिश सरकार को इन डालरों की प्राप्ति से बड़ा लाभ हुआ। इनसे उसने अमेरिका, इत्यादि देशों में मनमाना सामान ख़रीदा। पौंड पावने के बढ़ने का एक तीसरा कारण भी था। युद्ध के प्रारम्भ में भारतवर्ष और इगलैंड के बीच में एक राजस्व समझौता हुआ था जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने भारत-

वर्ष की फ़ौज का कुछ ख़र्चा अपने ऊपर ले लिया था। फिर चैटफ़ील्ड कमेटी के प्रस्ताव के अनुसार भी इङ्गलैंड ने भारतवर्ष को उसकी फ़ौज के सम्बन्ध में कुछ सालाना रक़म देना प्रारम्भ कर दिया था। कहना न होगा कि यह सब उसने अपने ही लाभ के लिये किया था। बात यह थी कि यह लड़ाई उसीकी थी। भारतवर्ष तो उसमें व्यर्थ ही घसीटा गया था। यदि भारतवर्ष इङ्गलैंड की मदद न करता तो शायद इंगलैंड इस लड़ाई को जीत भी न पाता।

लेकिन शोक इस बात का है कि जब तक इंगलैंड हारता रहा तब तक तो वह बराबर यही कहता रहा कि वह भारतवर्ष का यह क़र्ज़ अवश्य अदा करेगा, किन्तु सन् १६४४ में युद्ध का पलटाव होते ही वहाँ के लोगों ने यह इसको न देने के लिये अनेकों बहाने बनाने प्रारम्भ कर दिये। प्रथम तो वह यह कहते हैं कि इंगलैंड और भारतवर्ष के बीच में जो राजस्व समझौता हुआ था वह इंगलैंड के विरुद्ध रहा, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती। भारतवर्ष की ओर से इस समझौते को करने वाले जो प्रतिनिधि थे वह अंग्रेज़ ही थे, अतः, यह बात नहीं समझ में आ सकती कि उन्होंने ऐसा कोई काम किया होगा जो उन्होंने अपने देश के विरुद्ध समझा था। इस समझौते से यदि किसी को शिकायत हो सकती है तो वह भारतवर्ष को हो सकती है। फिर जैसा कि पहिले ही कहा जा चुका है यह लड़ाई तो इङ्गलैण्ड की लड़ाई थी, अतः, इसमें जो कुछ भी ख़र्च हुआ वह पूरी तौर से इङ्गलैण्ड के ऊपर पड़ना चाहिये। दूसरे, वह यह कहते हैं कि हम मानते हैं कि भारतवर्ष ने यह जो पौंड पावना इकट्ठा किया है वह सचमुच बड़ी तकलीफ़ के बाद इकट्ठा किया है, किन्तु अब जब उसने यह सब तकलीफ़ें उठा ही ली हैं तब वह एक दूसरे देश से इनको वसूल करके उसको क्यों तकलीफ़ में डालना चाहता है। यह दलील तो बड़े मज़े की है। इससे तो ऋण का लेना-देना ही बन्द हो जायगा। फिर, भारतवर्ष ने उस समय

तकलीफ सही जिस समय इङ्गलैण्ड को उसकी मदद की आवश्यकता थी। अब जब भारतवर्ष को अपनी योजनाओं को सफल बनाने के लिये धन की आवश्यकता है इङ्गलैण्ड को उसकी मदद करनी चाहिये। तीसरी दलील यह है कि इङ्गलैण्ड ने भारतवर्ष में जो चीज़ें ख़रीदी हैं वे बड़े ऊँचे दामों में ख़रीदी हैं। किन्तु यह बात बिल्कुल ग़लत है। भारतवर्ष ने इङ्गलैण्ड को नियन्त्रित कीमतों पर सामान दिया था और स्वयम् यहाँ के लोगों ने ऊँचे दामों पर ख़रीदा था। अतः, पौंड पावना भारतवर्ष को अवश्य मिलना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि इसका क्या रूप होना चाहिये। सबसे पहिली बात तो यह है कि यह रकम भारतवर्ष को बहुराष्ट्र सम्बन्धी व्यापार के लिये मिलनी चाहिये जिससे वह जहाँ चाहे मशीन तथा कल-पुर्जे ख़रीद सके। दूसरे ब्रिटिश सरकार इस बात का आश्वासन दे कि यदि भविष्य में पौंड की कीमत घट गई तो भारत को जो घाटा होगा वह इङ्गलैण्ड ही सहन करेगा। जहाँ तक इस बात का प्रश्न है कि ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष का रुपया नहीं देगी यह बात नहीं हो सकती है क्योंकि इससे उसकी बहुत बदनामी होगी। यदि हो सकता है तो यही हो सकता है कि भारत सरकार किसी तरह से ब्रिटिश सरकार के दबाव में आकर अपनी कुछ रकम छोड़ दे, किन्तु राष्ट्रीय सरकार को ऐसा करना तो नहीं चाहिये। फिर पौंड की कीमत गिर जाने से भी घाटे की सम्भावना है और यह सम्भावना वास्तविक है। अन्तिम बात यह है कि शायद यह रकम जब भारतवर्ष को उसकी आवश्यकता है तब उसको न मिले। ऐसा होने की भी बहुत सम्भावना है। यह सचमुच बड़े शोक की बात होगी।

(४) बैंकिङ्ग की उन्नति

इस युद्ध में बैंकिङ्ग की एक बहुत बड़ी उन्नति हुई है रिज़र्व बैङ्क के सदस्य बैङ्कों की संख्या इस समय ६८ है। इसमें से कुछ तो युद्ध

के समय में ही खुले हैं और कुछ पुराने हैं। पुरानों में से कुछ ऐसे हैं जिनकी पूँजी और सुरक्षित कोष मिला कर पहिले से ही पाँच लाख अथवा उससे अधिक था और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने उसको अवसर पा कर बढ़ा लिया है। जो नये बैङ्क खुले हैं वे सभी और विशेषकर भारत बैङ्क काफ़ी ऊँची पूँजी से खुले हैं। इनको देख कर पुराने बैङ्कों ने भी अपनी पूँजी को और विशेषकर सुरक्षित कोष को बढ़ा लिया है। व्यापारियों और ठेकेदारों के पास जो कमाई थी उससे इनको अपनी पूँजी बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली। फिर इनके स्वयम् के लाभ बहुत ऊँचे रहे जिससे ये अपने सुरक्षित कोष को बढ़ा सके। पाँच लाख से कम की पूँजी और सुरक्षित कोष. वाले बैङ्कों की भी सख्या बढ़ी हुई है। इसके अलावा जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इनमें से कुछ ने तो अपनी पूँजी और सुरक्षित कोष को बढ़ा कर अपने को रिज़र्व बैङ्क का सदस्य बना लिया है और कुछ ने पहिले से अधिक पूँजी और सुरक्षित कोष इकट्ठा तो कर लिया है किन्तु अभी वह इतना नहीं हुआ है कि वे रिज़र्व बैङ्क के सदस्य बन सकें। बैङ्कों की शाखाएँ भी काफ़ी बढ़ गई हैं। सन् १६३६ को १२५० की तुलना में आजकल ये ३६०० के लगभग हैं। इन बैङ्कों को अब एक दूसरे में मिल कर अपनी स्थिति को मज़बूत बनाना और पारस्परिक होड़ को बचाना चाहिये। इस समय कुछ शहरों में बहुत अधिक बैङ्कों की शाखायें खुल गई हैं जिससे उनको काफ़ी काम नहीं मिल रहा है। अब, यदि दो-दो, चार-चार बैङ्क आपस में एक दूसरे से मिल जायें तो उनकी ऐसी स्थिति भी हो जायगी कि वे भविष्य में आने वाली मन्दी का सामना कर सकेंगे और पारस्परिक होड़ से जो क्षति होती है उससे भी वे लोग बच जायेंगे।

इन बैङ्कों में जमा की रक़म भी बढ़ गई हैं। सन् १६३६ में रिज़र्व बैङ्क के सदस्य बैङ्कों की जमा की रक़म कुल २३६'६० करोड़ रुपये थी। यही इस समय १००० करोड़ रुपये से ऊपर हो गई है।

अन्य बैङ्कों के डिपाज़िट बहुत कम हैं, किन्तु उनमें भी वृद्धि हुई है। जहाँ तक फिक्स्ड डिपाज़िट और चालू ख़ातों का सम्बन्ध हैं, अब चालू ख़ाते अधिक प्रिय होते जा रहे हैं।

डिपाजिट के बढ़ने के साथ-साथ इन बैङ्कों का नक़द कोष भी बढ़ता जा रहा है। न केवल यही बल्कि युद्ध के समय तो डिपाजिट का नक़द प्रतिशत भी बढ़ता जा रहा था। फिर रिज़र्व बैङ्क में जो इनको चालू ख़ातों की रक़म का कम से कम पाँच प्रतिशत और मुद्दती ख़ातों की रक़म का कम से कम दो प्रतिशत रखना पड़ता है उससे कहीं अधिक रक़म ये वहाँ पर रखते हैं। युद्ध के समय तो यह आवश्यक ही था किन्तु शान्ति के समय यह और अधिक साख उत्पन्न करने के काम मे आ सकता है।

यदि हम इन बैङ्कों की कार्यशील पूँजी के प्रयोग की ओर आते हैं तो हमको ज्ञात होगा कि वह आधे से अधिक सरकारी सिक्योरिटीज़ में लगी है। बिलों में तो बहुत कम रुपया लगा है। किन्तु हमको इस बात की पूरी आशा है कि व्यापार और उद्योग-धंन्धों को जैसे-जैसे रुपयों की अधिकाधिक आवश्यकता होगी वैसे-वैसे ये लोग अपना रुपया इन सिक्योरिटीज़ से निकाल कर उनमें लगा देंगे। वास्तव में इस लड़ाई के समय व्यापार और उद्योग-धन्धों को बैङ्कों के रुपयों की आवश्यकता ही नहीं थी, अन्यथा ये बैङ्क उनको अवश्य रुपया देते। बात यह थी कि एक तो लोगों के पास अपने लाभ के ही इतने रुपयों की भरमार थी कि उनको ही व्यापार और उद्योग-धन्धों में लगाना मुश्किल था और उधार लेने की कौन कहे, और दूसरे, जो लोग सरकारी काम करते थे उनको सरकार अपनी ओर से पेशगी रुपये देती थी। फिर साख नियन्त्रण आदेश के अनुसार बैङ्क कुछ चीज़ों पर साख के रुपये दे ही नहीं सकते थे और कुछ चीज़ों पर बहुत अधिक मार्जिन रखना पड़ता था। इधर कुछ बैङ्कों ने बिलों को डिस्काउन्ट

करने में भी काफ़ी रुपया लगाया है जिससे पता चलता है कि यह काम भी भविष्य में काफ़ी बन सकता है।

युद्ध के समय में बैङ्कों के ऊपर रिज़र्व बैङ्क का और सरकार का नियन्त्रण भी काफ़ी अधिक हो गया है। अतः, ऐसी आशा है कि भविष्य मे यह जारी रहेगा और इससे उनकी स्थिति अच्छी होने में सहायता मिलेगी।

(५) भारत की भावी व्यापारिक योजना की रूप-रेखा

आजकल जहाँ एक तरफ़ भारत की जन-सख्या के साथ-साथ व्यापारिक विषमता के कारण भारत की साधारण जनता की ग़रीबी बढ़ रही है वहाँ कुछ मुट्ठी भर धनीवर्ग के लोग सिनेमा, मोटरकार और क़ीमती भोजन, सूट-बूट तथा क़ीमती शराब आदि के उपभोग में व्यर्थ रुपया बर्बाद कर रहे हैं।

कलकत्ता अथवा बम्बई में जा कर देखिये तो बड़ी भारी सत-मंज़िली कोठियों में ऊपर पिआनो बज रहा है, मजे में ह्विस्की के जाम का दौर चल रहा है तथा उसी बिल्डिंग के नीचे फ़ुट-पाइली पर बे-घर-बार के कितने ही ग़रीब मज़दूर और कुली दिन भर काम करके थके-माँदे आधे पेट भोजन कर चिथड़ों के सहारे जीवन बिता रहे हैं। सतमंज़िली कोठियो में तथा उनके नीचे फ़ुट-पाइली पर दोनों जगह मनुष्य ही हैं जो एक जगह ऊपरी दृष्टि से देखने में स्वर्गीय सुख को भी मात कर देने वाला विषय वासनामय पागल-सुख भोग रहे हैं तथा दूसरी जगह भूखे, प्यासे, कातर तथा लालायित दृष्टि से अमीरों के भोग-विलासमय जीवन को प्रतिलोभ दृष्टि से देखते हुए फ़ुट-पाइली पर नारकीय जीवन बिता रहे हैं। यह कितनी ज़बरदस्त विषमता है।

इतिहास पढ़ने वाले जानते हैं कि भारत में अमीरी और ग़रीबी में इतनी विषमता कभी नहीं थी। पिछले सौ वर्षों में भारत में जितने

अकाल पड़ चुके हैं इतने अकाल इसके पीछे ढाई हज़ार वर्ष गुप्त-काल तक कभी नहीं पड़े थे। अभी ऐसे शतायु बुड्ढे जीवित हैं जो यह बताते हैं कि उनके बचपन में एक की कमाई में दस खाते थे और अब से अधिक निश्चिन्त जीवन था। वास्तव में इसके मूल में आधुनिक व्यापार की बुराइयाँ हैं। जो निम्नाङ्कित हैं :—

(१) धनी व्यापारियों का निजू खर्च बहुत बढ़ा हुआ है जिससे वे अधिक से अधिक महँगा माल बेच कर अधिक से अधिक मुनाफा ले लेना चाहते हैं।

(२) उपरोक्त के अलावा और भी कितनी ही तरह के जलसों, शादी-दहेज, दान-पुण्य, इमारत बनाने, लखपती बनने, जायदाद खरीदने, नेता और बड़ा आदमी बनने, धर्मशाला, कालेज, पाठशाला आदि स्थापित करके नाम कमाने, बहुत बड़ा भंडारा करने आदि की इच्छाओं से ग्रस्त होने के कारण उनके कारखानों से बनी वस्तुओं के दाम अवश्य ही अधिक होते हैं। यहाँ यह बात बता देना आवश्यक है कि धर्मशाला और पाठशाला बनवाना बुरा नहीं है परन्तु कीर्त्ति की इच्छा रखने वाले प्रतिस्पर्धा के कारण अधिकतर प्रायः वहीं अच्छे धर्मशाले व पाठशाले बनवाते हैं जहाँ पर पहिले भी किसी धनी ने पास ही धर्मशाला या पाठशाला बनवा दी थी। कानपुर, प्रयाग, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई आदि में ऐसे धर्मशाले, पाठशाले तथा कालिज अधिक हैं। दूर दिहात की घनी बस्ती में जहाँ कि शत प्रतिशत लोग अनपढ़ हैं वहाँ कोई सेठ प्राईमरी स्कूल भी नहीं खुलाता। कितने ही तीर्थ स्थान, मेले के स्थान, अरक्षित दशा में हैं जहाँ कोई सेठ धर्मशाला नहीं बनवाता। इसलिये देश में धर्मशालाओं, कुवों, पाठशालाओं, आदि की ठीक-ठीक योजना के अनुसार बनवाने का प्रबन्ध केवल सरकार ही कर सकती है। अतः, इस प्रकार की इच्छा के वशीभूत हुये व्यापारियों को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये

अधिक नफ़ा लेने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। इससे जनता की भारी हानि हो रही है।

(३) आजकल के व्यापार में बहुत कुछ इस प्रकार की बेई-मानियाँ हैं जैसे, मिलावटी सौदा देना, कसम खाना, नक़ली बीजक दिखाना, दलाली बोली बोलना, अच्छा नमूना दिखा कर घटिया देना, नया कह कर पुराना रद्दी माल देना, अधिक नफ़े की लालच से महँगा करके उधार सौदा देना तथा उधार डूब जाने से उसका घाटा दूसरे ग्राहकों से वसूल करना, माप तथा तौल में कम देना, आदि आदि।

(४) सभी व्यापारियों तथा व्यापारिक संस्थाओं के अपने अलग-अलग स्वार्थ होने से व्यापार में प्रतियोगिता होती है जिससे क़ीमत में सस्ता करने के लिये माल में बाहरी चमक-दमक अधिक कर दी जाती है परन्तु माल में कचाई अधिक होती है और वे पूरे उपयोगी नहीं होते। प्रतियोगिता के कारण झूठा, आकर्षक तथा बढ़ा-चढ़ा कर विज्ञापन दिये जाते हैं जिससे विज्ञापन में खर्चा अधिक होता है और माल को और अधिक नक़ली बना कर, विज्ञापन आदि का ख़र्चा पूरा किया जाता है।

(५) सबसे बड़ी बात तो यह है कि राष्ट्र की श्रमिक शक्ति की अधिक से अधिक छीछालेदर होती है। उदाहरण के लिये जैसे एक व्यापारी इलाहाबाद से बम्बई कपड़ा ख़रीदने जाता है तो वह केवल अपनी दूकान के लिये ही कपड़ा ख़रीदता है। उसी समय में पचास दूकानदार और बम्बई जाते हैं जो अपनी-अपनी दूकान और अपने नफ़े के लिये कपड़े ख़रीदते हैं। इस तरह यदि सब का स्वार्थ मिश्रित हो तो एक ईमानदार व्यापारी अकेला ही सबके लिये कपड़ा ख़रीद कर ला सकता है। ऐसा दिखाई देता है कि एक ही शहर से बहुत लोगों को एक ही तरह के आर्डर के लिये बहुत से पत्र एक ही शहर में, एक ही कारख़ाने में भेजने पड़ते हैं। यदि मिश्रित

अथवा राष्ट्रीय स्वार्थ हो तो एक ही पत्र में सब पत्रों का काम निकल सकता है।

सड़कों पर प्रायः दिखाई देता है कि पचासों ट्रक तथा लारियाँ खाली दौड़तीं, पेट्रोल फूँकती निकल जाती हैं और सड़क पर हजारों बोझिये बोझा लादे हाँफते चले जाते हैं इस तरह से खाली मोटर ट्रकों के जाने तथा बोझियों को काम में लगे रहने से दोनों हालतों में कितनी अधिक राष्ट्रीय श्रम की व्यर्थ में बर्बादी हो रही है यह तो दो एक उदाहरण हैं। इसी तरह से देश के प्रत्येक विभाग में श्रम तथा व्यवस्था की छीछालेदर हो रही है। क्या रेलवे, क्या डाक, क्या अदालत, क्या व्यापार, सभी स्थानों में श्रम की अधिक से अधिक छीछालेदर है। इस श्रम की छीछालेदर में कुछ निठल्लों को छोड़ कर बाकी साधारण वर्ग इतना फँसा रहता है कि बहुत से क्लर्कों, कारीगरों, कुलियों, मजदूरों को ठीक समय से भोजन भी करने को फुरसत नहीं मिलती है। बहुत से लोग तो काम के मारे इतने व्यग्र रहते हैं कि उनसे अक्सर भूलें हुआ करती हैं। उन्हें विचार करने और जीवन की जटिल समस्याओं पर मनन करने की भी फुरसत नहीं मिलती है।

अतः, इन उपरोक्त बुराइयों को दूर करने ही के लिये जो उत्तम से उत्तम व्यापारिक योजना हो उसीको जन-हित के लिये सरकार द्वारा लागू कराना चाहिये।

हम साम्यवाद के उतने पक्षपाती नहीं हैं जितना कि रूस है। परन्तु हम यह अवश्य चाहते हैं कि जन-साधारण को उचित परिश्रम करना पड़े तथा उचित जीवन-रक्षक सामग्रियाँ और प्रारम्भिक शिक्षा सभी को मिल सकें।

साम्यवाद की वेदी पर हम व्यक्तिगत उन्नति, अभिलाषा तथा स्वतन्त्रता का बलिदान भी नहीं करना चाहते। अतः, हम नीचे लिखी हुई व्यापारिक योजना की सिफ़ारिश करते हैं।

इस समय दुनिया की होड़ के साथ व्यापार का रूप भी बहुत विशाल हो गया है। अतः, वर्त्तमान परिस्थिति का ध्यान रख कर भारत के लिये उपयोगी तथा विचारपूर्ण ऐसी व्यापारिक योजना बनाई जाय जिससे मनुष्य जीवन की इतनी बड़ी विषमता दूर हो जाय तथा मनुष्य और मनुष्य में सद्भावना पैदा हो। ऐसी योजना के लिये निम्न बातों पर विचार रखना आवश्यक है :—

(१) भारत के कुल व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण हो जिससे कि व्यापारियो की लोभ के कारण बढ़ी हुई दुर्वृत्ति द्वारा बेईमानी करके व्यापार से अनुचित लाभ न उठाया जा सके।

(२) सदस्यों के अनुपात से प्रत्येक परिवार के लिये एक निश्चित परिमाण में खेती का अधिकार हो। उससे अधिक खेती वह किसी दशा में भी न कर सके। हाँ, यदि परिवार की वृद्धि हो जाय तो उसी अनुपात से उसे खेत भी दे दिया जाय। इस प्रकार की खेती तथा घरेलू उद्योग-धन्धों पर अत्यधिक स्वतन्त्रता होनी चाहिये और उन पर केवल कुछ ही क़ानूनी नियन्त्रण रहने चाहियें। इस सम्बन्ध की एक अन्य योजना भी हो सकती है और वह यह है कि पहिले तो प्रत्येक गाँव के कुल खेतों को एक में मिला कर ज़मीन की किस्मों के अनुसार चकबन्दी कर दी जाय और फिर उस पर सामूहिक रीति से बड़े-बड़े खेत बना कर खेती की जाय। इसको करने के लिये किसानों और ज़मीन्दारों को उनके खेतों का निर्धारित दर से मूल्य लगा कर हिस्से-पत्र दिये जा सकते हैं और फिर सबकी योग्यतानुसार गाँव के लोग उसमें मजदूर के रूप में काम करके उचित मज़दूरी पा सकते हैं। इस सामूहिक खेती की देख-रेख ग्राम की जनता द्वारा चुनी हुई ग्राम्य पंचायत कर सकती है।

(३) इस तरह की सामूहिक रूप से खेती करने की योजना के कार्यान्वित होने पर भी यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक घर के पास

दस बिस्वा से एक बीघा तक की ज़मीन, बाग़, फुलवारी, तरकारी आदि के लिए अलग दी जाय।

खेती पर इतना थोड़ा-सा लिख देने से हमारा मतलब यह है कि भोजन और वस्त्र यह दो तो बड़े आवश्यक पदार्थ हैं। अतः, उनकी उत्पत्ति के साधन कृषि और घरेलू उद्योग-धन्धे, चरखा, करघा आदि की विशेष सुविधा हो।

हाँ यदि निर्धारित तथा निश्चित पैमाने से अनुपाततः कोई अधिक खेती करना चाहे अथवा परिवार वालों के अलावा कोई व्यक्ति कुछ और नौकर लगा कर उद्योग-धन्धों को कारख़ाने की हालत में बदलना चाहे तो ऐसी हालत में कोई रोक-टोक तो न हो किन्तु नौकरों की उचित तनख़्वाह तथा मजदूरी और उनके श्रम के विषय में सरकारी तथा क़ानूनी नियंत्रण अवश्य हो। इस नियन्त्रण का यही मतलब है कि यदि उद्योग धन्धों के मालिक केवल अपने ही स्वार्थ का अधिक ध्यान करके मजदूरों के श्रम का उचित पारिश्रमिक न दें और पुरानी प्रवृति के वशीभूत हो कर मज़दूरों का शोषण करें तो उनको क़ानूनी और सरकारी तोर पर रोका जाय।

भारतवर्ष में कृषि की उन्नति के साथ-साथ औद्योगीकरण की भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। सबसे पहिले तो कृषि से ऐसी बहुत सी चीज़ें उत्पन्न होती हैं कि जिनका रूप परिवर्तन किये बिना वह अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकती हैं। आजकल ये विदेशों को भेज दी जाती हैं, और वहाँ पर उनका रूप परिवर्तन किया जाता है जिससे वहीं के मज़दूरों, इत्यादि का लाभ होता है। भारतवर्ष में प्रायः बहुत से आदमी बेकार रहते हैं। युद्ध के समय में सरकार ने फ़ौज में तथा अन्य विभागों में बहुत से आदमी नौकर रख लिये थे। इनमें से कम से कम ३२ लाख आदमी ऐसे हैं जिनको धीरे-धीरे निकाल दिया जायेगा। इनके अलावा पचास लाख आदमी इस महायुद्ध के

कारण स्थापित हुये उद्योग-धन्धों से निकलेंगे। अब यदि इन बयासी लाख आदमियों के परिवार को भी सम्मिलित कर लिया जाय और एक परिवार में कम से कम चार व्यक्ति माने जायँ तो लगभग सवा तीन करोड़ व्यक्तियों के खाने-पीने का प्रश्न उठेगा। फिर कोई भी कृषि-योजना हो उसमें आजकल के कृषि में लगे हुए सब व्यक्तियों को पूरा काम नहीं मिल सकता है। अतः, उनमें से भी कुछ को अन्य कार्य देने पड़ेंगे। अतः, औद्योगीकरण बहुत ही आवश्यक है। दूसरे आजकल मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ रही हैं और इनको पूरा करने के लिये या तो विदेशों का मुँह ताकना पड़ेगा या यहीं पर चीज़ों को बनाना पड़ेगा। अतः, अच्छा यही होगा कि चीज़ें यहीं बनें जिससे देश का रुपया देश ही में रहे। तीसरे हमारे यहाँ की राष्ट्रीय आय बहुत कम है। अतः, देश की दरिद्रता को भी दूर करने के लिये औद्योगीकरण बहुत ही आवश्यक है।

अब इस औद्योगीकरण के लिये हमको न केवल बड़ी-बड़ी मिलों को ही खोलना वरन् छोटे-छोटे कारख़ाने और घरेलू उद्योग-धन्धो की ओर भी ध्यान देना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि गत् तीस-पैंतीस वर्षों में भारतवर्ष ने इस ओर बड़ी उन्नति की है। जबकि सन् १९१४ में यहाँ पर कारख़ानों की संख्या लगभग तीन हज़ार के थी वही इस समय बारह हज़ार से ऊपर है। मज़दूरों की सख्या भी इस बीच में लगभग १० लाख से २५ लाख हो गई है। इधर युद्ध-काल में रोज़र मिशन, ग्रैडी मिशन, तथा पूर्वी संघ सप्लाई काउन्सिल की सहायता से और सर रामास्वामी मुदालियर के अश्वासन से कि इस समय जो उत्साही देश की मदद के लिये आये हैं उन्हें बाद में यों ही नहीं छोड़ दिया जायगा। देश में नये-नये धन्धों की बढ़ती भी हुई है और पुराने उद्योग-धन्धे भी उन्नति कर सके हैं। बाहर से आयातों के न आने से और युद्ध के कारण सरकार की माँग बढ़ जाने से सभी धन्धों को प्रोत्साहन मिला है। यदि ध्यान से देखा जाय तो

जूट के व्यवसाय को छोड़ कर सभी का उत्पादन बढ़ गया है, किन्तु अभी हमें इससे सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये। हमारे यहाँ इस समय सभी चीज़ों की कमी है, और हमको उनको बाहर से न मँगा कर यहीं पर बनाना चाहिये। किन्तु शोक का विषय है कि जबकि हमारे यहाँ के लोग सो रहे हैं विदेशों से धड़ाधड़ आयात हो रहा है। इस विषय में हमको जो दिक्कत है वह जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है मशीनों और कल पुर्ज़ों की है। फिर हमको इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि इस बार हम पुरानी मशीनें न ख़रीदें। उस युद्ध के बाद हमने पुरानी मशीनें ख़रीद ली थीं। युद्ध-काल मे आविष्कार होते हैं। अतः, इनकी सहायता से बनी हुई नई मशीनों का मुक़ाबिला पुरानी मशीनें नहीं कर सकती हैं जिससे उन पर जो सामान बनता है वह महँगा पड़ता है। फिर हमको बुद्धिवाद का सहारा लेकर अपने मज़दूरों की कार्य करने की शक्ति को बढ़ाना पड़ेगा। इसके अलावा हमे अपने व्यवसायियो की विदेशी प्रतिस्पर्धा से रक्षा करनी होगी। सम्भव है कि इसके लिये हमें संरक्षण की नीति का सहारा लेना पड़े।

हमारे देश मे घरेलू धन्धों को भी प्रोत्साहन देना पड़ेगा। बात यह है कि यहाँ पर बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो अपना घर-बार छोड़ कर बड़े-बड़े शहरों में जा कर मिलों मे नौकरी नही कर सकते हैं। फिर किसानों को भी समय-समय पर कुछ ऐसा ही काम चाहिये। इसके लिये पहिले तो हमें इस बात का पता लगाना चाहिये कि कौन से घरेलू धन्धों को बढ़ाना चाहिये। इनको हमें बड़े-बड़े कारख़ानों से बने हुये मालों की स्पर्धा से बचाना होगा। कुछ धन्धे ऐसे हैं जिनमे घरेलू ढङ्ग से भी और कारख़ानों के ढङ्ग से भी उत्पादन हो सकता है। उदाहरणार्थ कपड़े के धन्धे को लिया जा सकता है। इसमें सूत के नम्बर की एक सीमा निर्धारित कर दी जायगी जिसकी कताई और बुनाई क्रमशः केवल चर्खे और करघे पर ही हो सकेगी। इससे अधिक नम्बर के सूत की कताई और बुनाई मशीन पर होगी।

सबसे पहिले भारत सरकार को एक अखिल भारतीय आदर्श व्यापारिक संघ स्थापित करना चाहिये। उसका केन्द्र दिल्ली में हो सकता है। फिर इसकी प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय शाखायें खोली जानी चाहियें और फिर प्रान्त के प्रत्येक ज़िलों में ज़िला शाखायें होनी चाहियें। इसके बाद जिलों में लगभग सौ-सौ गाँव पीछे एक-एक मण्डल शाखाएँ होनी चाहियें और अन्त में प्रत्येक सात गाँव पीछे एक-एक ग्राम्य शाखा खुलनी चाहिये।

अखिल भारतीय आदर्श व्यापारिक संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह उपरोक्त लिखे अनुसार छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों को आंशिक रूप से और बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों तथा कारखानों को सम्पूर्ण रूप से अपने नियन्त्रण में रक्खे। आदर्श व्यापारिक संघ की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही है कि वह पूँजीवाद के होते हुये ही जनसाधारण तथा ग़रीब जनता के शोषण को अहिंसात्मक रूप से ख़त्म कर देवे और ग़रीबों के वर्त्तमान दुःखी जीवन के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठावे। उसको सभी कारखानों, खेतों, ख़ानों, जंगलों, इत्यादि के मालिकों से उनकी व्यापारिक सम्पत्तियों को उनकी रज़ामन्दी से लेकर उनके बदले में सरकारी निर्धारित दर से हिस्सा-पत्र दे देने चाहिये। जो लोग रज़ामन्दी से इसके लिये न तैयार होवें उनके कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी तथा परिश्रम के घन्टे सरकार द्वारा निर्धारित कर दिये जायें तथा उन पर ऐसे प्रतिबन्ध और क़ानून लागू कर दिये जायें जिससे वे न तो मज़दूरों का शोषण कर सकें और न अपने माल को ऊँची दर पर बेंच कर अनुचित लाभ ही उठा सकें। इसके अलावा उनके कारबार के प्रत्येक विभाग की समय-समय पर सरकारी निरीक्षकों द्वारा जाँच भी होनी चाहिये। यदि कारख़ाने के मालिक प्रतिबन्ध और क़ानून को न मानें और मनमाना करें तो सरकार अपने पास इस तरह के अधिकार रक्खे

कि सरकारी क़ानून के तोड़ने वाले निजू कारख़ानों पर जबरन क़ब्ज़ा करके उनके मालिकों को हिस्सा-पत्र दे दिये जायँ।

व्यापारिक संघ को व्यक्तिगत श्रम से चलने वाले लाखों कारबार देश के प्रत्येक केन्द्र में खोल देने चाहिये। इसके लिये रुपयों की आवश्यकता होगी, जो भारत के धनिकों से डाकख़ाने के सर्टीफ़िकेट निकाल कर एकत्रित किया जा सकता है। इस पर ३) सैकड़ा वार्षिक सूद से अधिक सूद नहीं होना चाहिये। जो धन इस प्रकार नहीं प्राप्त हो सकता उसकी पूर्ति के लिये देश की दशा का ध्यान रखते हुये उचित मात्रा में उधार करन्सी नोट छापे जा सकते हैं परन्तु इस तरह के उधार छपे नोटों से देशी श्रमिकों का श्रम और देश का कच्चा माल ही प्राप्त किया जा सकता है। उससे विदेशों से मशीनरी आदि नहीं ख़रीदी जा सकती। अतः, उसके लिये तो नये अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार डालर होने चाहिएँ। डालर प्राप्त करने के दो ही रास्ते हैं, एक तो यह कि ये इङ्गलैण्ड के पौंड पावने के बदले में प्राप्त किये जायँ अथवा दूसरे किसी अन्य देश से उधार लिये जायँ। परन्तु अन्य देश से उधार लेने पर उस अन्य देश का भारतीय व्यापार पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। इसलिये यदि यथासमय हमको डालर न प्राप्त हो सकें तो उसके प्राप्त करने का यही एक रास्ता है कि भारत के चमड़े, जूट, चाय, कपड़ा, तेलहन आदि का निर्यात विदेशों को भेज कर डालर प्राप्त किये जायँ और फिर उससे मशीनें ख़रीदी जायँ।

सरकारी कल कारख़ानों से जो नफ़ा हो वह भारत की शिक्षा, कृषि की उन्नति तथा अधिक से अधिक पक्का माल तैयार कराने में ख़र्च किया जाय। यदि कपड़े की मिलों के मालिक अपनी मिलों को संघ में न देवें तो राष्ट्र उचित संख्या में कपड़ों की मिलें अपने पौन्ड पावने आदि की रक़म में से इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका से मशीनें ख़रीद कर शहरों के झमेले, से दूर मज़दूर तथा ग्रामीणों की घनी बस्तियों के पास, भारत के विभिन्न स्थानों में स्थापित कर सकती है। हाँ, इनके

पास तक रेलवे का खुलना आवश्यक होगा जिससे कि कारख़ानों के आवश्यक कच्चे सामान रेलों द्वारा आसानी से लाये जा सकें और पक्के माल की निकासी तथा वितरण भी रेलों के द्वारा ही आसानी से हो सके।

कल-कारख़ानों के प्रसार में कपड़े का धन्धा मुख्य है क्योंकि भोजन की आवश्यकता के बाद कपड़े की आवश्यकता ही मुख्य होती है। कपड़े के कारख़ानें विशाल रूप में और छोटे-छोटे घरेलू उद्योग धन्धो के दोनों रूप में खोले जायँ। यदि प्रत्येक भारतवासी को साल भर में तीस गज़ कपड़ा दिया जाय तो कुल १२ अरब गज़ कपड़ा चाहिये। अब यदि प्रत्येक नई मिल से प्रति वर्ष पाँच करोड़ गज़ कपड़ा तैयार हो तो सौ मिलों से साल में पाँच अरब गज़ कपड़ा तैयार होगा।

भारत में वर्त्तमान समय में जो चर्खा संघ काम कर रहा है उसके अनुसार सात लाख गाँवों में प्रति सात गाँव पीछे एक चर्खा संघ की ग्राम्य शाखा स्थापित करने से जिनकी तादाद लगभग एक लाख के होगी यदि प्रत्येक ग्राम्य शाखा में प्रति मास ५००० गज़ कपड़ा तैयार कराया जाय तो साल भर में ६ अरब गज़ करघे का बुना कपड़ा तैयार होगा। इस तरह से मिल और करघे का कुल माल १३ अरब गज़ हो जाता है। फिर स्वतन्त्र मिल मालिकों की जो इस समय मिलें हैं उनसे वर्त्तमान समय में ४½ अरब गज़ कपड़ा तैयार होता है। यह कुल मिला कर १७½ अरब गज़ कपड़ा होता है। यदि भारतीय खपत के लिये १२ अरब गज़ कपड़ा अलग कर लिया जाय तो भी ५½ अरब गज़ कपड़ा निर्यात करने के लिये बच जायगा। इस तरह से भारत कपड़े के व्यापार में एक प्रधान देश हो सकता है।

अन्य वस्तुयें, जूता, साबुन, रँगाई, छपाई, सिलाई के कारबार, हाथ का बना कागज़, धातु और मिट्टी के बर्तन, लोहे की छोटी-छोटी वस्तुयें, आदि बनाने के लिये गाँवो और दिहातों में छोटे-छोटे एक

लाख केन्द्र खोले जा सकते हैं तथा इनके बड़े-बड़े कारखाने भी ठौर-ठौर पर मौके के साथ सैकड़ों की तादाद में खोले जा सकते हैं। प्रत्येक ज़िले में कम से कम एक बड़ा कारखाना अवश्य होना चाहिये। और प्रत्येक सात ग्राम के पीछे एक छोटा कारखाना होना चाहिये। इस तरह से प्रति ज़िले में कम से कम एक बड़ा कारखाना और कम से कम प्रति सात गाँवों के बीच में एक छोटा कारखाना खुल जाने पर भारतीय श्रमिकों की बेकारी दूर हो जायगी और व्यापार के ऊपर भी सरकार का नियंत्रण हो जायगा।

वास्तव में आजकल अनेकों योजनाएँ बन रही हैं। देखने में ये एक से एक अच्छी मालूम पड़ती हैं और उनसे यही जान पड़ता है कि इनको कार्यरूप में परिणत करने पर भारत का उद्धार हो जायगा परन्तु इनको कार्यरूप में परिणत करने का जब प्रश्न आता है तब वह आजकल के शासन सूत्रधारों तथा बड़े-छोटे सरकारी अफ़सरों और नौकरों की बढ़ी हुई बेईमानी तथा घूसखोरी देख कर टेढ़ी खीर और कठिन समस्या मालूम होने लगती है। आज हम सरकार के राशन-विभाग की वितरण-विषमता तथा बढ़ी हुई घूसखोरी का प्रत्यक्ष प्रमाण पा रहे हैं। अतः, इस पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है कि वर्त्तमान समय की बेईमानी तथा घूसखोरी कैसे दूर की जाय। यह ठीक है कि बेईमानी और घूसखोरी को क़ानून बना कर किसी हद तक अवश्य रोका जा सकता है। परन्तु जब क़ानून के पालन कराने वाले भी बेईमानी करते और घूस लेते हैं तब तो किसी योजना को नियमानुसार संभावित लक्ष्य तक सफलीभूत बनाना बड़ा कठिन हो जाता है। अतः, इसकी रोक के लिये नीचे दिये हुये कुछ उपायों को काम में लाया जा सकता है।

(१) दायित्व वाले सभी बड़े पदों पर जो लोग रक्खे जायँ वे जनता द्वारा चुने जायँ और चुनाव बिला किसी दबाव के निष्पक्ष और न्यायोचित हो।

(२) बेईमानी और घूसखोरी साबित होने पर जनता की खुली सभाओं में उनकी काली करतूतों की समालोचना की जाय और वे जनता की निगाह में गिरा दिये जावें।

(३) विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में परिवर्त्तन किया जाय और उसमें कला और विज्ञान के साथ-साथ धर्म और सदाचार की भी शिक्षा दी जावे और साथ ही अध्यापकगण इस बात का भी ध्यान रक्खे कि धर्म और सदाचार की शिक्षा जो विद्यार्थियों को दी जाती है उसे वे अपने दैनिक जीवन में कितना अपने व्यवहार में लाते हैं।

जहाँ तक हो सके धर्म के प्रधान अंग सत्य की, कर्तव्य पालन की, परोपकार की, जनता की सेवा की, राष्ट्र और देश की मान-मर्यादा रखने की, निर्विलासिता से जीवन व्यतीत करने, आदि की शिक्षा का प्रचार योजना को कार्यान्वित करने वाले अधिकारियों तथा शासन के सूत्रधारों में तथा जनता में भी तेज़ी से किया जाय। बिना धर्म के उपरोक्त अंग सत्य तथा कर्तव्यपालन आदि को ठीक-ठीक अपनाये हुये कोई भी योजना सफल नहीं बनाई जा सकती। अतः, सरकार और जनता दोनों को इसका पूर्णतया ध्यान रखना चाहिये।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय घनिष्ठता

यातायात के साधनों की उन्नति के कारण अन्तर्राष्ट्रीय घनिष्ठता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना सन् १६४१ के अगस्त में हुई थी जबकि एटलान्टिक चारटर की घोषणा की गई थी। उसकी एक धारा के अनुसार आर्थिक क्षेत्र में हर एक राष्ट्र एक दूसरे के सहयोग से कार्य करेगा जिससे कि मज़दूरों के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा होगा और सबकी उन्नति हो कर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक कलह समाप्त हो जायगी। यह है तो बड़े आदर्श की बात, किन्तु बड़े-बड़े राष्ट्रों के बीच में जो

पारस्परिक स्पर्धा और छोटे-छोटे राष्ट्रों की जो उन्नति करने की उचित आकांक्षा है उसके कारण यह कुछ भी न हो सकेगा।

फिर हाट-स्प्रिंग्स में चवालीस मित्र-राष्ट्रों की एक कान्फ्रेन्स हुई जिसमें भूख से छुटकारा दिलवाने पर विचार विमर्श हुआ। इसने एक कमीशन की स्थापना कर दी है जो कि अन्न और कृषि से सम्बन्धित एक बड़ी योजना को तैयार कर रहा है। संयुक्त राष्ट्रों में रक्षा तथा पुनर्निर्माण सम्बन्धी एक समझौता भी वाशिङ्गटन में हुआ था जिसके अनुसार दुश्मनों से छुटकारा प्राप्त हुये देशों में अन्न, कपड़े, दवा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की सहायता की जा रही है और इस बात का भी प्रबन्ध हो रहा है कि वहाँ के लोगों का स्वास्थ्य ठीक रहे और वहाँ पर कोई बीमारी भी न फैले। फिर एक और कमेटी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने के लिये नियुक्त कर दी गई है जिसकी कई बार बैठक हो चुकी है। इनके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को ठीक से चलाने के लिये प्रत्येक देश की करन्सी के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य को भी एक रखना आवश्यक है। अतः, इस काम के लिये भी ब्रेटिन वुड में एक कान्फ्रेन्स हुई थी जिसमें करन्सी मूल्य स्थाई कारण-कोष के और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्बन्धी बैङ्क के निर्माण का प्रबन्ध किया गया है। इसके अनुसार प्रत्येक देश का कोटा निर्धारित कर दिया गया है जो कि कोष और बैङ्क में जमा भी हो गया है। कोष तथा बैङ्क के सचालन के लिये एक बोर्ड बना है जिसमें पाँच बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि स्थाई सदस्य हैं और सात सदस्य अन्य राष्ट्रों द्वारा निर्वाचित हैं। कोष की और बैङ्क की उपरोक्त योजना को रूस ने नहीं माना है। अतः, पाँच स्थाई सदस्यों में रूस के सदस्य के स्थान पर इसमें एक प्रतिनिधि भारतवर्ष का भी है।। प्रत्येक राष्ट्र की करन्सी का मूल्य डालर में निर्धारित हो चुका है और यह योजना अप्रैल सन् १९४७ से कार्यान्वित हो रही है। इसमें सम्मिलित देशों के लिये यह भी आवश्यक है कि वह अपनी

करन्सी की अदायगी में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगायें और न करन्सी के बारे में किसी भी प्रकार की भिन्नता का व्यवहार करें। बैङ्क का कार्य इसमें सम्मिलित देशों में उत्पादन के लिये विदेशी पूँजी लगाने में सहायता देना, युद्ध के समय बिगड़ी हुई आर्थिक व्यवस्था की पुनर्निर्माण के लिये सुविधा पहुँचाना, पिछड़े हुये देशों में उत्पादन बढ़ाने के लिये धन से सहायता देना और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लेन-देन की विषमता को दूर करने के लिये विदेशी पूँजी को उत्पादन में लगाने के लिये प्रोत्साहित करना है। किन्तु यह बैङ्क किसी देश को तभी उधार देगा जब उस देश को कहीं और से उधार नहीं प्राप्त हो सकेगा और एक विशेषज्ञ कमेटी यह सिफ़ारिश कर देगी कि जिस कार्य के लिये वह देश उधार ले रहा है वह कार्य वहाँ पर सफल हो जावेगा। साथ ही मूल की और ब्याज की अदायगी के विषय में भी पहले से समझौता हो जाना आवश्यक होगा।

कहना न होगा कि भारतवर्ष उपर्युक्त सभी योजनाओं में पूरा भाग ले रहा है। उसके प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न सम्मेलनो में बड़ा काम कर रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार के मुख्य मन्त्री पं० जवाहरलाल जी ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं में भारतवर्ष के सम्मिलित होने के महत्व को भली भाँति समझते हैं और उनके निर्णय के अनुसार काम करने के लिये तैयार हैं। हाँ, यह अवश्य है कि जहाँ जरूरी होगा वहाँ भारतवर्ष अपने निजी स्वार्थ का अवश्य ध्यान रक्खेगा।

भारत इस समय अपने भावी अंतर्राष्ट्रीय दायित्व को समझ रहा है। हम ऐसी आशा करते हैं कि वह अपनी पवित्र नीति द्वारा सारे विश्व के राष्ट्रों में विश्व बन्धुत्व तथा विश्व-शान्ति की स्थापना करने में पूर्णतः सफल होगा। ऐसा होने से उसका प्रचीन गौरव एक बार फिर दुनिया में जगमगा उठेगा।